ईख और चीनी

फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०; ए० आइ०-आइ० एस-सी०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलनभवन, पटना-३

प्रथम संस्करण, विक्रम संवत् २०१२, सन् १९५५ ई०

मूल्य १२) : सजिल्द १३॥)

मुद्रक
अयोध्याप्रसाद झा
हिन्दुस्तानी प्रेस, पटना-४

वक्तव्य

कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि
किं चासि पञ्चशरकार्मुकमद्वितीयम्।
इक्षो तवास्ति सकलं परमेकमूनं
यत्सेवितो भजसि नीरसतां क्रमेण॥

हमारे जीवन का पोषण करनेवाले भोज्य पदार्थों में और जीवन को आनन्द देनेवाले उत्सवों में तथा सामाजिक जीवन के बहुतेरे प्रसंगों में गुड़ और चीनी का उपयोग अनिवार्य रूप से होता है। मधुर रस के परिपाक के लिए दोनों ही अत्यन्त आवश्यक पदार्थ हैं। दोनों चीजें प्रायः ईख से पैदा होती हैं। मानव-समाज के अधिकांश लौकिक व्यवहारों में ईख से उत्पन्न शक्कर का ही विशेष प्रयोजन देखने में आता है।

अतः ईख की खेती हमारे किसानों का एक सहायक धन्धा है—लाभप्रद कृषिव्यवसाय है। जैसे किसानों के लिए ईख की खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है, वैसे ही धनी व्यापारियों के लिए चीनी का व्यवसाय भी विशेष अर्थलाभ का साधन है। हमारे किसान अपने खाने के लिए तो नाना प्रकार के अन्न उपजाते हैं, पर अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए ईख की खेती करते हैं। जूट, कपास आदि की तरह ईख भी किसानों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत है।

इस प्रकार हमारे कृषिप्रधान देश की पैदावारों तथा उसके कृषिसम्बन्धी उद्योग-धन्धों में ईख और चीनी का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईख की खेती और चीनी के कारखानों से लाखों किसान, खेतिहर मजदूर और मिल-मजदूर जीविकोपार्जन तथा अनेक पूँजीपति प्रचुर अर्थोपार्जन करते हैं। किन्तु जिस वस्तु या धन्धे से देश के हजारों गरीब-अमीर लोगों के जीवन का सम्बन्ध है, उसपर हिन्दी में अबतक कोई ऐसी प्रामाणिक पुस्तक नहीं थी, जो तत्सम्बन्धी आवश्यक जिज्ञासाओं का समाधान कर सके। आशा है कि यह पुस्तक उस अभाव की पूर्त्ति में सहायक होगी।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा ने ईख और चीनी के सम्बन्ध की सभी जानने योग्य बातों का उल्लेख इसमें विस्तार से किया है। उन्होंने बड़ी स्पष्टता और सरलता से, विश्वसनीय प्रमाणों के साथ, वर्णित विषय को समझाया है। वे हिन्दीसंसार के चिरपरिचित यशस्वी रसायनशास्त्री हैं। आवश्यक आँकड़ों और चित्रों के संग्रह में उन्होंने काफी परिश्रम किया है, जिससे पाठकों की जानकारी तो बढ़ेगी ही, अनजाने-अनदेखे विषयों का सम्यक् बोध एवं स्पष्टीकरण भी हो जायगा। पुस्तक के अन्त में उन्होंने

पारिभाषिक शब्दों की दोहरी सूची भी दे दी है, जो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने के लिए पर्याप्त है।

लेखक महोदय बिहार-राज्य के सारन-जिले के निवासी हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) के विज्ञान-विभाग से अवकाश-ग्रहण कर अब वे बिहार-विश्वविद्यालय में कालेजों के निरीक्षक हैं। उनकी लिखी एक दर्जन वैज्ञानिक पुस्तकें हिन्दी में निकल चुकी हैं। परिषद् से भी उनकी 'रबर' नामक सचित्र पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। भारत-सरकार ने विज्ञान-शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने के लिए जो विद्वत्समिति बनाई है, उसके भी वे संयोजक-सदस्य हैं। हिन्दी के विज्ञान-साहित्य की श्रीवृद्धि में वे सतत संलग्न हैं। आशा है कि उनकी यह पुस्तक हिन्दी-पाठकों के लिए बहुत ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक सिद्ध होगी।

विजयादशमी, संवत् २०१२ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मंत्री)

भूमिका

बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा स्थापित राष्ट्रभाषा-परिषद् ने हिन्दी में कोई वैज्ञानिक पुस्तक, जो स्कूल और कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तक-जैसी न हो, लिखने के लिए मुझसे कहा। उस समय मेरा ध्यान उस उद्योग-धन्धे की ओर गया था जिसका भारत के उद्योग-धन्धों में तीसरा स्थान है। पूँजी की लागत, श्रमिकों की संख्या, विस्तार और उत्पादन की दृष्टि से भारत के उद्योग-धन्धों में वस्त्र-व्यवसाय का स्थान पहला, जूट-व्यवसाय का दूसरा और चीनी-व्यवसाय का तीसरा है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। वे ही उद्योग-धन्धे यहाँ पनप सकते हैं और संसार के अन्य देशों के उद्योग-धन्धों की प्रतिद्वन्द्विता में टिक सकते हैं, जो कृषि-उत्पादन पर निर्भर करते हैं। भारत की प्रायः चार करोड़ एकड़ भूमि में आज ईख की खेती होती है। प्रायः दो करोड़ किसान इसकी खेती में लगे हुए हैं। ईख की जाति के उन्नत करने और उसका उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से आज अनेक अनुसंधानशालाएँ भारत के विभिन्न प्रदेशों में खुली हुई हैं। कोयम्बटोर (मद्रास) की अनुसन्धानशाला उनमें सर्वश्रेष्ठ है और वहाँ बड़ी उच्चकोटि के अनुसन्धान हुए और हो रहे हैं।

बिहार के 'पूसा' नामक स्थान में भी ईख की एक ऐसी अनुसन्धानशाला है, जहाँ महत्व के काम हो रहे हैं। इन खोजों के फलस्वरूप आज हम उत्कृष्ट कोटि की ईखें पैदा कर सके हैं, जो विदेशों में भी आज उपजाई जाती हैं। ऐसी ईखें जल्दी पक जातीं, इनमें चीनी की मात्रा अधिक होती और इनमें रोगों के आक्रमण के रोकने की शक्ति भी प्रबल होती है। किस मिट्टी में कैसी खाद देनी चाहिए कि ईख की पैदावार बढ़े, इसका भी ज्ञान हमें बहुत-कुछ हो गया है। पर इन नई खोजों को किसानों तक पहुँचाने में हम अभी समर्थ नहीं हुए हैं और न इसके लिए राज्य की ओर से विशेष प्रयत्न ही हुए हैं; क्योंकि ये खोजें अँगरेजी में ही प्रकाशित होती हैं, इस कारण किसानों तक पहुँच नहीं पातीं।

भारत के किसान बड़े गरीब होते हैं। खेती में अधिक पूँजी लगाने में वे असमर्थ होते हैं। सामूहिक खेती के लाभ की ओर उनका ध्यान अभी दिलाया नहीं गया है—यद्यपि सामूहिक खेती के लाभ की चर्चा आज सामयिक पत्रों में चल रही है। मेरे विचार में पैदावार की वृद्धि के लिए सामूहिक खेती के लाभों को किसानों को बतलाना बहुत आवश्यक है। सामूहिक खेती के लिए सहकारी संस्थाओं के द्वारा विशेष प्रबन्ध और प्रयत्न होना चाहिए। जबतक राज्य की ओर से इस दिशा में विशेष प्रयत्न नहीं होगा तबतक पैदावार की वृद्धि में विशेष सफलता की आशा नहीं की जा सकती। आज प्रति एकड़ भूमि की—ईख की—पैदावार में भारत का स्थान बहुत नीचा है।

चीनी के कारखानों में प्रायः तीस हजार व्यक्ति लगे हुए हैं और पैंतालीस करोड़ की

पूँजी लगी है। इन कारखानों में काम करनेवाले व्यक्तियों में पंचानवे प्रतिशत ऐसे हैं जो अँगरेजी नहीं जानते। ऐसे लोगों के लिए हिन्दी में ईख और चीनी पर एक भी पुस्तक देखने को मुझे नहीं मिली।

इस कमी की पूर्त्ति की इच्छा से ही मैंने इस पुस्तक के लिखने का निश्चय किया। मैं स्वयं कृषि-शास्त्री नहीं हूँ। पर बाग-बगीचों में मेरी दिलचस्पी बराबर रही है। अपने हाथों मिट्टी को कोड़-खनकर उसमें कुछ उपजाना सदा मेरा प्रिय काम रहा है। एक समय था जब नियमित रूप से कृषि-विज्ञान के अध्ययन करने की मेरी प्रबल इच्छा थी; पर परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण मैं ऐसा न कर सका।

औद्योगिक रसायन का अध्यापक होने के कारण छात्रों के साथ-साथ पचासों चीनी के कारखानों का निकट से अवलोकन करने का हमें अवसर मिला है। चीनी के रसायन और विश्लेषण का तो मैं कुछ जानकार भी हूँ। अतः इन विषयों के जितने ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाएँ प्राप्त हो सकी हैं, उनके विशेष अध्ययन का मैंने प्रयत्न किया है। कुछ छात्रों ने मेरे अधीन सीरे और छोए पर मौलिक अन्वेषण भी किये हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन मैंने इस पुस्तक में दे दिया है। इनमें एक छात्र का अन्वेषण विशेष महत्त्व का है। इन्होंने सीठी पर बहुत विस्तार से अन्वेषण किया है और सिद्ध किया है कि इसकी उपयोगिता उद्योग-धन्धों के लिए बहुत अधिक है तथा अनेक उद्योग-धंधों में, विशेषतः उत्कृष्ट कोटि के 'पल्प' तैयार करने में, इसका व्यवहार हो सकता है। इस पल्प से कागज, सुन्दर कृत्रिम रेशम, 'रेयन' का सूत भी बनाकर उसकी परीक्षा की गई है और वह उत्कृष्ट कोटि का पाया गया है। सीठे से बने कागज पर कुछ दैनिक पत्र भी इधर छपे हैं।

उपर्युक्त कारणों से ईख और चीनी पर पुस्तक लिखने का मैंने निश्चय किया और उसके फलस्वरूप यह पुस्तक पाठकों के सामने है। इस पुस्तक के लिखने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो इस विषय के विद्वान् ही बता सकते हैं; पर मुझसे जो कुछ हो सका है, मैंने भरपूर प्रयत्न किया है। पहले मुझे पता नहीं था कि इसके लिखने में कितना परिश्रम और कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

हिन्दी में आवश्यक वैज्ञानिक शब्दावली का अभाव तो सबसे बड़ी अड़चन थी; पर डेढ़-दो वर्षों के सतत प्रयत्न से वह बहुत-कुछ दूर हो गई। रसायन-शब्दावली का हिन्दी में अनुवाद करने को एक दक्ष-समिति भारत-सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा नियुक्त है, जिसका संयोजक होने के कारण उक्त कठिनताओं और विघ्न-बाधाओं पर मैं कुछ सीमा तक विजय पाने में समर्थ हो सका हूँ। इस बीच बनारस-हिन्दू-युनिवर्सिटी से अवकाश-ग्रहण करने के कारण पर्याप्त समय मिला और अपेक्षाकृत जल्दी ही, प्रायः डेढ़ वर्षों में ही, यह पुस्तक तैयार हो सकी। अन्यथा, यदि अवकाश-ग्रहण नहीं करता तो इतनी जल्दी इस पुस्तक को तैयार करना संभव न होता।

अँगरेजी में इस विषय की एक-से-एक अच्छी पुस्तकें हैं। केवल चीनी के विश्लेषण की एक सुन्दर पुस्तक तेरह सौ पृष्ठों की है। चीनी के इतिहास की, दो भागों में, बड़े आकार की, पाँच सौ पृष्ठों की एक पुस्तक है। इन अंग्रेजी पुस्तकों की कीमत अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। उपर्युक्त अँगरेजी की, विश्लेषण की, केवल एक पुस्तक का मूल्य प्रायः छियासठ रुपया है। मूल्य अधिक होने से ये पुस्तकें सर्वसाधारण को—

विशेषतः कारखानों में काम करनेवाले अँगरेजी जाननेवालों को भी—सरलता से प्राप्य नहीं हैं। केवल हिन्दी जाननेवालों के लिए तो ये अँगरेजी की पुस्तकें किसी काम की नहीं हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इस विषय की प्रारम्भिक पुस्तक है। इसमें 'ईख और चीनी'-सम्बन्धी विषयों और समस्याओं का दिग्दर्शन-मात्र कराने की मैंने चेष्टाएँ की हैं। आशा है कि अन्य सुदक्ष व्यक्ति इन विभिन्न विषयों पर अच्छी स्वतन्त्र पुस्तकें लिखेंगे। ऐसे लेखकों के लिए मैंने कुछ सीमा तक केवल मार्ग-प्रदर्शक का काम किया है। आशा करता हूँ कि वे शीघ्र ही इन विषयों पर सुन्दर पुस्तकें लिखकर हिन्दी-साहित्य की वृद्धि और उससे हिन्दी तथा देश की सेवा करेंगे। इन विषयों पर अन्य कोई दूसरी पुस्तक लिखने की मेरी इच्छा नहीं है। इन विषयों की वास्तव में यह मेरी पहली और अन्तिम पुस्तक है।

मैंने इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों से स्वच्छन्दतापूर्वक सहायता ली है। इनके लेखकों और प्रकाशकों का मैं बहुत आभारी हूँ—

Noel Deerr—Sugar-cane.

Noel Deerr—The History of Sugar.

Spencer, Meade—Cane-sugar Handbook.

Browne and Zerban—Physical ond Chemical Methods of Sugar Analysis

Varma and Devadatta—Organic Chemistry.

Oliver Lyle—Technology for Sugar Refinery Workers.

हिन्दी मासिक पत्रिका 'गंगा' (सुलतानगंज, भागलपुर) का विज्ञानांक (वि० सं० १९९०-९१)।

अन्त में, बिहार की राष्ट्रभाषा-परिषद् के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिसकी उदारता से मैं इस पुस्तक के तैयार करने में समर्थ हो सका हूँ। राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इस पुस्तक के लिखने में मुझे बहुत उत्साहित किया है। मैं उसका विशेष रूप से आभारी हूँ।

शक्ति-निवास
बोरिंग रोड, पटना
भाद्र-पूर्णिमा, सं० २०१२ वि०

फूलदेव सहाय वर्मा

विषय-सूची

चित्र-सूची

ईख और चीनी

पहला प्रकरण

भारत में ईख और चीनी

ईख और ऊख या ऊँख संस्कृत के 'इक्षु' शब्द से निकले हैं। भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है जो ईसा के जन्म से कम-से-कम १००० से १२०० वर्ष पूर्व का रचा समझा जाता है। ऋग्वेद के छन्द भाग में ईख का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके मंत्र भाग में, जो ईसा के जन्म से कम-से-कम ८०० से १००० वर्ष पूर्व का रचा समझा जाता है, कुछ ऐसे शब्द हैं जिनसे ईख का आभास मिलता है; पर ईख का स्पष्ट उल्लेख इसमें भी नहीं मिलता। अथर्ववेद में, जो ऋग्वेद के बाद का रचा हुआ है, ईख का स्पष्ट वर्णन मिलता है। इसमें लिखा है—ईख मधु से पैदा हुई है। दूसरे स्थल पर एक युवक अपनी प्रेयसी से कहता है—"मैंने तुम्हें चारों ओर से ईख से घेर रखा है ताकि तुम घृणा का परित्याग करो, मुझसे प्रेम करो और मुझसे कभी अलग मत होओ।"

गुड़ का सर्वप्रथम उल्लेख बौद्धग्रन्थ 'प्रतिमोक्ष' में मिलता है। यह ग्रन्थ स्वयं बुद्धदेव के उपदेश के आधार पर रचा बताया जाता है। इसमें लिखा है—"जो भिक्षु नीरोग रहने पर घी, मक्खन, तेल, मधु, गुड़, मछली, मांस और दही का सेवन करेगा, वह दोष का भागी होगा।"

पतंजलि के महाभाष्य में, जो पाणिनी के व्याकरण पर लिखा गया है और जो ईसा के जन्म के प्राय: ४०० वर्ष पूर्व का रचा बताया जाता है, दूध, और चीनी के खीर, जौ के आटे और चीनी के खीर, चीनी और अदरख डाले हुए आसव पेयों का वर्णन है। इसमें स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि ईसा के ४०० वर्ष पूर्व भारत में चीनी का ज्ञान था।

इक्षु से इक्ष्वाकु का कोई सम्बन्ध नहीं है; पर कुछ कथाओं में इन दोनों में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टाएँ हुई हैं। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु एक बड़े पराक्रमी राजा हो गए हैं। क्षत्रियों के सूर्यवंश के वे संस्थापक माने जाते हैं। इक्ष्वाकु की सातवीं पीढ़ी में त्रिशंकु एक राजा हुए। त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाने की वसिष्ठ मुनि से प्रार्थना की। वसिष्ठ मुनि ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया। इसपर त्रिशंकु वसिष्ठ से बहुत रुष्ट हो गये और भला-बुरा कहने लगे। इसपर वसिष्ठ ने उन्हें श्राप देकर चाण्डाल बना दिया। अब त्रिशंकु विश्वामित्र के पास गये। विश्वामित्र और वसिष्ठ में उस समय अनबन थी। विश्वामित्र ने यज्ञ कराकर त्रिशंकु को सीधे स्वर्ग भेजना चाहा। इन्द्र ने चाण्डाल त्रिशंकु को स्वर्ग आते देखकर उन्हें वहाँ से ढकेल दिया। त्रिशंकु वहाँ से गिरे। त्रिशंकु को गिरते देख विश्वामित्र ने तपोबल से मार्ग में ही उन्हें रोककर उसके

लिए एक नये स्वर्ग की सृजना की। इस नये स्वर्ग में ईख और अन्य सुहावने पेड़-पौधे उपजते थे। इस नये स्वर्ग की सृष्टि से इन्द्रदेव घबराये। कुछ समय के बाद विरोध की शान्ति हो गई और वे सन्तुष्ट हो गये। विश्वामित्र के इस महान कार्य के स्मारक-स्वरूप इन्द्र ने मनुष्यों के लिए ईख को पृथ्वी पर फेंक दिया।

बिहार और उत्तरप्रदेश में देवोत्थान एकादशी का व्रत होता है। यह व्रत कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन आता है। पहले तो यह दिवस चार मास बाद विष्णु भगवान के निद्रा से जागने के उपलक्ष्य में मनाया जाता था; पर अब इस व्रत का ईख से भी घना सम्बन्ध है। यह समय ईख के परिपक्व होने का समय है। उस दिन कुछ स्थानों में ईख के खेतों में गृह-देवता की पूजा होती है। घर की कुमारियाँ ईख के खेतों से ईखों को काटकर खेत की पूर्वी सीमा पर इकट्ठा करती हैं। इनमें पाँच-पाँच ईखें पुरोहित, लोहार, बढ़ई, हजाम और धोबी को दी जाती हैं। पाँच ईखें घर पर लाकर विष्णु के पदों का चिह्न जमीन पर बनाकर उसपर ईखों का शंक्वाकार स्तम्भ खड़ा कर स्त्रियाँ गीत गा-गाकर विष्णु भगवान को निद्रा से जगाती हैं। सब लोग प्रार्थना करते और कहते हैं—"आपके जागने से ही तीनों लोक जागेगा।" इसके बाद प्रसाद बाँटा जाता और गरीबों को दान दिया जाता है। इसी समय से ईख की कटाई और पेराई शुरू होती है।

'ललितविस्तर' और 'जातक' में इक्ष्वाकु और गौतम बुद्ध से सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा में ईख के खेत का उल्लेख है। कर्णिक राजा के दो पुत्र थे—गौतम और भरद्वाज। गौतम धार्मिक विचार के थे और भरद्वाज दुष्ट प्रकृति के। गौतम संन्यासी हो गये। पिता की मृत्यु के बाद एक दरबारी के मार डालने का उनपर अपराध लगाया गया और शूली पर चढ़ाने की सजा मिली। उन्होंने अपने निर्दोष होने के सम्बन्ध में कृष्णवर्ण नाम के ऋषि को बतलाया और सन्तान न होने के दुःख को उनको अवगत कराया। ऋषि ने बड़ी तेज हवा और वर्षा भेजी, जिससे गौतम का हृदय कुछ शान्त हुआ, दुःख कम हुआ और गौतम से रक्त मिला हुआ दो बूँद वीर्य गिरा। यह रक्त मिला हुआ वीर्य शीघ्र ही अण्डा बन गया और इससे दो बालक निकले। ये बालक समीप के ईख के खेत में चले गये। इससे उनका नाम इक्ष्वाकु पड़ा। इनमें छोटा बालक राजा हुआ। इक्ष्वाकु वंश का यह पहला राजा था। यह इक्ष्वाकु सूर्य वंश का संस्थापक नहीं था, यह इक्ष्वाकु वंश का संस्थापक था। इसी इक्ष्वाकु वंश के सौएँ पीढ़ी में शुद्धोदन और माया के पुत्र गौतम बुद्ध हुए। बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों के आस-पास सैकड़ों वर्षों से ईख की खेती होती चली आई है। आज भी शाक्य मुनि के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक स्थानों में परसा, बड़ाचक्किआ, महौड़ा, बलरामपुर, पडरौना इत्यादि स्थानों में चीनी के कारखाने स्थित हैं।

एक दूसरे बौद्धग्रन्थ 'महावस्तु' में एक दूसरी कथा मिलती है। वह इस प्रकार है—

"एक समय बनारस में सुबन्धु नामक राजा राज करते थे। यह बड़े धनी और पराक्रमी थे। एक दिन इनके शयन-गृह में एक-ब-एक सुन्दर ईख का पेड़ उग आया। आश्चर्य-चकित हो उन्होंने ब्राह्मणों से पूछा। ब्राह्मणों ने कहा कि यह सगुन अच्छा है और इससे प्रसन्न होना चाहिए। इसी ईख से एक राजकुमार पैदा होगा, जो सुशील और सर्वगुण-सम्पन्न होगा। ईख का पेड़ बढ़ा और एक दिन प्रातःकाल जब राजा रानी के साथ महल में

सोये हुए थे, उस पेड़ के स्तम्भ से एक सुन्दर बालक प्रकट हुआ जिसे रानी ने ग्रहण कर लिया और बड़ी धूमधाम से उस बालक का जन्म-संस्कार सम्पन्न कराया। ब्राह्मणों की अनुमति से इक्षु से उत्पन्न होने के कारण बालक का नाम इक्ष्वाकु पड़ा। समय बीतने पर उसी वंश में बुद्ध देव का आविर्भाव हुआ।"

एक दूसरे ग्रन्थ में लिखा है—"शुद्धोदन के राजगृह में यद्यपि घी, तेल, मधु, सीरा और चीनी सदृश खाद्य-वस्तुओं का पर्याप्त खर्च था, तथापि इनकी कमी कभी नहीं होती थी। बुद्ध देव के आगमन का यह पाँचवाँ चिह्न था!" बोधिसत्व प्राप्त करने के सातवें सप्ताह के अन्त में जब बुद्धदेव सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे, तब त्रपुष और भल्लिक नामक दो सौदागर उसी मार्ग से आये, और बुद्धदेव को एक महात्मा समझकर खाने के लिए छिली हुई ईख दी। बोधिसत्व प्राप्त करने के बाद यह पहला भोजन था, जिसे बुद्धदेव ने ग्रहण किया और त्रपुष और भल्लिक पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने बुद्ध धर्म में दीक्षा ली। जब बुद्धदेव पर्यटन कर रहे थे, मार्ग में एक चोर से भेंट हुई जो सूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था। किसी दयावान व्यक्ति ने चोर को चार ईखें और थोड़ा पानी दिया था। इन चीजों को उस चोर ने बुद्धदेव को अर्पित कर दिया। इस पुण्य के प्रभाव से उस चोर का दूसरे जन्म में वृक्ष-देवता के रूप में जन्म मिला।

ईख के सम्बन्ध में एक दूसरी कथा का यों वर्णन मिलता है—"गौतम बुद्ध के पुत्र राहुल की विमाता महाप्रजापति ने बुद्धदेव से स्त्रियों को उनके संघ में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। बुद्धदेव ने इस प्रार्थना को पहले अस्वीकार कर दिया। महाप्रजापति बुद्धदेव के साथ कपिलवस्तु और वैशाली गई, यात्रा से वह थक गई थी और पैर में छाले पड़ गये थे। वैशाली में उन्होंने बुद्धदेव से पुनः प्रार्थना की। बुद्धदेव के प्रिय शिष्य आनन्द ने भी महाप्रजापति को संघ में सम्मिलित होने का पोषण किया। बुद्धदेव ने द्रवित होकर संघ में सम्मिलित होने की महाप्रजापति की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया; पर ऐसा कहा—"जैसे परिपक्व ईख के खेतों में मंजीठि के[1] रोग से खेत बहुत दिन तक टिका नहीं रहता, वैसे ही, आनन्द, किसी भी संघ में गृह को त्यागकर गृहहीन जीवन में स्त्रियों के प्रवेश से उस संघ का दिव्य जीवन बहुत दिन तक कायम नहीं रहेगा।"

ईख के कोल्हू का सर्व-प्रथम वर्णन सौवीं सदी के लगभग के बौद्धसाहित्य 'सौन्दरानन्द' में इस प्रकार मिलता है—"जैसे ईख के डंठल को कोल्हू में पेरकर रस निकाल लिया जाता है और उन डंठलों को सूखने के लिए जमीन पर फेंक दिया जाता है ताकि सूख जाने पर जलावन का काम लिया जा सके, वैसे ही वृद्धावस्था के कोल्हू में पीसा हुआ शरीर चिता में जलने के लिए प्रतीक्षा करता है।"

एक दूसरे बौद्ध ग्रन्थ 'बुद्धघोष' में जो प्रायः ५०० ई० का रचा हुआ समझा जाता है, एक चीनी के कारखाने का वर्णन इस प्रकार है—

"ईख के पेरने के लिए पाँच कोलुओं का उपयोग करते हैं। गाँव से ग्यारह व्यक्ति

---

१. मंजीठ एक प्रकार का लाल रंग होता है। सम्भवतः यह मंजीठि का रोग वही है, जिसे आज सारू या मोक (redrot) कहते हैं। यह रोग एक कवक (fungus) के कारण होता है।

ईख पेरने के लिए कोल्हू के साथ गाँव से निकलते हैं। ईख के खेत में पहुँचकर देखते हैं कि ईख परिपक्व हो गया है। खेत के मालिक से कहते हैं कि हमलोग ईख पेरने के कारीगर हैं। खेत का मालिक कहता है—"मैं तुम्हीं लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था। वह उन्हें ईख की झोपड़ी में ले जाता है। उस झोपड़ी में ग्यारह व्यक्ति कोल्हू बैठाते हैं और कहते हैं कि हमलोग ग्यारह व्यक्ति हैं। हमें एक व्यक्ति और चाहिए। मैं मजदूरी दूँगा। खेत का मालिक उनका सहकारी होकर झोपड़ी में प्रविष्ट करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना काम करता है। जो शीरा उबालता है, वही रस को उबालता है। उससे फिर गोल गेंद बनाता है। खेत का मालिक उन्हें तौलता है और प्रत्येक कारीगर को उनका भाग देता है। जब उन्हें अपना-अपना भाग मिल जाता है, तब वे मालिक को वह झोपड़ी सौंपकर दूसरे किसान की झोपड़ी में चले जाते हैं। इस प्रकार पाँच झोपड़ियों में काम करके वे लौट जाते हैं।"

इस वर्णन का कुछ लोगों ने गुप्त रहस्य के रूप में उपदेश देना बतलाया है।

इस कथा में वर्णित पाँच कोल्हू मनुष्य की पाँच चेतन इन्द्रियाँ है। पाँच खेत पाँच प्रकार के विषय हैं। पाँच खेतों के मालिक पाँच प्रकार की इन्द्रियों के चेतक हैं।

हिन्दू पुराणों का रचनाकाल ८०० से १००० ई० के बीच का बतलाया जाता है। पुराणों में ईख का वर्णन मिलता है। विष्णु पुराण में नमक, जल, घी, सुरा और ईख-रस के समुद्रों का उल्लेख है। वरुण के बाग में ईख उपजता था। दिव्य पीपल वृक्ष से मधु और चीनी के सीरे के बहने का उल्लेख है। कामदेव के वर्णन में लिखा है कि इनके धनुष ईख के बने हैं, धनुष की डोरी मधुमक्खी और मधु की बनी है और बागों में वसन्त के फूल फूलते हैं।

मनुस्मृति ग्रन्थ जो ईसा के जन्म के २०० वर्ष पूर्व और २०० वर्ष बाद के बीच का रचा समझा जाता है, उसमें ईख और शर्करा का स्पष्ट वर्णन है—

"एक द्विज जो यात्रा कर रहा है और जिसका आहार समाप्त हो गया है, यदि वह किसी दूसरे व्यक्ति के खेतों से दो ईखें या जड़ें ले ले, तो उसे दण्ड नहीं मिलेगा।

"यदि ब्राह्मण को कुछ बेचना पड़े तो उसे शस्त्र, विष, मांस, सोम, सुगंधित द्रव्य, दूध, मधु, मक्खन, तेल, मोम, चीनी और कुश नहीं बेचना चाहिए।

"रेशम चुराने से मनुष्य को तोते का, सन-वस्त्र चुराने से मेढ़क का, कपास-वस्त्र चुराने से सारस का, गाय चुराने से छिपकिली का और चीनी चुराने से लोमड़ी का जन्म मिलता है।"

"सुरा तीन प्रकार की होती है—एक सुरा शीरा से, दूसरी पीसा हुआ चावल से और तीसरी सुरा मधूक के फूल से प्राप्त होती है।"

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त चरक और सुश्रुत संहिताओं, चाणक्य के अर्थशास्त्र और बावर मनुस्क्रिप्ट में ईख का वर्णन मिलता है।

चरक और सुश्रुत संहिताएँ वैद्यक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के रचना-काल के सम्बन्ध में मतभेद है। लोग कहते हैं कि चरक कश्मीरी थे और कनिष्क के राज-वैद्य थे। कनिष्क सम्भवतः ७८ ई० में भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में राज करते थे और पेशावर उनकी राजधानी थी। चरक के जीवन-काल के सम्बन्ध में यद्यपि सर्व-सम्मत मत नहीं है;

पर 'चरकसंहिता' प्राय: इसी काल में रची गई थी। इस सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है। सुश्रुत संहिता इसके प्राय: १०० वर्ष बाद रची गई थी। बावर मनुस्क्रिप्ट लेफ्टिनैन्ट बावर द्वारा १८९० ई० में पूर्वी तुर्किस्तान के कुचार नामक स्थान में पाई गई थी। इसका रचना-काल ३५५ ई० बतलाया जाता है। अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ का पहले-पहल १९१० ई० में पता लगा था। इसके रचनेवाले चाणक्य या कौटिल्य हैं, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त के मंत्री थे। चन्द्रगुप्त ने ईसा से ३२१—२९६ वर्ष पूर्व में राज्य किया था। कुछ लोगो के मत से अर्थशास्त्र का रचना-काल सन् १०० से २०० ई० बतलाया जाता है।

चरक-संहिता में ईख के साथ-साथ कास, खांडेक्षु, इक्षुवलिक, एकलतामूल, सारादर्वा और कुश का वर्णन है। इनमें इक्षु, कास, कुश, दर्वा और सार 'तृणादि पंचमूल' है। इनके काढ़े और राखों के तैयार करने और गुणों का सविस्तर वर्णन मिलता है। अनेक रोगों में इनका उपयोग बतलाया गया है। ईख के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलता है, उनमें कुछ निम्नलिखित है—

"दाँतों से चूसे ईख के रस से धातु की वृद्धि, कोष्ट की सफाई, स्निग्धता और शीतलता पैदा होती है। पोषण और मोटापन की वृद्धि होती है और कफ गिरता है।

"कोल्हू से निकले रस से चमड़े में जलन पैदा होती है।

शीरे से पेट में कीड़े पड़ते हैं, मज्जा, रक्त, मेदा और मांस की पर्याप्त वृद्धि होती है। गाढ़े काले शीरे को 'क्षुद्र' कहते हैं। क्षुद्र ऐसा हो सकता है जिसमें रस का चतुर्थांश रहा हो। रस का तृतीयांश रहा हो और रस का अर्धांश रहा हो। जिस क्रम में वर्णित हैं उसी क्रम में उनके भारीपन का गुण बढ़ता है। धो देने से शीरे की अशुद्धियाँ कम हो जाती हैं। शीरे से अधिक स्वच्छ पदार्थ को मत्स्यण्डिका, खांड और शर्करा कहते हैं। मत्स्यण्डिका से खांड अधिक स्वच्छ होता है और खांड से शर्करा अधिक स्वच्छ होती है। शीतलता का गुण भी स्वच्छता के क्रम में बढ़ता है। सभी प्रकार की चीनी प्यास को शान्त करती, रक्त-स्राव को रोकती और जलन को कम करती है। ईख से प्राप्त पदार्थों में शर्करा सबसे श्रेष्ट है। ईख के विभिन्न रसों में फणिता सबसे निकृष्ट है।

चीनी के लिए इस ग्रन्थ में दो और शब्दों का उपयोग हुआ है। एक 'सिता' और दूसरा 'सितोपला' है। सफेद चीनी को सिता' कहते हैं। दानेदार सफेद चीनी को 'सितोपला'। चीनी से सुरा बनती है। इसका भी वर्णन चरकसंहिता मे मिलता है। लिखा है— इक्षु, खांडेक्षु, इक्षवलिक और पौण्ड्रक चार पौधे हैं, जिनके स्तम्भ से सुरा बनती है। चीनी से बनी सुरा मुख प्रिय, अल्प-मादक, सौरभ-युक्त और आँत के रोगों का नाशक और पाचन वृद्धिकारक होती है। पुराना हो जाने पर इसका स्वाद मनोरंजक और यह प्रसन्नता और कान्ति बढ़ानेवाली होती है।

यहाँ चीनी और मिसरी शब्दों के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना उचित जान पड़ता है। चीनी शब्द कब, कहाँ से और कैसे हिन्दी में आया, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। संस्कृत ग्रन्थों में चीनी के लिए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। चीनी के लिए शर्करा और खांड दोनों शब्द उपयुक्त हुए हैं। ईख के खंड-खंड करके, कुचलने से रस निकालकर चीनी बनती है। इसी से सम्भवत: खांड शब्द पड़ा। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि दानेदार शर्करा चीन देश से पहले-पहल

भारत में आई। इसी से इसका नाम चीनी पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चीन देश में बहुत दिनों से दानेदार चीनी बनती आई है। इससे यह सम्भव मालूम पड़ता है कि किसी समय चीन देश से दानेदार शर्करा के आने के कारण ही इसका नाम चीनी पड़ा। वस्तुत: ईख से बनी शर्करा इक्षु-शर्करा को ही चीनी कहते हैं। शक्कर शब्द भी चीनी के लिए उपयुक्त होता है। यह प्राकृत का शब्द है। संस्कृत की शर्करा अथवा फारसी के शकर से बहुत-कुछ सम्बन्ध रखता है। कहीं-कहीं भुरे रंग की कच्ची चीनी के लिए ही शक्कर शब्द का उपयोग होता है। कहीं-कहीं इसे 'भुरा' भी कहते हैं।

हिन्दी में एक और शब्द 'मिसरी' या 'मिश्री' है, जो एक विशिष्ट प्रकार की चीनी दो बार बहुत साफ करके जमाई हुई दानेदार या रवेदार चीनी जो प्राय: कूजे या कतरे के रूप में बाजारों में बिकती है" के लिए उपयुक्त होता है। वैद्यक ग्रन्थों में मिसरी स्निग्ध, धातुवर्द्धक, मुखप्रिय, दस्तावर, हल्की, तृप्तिकारी, सब प्रकार के रोगों को शान्त करनेवाली और रक्तपित्त को नष्ट करनेवाली मानी गई है। यह मिसरी शब्द मिस्र देश के नाम से निकला समझा जाता है। सम्भवत: मिसरी पहले-पहल मिस्र देश से ही आई हो। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का स्पष्ट मत है कि मिसरी शब्द मिस्र देश से ही सम्बन्ध रखता है और मिस्र देश में बनी चीनी के लिए ही उपयुक्त होता था। हिन्दी-शब्द-सागर में भी 'मिसरी' शब्द मिस्र देश से निकला बताया गया है।

अशुद्ध इक्षु-शर्करा को गुड़ कहते हैं। बंगाल का प्राचीन नाम गौड़ था। कुछ लोगों का मत है कि गुड़ का देश होने के कारण ही 'गौड़' नाम पड़ा। इससे कुछ लोग निष्कर्ष निकालते हैं कि गुड़ और चीनी का निर्माण पहले-पहल बंगाल में ही शुरू हुआ; पर यह निष्कर्ष ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि आर्यों के द्वारा बंगाल पर आधिपत्य स्थापित करने के पूर्व के ग्रन्थों में गुड़ का स्पष्ट वर्णन मिलता है। बहुत प्राचीन काल से गुड़ ताल और खजूर के पेड़ों के रसों से तैयार होते आ रहे हैं। मध्य काल के अनेक पाश्चात्य यात्रियों ने अपने यात्रा-ग्रन्थों में ताल और खजूर के गुड़ का वर्णन किया है। आज भी ताल और खजूर के गुड़ बनते हैं; पर इनकी मात्रा अपेक्षाकृत बहुत अल्प है। ईख से बने गुड़ की मात्रा बहुत अधिक है।

सुश्रुत-संहिता में प्राय: वे ही सब बातें दुहराई गई हैं, जो चरकसंहिता में दी हुई हैं। "ईख स्वाद में मीठा, पाचक, गुरु, शीतल, शान्तिप्रद, बलवर्द्धक, धातुवर्द्धक और मूत्रवर्द्धक होती है। इससे शरीर में कफ पैदा होता और आंतों में कीड़ों के उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। ईखों में विभिन्न प्रकार की ईखों और उनके गुणों का वर्णन है। चीनी तैयार करने के सम्बन्ध में 'चरक-संहिता' से अधिक नहीं दिया है। इसमें चार श्रेणी की चीनी का वर्णन है—फाणिता, मत्स्यन्डिका, खांड और शर्करा। मधु से प्राप्त चीनी का भी वर्णन है। सुरा की प्राप्ति का वर्णन है; पर ताल से प्रस्तुत चीनी का वर्णन नहीं है। कई प्रकार की सुराओं का वर्णन है। ताजे ईख के रस से प्राप्त, शीतरसिका सिद्ध,' उबाले ईख के रस से प्राप्त 'गुड़ सिद्ध', शर्करा से प्राप्त 'शर्करा सिद्ध,' जामुन के रस से प्राप्त 'जामवसिद्ध', अंगूर और ईख के रसों से प्राप्त 'द्राक्षासव', किण्वित ईख के रस से प्राप्त 'आसव', 'सुरासव' इत्यादि का वर्णन है।

भिन्न-भिन्न प्रकार की वर्णित चीनी के सम्बन्ध में जोगेशचन्द्र राय ने बिहार और

उड़ीसा के रिसर्च जर्नल के एक लेख में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की है—"जो चीनी बिलकुल तरल दशा में रहती है, उसका नाम 'फणिता' है। जो कुछ तरल और कुछ ठोस दशा में रहती है, उसका नाम 'मत्स्यन्दिका' और बिलकुल ठोस दशा में, पर मणिभ रूप में होती है, उसे गुदा या गुड़ या जैगेरी कहते हैं। जो बिलकुल ठोस दशा में; पर मणिभीय रूप में और निम्न श्रेणी की होती है, उसे 'खांड', जो ठोस, मणिभीय पर उच्च श्रेणी की होती है, उसे 'शर्करा', जो बिलकुल ठोस, मणिभीय और शर्करा से भी उच्च श्रेणी की होती है, उसे 'पुष्पासित' और जो ठोस, मणिभीय, श्वेत और कठोर होती है, उसे 'सितोपला' कहते हैं। 'राब' ईख के उस गाढ़े रस को कहते हैं, जो मणिभीय बिन्दु की पूर्व अवस्था में रहता है। शर्करा को प्राकृत में 'शक्कर' कहते हैं, जिसका अर्थ 'कंकड़' है। शर्करा भी 'करा' से निकला समझा जाता है, जिसका अर्थ भी 'कंकड़' है।

बावर मनुस्क्रिप्ट में शर्करा, फणिता, गुदा, मत्स्यन्दिका, सिता-शर्करा, सिता, सिताचूर्ण, सितोपल, इक्षु, इक्षु-मूलक, इक्षु-रस, इक्षु-स्वरस का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में अनेक स्थलों पर चीनी का वर्णन मिलता है। "किले के अन्दर चीनी, नमक, सूखी भाजियाँ और चारा इतना इकट्ठा कर रखना चाहिए कि वर्षों तक वे काम दे सकें। कर इकट्ठा करनेवाले कर्मचारियों का कर्तव्य है कि वह किलों, गाँवों, खानों, जंगलों, पशुओं, सिंचाई, मार्ग पर आने-जानेवाले व्यापारियों की वस्तुओं, क्षारों,* फूल-बागों, फल-बागों, शाक-भाजी के बागों और अन्य खेतों से कर इकट्ठा करें। सुरा के सम्बन्ध में लिखा है कि सुरा अल्पमात्रा में ऐसे व्यक्तियों के हाथ बेचना चाहिए जो चरित्रवान् हो। सुरा के बनाने की विधि का भी वर्णन है।

सन् १००० ई० से पूर्व के संस्कृत ग्रन्थों में चीनी का उतना व्यापक रूप से वर्णन नहीं मिलता है। 'मृच्छकटिक' में, जो कुछ विद्वानों के मत से दूसरी सदी का रचा हुआ और कुछ विद्वानों के मत से छठी सदी का रचा हुआ समझा जाता है, चीनी की मीठी रोटी का वर्णन है। कालिदास के नाटक में—कालिदास प्रायः ३७५ ई० में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के दरबार में रहते थे—केवल एक स्थान में चीनी का उल्लेख है। लिखा है—"यहाँ थोड़ा आरोग्यकर ईख का रस हमारे मित्र के लिए है जो आसव के अधिक सेवन से रोग-ग्रस्त हो गये हैं।"

इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में चीनी का उपयोग व्यापक रूप से नहीं होता था। उस समय इसका उपयोग विलास की वस्तु थी; पर हेमचन्द्र के समय में, प्रायः ११५० ई० में, इसका उपयोग बहुत व्यापक हो गया था। हेमचन्द्र-रचित 'परिसिस्पर्तवन' में एक कथा दी हुई है। "एक सुसेनम गाँव में एक किसान 'चक' रहता था। वह धन-धान्य से परिपूर्ण था। जब वर्षा-ऋतु आई, तब उन्होंने खेतों को हल से जोतकर, हेंगाकर मक्का और कोदो बो दिया। खेतों में पौधे उग आए और खेत लहलहाने लगे। मक्का और कोदो के खेतों को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने एक सम्बन्धी के पास किसी दूर गाँव में गया। वहाँ उसके सम्बन्धी ने उसे मीठी रोटी खाने को दी। वह रोटी उसे बड़ी अच्छी लगी। वह कहने लगा—"कैसा सुन्दर जीवन तुम बिता रहे हो। तुम्हारा भोजन

*क्षारों में अर्थ-शास्त्र में फणिता, मत्स्यन्दिका, खांड और शर्करा सम्मिलित हैं।

सुधा-सा मीठा है। स्वप्न में भी ऐसा भोजन हमें नहीं मिलता। हमलोग कैसे हठी हैं कि अपने पेट को मक्का और कोदो से दूषित करते हैं।" उसने अपनी सम्बन्धी से पूछा कि तुम अपना भोजन कैसे तैयार करते हो? उस सम्बन्धी ने कहा—"हम पानी-चक्र से अपने खेतों को पटाते और मक्का के सदृश ही गेहूँ बोते हैं। जब वह पक जाता है, फिर अनाज को चक्की में पीसकर आग पर उसकी रोटी पकाते हैं। इसी प्रकार ईख बोते हैं और जब वह लंबी हो जाती है, तब उसे पेरकर रस से चीनी बनाते हैं।" किसान ने इसे सीख लिया और गेहूँ का बीज और ईख लेकर अपने गाँव गया। वह शीघ्र ही अपने खेतों में जाकर मक्का और कोदो को काटने लगा। उसके पुत्र ने कहा—"पिताजी, आपके फसल को घास की नाईं क्यों काटते हैं? इसी से घर का भरण-पोषण होता है।" उसने कहा कि "कोदो बुरी फसल है। इन खेतों में मैं गेहूँ और ईख बोऊँगा और मीठी रोटी खाऊँगा।" पुत्र ने कहा—"कुछ दिनों में फसल पक जायगी, तब इसे बटोर कर गेहूँ और ईख बोइए। माता के अन्दर का बच्चा अनिश्चित है; पर उसके कूल्हे पर का बच्चा निश्चित है।" पर बक ने लड़के की बात न मानी। मक्का और कोदो को काटकर खेत को गेंद खेलने का मैदना-सा साफ कर दिया। तब उन्होंने कुँआ खोदना शुरू किया। वहाँ पत्थर निकल आया। कुँए में पानी नहीं निकला। वह हताश नहीं हुआ, खोदता और खोदता चला गया। कुँआ पाताल के सुराख-सा देख पड़ने लगा; पर कहीं मिट्टी अथवा पानी का चिह्न नहीं पाया। इस प्रकार न उसे मक्का और कोदो मिला तथा न गेहूँ और ईख ही, कष्ट-ही-कष्ट मिला।

मेगास्थनीज़ के समय के बाद ६०० वर्षों तक बाहर से आये यात्रियों में चीनी का उल्लेख नहीं मिलता। ३९९ ई० में चीनी यात्री फाहियान ने बुद्धदेव के आदेशों की खोज में सिन्धु नदी के पूर्व से भारत में प्रवेश किया। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया, यहाँ के पेड़-पौधे, वृक्षों और जड़ों में उसने विभिन्नता देखी; पर बाँस, अनार और ईख उसके देश के एसे ही थे।

इसके प्राय: २०० वर्ष बाद ह्वे-ये-न संग ६२८ ई० में भारत आया। उसने लिखा है—"यहाँ के व्यक्ति भूजे चने की रोटी खाते थे। इस रोटी के साथ वे दूध, मलाई, मक्खन, ठोस चीनी और कड़ुआ तेल मिला देते थे। क्षत्रियों का आहार अंगूर और ईख का रस था। वैश्य अनाज से निर्मित किण्वित पदार्थ खाते थे। श्रमण और ब्राह्मण अंगूर के रस पीते थे जो सुरा से, आसुत पदार्थ से, बिलकुल भिन्न होता था। इसके भ्रमण-वृत्तान्त के अनेक स्थलों में ईख का वर्णन मिलता है।

ह्वे-ये-न संग के बाद ६७१-६९५ ई० में तीसरा चीनी यात्री इत्सिंग भारत आया। यह समुद्र के मार्ग से चलकर ताम्रलिप्ति नामक स्थान में उतरा था। सम्भवत: यह स्थान कटक के निकट कहीं था। वहाँ से वह श्रावस्ता गया और लौट आया। वह लिखता है—"मीठे तरबूज, ईख और कन्द बहुत मिलते हैं; पर खाद्य मृदु पत्र (mellons) बहुत कम मिलते हैं।" मठों में आहार के उपयोग का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि "रोटी और फल खाने को मिलते हैं, घी भी और थोड़ी-चीनी भी। जब कोई नवागत आता है, तब घी, मधु, चीनी और अन्य खाद्य पदार्थ प्रचुरता से मिलते हैं।

इसके बाद चौथा यात्री चिटसाई सन् १२१८ ई० में चंगेज़ खाँ के पास भेजे विवरण में लिखता है—"दक्खिन में एक नदी सिन्धु है, जिसका पानी बरफ-सा ठंडा रहता है। यह

बड़ी शीघ्रता से दौड़ती हुई दक्खिन के समुद्र में गिरती है। इस देश में ईख उपजती है और उसके रस से लोग सुरा और चीनी बनाते हैं।"

इसके बाद मार्को पोलो १२९० ई० में बंगाल में आया। वह लिखता है कि वहाँ के लोग उन्नत व्यापार करते हैं। अनेक बहुमूल्य मसाले के साथ चीनी का भी व्यापार करते हैं। मार्को-पोलो के बाद इब्न-बातूत सन् १३२५-५४ ई० तक भारत में भ्रमण करता रहा। उसके भ्रमण-वृत्तान्त में पहले-पहल दक्खिन भारत और पश्चिम समुद्रतट में चीनी के होने का वर्णन है। वह लिखता है—"दो दिन की यात्रा के बाद हमलोग फकनपुर पहुँचे। यहाँ बड़ी मात्रा में ईख को उपजते देखा। ऐसी अच्छी ईख देश में और कहीं नहीं देखी थी।" उत्तर भारत के सम्बन्ध में वह लिखता है—"हमलोग तब कन्नौज लौटे, यह एक बड़ा स्थान बहुत अच्छा बसा हुआ है और सुरक्षित है। चीजें यहाँ बड़ी सस्ती मिलती हैं। चीनी का बाहुल्य है। चीनी यहाँ से दिल्ली भेजी जाती है।"

वास्को-डी-गामा गुडहोप अन्तरीप होकर १४९८ ई० में कालिकट में जहाज से उतरा था। वहाँ उसने बड़ी मात्रा में चीनी देखी थी।

आईनी-अकबरी के बहुत स्थलों में चीनी का वर्णन है। यह पुस्तक १५९० ई० में लिखी गई थी। इसमें अनेक प्रकार की ईखों का वर्णन है। इनमें दो प्रकार की ईखें प्रमुख थीं—एक को पौंडा कहते थे। यह बहुत कोमल होती थी। इसमें रस का बाहुल्य होता था। गबरैये की ठोकर से भी रस निकल आता था। दूसरे प्रकार की ईख कठोर होती थी और उसमें रस की कमी रहती थी। पहले किस्म की ईख चूसने के लिए और दूसरे किस्म की ईख चीनी बनाने के लिए उपयुक्त होती थी।

जमीन का कर भिन्न-भिन्न फसलों के कारण और कुछ सीमा तक भिन्न-भिन्न स्थानों के कारण बदलता था। ईख पर अन्य फसलों से अधिक कर लगता था। हाथी और घोड़ों को चीनी और शीरा खिलाया जाता था। प्रत्येक हाथी के लिए प्रतिदिन पाँच सेर चीनी और ईख के दिनों में ३०० ईखें मिलती थीं। आज भी ईख हाथियों को खिलाई जाती है। घोड़ों को भी चीनी दी जाती थी। दुधार पशुओं को चीनी और शीरा दी जाती थी। उस समय मालवा और बिहार में ही ईख की फसल सबसे अच्छी होती थी। फतेहपुर में बिलकुल सफेद चीनी और मथुरा में उत्तम मिसरी बनती थी।

व्यापार करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को १६०० ई० में इंगलैण्ड के राजा से राजाज्ञा मिली। भारत में सूरत उनका प्रथम प्रमुख व्यापार केन्द्र था और वहाँ से वे फारस के साथ व्यापार करते थे। इस व्यापार में चीनी का स्थान प्रमुख था।

सूरत से ही चीनी इंगलैंड गई। १६६४ और १६७१ ई० के बीच प्राय: १५० टन चीनी भारत से इंगलैण्ड गई थी। उस समय एक हंडरवेट चीनी का मूल्य १६ शिलिंग था, जहाज किराया २० शिलिंग और कर ४ शिलिंग था। वहाँ ४२½ से ५२ शिलिंग प्रति हंडरवेट की दर से बिकती थी। १७००—१७१६ के बीच ६० शिलिंग की दर से चीनी बिकी। अंग्रेजों द्वारा चीनी का व्यापार फारस के साथ उस समय अधिक होता था। आगरा और अहमदाबाद से ऊँटों पर लादकर भी चीनी बाहर जाती थी। उस समय अहमदाबाद में चीनी ३६½ से ३७ रुपया प्रति मन के भाव से बिकती थी। यह मन अकबर का मन था, जो ३४·७५ पाउण्ड का होता था।

तब से सन् १७७६ ई० तक चीनी के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय वर्णन नहीं मिलता। इसी वर्ष कलकत्ता के कुछ व्यापारियों ने कम्पनी के पास एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था—"बंगाल के व्यापार की एक प्रमुख वस्तु चीनी थी, जिसका व्यापार बंगाल से मद्रास, मालावार कोस्ट, बम्बई, सूरत, मस्कट और फारस की खाड़ी के अन्य बन्दरगाहों, मक्का और जेड्डा, के साथ होता था। कलकत्ता के अधिकार में कर लेने से पहले (१७७६) प्राय: ५० हजार मन चीनी प्रतिवर्ष बाहर जाती थी; पर अब चीनी का व्यापार प्राय: नष्ट हो चुका है। चीनी का निर्माण बहुत घट गया है। इतना घट गया है कि बंगाल के लोगों को अपने लिए भी पर्याप्त चीनी नहीं पैदा होती है। चीनी का निर्माण ऐसे लोगों के हाथ में रह गया है जो मशीनों का उपयोग नहीं जानते। पुरानी अधूरी रीति से ही चीनी तैयार करते हैं। हमारी प्रार्थना है कि यूरोपवालों को भारत में ईख बोने और चीनी तैयार करने का काम लेना चाहिए और अमेरिकावालों के द्वारा जो रीति उपयुक्त होती है, उसे अपनानी चाहिए।"

कम्पनी ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर ईख बोने के लिए कुछ जमीनें दीं, पर प्रयोग करने पर देखा गया कि दीमकों ने ईखों को नष्ट कर दिया। इस कारण ईख बोने की योजना को त्याग देना पड़ा और दूसरे स्थलों से ईख मंगाकर चीनी और 'रम' नामक सुरा तैयार करने का प्रयत्न हुआ।

विदेशियों का पहला कारखाना १७८४ ई० में हुगली के निकट 'सुकसागर' नामक स्थान में क्रौफ्ट्स द्वारा खोला गया था। एक समय वारेन हेस्टिंग्स ने इसी कारखाने में आकर शरण ली थी। कम्पनी को 'रम' देने का ठीका क्रौफ्टस् को मिला था और बहुत दिनों तक वे सरकार को रम देते रहे।

इसके बाद सन् १७९१ ई० में कम्पनी ने लेफ्टिनैन्ट जौन पैटर्सन को बिहार में ईख की खेती करने और चीनी के कारखाने खोलने के लिए पचीस हजार रुपये का ऋण दिया। उन्होंने बनारस के निकट 'बीरभूम' में एक स्थान खरीदा, पर इसी बीच सन् १७९४ में इनकी मृत्यु हो गई। उनके मरने के बाद कई अँग्रेजों ने कम्पनी के पास ईख बोने के सम्बन्ध में प्रार्थनाएँ भेजीं, पर उसका कोई फल नहीं हुआ। इसी समय में अन्ड्रू प्राऊ (Prough) और जेम्स पाल (Paull) ने अवध से कम्पनी को चीनी देने का वादा किया। कुछ व्यापारियों ने बनारस, मऊ, आजमगढ़ और मिरजापुर से चीनी खरीदकर कम्पनी को दीं। कोर्डेन नामक व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत चीनी उच्चकोटि की होती थी। यह पता नहीं लगता कि कोर्डेन स्वयं ईख की खेती करता था अथवा किसानों से ईख लेकर चीनी तैयार करता था अथवा चीनी का केवल संशोधन करता था।

दखिन भारत के मद्रास में एक एडवर्ड कैम्पबेल ने त्रिचनापली में ईख बोने का निश्चय किया; पर कम्पनी से उन्हें कोई मदद नहीं मिली। सन् १८१५ ई० में एक दूसरे अँग्रेज कौली ने मिनसुर्क में ४४ हजार रुपया लगाकर चीनी का कारखाना खोला और उसमें वे प्राय: ३०० टन चीनी प्रतिवर्ष तैयार करते थे।

इसी प्रकार बंबई में भी चीनी तैयार करने के प्रयत्न हुए। सन् १८०१ ई० में पोवी नामक स्थान में डा० स्कौट ने एक कारखाना खोला। भारत में तैयार चीनी के व्यापार से कम्पनी को अधिक लाभ नहीं हुआ। इस कारण कम्पनी ने इस व्यापार में कोई दिलचस्पी

नहीं दिखाई; यद्यपि भारत से कुछ-न-कुछ चीनी प्रतिवर्ष इङ्गलैंड जाती थी। उस समय की चीनी वैसी ही थी जैसी देशी चीनी 'खांडसारी चीनी' होती है।

सन् १८३४ ई० में वेस्ट इण्डिज में मजदूरों की दास प्रथा का अन्त हुआ। इससे वेस्ट इण्डिज के कुछ अँग्रेज खेतिहर वहाँ से हटकर भारत आये। इनमें एक लियोनार्ड रे (Wray) ने गोरखपुर में एक कारखाना खोला। अन्ड्रू साइम (Syme) ने पड़रौना में एक कारखाना खोला और आर्थर कूक ने तिरहुत के बागमती नदी पर जुमाव में एक कारखाना खोला। अन्य व्यक्तियों में रबिन्सन ने बंगाल में, कैप्टेन स्लीमैन ने जबलपुर में कारखाने खोले। उस समय गुड़ और ईख दोनों से चीनी तैयार होती थी। ऐसे कारखाने मुख्यत: बिहार और उत्तर प्रदेश के अजीजपुर, मोतिहारी, सीराहा, बड़ाचकिया, बिरदपुर, बेलसंड, जुमाव, बोगा, गोरखपुर और पड़रौना में खुले। आसाम के गोहाटी में भी एक कारखाना खुला। इन कारखानों में दोबारा पीसने की चक्कियाँ थीं और शून्य-कड़ाह भी थे। इनमें उन्नत रीति से चीनी तैयार होती थी। गुड़ से चीनी तैयार करने के कारखाने अधिकांश बंगाल में, दूबा, शिवपुर, अलबिश्रों, वालिकोल, काशीपुर में थे। केवल दूबा में प्रतिवर्ष ७००० टन चीनी तैयार होती थी। काशीपुर कारखाने के मालिक थे हार्डमैन हाउअर्थ एण्ड कम्पनी, जिसने १८४२ ई० के दिसम्बर में काम शुरू किया था। यह कारखाना १९२४ ई० तक चला।

मद्रास में भी गुड़ से चीनी बनाने के कारखाने खुले, चिल्तवासा में एक कारखाने में ८,५०० टन चीनी एक साल में तैयार हुई। बिनी और कम्पनी और पैरी एण्ड कम्पनी ने अपने-अपने कारखाने खोले।

सन् १८४६ में इंगलैंड में जानेवाली चीनी का प्राय: चतुर्थांश भाग भारत से निर्यात किया जाता था। सन् १८६० से १९०० के बीच हमारे देश में मॉरिसस और जावा से बहुत अधिक मात्रा में चीनी का आयात होने लगा। इससे इस व्यवसाय को क्षति नहीं हुई; पर अस्ट्रिया और जर्मनी से चुकन्दर की चीनी के आयात से 'व्यवसाय पर वास्तविक रूप से आघात हुआ'। चीनी का मूल्य बहुत गिर गया और सन् १८९५-१९०० के बीच उत्तर-प्रदेश के चीनी साफ करने के १८० कारखाने बन्द हो गये। इससे चुकन्दर की चीनी पर कर लगाया गया। पर लाभ नहीं हुआ। ईख की खेती कम होती गई। किसान ईख के स्थान में कपास और अन्न उपजाने लगे। उस समय के यंत्रों का व्यवहार प्राय: नहीं के बराबर था। चीनी ईख से नहीं ; बल्कि गुड़ से बनाई जाती थी। छोटे पैमाने पर एवं प्राचीन तरीकों से चीनी उत्पादन करने के कारण इस व्यवसाय की अधिक उन्नति नहीं हुई।

आयातकर से चुकन्दर की चीनी कम आने लगी ; पर मॉरिसस से ईख की चीनी अधिक मात्रा में आने लगी। इस विदेशी प्रतियोगिता से भारत के चीनी के व्यवसाय पर बहुत आघात पहुँचा। सन् १८९४ में लगभग २९ लाख एकड़ की ईख की खेती भारत में की जाती थी; पर १९१४ ई० तक वह घटकर प्राय: २७ लाख एकड़ हो गई थी।

सन् १९१९ ई० में सरकार ने एक चीनी कमिटी की नियुक्ति इस व्यवसाय के विकास के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए की

सन् १९२४-२५ तक चीनी का मूल्य क्रमश: घटता गया। यद्यपि सरकार ने विदेशी चीनी पर आय-कर लगा दिया था; तथापि देशी चीनी की कमी पड़ती ही गई। उत्तर-प्रदेश ने

'कृषि-अन्वेषण समिति' द्वारा सरकार से चीनी के व्यवसाय को संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रार्थना की, जिसपर सन् १६३१ ई० में १५ वर्षों के लिए संरक्षण देने का प्रस्ताव टैरिफबोर्ड ने स्वीकार किया।

इसके बाद व्यापार के स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त का इङ्गलैण्ड में प्रतिपादन हुआ। इससे चीनी के कारखाने को बहुत धक्का लगा। अनेक छोटे-छोटे कारखाने बन्द हो गये। अनेक वर्षों तक उन्नीसवीं सदी के अन्त तक चीनी के निर्माण की ऐसी ही डँवाडोल दशा रही। मैक्डोनल्ड ने वेस्ट इण्डिज् के खेतिहर डैविड विल्की को भारत भेजा और उत्तर भारत में चीनी के व्यापार के सम्बन्ध में विवरण माँगा। इस विवरण के फलस्वरूप सन् १६०२ ई० में इण्डिया डेवेलपमेन्ट कम्पनी के नाम से बिहार के 'ओतुर' में एक कारखाना खुला। यह कम्पनी असफल रही। इसका कारण यह था कि जो ईख बोई गई थी, वह उत्तम कोटि की नहीं थी और उसमें रोग भी लग गया। सन् १६०३ में परतापपुर में मैक्डोनल्ड कम्पनी द्वारा, महौड़ा में बेगसदरलेंड एण्ड कम्पनी द्वारा कारखाने खुले। सन् १६०४ ई० में रोज़ और सन् १६०५ में परसा में, फिर झगहा, बड़ाचकिया में कारखाने खुले, जो आज भी चल रहे हैं।

इन कारखानों के स्थापन के बाद चीनी निर्माण की गति धीमी हो गई और सन् १६३२ ई० तक ऐसी ही रही। इसी वर्ष चीनी पर संरक्षण कर लगा, जो धीरे-धीरे बढ़ता गया। चीनी पर फिर उत्पादन कर भी लगा। इन करों का सविस्तर वर्णन आगे होगा। इस संरक्षण से चीनी के निर्माण में क्रान्ति हो गई। चीनी के कारखानों की संख्या शीघ्रता से बढ़ने लगी और आज १६६ तक पहुँच गई हैं। इन कारखानों में अब इतनी चीनी पैदा होती है कि उससे देश की माँग ही पूरी नहीं होती, वरन् अब बाहर भी भेजी जा रही है। इन कारखानों की सबसे अधिक संख्या उत्तर प्रदेश में हैं और उसके बाद बिहार का स्थान आता है। बिहार में आज लगभग ३० कारखाने हैं। भारत में चीनी का उत्पादन, चीनी का आयात और चीनी का निर्यात किस गति से हुआ, इसका ज्ञान निम्नलिखित आँकड़ों से होता है—

भारत में गुड़ का उत्पादन, सन् १९०० से १९३७ ई०

(गुड़ के हज़ार टन की ईकाई में

वर्ष	हजार टन	वर्ष	हजार टन
१६००/३	१८००	१६१२	२५८३
१६०४	२१६६	१६१३	२२६२
१६०५	१७२५	१६१४	२४६०
१६०६	२३०५	१६१५	२६३४
१६०७	२०४७	१६१६	२६२६
१६०८	१८७३	१६१७	३२६६
१६०६	२१२५	१६१६	३००१
१६१०	२२१८	१६२०	२४३८
१६११	२३६०	१६२१	२५६२

वर्ष	हजार टन	वर्ष	हजार टन
१९२२	२९८८	१९३०	२७००
१९२३	३२७२	१९३१	२८२१
१९२४	२५४८	१९३२	३२५०
१९२५	२६७७	१९३३	३८९०
१९२६	३२५५	१९३४	४१९२
१९२७	३२२१	१९३५	४४५९
१९२८	२७३५	१९३६	५१९२
१९२९	२७६०	१९३७	५९९६

भारत में सफेद चीनी का आयात

(सन् १८८४-१९३७ ई०)

वर्ष	टन	वर्ष	टन
१८८४/८	७९६३८	१९२१	७१७६००
१८९१/५	११५२२३	१९२२	४४२४००
१८९६	२०१८५०	१९२३	४११५००
१९०१/५	३३०१७३	१९२४	६७०९६५
१९०६	५५५२०२	१९२५	७३२५७२
१९०७	५५८८९८	१९२६	८२६९००
१९०८	६०३९११	१९२७	७२५८००
१९०९	६३०४७४	१९२८	८६८००
१९१०	६२६९५७	१९२९	९३९६००
१९१२	६७३५९३	१९३०	९०१२००
१९१३	८०२९७८	१९३१	५१६१००
१९१४	४२८०९६	१९३२	३०९५११
१८१५	५१५९१०	१९३३	२६१३००
१९१६	४४०१२३	१९३४	२२२१००
१९१७	४७०६७४	१९३५	२०१२००
१९१८	५०६६८४	१९३६	२३,०००
१९१९	४०८७२३	१९३७	१३७००
१९२०	२३६९०८		

भारत से चीनी का निर्यात

(सन् १७९१ से सन् १८९१ ई० तक)

वर्ष	टन	वर्ष	टन
१७९१	२०५	१७९४	४९१५
१७९२	३५०	१७९५	८६५९
१७९३	२००५	१७९६	५१८४

वर्ष	टन	वर्ष	टन
१७९७	५८२४	१८३७	१४८३३
१७९८	८४७१	१८३८	२१४४२
१७९९	६०२४	१८३९	२०९९६
१८००	११७०२	१८४०	६१३३१
१८०१	३२१७	१८४१	५६८७०
१८०२	२८८१	१८४२	५६१८३
१८०३	४८९६	१८४३	५४८७४
१८०४	६२५७	१८४४	५४२१५
१८०५	६२१८	१८४५	६५४०२
१८०६	१८६१	१८४६	६०१९१
१८०७	५९७९	१८४७	५८४४७
१८०८	३६२९	१८४८	७४३०२
१८०९	१३१०	१८४९	६७८३१
१८१०	२४६२	१८५०	४७६०८
१८११	१ २०	१८५१	३५४३७
१८१२	१०१६	१८५२	६७८३१
१८१३	३२४४	१८५३	४७६०८
१८१४	२४९२	१८५४	३५४३७
१८१५	६२८२	१८५५	५३,३०६
१८१६	६३६०	१८५६	६३३६०
१८१७	६२९४	१८५७	३५३८७
१८१८	८१२०	१८५८	४४८०७
१८१९	१०२७६	१८५९	३४३७४
१८२०	१३८६१	१८६०	३४८०१
१८२५	७२९९	१८६१	३६७०९
१८२६	७१९९	१८७१	१८६४५
१८२७	८०२९	१८७२	३१५४७
१८२८	६६३६	१८७३	१४७४१
१८२९	८७०१	१८७४	२४९०२
१८३०	१०६७४	१८७५	२९०७८
१८३१	८०८९	१८७६	१०५७२८
१८३२	४४१२	१८७७	७७९९१
१८३३	५५८६	१८७८	१७८१६
१८३४	३८३०	१८७९	१९६०१
१८३५	५०६६	१८८०	२८१२७
१८३६	७६११	१८८१	४८४२५

वर्ष	टन	वर्ष	टन
१८८२	७४२८२	१८८७	५५१४४
१८८३	६६५०३	१८८८	५३२८३
१८८४	५७६६५	१८९०	७६३८१
१८८५	६०२४८	१८९१	४३३४४
१८८६	५१८२६		

भारत में सफेद चीनी का उत्पादन* टन में

(सन १९२३-१९४४ ई०)

वर्ष	ईख से	गुड़ से	जोड़
१९२३	३८३१२	५६४०६	९४७१८
१९२४	३३८०५	३३५९३	६७३९८
१९२५	५२९९०	३८४०९	९१३९९
१९२६	६२९४१	५८०८५	१२१०३६
१९२७	६७६८४	५२०५५	१२१७३९
१९२८	६८०५०	३१०३८	९९०८८
१९२९	८९७६८	२११५०	११०८३८
१९३०	११९८५९	३१७९१	१५१६५०
१९३१	१५८४८१	६९५३९	२७८१२०
१९३२	२९००००	९१०००	३८१०००
१९३३	७०००००	९००००	७९००००
१९३४	८७५०००	७५०००	९५००००
१९३५	९१९०००	३९०००	७५८०००
१९३६	१११००००	५००००	११६००००
१९३७	९३१०००	१९०००	९५००००
१९३८	६५१०००	१६०००	६६७०००
१९३९	१२४२०००	१४०००	१२५६०००
१९४०	१०९५०००	२९०००	११२४०००
१९४१	७७८०००	४८०००	८२६०००
१९४२	—	—	१२६०७००
१९४३	—	—	१२५००००
१९४४	—	—	१३४१३६०

औसतन सन् १९११ से सन् १९३५ के बीच २,७८४,००० एकड़ भूमि में ईख बोई गई थी। सन् १९१४ ई० में सबसे कम २,३१०,००० एकड़ भूमि में और १९३५ ई० में

* सफेद चीनी के अतिरिक्त देशी खाँडसारी चीनी का उत्पादन प्रायः १००००० से २००००० टन प्रतिवर्ष होने का अनुमान है।

सबसे अधिक ४,००६,००० एकड़ भूमि में। इसमें सबसे अधिक भूमि उत्तर प्रदेश में ५१·२ प्रतिशत, पंजाब में १५·४ प्रतिशत, बिहार में १०·६ प्रतिशत, बंगाल में ८·१ प्रतिशत, मद्रास में ३·६ प्रतिशत, बंबई में ३·५ प्रतिशत, आसाम में १·३ प्रतिशत और अन्य भागों में ४·६ प्रतिशत थी।

चीनी के निर्माण की आधुनिक विधि—कच्ची चीनी (अपरिष्कृत चीनी) प्राप्त करने के लिए ईख को बेलन-कोल्हू में पेरते हैं। कुछ रस निकल जाने पर गरम पानी डालकर फिर पेरते हैं। इससे रस कुछ हल्का अवश्य हो जाता है; पर ईख से अधिकतम चीनी निकल आती है। इस हल्के रस को गाढ़े रस के साथ मिलाकर चूना डालकर मिलाते हैं। चूना रस के फ़ास्फ़ेट के साथ मिलकर रस की अम्लता को बदल देता है, जिससे अनेक अशुद्धियाँ अवक्षिप्त हो निकल जाती हैं। चूना डालने पर कुछ देर तक रस को गरम करते हैं। इतना गरम करते हैं कि रस गरम हो जाय, पर उबले नहीं। फिर उसे बड़े-बड़े पात्रों में निखरने के लिए छोड़ देते हैं। अवक्षिप्त अशुद्धियाँ नीचे तल में बैठ जातीं और निकाल ली जाती हैं और स्वच्छ रस ऊपर से ढाल लिया जाता है। आधुनिक मिलों में अशुद्धियों को अविराम निःस्यन्दक में छान लेते हैं और उसे धोकर चीनी के समस्त अंशों को उससे निकाल लेते हैं। स्वच्छ रस को अब उद्वाष्पकों में गाढ़ा करते हैं।

रस को उद्वाष्पित कर शीरा बनाते हैं। यह उद्वाष्पन शून्य में बन्द पात्र में होता है। शून्य के उद्वाष्पन से रस को उच्च ताप तक गरम करना नहीं पड़ता। खुले पात्रों में उच्च ताप पर गरम करने से शीरे का रंग गाढ़ा हो जाता है और चीनी कुछ विच्छेदित हो जाती है। रस को कितना गाढ़ा करना चाहिए कि उससे अधिकतम चीनी प्राप्त हो सके, यह अनुभव से ही पता लगता है। जो व्यक्ति इस काम पर नियुक्त होते हैं, उन्हें पर्याप्त अनुभवी होना चाहिए। इस कारण उन्हें वेतन भी अधिक मिलता है। पुस्तकों के अध्ययन से यह बात सीखी नहीं जा सकती, अनुभव से ही आती है। यद्यपि आजकल घनत्वमापक यंत्र बने हैं, जिनसे इसका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है; पर इस यंत्र के उपयोग में समय लगता है। अनुभवी व्यक्ति केवल शीरे को देखकर ही बता देता है कि उद्वाष्पन कब बन्द कर देना चाहिए।

शीरे को अब शून्य पात्रों में मणिभ बनने के लिए कुछ समय रख छोड़ते हैं। फिर केन्द्रापसारक (Centrifugal machine) में मणिभ को छोए से अलग करते हैं। जब सारा छोआ निकल जाता है, तब चीनी को एक बार पानी से धोकर सुखा लेते हैं। इस प्रकार अपरिष्कृत चीनी प्राप्त होती है। इसका रंग बिलकुल सफेद नहीं होता। कुछ धुँधला होता है। अनेक कारखानों से इसी रूप में चीनी बाजारों में बिकने के लिए भेज दी जाती है।

कुछ कारखानों में इस अपरिष्कृत रंगीन चीनी का परिष्कार होता है। इसे पानी में घुलाकर छान लेते हैं। क्रियाशील कार्बन अथवा अस्थि-चूर्ण अथवा अस्थि-काल द्वारा कार्बन या अस्थिचूर्ण भरे मीनार में शीरे को ले जाकर रंग को दूर करते हैं। भारत के कारखानों में हड्डियों का उपयोग नहीं होता। भारत से बाहर देशों में ही अस्थि-चूर्ण का उपयोग होता है। अब शीरे को उद्वाष्पकों में पूर्व की भाँति शून्य में गाढ़ाकर मणिभ से सफेद चीनी प्राप्त करते हैं। यहाँ भी केन्द्रापसारक में चीनी के मणिभों को छोए से

अलग करते हैं। स्वच्छ चीनी को घूर्णक शोषकों में गरम वायु से सुखाकर चलनी से छानकर भिन्न-भिन्न आकार के मणिभों को अलग-अलग बोरों में भरकर बाजारों में भेजते हैं।

इस निर्माण में पद-पद पर यथार्थ व्यावसायिक नियन्त्रण की और रसायनज्ञों और इंजीनियरों के आविष्कृत आधुनिक यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है।

इनमें सबसे अधिक कठिन और महत्त्व का काम चूना डालकर रस का विमलीकरण है। चूना इतना डालना चाहिए कि वह अधिक न हो और साथ ही रस के रंगों और अन्य अशुद्धियों को पूर्ण रूप से और जल्द-से-जल्द दूर कर सके। इस विमलीकरण क्रिया पर ही चीनी से मणिभ के पृथक्करण का काम और चीनी के प्राप्त होने की मात्रा निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न ईखों के रस एक से नहीं होते, उनके उगने और काटने का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। इससे विमलीकरण की क्रिया एक-सी नहीं हो सकती। ईख और रस की विभिन्नता से विमलीकरण में विभिन्नता होना स्वाभाविक है।

ईखों के चुनाव में भी इधर बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ है। नई-नई ईखें आज उत्पन्न होकर बोई जा रही हैं। इन ईखों के प्रचार से ईख की पेराई में भी परिवर्तन अनिवार्य है। रसों के रासायनिक संगठन के परिवर्तन से विमलीकरण क्रिया में परिवर्तन भी आवश्यक है। ईखों के रसों में दिन-प्रति-दिन ही नहीं; वरन् घण्टे प्रति घन्टे परिवर्तन होते रहते हैं।

इस सम्बन्ध में इधर दो महत्त्व के सुधार हुए हैं। एक सुधार में एक ऐसी आत्म-संचालित नियन्त्रण मशीन बनी है जो चूने के मिश्रण की मात्रा को नियंत्रित करती है। इस मशीन से आप-से-आप इतना चूना रसों में पड़ता है, जितना आवश्यक है, न कम और न अधिक। एक दूसरा सुधार एक ऐसे अविराम निःस्यन्दक का आविष्कार है जिसके पेंदे में अशुद्धियाँ इकट्ठी होकर घुलकर निकल जाती है। यह कार्य एक घूर्णक में होता है। इस घूर्णक के पात्र से अशुद्धियाँ चाकू से छीलकर निकाल ली जाती हैं और खेतों में खाद के लिए उपयुक्त होती हैं।

एक तीसरा सुधार, जो अभी व्यापक रूप से उपयुक्त नहीं हो रहा है, भारत में तो इसका उपयोग अभी कहीं भी नहीं होता। वह यन्त्रों से ईख की कटाई, छिलाई और लदाई है। जहाँ ईख की खेती व्यापक रूप से होती है और खेतिहर इन कामों के लिए पर्याप्त धन लगा सकते हैं, वहाँ ही इनका उपयोग हो सकता है। लदाई के यंत्रों में अब भी कुछ कठिनाई है। इसमें मिट्टी, घास-पात और कूड़ा-कर्कट भी लद जाते हैं। ईख के रस के विमलीकरण के लिए चूने के स्थान में कालसियम कार्बोनेट का व्यवहार आज हो रहा है।

चीनी निर्माण के उपफल—चीनी तैयार करने के मूल्य में काफी कमी हो सकती है, यदि चीनी निर्माण के उपफलों से कुछ धन प्राप्त हो सके। इस कारण आज चीनी कारखानों के उपफलों के उपयोग की अनेक चेष्टाएँ हो रही हैं। ये उपफल हैं—

१. रस का तलछट

२. छोआ

३. निकोटिनिक अम्ल

४. मोम

५. सीठा (बागास)

ईख के रस के विमलीकरण से जो तलछट प्राप्त होता है, उसमें नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त रहती है। यह एक अच्छी खाद बनता है। खाद के लिए इस तलछट का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। एक कम्पनी तो इस तलछट को जलाकर सीमेंट बनाने के काम में लाती है। इसके जलाने से कालसियम कार्बोनेट और कालसियम फ़ास्फ़ेट प्राप्त होते हैं जो सीमेंट में उपयुक्त हो सकते हैं।

जितनी चीनी बनती है, उसकी प्राय: आधी मात्रा में छोआ प्राप्त होता है।

छोए के किण्वन से अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। इससे एलकोहल तो आज पर्याप्त मात्रा में तैयार हो रहा है; पर ऐसीटोन, ब्युटिल एलकोहल, साइट्रिक अम्ल, इत्यादि पदार्थ भी तैयार हो सकते हैं जो कृत्रिम रबर और प्लास्टिक बनाने और ओषधियों में उपयुक्त होते हैं। छोआ पशुओं को भी खिलाया जाता है। पर इस देश के किसान अधिक कीमत होने के कारण पशुओं को छोआ खिलाने में समर्थ नहीं है।

छोए में एक अम्ल 'निकोटिनिक अम्ल' होता है। इस अम्ल से पारदर्शी प्लास्टिक बनता है। छोए से प्राय: १०००००००० पाउण्ड निकोटिनिक अम्ल प्राप्त हो सकता है। निकोटिनिक अम्ल इमलशन (पायस) बनाने और सफाई में भी उपयुक्त होता है। भारत में अभी तक निकोटिनिक अम्ल प्राप्त करने की चेष्टाएँ नहीं हुई हैं।

ईख में मोम रहता है। कुछ मोम तो कोमल होता है और कुछ कठोर। कठोर मोम की माँग आज बढ़ गई है। इसके अनेक उपयोग हैं. जिनमें जूते की स्याही एक है। इस मोम के प्राप्त करने की चेष्टाएँ अन्य देशों में हुई हैं और आज इस रीति से मोम प्राप्त हो रहा है– लुइसिनिया में प्रतिवर्ष ४ लाख पाउण्ड मोम प्राप्त होता है ; पर भारत में मोम प्राप्त करने का काम अभी शुरू नहीं हुआ है।

सीठा (बागास) एक दूसरा उपफल है, जो कारखानों में बड़ी मात्रा में प्राप्त होता है। आज केवल जलाकर शक्ति उत्पन्न करने के लिए ही कारखानों में यह उपयुक्त होता है। बहुत अल्प मात्रा में चारे के लिए भी उपयुक्त होता है। सीठे से प्राय: ५० प्रतिशत उत्तम कोटि का पल्प प्राप्त हो सकता है। इस देश में केवल एक कम्पनी ने इस रीति से पल्प प्राप्त करने की मशीनें बैठाई हैं। इस पल्प से कागज, कृत्रिम रेशम, कूट, प्लास्टिक, फोटोग्राफी और फिल्म के सामान—कोलोडियन, सेल्युलायड, दीवार पर चिपकाने के सुन्दर कागज, मोटर रंगने के लेप, लक्ष इत्यादि अनेक सामान उत्तमकोटि के बन सकते हैं। लेखक ने इस संबन्ध में जो अनुसंधान किये हैं, उससे इस पल्प की उपयोगिता बहुत अधिक सिद्ध हुई है और इनका विस्तार से वर्णन आगे के प्रकरणों में होगा।

चिनी के उपयोग—मनुष्य के आहार में चीनी अत्यावश्यक नहीं है। चीनी के विना मनुष्य स्वस्थ और जीवित रह सकता है। पर मीठे स्वाद और सरलता से प्राप्ति के कारण मनुष्य के आहार में चीनी का स्थान बहुत ऊँचा है। चीनी बलवर्द्धक है। शरीर में जलकर यह शक्ति उत्पन्न करती है। शीघ्र शक्ति उत्पन्न करने और थकावट के दूर करने में द्राक्षशर्करा के बाद चीनी का ही स्थान है। थकावट दूर करने के कारण ही इस देश

में नवागतों को सबसे पहले चीनी या गुड़ का शर्बत देकर अतिथि-सेवा की प्रथा है। मिठाइयों के तैयार करने में पर्याप्त चीनी खपती है।

आहार के बाद चीनी का व्यापक उपयोग ओषधियों में होता है। अनेक ओषधियों के कड़ुए स्वाद को छिपाने के लिए चीनी के शीरे का उपयोग होता है। चीनी के सहयोग से कुछ ओषधियों का प्रभाव भी शरीर पर शीघ्र होता है। ऐसा अनुमान है कि ६ करोड़ पाउण्ड चीनी प्रतिवर्ष अंग्रेजी ओषधियों में आज खपती है। अनेक आयुर्वेदिक ओषधियाँ भी चीनी के योग से बनती हैं। च्यवनप्राश का चीनी अत्यावश्यक अंग है।

फलों के संरक्षण में पर्याप्त चीनी खर्च होती है। अनेक फलों को चीनी के शीरे में ही सुरक्षित रखा जाता है। अन्य रीतियों से सुरक्षित रखने में विकृत हो जाने और स्वाद के बदल जाने का भय रहता है। मांस के संरक्षण में भी चीनी उपयुक्त होती है। आईसक्रीम में काफी चीनी खर्च होती है। फसल और अन्य रोगों के कीड़ों को नष्ट करने के लिए अनेक ओषधियाँ आज उपयुक्त हो रही हैं। ऐसी कुछ ओषधियों के निर्माण में चीनी लगती है।

पेयों के तैयार करने में काफी चीनी खपती है। शर्बत और गैसीय पेयों में आज अधिकाधिक चीनी खप रही है। सुरापेय भी चीनी से बनता है।

चीनी बलवर्द्धक भी है। जूते की स्याही, तम्बाकू, चोकोलेट, फोटो के सामान, दूध के सामान, दर्पण, सुरा, कारामेल रंग, अभिघटक (Plasticiser), विटामिन बी$_2$ के निर्माण में चीनी लगती है।

ऐसिटिक एन्हीड्राइड और चीनी के संयोग से एक बड़ा कड़ुआ पदार्थ सुक्रोज़ ऐसिटेट तैयार हुआ है। इस कड़ुए पदार्थ को स्पिरिट में डालकर स्पिरिट को अपेय बनाकर मेथिलेटेडस्पिरिट आज तैयार करते हैं।

दूसरा प्रकरण

मीठे पदार्थ और मिठास

मीठे पदार्थ—आज हमें अनेक मीठे पदार्थ ज्ञात हैं। कुछ मीठे पदार्थ प्राकृतिक होते हैं और कुछ कृत्रिम। ईख मीठी होती है। आम, अंगूर, छोहाड़ा, खजूर, लीची, खरबूजा, तरबूजा, केला, बेर, शकरकन्द इत्यादि प्राकृतिक मीठे पदार्थ हैं। इन मीठे पदार्थों से हम अनेक दूसरे मीठे पदार्थ, चीनी, खांड, गुड़, मिसरी इत्यादि तैयार करते हैं। जिन पदार्थों से ये पदार्थ तैयार होते हैं, उनसे भी ये अधिक मीठे होते हैं। कुछ कृत्रिम रीति से प्रस्तुत वस्तुएँ भी बड़ी मीठी सिद्ध हुई हैं। इनमें महत्त्व के मीठे पदार्थ डलसीन और सैकेरिन है।

प्राकृतिक मीठे पदार्थों में शर्कराएँ रहती हैं। जो शर्करा ईख से प्राप्त होती है, उसे इक्षु-शर्करा कहते हैं। इस इक्षु शर्करा को ही साधारण बोली में चीनी कहते हैं। यह शर्करा थोड़ी-बहुत मात्रा में सभी प्राकृतिक पदार्थों में रहती है। खांड, गुड़ और मिसरी में इक्षु-शर्करा ही प्रधानतया रहती है। इस शर्करा का विस्तार से अध्ययन हुआ है और इसका रासायनिक संगठन भी अधिक यथार्थता से निकाला गया है।

फलों और फूलों में भी इक्षु-शर्करा रहती है। पर इक्षु-शर्करा के साथ-साथ फलों और फूलों में दो और शर्कराएँ रहती हैं। इन्हें डेक्स्ट्रोस या द्राक्ष-शर्करा और फ्रुक्टोस या फल-शर्करा कहते हैं। ये दोनों शर्कराएँ साथ-साथ सब फलों और फूलों में रहती हैं। अंगूर में द्राक्ष-शर्करा की मात्रा अधिक रहती है। इसीसे इस शर्करा का नाम द्राक्ष या दाख-शर्करा पड़ा है। मधु में ये दोनों शर्कराएँ इक्षु-शर्करा के साथ-साथ रहती हैं। महुए के फूल में भी ये तीनों शर्कराएँ रहती हैं। इन शर्कराओं के अतिरिक्त एक और शर्करा है जो दूध में पाई जाती है। इसे दुग्ध-शर्करा कहते हैं। होमियोपैथी की ओषधियाँ इसी शर्करा में दी जाती हैं। इसी की गोलियों में होमियोपैथी की ओषधियाँ रहती हैं। दुग्ध-शर्करा जल्दी पच जाती है। पेट में किण्वन नहीं पैदा करती, पर चीनी से कम मीठी होती है। ईख में प्रधानतया इक्षु-शर्करा रहती है। अल्प मात्रा में द्राक्ष और फल-शर्कराएँ भी रहती हैं।

मिठास की परिभाषा—मीठे स्वाद की परिभाषा देना सम्भव नहीं है। संसार की किसी भी भाषा में मीठे स्वाद के वर्णन के लिए शब्द नहीं हैं। अनुभव से ही हमें मीठे स्वाद का ज्ञान होता है। एक छोटा बच्चा भी जानता है कि मीठा स्वाद कैसा होता है। जैसे मीठे स्वाद के वर्णन के लिए हमारे पास शब्द नहीं है, वैसे ही मीठे स्वाद के मापने के लिए हमारे पास कोई यंत्र नहीं है।

कृत्रिम रीति से प्रस्तुत अनेक मीठे पदार्थों के आविष्कार से मिठास नापने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इस संबंध में वैज्ञानिकों के द्वारा अनेक महत्त्व की खोजें हुई हैं।

स्वाद का ज्ञान हमें जीभ से होता है। जीभ के भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, जैसे जीभ के अग्रभाग, मध्यभाग और अन्तिम भाग। जीभ के किनारे के छोर होते हैं। वैज्ञानिक खोजों से मालूम हुआ है कि जीभ के भिन्न-भिन्न भागों से भिन्न-भिन्न स्वादों का अनुभव होता है। कुछ स्वाद का अनुभव अग्रभाग से, कुछ स्वाद का मध्य-भाग से और कुछ का अन्तिम भाग से और कुछ का किनारे के छोरों से होता है। अनेक प्रयोगों से यह परिणाम निकला है कि मीठे स्वाद का अनुभव जीभ के अग्रभाग से ही होता है।

सब मनुष्यों की जीभें एक-सी सूक्ष्मग्राही नहीं होतीं। किसी व्यक्ति की जीभ अधिक सूक्ष्मग्राही होती है, किसी की कम। किसी व्यक्ति की जीभ एक स्वाद के लिए अधिक सूक्ष्मग्राही होती है और किसी व्यक्ति की जीभ दूसरे स्वाद के लिए। मिठास का अनुभव शरीर में मीठे पदार्थों की उपस्थिति पर भी बहुत निर्भर करता है। जिस मनुष्य के शरीर में मीठे पदार्थ की कमी होती है, उसकी जीभ मिठास के लिए अधिक सूक्ष्मग्राही होती है और जिस मनुष्य के शरीर में मीठे पदार्थ का आधिक्य होता है, उसकी जीभ अधिक सूक्ष्म-ग्राही नहीं होती।

पुरुषों और स्त्रियों की जीभें भी एक सी सूक्ष्म-ग्राही नहीं होती। अनेक प्रयोगों के फलस्वरूप यह देखा गया है कि मीठे स्वाद के लिए स्त्रियों की जीभें पुरुषों की जीभों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म-ग्राही होती हैं। इस कारण मीठे स्वाद का मापन स्त्रियों की जीभ के उपयोग से ही हुआ है।

अब एक ऐसी तितली का पता लगा है जो देखने में बड़ी सुन्दर होती है। इस तितली के पैर में स्वाद की इन्द्रियाँ रहती हैं। यह तितली १० लाख भाग जल में चीनी के ३० भाग रहने से भी विलयन के मीठे स्वाद का पता लगा लेती है। इससे सिद्ध होता है कि इस तितली की स्वादेन्द्रिय मनुष्य की जीभ से २०० गुना अधिक सूक्ष्म-ग्राही होती है।

मिठास का मापन—मीठे पदार्थ का एक तनु विलयन तैयार किया जाता है। इस विलयन को परीक्षक (जो साधारणतया एक महिला होती है) की जीभ के अग्र भाग पर रखा जाता है और देखा जाता है कि वह विलयन मीठा लगता है अथवा नहीं। यदि विलयन मीठा लगता है तब उसमें निश्चित मात्रा में पानी डालकर विलयन को हल्का बनाकर बार-बार उसका स्वाद लिया जाता है। यह क्रम उस समय तक चलता है, जबतक विलयन इतना हल्का न हो जाय कि उसका स्वाद पूर्ण रूप से लुप्त हो जाय। इस प्रकार कितने जल में कितना मीठा पदार्थ घुलकर मीठा विलयन बन सकता है, उसके ज्ञान से उस मीठे पदार्थ की मिठास निकालकर भिन्न-भिन्न मीठे पदार्थों की तुलना की जाती है। इक्षु-शर्करा की मिठास को एकांक मानकर उससे अन्य मीठे पदार्थों की मिठास की तुलना की गई है। इस प्रकार मिठास की निम्नलिखित तालिका प्राप्त होती है—

इक्षु-शर्करा	१·००
द्राक्ष-शर्करा (ड्रेक्स्ट्रोस)	०·७२

फल-शर्करा (लिव्यूलोस)	१'१२
दुग्ध-शर्करा (लैक्टोस)	०'३१
डलसिन	२६८'०
सैकेरिन	५०० से ७००

इस तालिका से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि शर्कराओं में फल-शर्करा सबसे अधिक मीठी और दुग्ध-शर्करा सबसे कम मीठी है। पर इक्षु-शर्करा इन सबों में इस कारण सर्वश्रेष्ठ है कि यह सरलता से शुद्ध दानेदार रूप में प्राप्त हो सकती है। रखने से यह विकृत नहीं होती, और न इसके स्वाद में ही कोई परिवर्तन होता है। यह प्रचुरता से प्रकृति में पाई जाती है।

छोटे बच्चों में मीठे पदार्थों की चाह अधिक होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके शरीर के निर्माण में मीठे पदार्थों की आवश्यकता है। इस कारण बच्चों को मीठे पदार्थों के खाने से रोकना ठीक नहीं है। उन्हें मीठे पदार्थों को तबतक खाने देना चाहिए जबतक खाने से थककर वे स्वयं मीठे पदार्थों का खाना न छोड़ दें।

कृत्रिम मीठे पदार्थों में सैकेरिन महत्त्व का है। प्रमेह के रोगियों के लिए यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रमेह के रोगी चीनी को पचा नहीं सकते हैं। इस कारण चीनी के स्थान में उन्हें दूसरे मीठे पदार्थों के उपयोग की आवश्यकता होती है। वे सैकेरिन का उपयोग करते हैं। यद्यपि सैकेरिन बहुत अधिक मीठा होता है; पर इसमें चीनी-जन्य के शक्ति उत्पन्न करने का गुण नहीं है। सैकेरिन वास्तव में खाद्य नहीं है। इसका कारण खाद्य-मूल्य इसका शून्य है, पर मीठे स्वाद के लिए यह बड़ा उपयोगी है। मिठास के दृष्टिकोण से यह मँहगा भी नहीं पड़ता है।

तीसरा प्रकरण

चीनी की उपस्थिति

फूलों, अनेक फलों, अनेक पेड़ पौधों के रसों, डंटलों के रसों और जड़ों में चीनी रहती है। फूलों से ही मधुमक्खियाँ मधु इकट्ठा करती हैं। मीठे पदार्थों में सबसे पहले मधु का ही ज्ञान मनुष्यों को हुआ; क्योंकि मधु प्राकृतिक रूप में पाया गया था। भारत के सब प्राचीन ग्रंथों में मधु का उल्लेख मिलता है। मधु से ही देवताओं का सोमरस प्राप्त होता था। ऋग्वेद में मधु और मधुमक्खी का उल्लेख है। विष्णु का मधु प्रिय पदार्थ है। अथर्ववेद, मनुस्मृति, महाभारत और रामायण सबों में मधु का उल्लेख है। हिन्दू रस्म-रिवाजों और धार्मिक उत्सवों में मधु का उपयोग होता है। मधुपर्क में वर को मधुपान कराया जाता है। मधुप्राशन में बालक को मधु चटाया जाता है। पंचामृत का मधु आवश्यक अंग है। चरक और सुश्रुत संहिताओं और बावर मनुस्क्रिप्ट में प्रतिपादित औषधों में मधु का वर्णन है। प्राचीन ग्रंथों में मधुवन का भी उल्लेख मिलता है। वह वन जहाँ मधु उत्पन्न होता था। आज भी अधिकांश मधु प्राकृतिक रीति से ही प्राप्त होता है यद्यपि मधुमक्खियों के पालन और उससे मधु प्राप्त करने का व्यवसाय आज दिनोंदिन बढ़ रहा है। प्राचीन काल में मधुमक्खी पालन का कोई उल्लेख नहीं मिलता। हमारे एक मित्र जर्मनी से शिक्षा प्राप्त कर लौट आने पर देहरादून में मधुमक्खी पालन का व्यवसाय कर रहे हैं। प्रयाग की विज्ञान-परिषद् ने मधुमक्खी पालन पर एक सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की है, जिससे मधुमक्खी पालन के सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातों का समावेश है; अतः उससे इस विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है।

मीठे पदार्थों में मधु का स्थान ऊँचा है। मधु मीठा ही नहीं होता, वरन् इसमें अन्य आवश्यक खाद्यांश, खनिज लवण और विटामिन (जीवति) भी होते हैं। मधु महात्मा गान्धी का प्रिय खाद्य था। इसका सेवन वे प्रायः बराबर किया करते थे। आयुर्वेदिक औषधियों में मधु का स्थान बहुत ऊँचा है। अनेक औषधियों के निर्माण और सेवन में मधु का उपयोग होता है। च्यवनप्राश का मधु आवश्यक अंग है।

सब मधु एक से नहीं होते। स्थान की विभिन्नता और मधुमक्खियों की विभिन्नता से मधुओं में भी कुछ विभिन्नता आ जाती है। किसी स्थान का मधु देखने में स्वच्छ सुनहले रंग का और स्वाद में अधिक स्वादिष्ट होता है। इसका कारण यह है कि मधु में रहनेवाले खनिज लवणों में कुछ विभिन्नता होती है। इन लवणों के कारण ही मधु के रंग में भी कुछ फर्क पड़ जाता है। कश्मीर का मधु उत्तम पुष्पों से इकट्ठा होने के कारण सुन्दर सुनहले रंग का और अधिक स्वादिष्ट होता है। वहाँ का अधिकांश मधु भारत से

बाहर चला जाता है; क्योंकि बाहर के देशों में उसकी मांग बहुत अधिक है। मधु की प्रकृति मधुमक्खियों की जाति पर भी निर्भर करती है। सब मधुमक्खियाँ एक-सी नहीं होतीं। उनके रूप और आकार में भेद होता है। कुछ छोटे आकार की होती हैं और कुछ बड़े आकार की। इन विभिन्न मक्खियों से इकट्ठे किये मधु में भी कुछ-न-कुछ विभिन्नता आ जाती है।

मधुमक्खियाँ पुष्पासव से मकरन्द को इकट्ठा करती हैं। अच्छे मधु का रंग हल्का सुनहले रंग का होता है। कुछ मधु जल के सामान स्वच्छ भी होते हैं। कुछ मधु काला भी होता है। अच्छा मधु देखने में छोआ-सा गाढ़ा होता है। इसमें मन्द-मन्द स्वाद और गंध भी होती है। मधुमक्खियाँ मधु की थैलियों में पुष्पासव को इकट्ठा करके कोषों में एकत्र करती हैं। उसमें से पानी का कुछ अंश उद्वाष्पन से उड़ जाता है। मधु में जल की मात्रा १८ प्रतिशत या इससे कुछ कम रहती है। जब मधु-कोष भर जाता है तब मधुमक्खियाँ मोम के ढक्कन से उसे बन्द कर देती हैं। एक छत्ते में १० से १५ आउंस तक मधु रहता है।

नींबू और नारंगी के फूलों से प्राप्त मधु में आकर्षक स्वाद और गंध होती है। इसका रंग हल्का से सुनहले रंग का होता है। कोई-कोई मधु विषैला भी होता है। रोडोडेन्ड्रोन नामक पौधों के फूलों (तालीश प्रजाति) से प्राप्त मधु विषैला होता है। संसार में प्राय: ८० करोड़ पाउण्ड मधु प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

३३ विभिन्न मधुओं के ७८ नमूनों के विश्लेषण से मधु का औसत संघटन निम्न-लिखित प्राप्त हुआ है—

पानी	१७·७ प्रतिशत
समस्त शर्करा	७६·४ ,,
द्राक्ष-शर्करा (डेक्सट्रोस)	३४·० ,,
फल-शर्करा (लेव्युलोस)	४०·५ ,,
इक्षु-शर्करा	१·६ ,,
राख	०·१८ ,,
डेक्सट्रीन और गोंद	१·५ ,,
समस्त अम्ल	०·०८ ,,
अनिश्चित	४·१ ,,

मधु एक प्रमुख खाद्य पदार्थ है, इसकी मिठाइयाँ, केक, आइसक्रीम, शर्बत, मद्य, सिरका इत्यादि बनते हैं। मधु में फलों का संरक्षण भी होता है। अनेक आयुर्वेदिक औषधों में यह उपयुक्त होता है। तम्बाकू, सिगरेट इत्यादि में भी मधु लगता है।

मधु के एक गैलन में प्राय: ६ पाउण्ड वास्तविक मधु रहता है। एक गैलन मधु ११·२५ पाउण्ड दानेदार चीनी के बराबर होता है। एक पाउण्ड मधु से १४८० कलारी उष्मा उत्पन्न होती है। मधु की राख में कैलसियम, पोटैसियम और फ़ास्फ़ेट और लेश मात्रा में लोहा, ताँबा और मैंगेनीज़ रहते हैं। अम्लों में फार्मिक, ऐसिटिक, मैलिक और साइट्रिक अम्ल रहते हैं। मधु की अम्लता (पीएच) ३·४ से ४·३ होती है। सिरके की अम्लता (पी.एच) २·४ से ३·४ होती है। मधु में क्लोरोफील, इन्वर्टेस, डायस्टेस, प्रोटीन

और विटामिन-बी और 'सी' भी रहते हैं। इनमें ०·१ से ०·८ प्रतिशत श्लेषाभीय पदार्थ रहता है। इस श्लेषाभीय पदार्थ के कारण मधु में काय और श्यनता होती है। इसी के कारण मधु जल्दी छनता नहीं और गरम करने पर जल्द झुलसता भी नहीं है। पुष्पपरागों, मोम और वायु के बुलबुले के कारण यह स्वच्छ नहीं होता, कुछ मेघाभ होता है। मधु के रखने पर विशेषत: ठंढे स्थानों में यह दानेदार हो जाता है। गरम करके बोतल में रखने से दानेदार बनना कुछ सीमा तक रोका जा सकता है। पर मधु को १६०° फ० से ऊँचा और एक घंटे से अधिक गरम नहीं करना चाहिए, नहीं तो झुलस जाने का डर रहता है। दानेदार बनने का कारण द्राक्ष-शर्करा ग्लुकोस हाइड्रेट- के अलग होने का है। बिस्कुट और केक में ६ प्रतिशत मधु रहता है। दूध और मधु उच्चकोटि के खाद्य-पदार्थ हैं। प्राय: सभी पकवानों में चीनी के बदले मधु पड़ सकता है। अन्तर केवल यही होता है कि पकवान का स्वाद कुछ बदल जाता है। मधु से तरह-तरह के स्वादिष्ट शरबत बन सकते हैं। टीन के डिब्बों और लोहे के बरतनों में मधु नहीं रखना चाहिए। इससे मधु जल्द काला हो जाता है।

महुए का फूल एक ऐसा फूल है जिसमें चीनी का अंश बहुत अधिक होता है। साधारण बोली में इस फूल को ही महुआ कहते हैं। महुए से चीनी तैयार हो सकती है। पर जहाँ तक हमें मालूम है, इससे चीनी तैयार करने का कोई कारखाना इस देश में नहीं है। महुआ का वृक्ष गरम देशों में ही उगता है। इसके पेड़ बिना उपजाये ही जंगलों में उपजते हैं। हमारे देश में महुए के पेड़ों की संख्या बहुत बड़ी है। उनसे पर्याप्त मात्रा में फूल प्राप्त होता है। महुए के बीज, कोयने, से आज बहुत अधिक मात्रा में तेल निकाला जाता है। यह तेल साबुन बनाने के लिए बहुत अच्छा प्रमाणित हुआ है। महुए के फूल खाने में, पशुओं के खिलाने में और दारू (साधारण बोली में दारू मद्य के अर्थ में उपयुक्त होता है ; पर वास्तव में यह उस मद्य के लिए प्रयुक्त होता था जो महुए से बनता था) बनाने में इस्तेमाल होते हैं। पशुओं को विशेषकर सुअरों के खिलाने के लिए यह यूरोप भी जाता है। महुए से बनी दारू में एक विशेष प्रकार की कुछ अरुचिकर गंध होती है, जिससे प्रत्येक मनुष्य इसका व्यवहार रुचि से नहीं कर सकता। जो इसके आदी हो जाते हैं, उनके लिए तो इसकी गंध अरुचिकर नहीं प्रतीत होती। विशेष प्रयत्नों से महुए से ऐसी दारू भी प्राप्त की जा सकती है जिसमें ऐसी अरुचिकर गंध न हो ; पर इसके लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता और उससे अधिक खर्च पड़ता है। महुए से बने आसव का वर्णन सुश्रुत ऐसे प्राचीन ग्रन्थ में भी मिलता है। इससे पता लगता है कि आसव (स्पिरिट) बनाने का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से इस देश में था। एक मन महुए से पाँच-छ: गैलन (एक गैलन में प्राय: पाँच सेर होता है) आसव प्राप्त हो सकता है। महुए से चीनी प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। आटे के साथ पीसा हुआ महुआ डालकर मीठी रोटी बनती है।

अनेक फलों में चीनी रहती है। फलों की मिठास का कारण चीनी ही है। अंगूर, दाख, किशमिश, खजूर, अनार, आम, लीची, संतरा, मीठा नीबू, कटहल, खिरनी, तूत, अमरूद और बैर इत्यादि फलों में चीनी होती है। पर इनमें किसी से चीनी

तैयार नहीं होती अंगूर अथवा किशमिश के किएवन से आसव या प्रासव प्राप्त होते हैं ; पर चीनी नहीं निकाली जाती।

अनेक पौधों की जड़ों में भी चीनी रहती है। ऐसी जड़ों में चुकन्दर का महत्त्व बहुत अधिक है। चुकन्दर से आज व्यापार की चीनी तैयार होकर यूरोपीय देशों में बिकती है। पहले-पहल जब चुकन्दर में चीनी के होने का पता लगा था, उस समय इसमें चीनी की मात्रा अपेक्षाकृत कम थी ; पर बीजों के चुनाव, उपयुक्त खाद और उन्नत खेती से चीनी की मात्रा इतनी अधिक बढ़ा ली गयी है कि उससे बड़ी मात्रा में चीनी तैयार कर यूरोप में सस्ती बेंची जा रही है। चुकन्दर और ईख की चीनी के स्वाद और अन्य गुणों में कोई भेद नहीं है। चुकन्दर की बनी चीनी ईख की बनी चीनी से सस्ती नहीं पड़ती, पर चुकन्दर में एक विशेषता यह है कि इसकी खेती ठंडे देशों में की जा सकती है जबकि ईख की खेती केवल गरम देशों में ही हो सकती है। चुकन्दर गरम देशों में भी उपजता है। भारत में शाक-भाजी के रूप में व्यवहार के लिए पर्याप्त चुकन्दर उपजाया जाता है। ऐसे चुकन्दर में चीनी की मात्रा अधिक नहीं होती ; क्योंकि चीनी की मात्रा बढ़ाने का इस देश में कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। यूरोपवालों ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किये हैं। वे अब ऐसे चुकन्दर उपजाते हैं, जिसमें चीनी की मात्रा २० प्रतिशत से ऊपर पाई गई है। वे बहुत बड़ी तायदाद में भी उपजाते हैं। चीनी के तैयार करने की विधि में भी पर्याप्त सुधार किया गया है। इससे चीनी तैयार कर वे यूरोप के बाजारों में सस्ता बेचते हैं। अब चीनी के लिए उन्हें दूसरे देशों पर निर्भर रहना नहीं पड़ता।


चित्र १ — चुकन्दर का पेड़

अनेक पेड़ों के रसों में चीनी रहती है। ताल और खजूर के पेड़ों के फूलों के डंटल के छेवने से रस निकलता है। सूर्योदय से पहले यह रस ताजा और स्वादिष्ट रहता है। इसे 'नीरा' कहते हैं। इसका सेवन बड़ा पुष्टिकर होता है ; क्योंकि चीनी के साथ साथ इसमें विटामिन और खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। सूर्योदय के बाद इसका किएवन होना शुरू होता है और जैसे-जैसे दिन बढ़ता है, उसमें प्रासव की मात्रा बढ़ती जाती है। इससे तब नशीली ताड़ी बनती है। ताड़ी के आसवन से अरक (प्रासव) प्राप्त होता है। ताजे रस को यदि उबालकर सुखा दिया जाय तो उससे ताल और खजूर का गुड़ अथवा जैगरी (जैगरी शब्द वास्तव में शर्करा से बदलते-बदलते बना है ; पर आज यह ताड़ के गुड़ अथवा केवल गुड़ के अर्थ में उपयुक्त होता है) प्राप्त होती है। ताल और खजूर के रसों से आज भी बंगाल, दक्खिन भारत और बरमा में पर्याप्त मात्रा में गुड़ बनता है और खाया जाता है। बंगाल का नाम एक समय गौड़ था। ऐसा समझा जाता है कि गुड़ शब्द से ही गौड़ बना था और पहले-पहल गुड़ बंगाल में ही बना था। वैद्य लोग ताड़ और खजूर के गुड़ों को पोषण की दृष्टि से ईख के गुड़ से अच्छा समझते हैं। श्वास रोगवालों के लिए तो ताल का गुड़ बहुत अच्छा समझा जाता है।

रस निकालने के लिए ताल या खजूर के पेड़ों के छेवने से पेड़ को कोई नुक़सान नहीं होता। पेड़ को छेवकर उसके नीचे लबनी (मिट्टी का बरतन) लटका दी जाती है। इसी में रस इकट्ठा होता है और समय-समय पर निकाल लिया जाता है। यदि रस को



चित्र २—ईख के खेत

ताजा पीना होता है तो लबनी को चूने से पोत देते हैं। इससे किण्वन बहुत कुछ रुक जाता है। पेड़ों से चार पाँच महीने तक रस बराबर निकलता है। एक पेड़ से इतना रस निकलता है कि उससे एक मन तक गुड़ तैयार हो सके।

अनेक पौधों के डंठलों में चीनी रहती है। ऐसे डंठलों में सबसे अधिक महत्त्व ईख का है। अमेरिका में एक पौधा होता है, जिसे कुट्टिमदारु (शुगर मैपल) कहते हैं। इसमें भी पर्याप्त चीनी रहती है। मक्का के डंठलों में भी पाँच से सात प्रतिशत तक चीनी रहती है। देहातों के लड़के मक्का के डंठलों को ईख की नाईं चूसते (चीभते) हैं। पर इस डंठल में चीनी की मात्रा इतनी कम रहती है कि उससे व्यापार की चीनी नहीं बनाई जा सकती। ईख ही एक ऐसा डंठल है जिससे व्यापार की चीनी तैयार की जाती है। संसार में जितनी चीनी तैयार होती है, उसका तीन-चतुर्थांश केवल ईख से तैयार होती है। भारत में प्रायः १० लाख टन चीनी प्रतिवर्ष तैयार होती है। भारत के सिवा क्यूबा, हवाई टापुओं, जावा, मौरिसस, मिस्र, ल्युसियाना इत्यादि में काफी चीनी बनती है।

चौथा प्रकरण

ईख

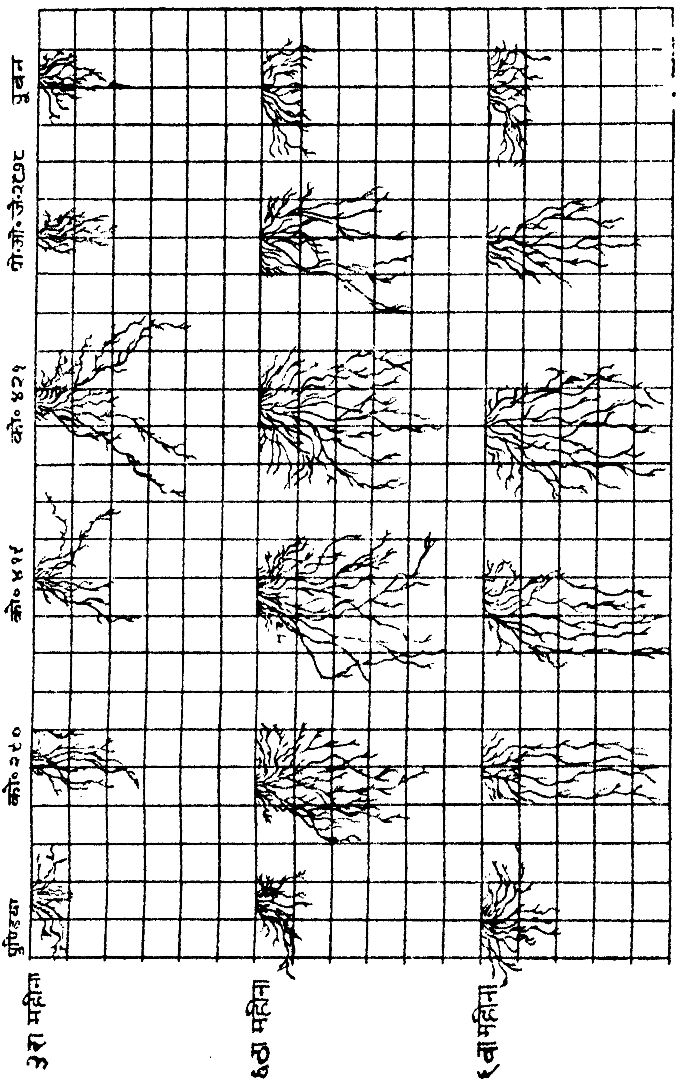
ईख शब्द संस्कृत के इक्षु से निकला है। ऊँख और ऊख शब्द भी इक्षु से ही निकले हैं। इक्षु का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। हमारे प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थों—चरक और सुश्रुत-संहिताओं—में भी ईख के गुणों का वर्णन है। इससे पता लगता है कि ईख बहुत प्राचीनकाल से इस देश में ज्ञात है। ईख का अँग्रेजी नाम 'शुगर केन' है। इसका औद्भिदीय लैटिन नाम 'सैकेरम औफि शिनेरम' है। यह Andropcgoene गोत्र का और सैकेरम वंश का पौधा है। इसके और अनेक नाम भारत में प्रसिद्ध हैं, जिनमें गन्ना, आक, इखरी, रिखु, सरदी, कुशियार, चरकी, कारम्बु, केतारी इत्यादि प्रमुख हैं। मलाया में इसे 'टाबु' कहते हैं। चीन में इसे 'काञ्ची' कहते हैं जो संस्कृत के खांड से निकला समझा जाता है।

ईख एक प्रकार की घास है। गेहूँ, धान, बाँस, नरकुल इसी जाति के पौधे हैं। यह बहुवार्षिक घास कही जाती है। इसका आशय यह है कि खेतों में एक बार बोने पर अनेक वर्षों तक यह उसमें उपजती रह सकती है। कुछ घास एक-वार्षिक होती हैं जो साल के अन्त सूख जाती हैं। ईख गरम देशों में ही उपजती है। सम्भवत: इसका जन्म किसी उष्ण प्रदेश में ही हुआ था। कुछ लोगों का मत है कि ईख का जन्म-स्थान भारत है। कुछ औद्भिदिकों का मत है कि इसका जन्म पूर्व-एशिया खंड के किसी स्थान में हुआ होगा। पहले-पहल यूरोप के दर्शक पोलीनिशिया (Polynesia) और हवाई-टापुओं में गये तो उन्होंने वहाँ ईख को उपजते देखा था। नृवंशविद्या-विशारदों का मत है कि इन टापुओं के निवासी दक्खिन प्रशान्त के देशों से यहाँ आये थे। यदि यह सच है तो यह सम्भव है कि दक्खिन प्रशान्त देशों से ही वहाँ के नाविकों द्वारा ईख वहाँ आई। यह बात इससे भी बहुत कुछ पुष्ट होती है कि इन स्थानों की ईखें पूर्व-एशिया के ईखों से स्पष्टरूप से भिन्न होती हैं।

ईखों में जड़, जड़ों के डंठल, स्तम्भ, पत्ते और फूल होते हैं।

ईख की जड़—ईख के स्तंभ पर ग्रन्थि होती है। प्रत्येक ग्रन्थि एक उभरी हुई गाँठ होती है जिसे आँख या अक्षि कहते हैं। यदि आँखवाले डंठल को बोएँ तो वह अंकुरित होगा। उससे डालें निकलेंगी। डाल का जो अंश मिट्टी के अन्दर रहता है, उसकी प्रत्येक ग्रन्थि से पतली-पतली मूल तन्तुएँ निकलती हैं। डंठल जैसे-जैसे बढ़ता है, ग्रन्थियों से नई-नई शाखें निकलती हैं। ईख का पेड़ वस्तुत: कई डंठलों का समूह होता है। प्रथम शिफावृन्त (Rhizome) से निकले नये पत्ते जब काट लिये जाते हैं, तभी सुप्त आँखों

से अंकुर निकलने में उद्दीपन मिलता है। इस प्रकार एक ही आँख से अनेक अंकुर प्राप्त हो सकते हैं। डंठल की ग्रन्थि से जड़ें निकलती हैं। जड़ें बहुत सुकुमार और रेशेदार होती हैं। वे सब दिशाओं में फैलती हैं। उनकी लम्बाई डेढ़ फीट से तीन फीट तक हो सकती है। जड़ें नीचे की ओर दूर तक नहीं फैलती। कुछ लोगों ने पौने पाँच फीट तक और कुछ लोगों ने आठ से दस फीट तक नीचे की ओर जड़ों को फैले हुए देखा है। पर ये अपवाद



चित्र ३—भिन्न-भिन्न ईखों की जड़

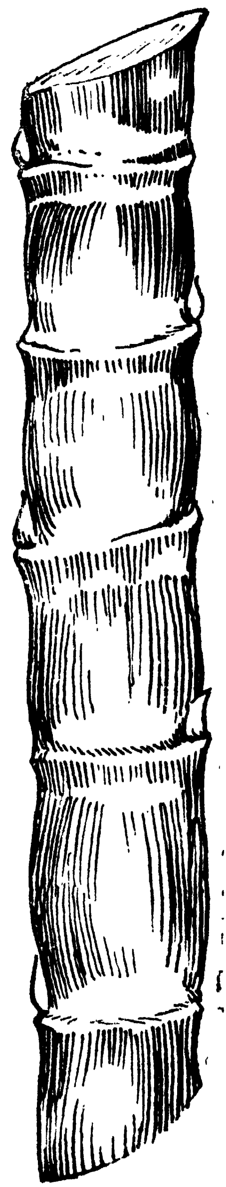
हैं। जड़ों को नीचे की ओर फैलना बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है। हल्की रन्ध्रि (छिद्रमय) मिट्टी में सबसे अधिक नीचे की ओर जड़ें फैलती हैं। सूखे में नीचे जल की तह तक जड़ों को फैलते हुए देखा गया है। साधारणतया देखा जाता है कि जड़ें नीचे की ओर कुछ फैलकर फिर ऊपर की ओर आ जाती हैं। ऊख में प्रधान जड़ (Taproot) नहीं होती (चित्र देखें)। इससे इसकी जड़ें मिट्टी को मजबूती से

पकड़े नहीं रहतीं। जिस ईख की जड़ बहुत नीचे तक नहीं जाती, उसे अधिक सिंचाई करने की आवश्यकता है और जिस ईख की जड़ बहुत नीचे तक जाती है, उसकी सिंचाई कम करनी पड़ती है। स्तम्भ पर थोड़े दबाव से भी ईख के पेड़ों के गिर जाने का भय रहता है।

जड़ की बनावट—ईख की जड़ें पतले रेशों से बनी होती हैं (चित्र ३)। इन रेशों के छोर पर एक छोटी-सी टोपी-सी गाँठ रहती है। यह टोपी-सी गाँठ कोशाओं की बनी होती है और निरन्तर बदलती रहती है।

जड़ों का प्रकार्य—जड़ों से दो काम होते हैं। ईख के पौधे मिट्टी मे आहार और पानी जड़ों द्वारा ही खींचकर पौधे के प्रत्येक भाग में पहुँचाते हैं। इससे पौधों का पालन-पोषण होता और वृद्धि में सहायता मिलती है। जड़ों का दूसरा काम पौधे के स्तंभ को खड़ा रखना है। ये जड़ें मिट्टी में ऐसी चिपटी रहती हैं कि वे पौधे को खड़ी रखकर गिरने से बचाती हैं।

स्तम्भ—ईखों के स्तम्भ करीब-करीब शंक्वाकार होते हैं। कुछ किस्म की ईखों में दो गाँठों के बीच का भाग बाहर की ओर उभरा हुआ होता है (चित्र ४), जिससे दो गाँठों के बीच का आकार नालाकार हो जाता है। स्तम्भ का आकार विभिन्न ईखों में और उपज की वृद्धि के कारण विभिन्न होता है। इसके स्तम्भ का व्यास कम-से-कम आधा इंच का और अधिक-से-अधिक तीन इञ्च का होता है। ईख एक फुट से बीस फीट तक लम्बी पाई गई है। इसकी पोर चार इञ्च से दस इञ्च तक लम्बी होती है। कभी अस्सी-अस्सी पोरों तक की ईखें पाई गई हैं। भारत में पहले जो ईख उपजती थी, वह बेंत सी पतली होती थी और इसे ही 'ऊख' कहते थे। अब ऊख शब्द सब प्रकार की ईखों के लिए उपयुक्त होता है। भारत के बाहर जो ईख उपजती थी, उनमें सबसे पतली ईख 'यूबा ईख' है। सम्भवत: यह भारत से ही बाहर गई थी। कोचीन चीन के लाल गेंड़ा (Elephant) ईख सबसे मोटी होती है। यह अब अधिक उपजाई नहीं जाती। उपजाई जानेवाली ईखों में टाना (Tana) ईख अधिक और 'जावा' या 'बटेविया' ईख कम व्यास की होती है। ओटेहाइट ईख इन दोनों के मध्यम व्यास की होती है। ईख के स्तम्भों की लम्बाई अनुकूल परिस्थितियों में तीस फीट तक हो सकती है, पर साधारणत: ईख की औसत लम्बाई भारत के बाहर देशों में १२ फीट की और भारत में प्राय: छ: फ़ीट की होती है। एक अच्छा उपजे हुए स्तम्भ की तौल पन्द्रह पाउण्ड तक हो सकती है; पर औसत तौल तीन से सात पाउण्ड तक होती है।



चित्र ४—ईख का स्तम्भ

भारत में जो ईखें होती हैं, उनके दो भेद हैं। एक को ईख या ऊख कहते हैं और दूसरे को पौंडा। ईख पतली होती है और पौंडा मोटी। भारत में ईख की किस्मों में खेड़ा, हेमजा, मंगी, सरौती, कुसवारा, सरेठा, मेरठी, मोरचा आदि हैं। पौंडों में लालगन्ना, सफेदगन्ना, धारीदार, काला आदि हैं।

जब ईख बढ़ने की दशा में रहती है, तब वह सीधी खड़ी रहती है और कुछ किस्म की ईखें सदा ही सीधी खड़ी रहती हैं; पर कुछ किस्म की ईखें पकने पर झुक जाती हैं।

ईख के स्तम्भ में अनेक गाँठें होती हैं। ये गाठें एक दूसरे से कुछ दूरी पर अलग-अलग होती हैं। साधारणतया ये गाँठें एक अविराम रेखा में बनती हैं; पर कभी-कभी टेढ़ी-मेढ़ी भी होती हैं। गाँठों के बीच का भाग किसी-किसी ईख में उभरा हुआ और किसी किसी में पिचका हुआ होता है। गाँठों के बीच की दूरी पाँच से दस इञ्च तक होती है। 'ताना' ईख में गाँठें नजदीक-नजदीक होती हैं और 'यूबा' ईख में अधिक दूरी पर, गाँठों की लम्बाई, पत्तों की वृद्धि, सूखा और ठंढी मौसम, मिट्टी की प्रकृति और दशा और रोगों पर निर्भर करती है। ये गाँठें संख्या में १५ से ८० तक हो सकती हैं। प्रत्येक गाँठ पर एक में एक ओर इससे सटे हुए, दूसरे में दूसरी ओर आँखें होती हैं जिनसे नये डंठल उगाये जा सकते हैं। इन आँखों का आकार मटर या मटर से कुछ बड़ा होता है। ये भिन्न भिन्न आकार के, त्रिभुजाकार, अण्डाकार, नोकीला अथवा अर्द्ध-गोलाकार होते हैं। कुछ किस्म की ईखों में आँखें उभरी हुई होती हैं। इन आँखों से एक पतली नाली होती है जो ऊपर की ओर जाती है। कुछ किस्म की ईखों में यह नाली बड़ी प्रमुख होती है और कुछ में प्रायः नहीं के बराबर होती है। इन गाँठो के ऊपर एक से तीन तक अर्द्ध पारभासक सफेद वलय होते हैं। इन स्थानों से ही जड़ें निकल सकती हैं। पत्तों के चिह्न भी यहाँ ही से दृष्टिगत होते हैं।

स्तम्भों की आँखों से ही ईख का पुनरुत्पादन होता है। आँखों से जैसे-जैसे अंकुर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे जड़-तन्तुएँ भी बढ़ती हैं। कुछ ईखों में पितृ स्तम्भों में रहते हुए भी आँखों से अंकुर निकलते हैं; पर अधिकांश ईखों में उसके सिर भाग के हट जाने अथवा कीड़ों या रोगों से नष्ट हो जाने पर ही आँखों से अंकुर निकलते हैं। कभी-कभी जड़-तन्तुएँ वायु में भी फैलती हैं। साधारणतः वे मिट्टी में ही फैलती हैं। वायु में जड़-तन्तुओं के फैलने का कारण एक विशेष रोग होता है।

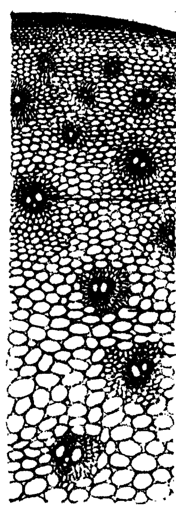
कुछ ईखें हरे रंग की, कुछ पीले रंग की, कुछ लाल रंग की और कुछ के रंग आपद्म से लेकर गाढ़े नीलारुण रंग तक की होती हैं। सूरज में खुले रहने से कुछ ईखों में संगमरमर-सी चमक आ जाती है। रंगों की कमी या वृद्धि से कुछ ईखों में लम्बी धारियाँ बन जाती हैं। पीले रंग के ईखों में क्लोरोफील (एक प्रकार का हरा रंग जो पेड़-पौधों के पत्ते में होता है) की कमी से हरी और पीली धारियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार पीले-लाल रंग की और लाल रंग की दो आभाओं से बनी धारियाँ देखी जाती हैं। यह लाल रंग अन्थोस्यानिन की कमी से बनता है।

स्तंभ की संरचना—यदि हम स्तम्भ को चीर डालें तो देखेंगे कि स्तम्भ प्रायः तीन विभिन्न भागों से बना है। इसका सबसे बाहर का भाग, बाहर का छिलका—बाह्य अंश—कड़ा होता है। इस अंश को हम बल्क कहेंगे। बल्क के बाद भीतर का अंश—अभ्यन्तर

अंश—कुछ कोमल होता है। इसे ऊति (tissue) कहते हैं। ऊति में चारों ओर फैली हुई रेशें होती हैं जिसे हम 'तन्तु' कहेंगे। इस प्रकार ईख के स्तम्भ, बल्क, ऊति और तन्तुओं से बने होते हैं।

बल्क मोटा अधिस्तर (epdermis) का बना होता है। इस अधिस्तर के वाह्यतम भाग उच्चर्म (cutical) कहे जाते हैं। उच्चर्म के वाह्य भाग पर बहुधा मोम की पतली तह होती है। इससे स्तम्भ में पानी प्रविष्ट नहीं कर सकता। इस उच्चर्म के वाह्य भाग में स्थूलभित्ति (thick-walled , कोशा का स्तर होता है। उच्चर्म से पानी के उड़ने में—पानी के वाष्पीभवन में—रुकावट होती है और यह अभ्यन्तर के कोमल भागों को चोटों से सुरक्षित रखता है। स्थूल भित्ति कोशा से स्तम्भ में बल और दृढता आती है। स्थूल भित्ति कोशा के अन्दर जीवितक (parenchyma) की बनी तन्तुभित्ति कोशा होती है। इसी में ईख का मीठा रस इकट्ठा रहता है। ईख की तन्तुओं को तन्तुमय वाहिनी पोटल (bundle) कहते हैं। इसमें काष्ठ-पात्र (vessel), चालनी नाल (Sieve tube) और सखि-कोशा (Companion cell) होती है जिनको चारों ओर से स्थूल-भित्ति कोशा घेरी रहती है। सूक्ष्मदर्शक से देखने से डंठल के विभिन्न अंश चित्र ५ की तरह देख पड़ते हैं।

सूक्ष्मदर्शक द्वारा ईख के अनुप्रस्थ काण्ड (Cross section) के देखने से पता लगता है कि १ अधिस्तर है जिसकी भित्ति स्थूल है, २ बल्क की स्थूल-भित्ति ऊति है, ३ एक छोटा वाहिनी पोटल है, ४ दो पात्रवाला मध्यम पोटल है और ५ स्थूल-भित्ति तन्तु है।



चित्र ५

स्तम्भ का प्रकार्य—स्तम्भ से प्रधानतः तीन काम होते हैं। ईख के पत्तों और फूलों का यही आधार है। स्तम्भों के द्वारा ही खाद और जल जड़ से पत्तों में जाते और पत्तों में जो चयापचय होते हैं, वे पौधों के भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचते हैं। जीवितक कोशा उन पदार्थों को स्तम्भ में ही संचित रखते हैं जो पौधों की वृद्धि में शक्ति उत्पन्न करते हैं।

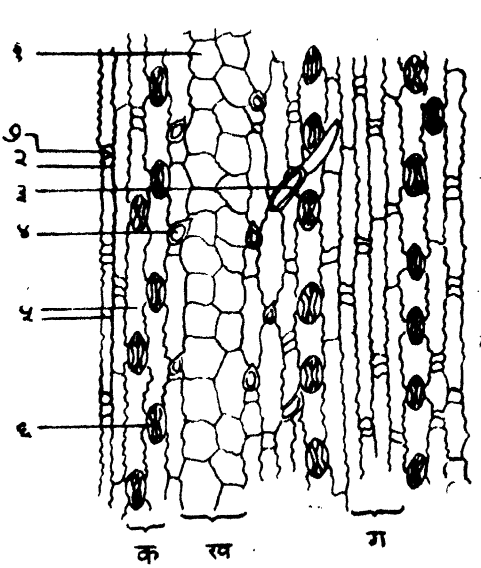
छोटे पौधों के स्तम्भों में केवल स्टार्च (मंड) या अलबुमिन (श्विति) रहता है। यह धीरे-धीरे परिवर्तित हो सेल्युलोस (कोशाधु) बनता है। शीघ्र बढ़ते हुए छोटे-छोटे पौधों में पत्तों से चीनी आकर उसका यहाँ अपवर्तन (inversion) होता है। पत्तों में इक्षु-शर्करा, द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा का अनुपात ४ : २ : १ रहता है; पर स्तम्भों में यह ०·८ : १ : १ हो जाता है। अपवर्त शर्करा का कुछ अंश तन्तु के निर्माण में खर्च हो जाता है। कुछ एमाइड के साथ मिलकर अलबुमिन बनता और कुछ स्टार्च बनकर सञ्चित रहता है। अपवर्तन के कारण अभिसारक दबाव बढ़ जाता है। इससे पौधों के आहार के अपशोषण में सहायता मिलती है। पुराने स्तम्भों के पत्तों में जो इक्षु-शर्करा बनती है, वह स्तम्भों में आकर अपरिवर्तित रह जाती और अवकृत शर्करा खर्च हो जाती

है। कुछ तो साँस में खर्च हो जाती और कुछ सम्भवत: किण्वन के द्वारा फिर इक्षु-शर्करा में परिणत हो जाती है।

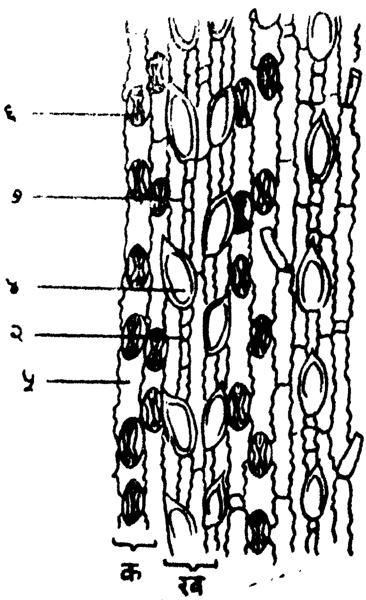
जब स्तम्भ पक जाता तब संचित विपर्यस्त शर्करा इक्षु शर्करा में परिणत हो जाती है। कुछ द्राक्ष-शर्करा तो बच ही जाती है। जब स्तम्भ पक जाता, पत्ते मर जाते हैं और शर्करा का संचय धीरे-धीरे बन्द हो जाता है, तब जो कुछ अवकृत (reduced) शर्करा बच जाती है, वह इक्षु-शर्करा में परिणत हो जाती और अवकृत शर्करा का लेशमात्र रह जाता है।

जब स्तम्भ आवश्यकता से अधिक पक जाता तब इक्षु-शर्करा फिर विपर्यस्त शर्करा में परिणत हो जाती है, पर इससे ईख के नये-नये भागों में शर्करा संचय में कोई रुकावट नहीं होती।

पत्ता—ईख के पत्ते असंमुख और विपरीत होते हैं। प्रत्येक ग्रन्थि पर एक पत्ता रहता है। पत्ते के वस्तुत: दो भाग होते हैं। एक पत्र-आवरण और दूसरा पत्र-फलक। पत्र-आवरण ग्रन्थि से निकलता है। यह ग्रन्थि को पूर्ण रूप से घेरे रहता है और जैसे जैसे ऊपर उठता है, स्तम्भ से धीरे-धीरे दूर होता जाता है। आवरण या तो रंगहीन होता अथवा हल्के हरे रंग का होता है। इसकी पूरी लम्बाई प्राय: बारह इंच तक होती है। फलक तीन से चार फुट लम्बा और दो से तीन इंच चौड़ा होता है। पत्ते का रंग भिन्न भिन्न हरी आभा का होता है। कुछ ईख के पत्ते बिलकुल सफेद होते और अन्य ईखों के भिन्न-भिन्न रंगों के होते हैं। कुछ ईखों के पत्तों के रंग नीलारुण होते हैं। पत्ते जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते, पतले होते जाते हैं अर्थात् वे शुण्डाकार होते हैं। किनारे की ओर क्रकचवत् होते हैं। अनेक किस्म की ईखों में उनके आधार पर रोएँ होते हैं।



चित्र ६—विशालित पत्ते का ऊपरी भाग



चित्र ७—विशालित पत्ते का अभ्यन्तर भाग

पत्तों के आयाम में अनेक नाड़ियाँ—लकीरें—होती हैं। इसकी मध्यम रीढ़ साधारणतया सफेद होती है; पर कभी-कभी इसका रंग कुछ-कुछ लाल-आरक्त या नील-लाल—

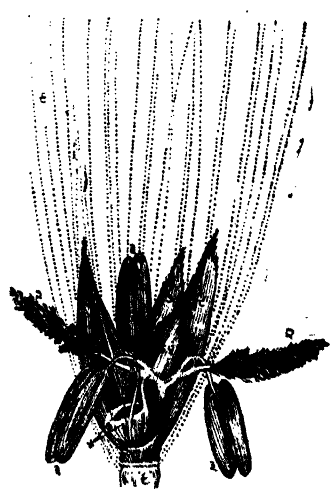
नीलारुण—होता है। पत्ते के ऊपर के तल पर नाली के ऐसा अवनमन होता है। ईख के परिपक्व हो जाने पर पत्ते गिर पड़ते हैं। कुछ दशाओं में तो पत्ते गिरकर स्तम्भ से बिलकुल अलग हो जाते हैं।

पत्ते की संरचना—पत्ते का विशालित चित्र यहाँ दिया हुआ है। डिकफ ने पत्ते के ऊपरी और अभ्यन्तर भाग को बहुत अधिक बढ़ाकर जो चित्र खींचा है, वह यहाँ दिया गया है। [चित्र ६ और ७]। इसमें ५ लम्बे लम्बे कोशा होते हैं, ७ सिलिका कोशा है, २ त्वच-ऊत्ति कोशा है, ६ मुख है, १ वायुकोशा ३ रोम और ४ शल्य है।

पत्ते का प्रकार्य—पौधे का पत्ता वह स्थान है, जहाँ चयापचय की क्रियाएँ होती हैं। पत्ते वायु से कार्बन डायक्साइड नामक गैस को हरे रंग के क्लोरोफील की सहायता से ग्रहण करते हैं। यह काम मुख (Stomata) के द्वारा होता है। यह कार्बन डायक्साइड जड़ से आये पानी के साथ मिलकर फार्मल्डीहाइड बनता जो पीछे कार्बोहाइड्रेट में परिणत हो जाता है। कार्बन डायक्साइड का आक्सिजन वायु में मिल जाता है। जड़ द्वारा मिट्टी से आये पानी में घुले नाइट्रेट के साथ कार्बोहाइड्रेट संयुक्त हो नाइट्रोजनवाला पदार्थ-प्रोटीन बनता है। ऐसे बने पदार्थ स्तम्भ के मार्ग से पौधों के भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाये जाते हैं। पत्ते का एक और काम होता है मुख से पानी निकालना। दूसरे शब्दों में पत्तों द्वारा जल का उत्स्वेदन होता है। इसे अंग्रेजी में ट्रेन्सपीरेशन कहते हैं।

पत्तों में चयापचय का पहला उत्पाद कार्बोहाइड्रेट बनता है। यदि कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक बने तो यह स्तम्भ में आकर स्टार्च के रूप में प्रकट होता है। रात में अथवा बादल से घिरे दिनों में स्टार्च अवकृत हो शर्करा में परिवर्तित हो स्तम्भ में चला जाता है। सूर्यास्त से ठीक पहले पत्तों में स्टार्च की पर्याप्त मात्रा उपस्थित देखी जाती है; पर सूर्योदय से ठीक पहले पत्तों में स्टार्च का प्राय: पूर्ण अभाव देखा जाता है। दिन में पत्तों के भार में प्राय: १५ प्रतिशत तक वृद्धि होती है। रात में यह वृद्धि रुक जाती है। इसके विपरीत स्तम्भ के अन्य अवयवों के अधिकांश में वृद्धि प्राय: रात में ही होती है।

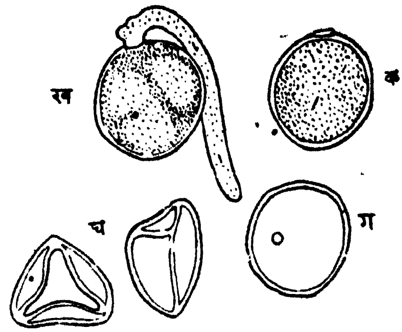
फूल—ईख के स्तम्भ के ऊपरी छोर से एक लम्बा शाख निकलता है जिसे पुष्प-वृन्त (Peduncle) कहते हैं। इसी पुष्प-वृन्त पर कोमल रेशम-सा छोटा-छोटा रोआँ बनता है। इन छोटे-छोटे रोओं को शूकिका (Spikelet) कहते हैं। यही ईख का फूल है। इसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।



चित्र ८—ईख का फूल

फूल पर अण्डाशय (१) होता है। इसी की वृद्धि से बीज बनता है। यह अण्डाकार (avoid) और अवृन्त होता है। अण्डाशय से दो प्रकार के आरक्त कुक्षिवृन्त (style) होते हैं, जिन पर रोमशकुक्षि (२) (plumox stigma) होती है। फूल में (३) परागाशय (anther) होते हैं जिनमें पराग (pollen) बनता है। इस पराग से ही कुक्षि निषिक्त (fertilised) होती है। इसमें दो (४) परिपुष्पक

(lodicule) होते हैं, जिनका काम होता है—उपयुक्त अवसर पर बढ़कर ईख के पुष्प को खोल देना। ईख पुष्प के अभ्यन्तर (५) और अन्य (६, ७, ८) palet और बुस-पत्र (glumes) होते हैं। इसमें दृढ लोम (bristle) होता है, जो फूलों के आधार को घेरे रहता है। बीज का बनना कभी-कभी ही होता है। किसी किसी ईख में ही फूल लगते हैं। कुछ ईखों में फूल कभी लगते ही नहीं। कुछ ईखों में केवल गरम देशों में ही फूल लगते हैं। ८ से १५ मास के बीच ईखों में फूल लगता है। फूल लगना बहुत कुछ बोने के समय, ईख की प्रकृति और जल-वायु पर निर्भर करता है। वर्ष के किसी विशिष्ट समय में ही फूल लगते हैं। यह समय भिन्न भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होता है। फूलने के समय तक प्रथम वर्ष में यदि ईख न पका है तो फिर यह दूसरे वर्ष में ही फूलने के समय पर फूलता है।



चित्र ६—ईख फूलों के विभिन्न अंग

इस प्रकार कुछ हफ्तों की देर से बोने से फूलने का समय एक वर्ष के लिए टल जाता है। कुछ नये किस्म की ईखों में, जो अन्य घासों के प्रजनन से बने हैं, अब फूल बड़ी सरलता से जल्दी ही और अवश्य लगते हैं। पक्व पराग का चित्र ६ 'क' है। अंकुरित होने पर 'ख' सा हो जाता है। कच्चे पराग का आकार 'ग' सा होता है। 'घ' अंकुर का रन्ध्र है। 'च' वाह्य कवच (exine), और 'छ' अन्तर कवच (intine) है। पराग के कण छोटे-छोटे और पीले होते हैं। उनका आकार गोल (spherical) होता है। वाह्यकवच त्वचासी ऊति का बना होता है और उसमें एक छेद होता है जिसे अंकुर-रन्ध्र कहते हैं।

आभ्यन्तर कवच शुद्ध सेल्यूलोस (कोशाधु) का बना होता है और उसमें कोई छेद नहीं होता। पके होने पर पराग-कण का अभ्यन्तर भाग स्टार्च से भर जाता है और पारभासक होता है ; पर कच्चे रहने पर चमकीला और पारदर्श होता है।

पाँचवाँ प्रकरण

ईख का संगठन

स्तम्भ और पत्ता—यदि जड़ को छोड़ दें तो ईख के स्तम्भ के सूखे अंश और मरे और जीते पत्ते और शीर्ष के सूखे अंश का अनुपात साधारणतया ४५:५५ पाया जाता है। यदि जड़ को भी जोड़ लें तो स्तम्भ के सूखे अंश की मात्रा प्रायः ४० प्रतिशत होती है। अन्वेषकों द्वारा ईखों के विभिन्न भागों के विश्लेषण बड़ी सूक्ष्मता से और अनेक हुए हैं। उनसे पता लगता है कि ईख के विभिन्न भागों का औसत संगठन निम्नलिखित है—

		स्तम्भ प्रतिशत	पत्ता प्रतिशत	जड़ प्रतिशत	बीज प्रतिशत
जल		७५·०	७४·४	६८८	११·०
शर्करा		१३·४	२·२	६·३	—
तन्तु	सेल्यूलोस	४·६	६·२	६·६	२५·५
	पेन्टोजन	३·०	५·५	७·०	२६·३
	लिगनीन	२·१	४·१	४·३	२१·५
राख		०·६	२·२	१·६	५·२
चर्बी और मोम		०·४	०·७	०·५	२·०
नाइट्रोजन पदार्थ		०·६	१·७	१·६	८·५

स्तम्भ में शर्करा—स्तम्भ में शर्करा की मात्रा बहुत कुछ ईख की प्रकृति और ऊपज की स्थिति पर निर्भर करती है। अनेक लोगों ने ईख में शर्करा की मात्रा का निर्धारण किया है। शर्करा की मात्रा बहुत विभिन्न पाई गई है। अधिक-से-अधिक शर्करा की मात्रा १८ प्रतिशत तक पाई गई है—यद्यपि कुछ लोगों ने २६ प्रतिशत तक होने का उल्लेख किया है। केवल शर्करा में ही नहीं, ईख के अन्य अवयवों में भी, बहुत विभिन्नता पाई गई है। साधारणतया जल की मात्रा ६९ से ७५ प्रतिशत, शर्करा की मात्रा ७ से २० प्रतिशत, अवकृत शर्करा की मात्रा ० से २ प्रतिशत, तन्तु की मात्रा ८ से १५ प्रतिशत, कार्बनिक अ-शर्कराओं की मत्रा ०·५ से १ प्रतिशत और राख की मात्रा ०·३ से ०·८ प्रतिशत पाई गई है। शर्करा की महत्तम मात्रा २० प्रतिशत किसी-किसी ईख में अपवाद की दशा में ही देखी गई है।

स्थान की विभिन्नता से भी शर्करा की मात्रा में विभिन्नता देखी जाती है। कुछ स्थानों की ईखों में शर्करा की मात्रा अधिक होती है और कुछ स्थानों की ईखों में कम। किसी स्थान की ईख में १५ प्रतिशत, किसी स्थान की ईख में १४ प्रतिशत शर्करा पाई गई

है। भारत की ईखों में शर्करा की औसत मात्रा १२·५ प्रतिशत मानी जा सकती है। हवाई टापुओं के ईखों में शर्करा की औसत मात्रा १३ प्रतिशत, जावा ईख में १२·५ प्रतिशत और मौरिशस टापू की ईख में १३·४ प्रतिशत मानी जाती है।

एक ही जलवायु और मिट्टी में विभिन्न ईखों में शर्करा की मात्रा विभिन्न पाई गई है। भारत में ईख उपजाने के सम्बन्ध में बड़े महत्त्व की खोजें हुई हैं। मद्रास के कोयम्बटोर और बिहार के पूसा में इसके लिए अनुसन्धानशालाएँ हैं जहाँ इसपर महत्त्व के अनुसन्धन हो रहे हैं। इन खोजों के फलस्वरूप संकरण द्वारा नई-नई ईखें ऊपजाई गई हैं, जिनमें शर्करा की मात्रा अधिक होती और ईख जल्दी परिपक्व हो जाती है। ऐसी ईखों में कोयम्बटोर ३१३, कोयम्बटोर ३६५, कोयम्बटोर ४५३, कोयम्बटोर ५०८, कोयम्बटोर ५१३ और बी० ओ० १० और बी० ओ० ११ प्रमुख है। बिहार में जो ईखें उपजाई जाती हैं। उनमें को० ४५३, को० ३१३, को० ५१३ और बी० ओ० १० और बी० ओ० ११ प्रमुख हैं।

ईख में शर्करा का बटना—वेन्ट (Went) ने जावा में बहुत विस्तार से ईख की विभिन्न ग्रन्थियों का विश्लेषण किया है। निम्नलिखित विश्लेषण के आँकड़े एक पकी हुई ईख के हैं जो पूरे एक वर्ष की पुरानी थ ।

ग्रन्थि क्रमांक	भार ग्राम मे	शर्करा प्रतिशत	विपर्यस्त शर्करा प्रतिशत
१	७२·६	१२·१	०·६
२	६१·०	१३·०	०·५
३	११०·०	१३·७	०·६
४	१२०·०	१४·०	०·५
५	११८·०	१४·८	०·५
६	११४·५	१४·७	०·५
७	१०४·५	१५·२	०·४
८	१०२·०	१५·४	०·४
९	८१·५	१५·८	०·३
१०	७३·०	१६·३	०·३
११	८४·५	१६·२	०·४
१२	८१·५	१६·५	०·३
१३	८२·०	१६·४	०·३
१४	७६·०	१७·१	०·३
१५	८२·५	१७·२	०·३
१६	८४·५	१७·२	०·२
१७	७८·५	१७·३	०·३
१८	७४·०	१७·५	० ३
१९	६५·५	१७ ४	०·३
२०	६१·०	१७·८	०·३

ग्रन्थि क्रमांक	भार ग्राम मे	शर्करा प्रतिशत	विपर्यस्त शर्करा प्रतिशत
२१	६२·५	१७·४	०·२
२२	५८·०	१७·०	०·२
२३	५३·५	१७·१	०·२
२४	४३·०	१६·८	०·३
२५-२६	६४·०	१५·७	०·३
२७-२८	४४·०	१३·५	०·३
२९-३०	३७·५	१३·०	०·३
३१-३३	४३·५	११·६	०·४
३४-३६	३७·०	९·९	०·७
३७-४५	४३·५	५·७	०·८
औसत	७४·८	१५·३	०·४

पर्व और पर्व-सन्धि के रसों के संगठन में बोनामे (Boname) द्वारा निम्न-लिखित आँकड़े प्राप्त हुए हैं—

पर्वसन्धि	शर्करा प्रतिशत	१३·३४	१२·७४	१६·७३
	विपर्यस्त शर्करा प्रतिशत	०·२९	०·२८	०·३१
पर्व	शर्करा प्रतिशत	१६·५१	१६·८०	१९·७२
	विपर्यस्त शर्करा पतिशत	०·६०	०·८४	०·४८

स्टब्स (Stubbs) ने नीलारुण ईख के २० स्तम्भों के विश्लेषण के परिणाम इस प्रकार दिये हैं—

	शर्करा प्रतिशत	विपर्यस्त शर्करा प्रतिशत	अशर्करा प्रतिशत	तन्तु प्रतिशत
पर्वसन्धि	१२·६	०·१३	३·२१	१६·५
पर्व	१५·५	०·९४	०·९६	८·०

विश्लेषण के इन अंकों से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि पर्व और पर्व-सन्धि के रसों की संरचना में विभिन्नता रहती है। यही कारण है कि कोल्हू में पेरे जाने पर पीछले कोल्हू से जो रस निकलता है, उसमें शर्करा की मात्रा कम रहती है; क्योंकि इसी कोल्हू में पर्वसन्धि की पेराई होती है; और पर्वसन्धि की पेराई में अधिक दबाव की आवश्यकता होती है।

ईख में ठोस पदार्थ और शर्करा का अनुपात—चुनी हुई ईख से यदि हाथ-कोल्हू द्वारा रस निकाला जाय तो ऐसे रस की शुद्धता प्रायः ९७ तक रहती है। ऐसा रस प्रधानतः मज्जक (Pith) कोशा से आता है। इस कारण ऐसा रस औसत रस नहीं कहा जा सकता। साधारणतः यंत्र-कोल्हू से निकले रस की शुद्धता इतनी नहीं रहती। ऐसे रसों की शुद्धता ८४ से ९० तक रहती है। अनेक नमूनों में शुद्धता ८० तक गिर जाती है। कुछ नमूनों में शुद्धता ७० तक पाई गई है।

ईख में विपर्यस्त शर्करा—ईख में जो विपर्यस्त शर्करा रहती है, वह प्रायः सारा द्राक्ष और फल-शर्करा के रूप में ही रहती है। इन दोनों शर्कराओं के संयोग से ही इक्षु-शर्करा बनती है। आवश्यकता से अधिक पक जाने अथवा अन्य किसी कारण से क्षतिग्रस्त हो जाने से विपर्यस्त शर्कराओं की मात्रा बढ़ जाती है। ईख की उपज के विभिन्न क्रमों में इसकी मात्रा विभिन्न होती है। अनेक अन्वेषकों ने पता लगाया है कि द्राक्ष शर्करा की अपेक्षा फल-शर्करा अधिक शीघ्रता से खर्च हो जाती है। इस कारण इसकी मात्रा अनेक दशाओं में प्रायः शून्य हो जाती है। कुछ विशेष दशाओं में द्राक्ष शर्करा भी पूर्णतः खर्च हो जाती है। ऐसी दशा में विपर्यस्त शर्कराओं का बिलकुल अभाव रहता है। ईख जब काटकर कारखाने में ताजा आती है, तब विपर्यस्त शर्कराओं की मात्रा ०'३ से २ प्रतिशत तक रह सकती है; बहुत पकी ईख में इसकी मात्रा कम, पर आवश्यकता से अधिक पकी ईख में मात्रा बढ़ जाती, पर हर दशा में कुछ-न-कुछ अवश्य रहती है। यूवा ईख में विपर्यस्त शर्कराओं की मात्रा अधिक पाई जाती है।

ईख के तन्तु—तन्तु से आशय उस भाग से है, जो जल में घुलता नहीं। तन्तु के विभिन्न अंशों में निम्नलिखित मात्रा में विभिन्न पदार्थ पाये गये हैं—

	मज्जक प्रतिशत	पोटल प्रतिशत	बल्क प्रतिशत
राख	१'६८	२'५८	१'६४
चर्बी और मोम	०'४१	०'७२	०'६८
सेल्यूलोस	४६'००	५०'००	५१'००
पेन्टोजन	३२'०४	२८'६७	२६'६३
लिगनीन	१४'६३	१५'०३	१७'१७
प्रोटीन	१'६४	२'००	२'१६

ईख के तन्तु की मात्रा बहुत-कुछ उपज की स्थिति और उम्र पर निर्भर करती है। हवाई टापू में तन्तु की मात्रा औसत १२'६ प्रतिशत, क्यूबा में १० से ११ प्रतिशत, जावा में १२ प्रतिशत, मौरिशस में १२ प्रतिशत और भारत में ११'७ प्रतिशत पाई गई है। यूवा ईख में महत्तम मात्रा १६ से १७ प्रतिशत तक पाई गई है।

ईख में नाइट्रोजन—ईख में अल्बुमिनायड के रूप में नाइट्रोजन पाया जाता है। अल्बुमिनायड में अल्बुमिन, न्यूक्लीन, अलब्यूमोज, पेपटोन, हिअरयिन, अमिडोअम्ल, ऐमाइड, नाइट्रोजन क्षार, नाइट्रेट और अमोनियम लवण सम्मिलित हैं। रस के शोधन के समय नाइट्रोजन पदार्थ बहुत-कुछ निकल जाते हैं; फिर भी उसकी पर्याप्त मात्रा रह जाती है। यह नाइट्रोजन छोए में आ जाता है और छोए की तादाद को बढ़ा देता है। ईख के सूखे अंश में नाइट्रोजन की मात्रा औसत ०'५२ प्रतिशत रहती है। अधिक-से अधिक (महत्तम) ०'६० प्रतिशत और कम-से-कम (अल्पतम) ०'४३ प्रतिशत रहती है। यदि केवल स्तम्भ को लें तो औसत मात्रा ०'४६ प्रतिशत और महत्तम मात्रा ०'५३ प्रतिशत और अल्पतम मात्रा ०'२१ प्रतिशत रहती है। सारे नाइट्रोजन का ३५ प्रतिशत सीठ्ठा (बागास) में और ६५ प्रतिशत अन्य उत्पादों में रहता है।

स्तम्भ में नाइट्रोजन का वंटन कैसे होता है, इसका निर्धारण ब्राउन और ब्लूयिन (Browne and Blouin) ने इस प्रकार किया है—

	ईख का प्रतिशत
एलब्यूमिन	०·०६
न्यूक्लीन	०·०४
एलब्युमोज और पेपटोन	०·०३
ऐमिडोअम्ल (ऐस्पर्टिक अम्ल के रूप में)	०·१५
ऐमिडोअम्ल (ऐस्परगिन के रूप में)	०·२३
एमोनिया (NH_3 के रूप में)	०·०१
नाइट्रिक अम्ल (N_2O_5 के रूप में)	०·०७
समस्त नाइट्रोजन	०·५६

किन-किन रूपों में नाइट्रोजन रहता है; इसका निश्चित रूप में जानना कुछ कठिन है। जो अंक इस सम्बन्ध में प्राप्त हुए हैं, वे विश्वनीय नहीं है। शोरे (Shorey) ने ईख से ग्लाइको-कोल निकाला था। ज़र्बैन (Zerbain) ने उसी रीति से ऐस्परगिन निकाला था। फास्फो-टंग्सटिक अम्ल द्वारा एल्युमिनायड को अवक्षिप्त कर शोरे ने लेसिथिन, बिटेन और चोलीन प्राप्त किया था। उन्होंने उसमें ग्वेनिन भी निकाला। ऐस्परगिन के सिवा ज़रबैन ने ग्युटेमिन और टायरोसीन भी निकाला था।

ईख की राख—सूखे स्तम्भ में राख की मात्रा प्रायः ३·२ प्रतिशत और पत्ते-जड़ इत्यादि में ६·५ प्रतिशत पाई गई है। एक दूसरे अन्वेषक ने स्तम्भ में राख की मात्रा ४·१ प्रतिशत और पत्ते में ८·३ प्रतिशत पाई थी। विभिन्न ईखों में राख की मात्रा विभिन्न रहती है। राख की मात्रा ईख की प्रकृति, मिट्टी की प्रकृति, स्तम्भ की उम्र इत्यादि अनेक बातों पर निर्भर करती है। एक बात निश्चित है कि राख में सिलिका (बालू) और पोटाश की मात्रा पर्याप्त रहती है। ईख की राख के विश्लेषण से निम्न-लिखित आंकड़े प्राप्त होते हैं—

	१	२	३	४	५	६	७	८
सिलिका	५६·१	१८·१	५३·४	२८·७	७८·५	५२·८	५६·८	५३·५
टाइटेनिक अम्ल	१·१	—	१·७	—	—	—	—	—
फ़ास्फ़रिक अम्ल	१·५	६·१	१·३	७·५	१·०	१४·७	१०·६	०·८
सलफुरिक अम्ल	५·३	५·६	५·१	४·२	२·४	२·४	२·६	०·५
क्लोरीन	२·५	५·५	४·०	८·७	०·३	०·३	०·२	०·६
फेरिक आक्साइड	६·५	७·४	४·०	३·३	०·७	०·५	—	—
एलुमिना	२·१	१२·२	१·८	३·७	—	—	—	—
मैगनीज़ आक्साइड	०·२१	—	०·१	—	—	—	—	—
चूना	५·६	३·६	६·०	४·१	४ ७	२·७	६·५	३·२
मैगनीशिया	४·६	६·१	४·४	५·६	२·३	२·१	५·१	३·२
पोटाश	१३·४	२६·०	१७·१	३२·३	८·५	२३·०	२२·६	२५·६
सोडा	१·७	३·४	१·४	२·७	१·७	१·५	५·७	२·६

उपर्युक्त सरिणी में नम्बर १ में जो आँकड़े दिये हैं, वे लेहेना ईख के सूखे स्तम्भ पत्ता और शीर्ष के हैं; २ केवल लेहेना ईख-स्तम्भ के है; ३ पीला ईख के सारे भाग के हैं; ४ पीला ईख के केवल स्तम्भ के हैं; ५ चेरीबोन ईख के केवल पत्ते के हैं; ६ चेरीबोन ईख के केवल स्तम्भ के और ७-८ मौरिशस की ईख के स्तम्भ के हैं। इन सबों के विश्लेषक मैक्सवेल साहब हैं।

ईख में कार्बनिक अम्ल—निश्चित रूप से पता लगा है कि ईख के रस में १०० सी० सी० में ०.०५ ग्राम ऐकोनिटिक अम्ल, ०.०००८ ग्राम मैलिक अम्ल और ०.०००४ ग्राम औक्ज़ैलिक अम्ल रहते हैं। शोरे ने क्षतिग्रस्त ईख के रस में साइट्रिक अम्ल का होना निश्चित रूप से सिद्ध किया है। क्षतिग्रस्त ईख में ऐसिटिक अम्ल भी पाया गया है। कुछ लोगों ने टार्टैरिक और सक्सिनिक अम्ल की उपस्थिति की भी घोषणा की है; पर पीछे के अन्वेषकों ने किसी रस में इसे नहीं पाया है।

गोंद (निर्यास)—ईख में प्राय: ०.२ प्रतिशत तक गोंद रहता है। गोंद की सब से अधिक तायदाद कच्चे ईख में रहती है। यह गोंद जल में अविलेय होता है। अम्लिक एलकोहल में भी अविलेय होता है। जान्तव और औद्‌भिदी कार्बन में इसका अपशोषण हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि तन्तु के हेमिसेल्यूलोस से गोंद बनता है। गोंद में प्रधानत: जाइलान (xylan) और ऐराबान (araban) और गैलेक्टान (galactan) रहते हैं। चीनी के निर्माण में कुछ तो गोंद अवक्षिप्त हो जाता है और शेष छोए में रह जाता है।

मोम—ईख के वाह्यतल पर मोम रहता है। ईख में प्राय: ०.०५ प्रतिशत तक मोम रह सकता है। कुछ ईखों में मोम प्राय: होता ही नहीं है। इस मोम का अध्ययन बहुत विस्तार से हुआ है। मोम के ७० प्रतिशत में ओलियिक, लिनोलिक, पामिटिक और स्टियरिक अम्लों के साथ-साथ हाइड्रौक्सिल अम्ल, रेजिन, अम्ल, लेसिथिन, फीटोस्टेरोल, सौरभिक और रंगवाले पदार्थ रहते हैं। शेष ३० प्रतिशत में मिरीसिल एलकोहल और अन्य ठोस अम्ल रहते हैं। ईख का मोम आज व्यापार की वस्तु बन गया है और बाजारों में बिकता है।

अन्य अवयव—ईख में कुछ अन्य पदार्थ भी रहते हैं। उनकी मात्रा बड़ी अल्प होती है और व्यापार की दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नहीं है। ऐसे पदार्थों में हरा रंग, क्लोरोफील, नीला या लाल रंग अन्थोसायनिन, सैकेरिटिन (saccharitin) और टैनिन प्रमुख हैं। टैनिन पाइरोकैटिचीन का प्रसूत समझा जाता है। ईख में अनेक किण्व या विकर भी रहते हैं। ईख के शीर्ष में अपवर्तेद (invertase) नामक विकर पाया गया है। कुछ लोगों ने लैकेस और पेरौक्सीडेस और टाइरोसिनेस विकरों को भी उसमें पाया है।

छठा प्रकरण

ईख के लिए जलवायु

ईख का भौमिक विस्तार—ईख ऐसे ही स्थलों में उपजती है, जहाँ का ताप ऊँचा और वर्षा अधिक होती हो। जिन स्थलों में ईख उपजती है, वहाँ का समताप (isotherm) ६८° फ० होना चाहिए। वास्तव में यह उष्ण-कटिबंध (torrid zone) में ही उपजती है। जिन देशों में ईख उपजती है, वे ये हैं—

एशिया में भारत (१०°-३०° उ०), जावा (६°-८° द०), फिलिपाइन (५°-१८° उ०), फोरमोसा (२१°-२५° उ०), दक्खिन चीन (२२°-३०° उ०) और जापानी टापुओं का समुदाय (३०°-३२° उ०)।

अफ्रिका में मेडीरा (३३° उ०), मिश्र (४°-३०° उ०), बेटाल और जुलुलैंड (२८°-३०° द०), पोर्तुगाल पूर्वी अफ्रिका (१०°-२८° द०) मौरिशस और रियूनियन (१६°-२१° द०)।

अमेरिका में ल्युसियाना, टेक्सास और जौर्जिया (३०°-३२° उ०), पच्छिमी इंडियन टापुएँ जिनमें क्यूबा, सन्टोडोमिंगो, जैमेका, मारटिनिक और ट्रिनिडाड हैं (८°-२२° उ०) और ब्रिटिश और डचगायना (६°-८° उ०), मैक्सिको और मध्य अमेरिका रिपब्लिक्स (८°-२५° उ०), ब्रैजिल (०°-२३° द०), अर्जेन्टिना (२२°-२८ द०), परागुए (२०°-२२° द०), वेनुज्वेला (०°-८° उ० , और पेरू (३°-१८° द०)।

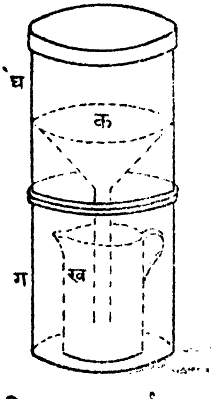
अस्ट्रेलेशिया में न्यू साउथ वेल्स और क्वीन्सलैंड (१६°-३०° द०), फिजी (१५°-२१° द०), और हवाई टापुएँ (१८°-२१° उ०), यूरोप में स्पेन के दक्खिन पूर्व भाग में (३६°-३७° उ०)।

उपर्युक्त देशों में ही व्यापार की दृष्टि से ईख उपजती है। इन देशों के सिवा कुछ अन्य देशों में भी बागों में ईख उपजाई जाती है। ऐसे देशों में ईरान, अरब, मेसोपोटैमिया, केपकोलोनी, बरमुडा और बहामास हैं। मध्ययुग में सिसिली, माल्टा, साइप्रस और लेवान में भी ईख का व्यवसाय होता था। १७वीं सदी में फ्रांस के दक्खिनी भाग में ईख उपजाने की कोशिश हुई थी। सन् १८५१ ई० में इङ्गलैंड में जो एक बड़ी प्रदर्शनी हुई थी, उसमें इङ्गलैंड के 'सर्रे' स्थान में ईख उगाकर उससे चीनी तैयार कर दिखलाया गया था।

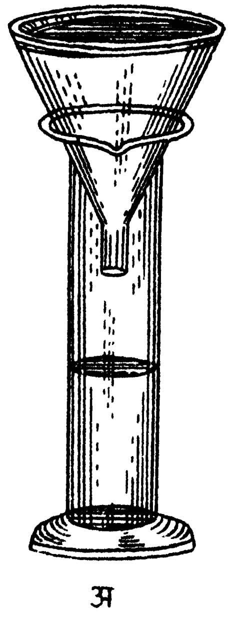
ईख उपजनेवाले स्थलों का ताप—ईख बहुत विभिन्न दशाओं में विभिन्न अक्ष और देशान्तर रेखाओं में उपजती है। कुछ लोग समझते हैं, भूमध्य रेखा पर या उस के पार्श्ववर्ती स्थानों में ही सबसे अधिक गरमी पड़ती है; पर बात ऐसी नहीं है। अनेक भूमध्यरेखा से कई अक्ष दूर स्थलों का ताप भूमध्य रेखा के ताप से ऊँचा होता है।

शून्य डिग्री देशान्तर पर महत्तम ताप रेखा भूमध्य रेखा से प्राय: २०° उत्तर में स्थित है। महत्तम ताप रेखा अफ्रिका से पूरब की ओर चलते हुए १३° उत्तर से होते हुए दक्खिन भारत होता हुआ दक्खिन की ओर घूमकर ८०° पूर्व में भूमध्य रेखा को पार करता है। १२०° पच्छिम तक यह दक्खिन में रहता है। यहाँ से यह एक व-एक घूमकर अमेरिका महाद्वीप में २५° उत्तर में हो जाता है। वहाँ से उस महाद्वीप को पार करते हुए यह दक्खिन-पूर्व होता हुआ मध्य और दक्खिन अमेरिका में जाता हुआ २° दक्खिन में महाद्वीप को छोड़ देता है। वहाँ से उत्तर-पूर्व दिशा में जाते हुए ग्रीनवीच के समानान्तर में २०° उत्तर में मिलता है। महत्तम ताप भारत, मध्य अमेरिका, उत्तर अस्ट्रेलिया और अफ्रिका में देखा जाता है। इन स्थानों का औसत वार्षिक ताप प्राय: ८५° फ० रहता है।

वर्षा-पात—ईख की खेती के लिए पर्याप्त वर्षापात होना चाहिए। उन्हीं स्थानों में ईख उपजती है, जहाँ का वार्षिक वर्षापात ४० से ८० इंच है। वर्षा नापने के लिए एक विशेष यंत्र का उपयोग होता है, जिसे वर्षा-मापक (rain-guage) कहते हैं। वर्षा-मापक में एक कीप (फ़नेल) 'क' होता है जिसमें पानी गिरकर एक बासन 'ख' में इकट्ठा होता है। यह बासन एक दूसरे काँच के जार 'ग' में रखा होता है। चौबीस घंटे में



चित्र १०—वर्षामापक, वर्षापानी इकट्ठा करने का उपकरण



चित्र ११—पानी नापने का काँच-पात्र

जितना पानी बासन में इकट्ठा होता है, उसको एक गिलास 'अ' में, जिस पर चिह्न बने होते हैं रखकर देखते हैं कि पानी किस चिह्न तक पहुँचा है। यदि वह २·५ चिह्न तक पहुँचा है, तो २४ घण्टे में ढाई इंच वर्षा हुई है। इस प्रकार प्रतिदिन हुई वर्षा के आँकड़ों को लिखते हुए उन्हें जोड़कर जितने दिन का मास होता है, उसे भाग देने पर जो अङ्क

प्राप्त होता है, वह प्रतिदिन की औसत वर्षा का अंक होता है। इसी प्रकार बारह महीने की औसत वर्षा का अंक निकालकर किसी स्थान का औसत वर्षापात निकालते हैं। इसी प्रकार कई बरसों की वर्षा का अंक निकाल कर साल का औसत वर्षापात का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किसी वर्ष अधिक वर्षा होती है और किसी वर्ष कम। सन् १९४९ में बनारस में ८० इंच वर्षा हुई थी। सन् १९५१ में केवल ४५ इंच। बनारस की औसत वर्षा पहले ४० इंच थी। अब यह ४५ इंच हो गई है। जहाँ वर्षा ८० इंच से ऊपर होती है, उसे उत्तम वर्षा का प्रदेश, जहाँ वर्षा ४० से ८० इंच होती है, उसे मध्यम वर्षा का प्रदेश और जहाँ वर्षा २० से ४० इंच होती है, उसे अल्प वर्षा का प्रदेश और जहाँ वर्षा २० इंच से कम होती है, उसे मरुस्थल तथा अर्ध मरुस्थल कहते हैं।

भारत का मौनसून—भारत में मई, जून और जुलाई में ताप सबसे ऊँचा होता है। जहाँ का ताप ऊँचा होता है, वहाँ की हवा का भार कम हो जाता है। जहाँ का ताप नीचा होता है, वहाँ की हवा का भार अधिक होता है। गर्मी में हवा का भार स्थल की अपेक्षा समुद्र पर अधिक होता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्थल की वायु हल्की होने के कारण ऊपर उठती है और उस वायु से रिक्त स्थान को भरने के लिए समुद्र की हवा स्थल की ओर बहती है। ऐसी हवा को व्यापारिक हवा (trade wind) कहते हैं। दक्षिण गोलार्द्ध की दक्खिन-पूर्वी हवा विषुवत् रेखा को पारकर सूरज के पीछे-पीछे उत्तर की ओर बहती है। यह हवा दक्खिनी पश्चिमी मानसून कहलाती है। यह भारत के लिए बड़ी उपयोगी है। इसी से देश में अच्छी और समयानुकूल वर्षा होती है। इसीसे फसलें अच्छी होती हैं। यदि यह वर्षा कम या अधिक हो अथवा ठीक समय पर न हो तो फसलें खराब हो जाती हैं।

वर्षा का होना अथवा न होना देश की हवाओं पर निर्भर करता है। हवा के भाप के ठण्ढा हो जाने पर ही वायु के जल-कण भाप से बदलकर जल में परिणत हो जाते हैं। जिन स्थानों में सूरज की किरणें लम्ब रूप से पड़ती हैं, वहीं की वायु ऊपर की ओर उठती और फिर ठण्ढी होकर वर्षा लाती है। ऐसी वर्षा को न्यौदवह वर्षा (Convectional rain) कहते हैं। पर्वतों से टकराकर भी वायु ऊपर चढ़ती और फिर ठण्ढी हो वर्षा लाती है। ऐसी वर्षा को उद्भूत वर्षा (Relief rain) कहते हैं। भारत में वर्षा मानसून हवाओं से होती है। इसे मौसिमी हवा भी कहते हैं। यह मौसिमी हवा दो प्रकार की होती है। एक दक्खिनी-पच्छिमी मानसून और दूसरा उत्तरी-पूर्वी मानसून।

दक्खिनी-पच्छिमी मानसून—२० मार्च से सूरज की सीधी किरणें विषुवत् रेखा से उत्तर की ओर लम्ब रूप से पड़ने लगती हैं। यहीं से गर्मी शुरू होती है और भारत का अधिकांश भाग गर्म हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वायु हल्की होकर ऊपर उठती है। उस स्थान को भरने के लिए समुद्र—अरबसागर और बंगाल की खाड़ी—से हवाएँ चलती हैं। इसी समय में दक्खिनी-गोलार्द्ध की व्यापारिक हवाएँ भूमध्य रेखा को पारकर दक्खिन-पच्छिम से भारत की ओर चलने लगती हैं। इसे ही दक्खिनी-पच्छिमी मानसून कहते हैं। ये हवाएँ सबसे पहले लंका और फिर दक्खिन-भारत से टकराकर दो प्रवाहों में विभक्त हो जाती हैं। एक बंगाल की खाड़ी का प्रवाह और दूसरा अरब सागर का प्रवाह।

बंगाल की खाड़ी का प्रवाह—बंगाल की खाड़ी के प्रवाह से भारत के अधिकांश भागों में वर्षा होती है। इस हवा में आर्द्रता अधिक होती है, क्योंकि हजारों मील हिन्द-महासागर पारकर यह हवा आती है। बंगाल की खाड़ी से होते हुए यह आसाम की पहाड़ियों, गारो, खासी और जैन्तिया से टकराती है। यह आराकान की हवा से मिलकर ऊपर उठती और वहाँ घोर वर्षा करती है। आसाम के चेरापूँजी में औसत ६०० इंच वर्षा होती है। इतनी वर्षा भारत के किसी अन्य स्थान में नहीं होती। हिमालय से टकराकर यह हवा पच्छिम की ओर मुड़कर बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में वर्षा लाती है।

बंगाल की खाड़ी के मानसून से समुद्र-किनारे पर वर्षा अधिक होती है। ज्यों-ज्यों यह अन्तर बढ़ता जाता है, हवा में भाप के कम होने से वर्षा कम होती जाती है। कलकत्ता में प्रायः ६४ इंच, पटना में ५० इंच, बनारस में ४५ इंच, और आगरा में २५ इंच वर्षा होती है। पर पहाड़ी ढाल पर वर्षा अधिक होती है। दार्जिलिंग में १०० इंच से अधिक और बरेली में ४२ इंच वर्षा होती है।

अरब सागर का प्रवाह—यह हवाएँ पच्छिमी घाट से रुकती हैं। यहाँ हवा ऊपर उठती और इससे ठण्ढी हो जाती है और वर्षा देती है। यह हवा भी समुद्र पर बहने के कारण बहुत आर्द्र हो जाती है और अधिकांश जल को पच्छिमी तट पर ही बरसा देती है। यहाँ की वर्षा १०० इंच से ऊपर होती है। पूरब की ओर आते-आते इसकी आर्द्रता बहुत कम हो जाती है और दक्खिनी पठार पर केवल २० इंच और मद्रास तट पर केवल २० इंच ही वर्षा होती है। नर्मदा और ताप्ती घाटियों में कोई ऐसी रुकावट न होने के कारण छोटानागपुर के पठार पर वर्षा प्रायः ६० इंच होती है; पर उत्तर की ओर जाते हुए कोई रुकावट न होने से हवा गर्म हो जाने के कारण सिंध के मैदान, थार के मरुस्थल और दक्खिन पंजाब में वर्षा कम होती है। यहाँ केवल अरावली पहाड़ियाँ ही हवाओं को रोकती हैं जिससे आबू पहाड़ के आस-पास वर्षा ६० इंच के लगभग हो जाती है। भारत के अधिकांश भागों की वर्षा दक्खिन-पच्छिमी मानसून के कारण होती है। केवल मद्रास तट पर उत्तरी-पूर्वी मानसून से कुछ वर्षा होती है।

उत्तरी-पूर्वी मानसून—सितम्बर से सूरज विषुवत् रेखा पर आ जाता है। अब इसकी किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में तिरछी पड़ती हैं। इससे स्थल भाग ठण्ढा होने लगता है। उष्ण कटिबन्ध में उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवाएँ फिर अपना जोर पकड़ने लगती है, मौसम बदलता है। बंगाल की खाड़ी में हवा का भार कम हो जाता है। इससे वहाँ भयंकर (cyclone) चक्रवात पैदा होता है। इससे घनघोर वर्षा होती और हवा मद्रास के उत्तरी तट से टकराकर हानि पहुँचाती है। घनघोर वर्षा के साथ-साथ समुद्र में लहरें उठतीं और विभिन्न दिशाओं में जाती हुई, कभी दक्खिन की ओर जाती, कभी गंगा की घाटी की ओर जाती और कभी बरमा की ओर जाती है। उत्तरी पूर्वी हवा से पूर्वी तट के मैदानों में वर्षा होती है। कुछ दिनों के बाद इस तट के दक्खिन भाग में और लंका में घोर वर्षा होती है। पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में भी इस हवा से कुछ वर्षा हो जाती है। भारत में औसत वर्षा प्रायः ६५ इंच होती है। जाड़े के दिनों में प्रायः एक इंच, गर्मी में प्रायः ४६ इंच, दक्खिनी-पच्छिमी मानसून से २४.७ इंच और उत्तरी पूर्वी मानसून से प्रायः ४.१ इंच वर्षा होती है।

भारत की तरह अन्य ईख उपजानेवाले देशों में भी मानसून होते हैं। भारत की भाँति ही जावा और आस्ट्रेलिया में मानसून आते हैं। भूमध्य रेखा के उत्तर प्रदेशों में मई से अक्टूबर तक उत्तरी-पच्छिमी मानसून बहती है। और इसमें घोर वर्षा होती है। नवम्बर से अप्रिल तक दक्खिन पूर्वी मानसून बहती और समय सूखा रहता है। भारत में तीन प्रमुख ऋतुएँ होती हैं। शीतकाल के बाद गर्मी आती और गर्मी के बाद वर्षा ऋतु आती है। जावा टापुओं में औसत वर्षा प्राय: ८० इंच होती है। वेस्ट इन्डीज और क्यूब में दो ही मौसम होते हैं। सूखा और बरसात। मई से नवम्बर तक बरसात रहती और दिसम्बर से अप्रिल तक सूखा। वर्षा वहाँ ४० से ७८ इंच होती है। हवाई और मौरिशस टापुओं में औसत वर्षा प्राय: १३६ इंच होती है। फिलिपाइन में औसत वर्षा ७४ इंच।

वर्षा का अभाव—भारत में कभी-कभी वर्षा का बिलकुल अभाव हो जाता है। ऐसी दशा में देश में अकाल पड़ जाता है और फसलें नष्ट हो जाती हैं। ईख उपजनेवाले टापुओं में भी कभी-कभी वर्षा की कमी हो जाती है। इससे ईख की पैदावार कम हो जाती और चीनी का व्यापार गिर जाता है। जिन स्थलों में कृत्रिम सिंचाई का प्रबन्ध है, वहाँ वर्षा के अभाव से फसलों की पैदावार में कोई कमी नहीं होती।

कभी-कभी घोर वर्षा से भी ईख की फसल नष्ट हो जाती है। दिन में १५ इंच तक वर्षा भारत में हुई है। फिजी में एक बार १३ घन्टे में ४१ इंच वर्षा हुई थी। कभी-कभी वर्षा बिना रुकावट के लगातार होती रहती है। पर ऐसी वर्षा से उतनी हानि नहीं होती जितनी सूखे से होती है।

वर्षा-पात और ऊँचाई—स्थल की ऊँचाई और वर्षा से बड़ा घना सम्बन्ध है। साधारणतया ऊँचाई से वर्षा का आधिक्य होता है। जावा के विभिन्न ऊँचाईवाले स्थलों और वर्षा-पात का निम्नलिखित अंक प्राप्त हुए हैं—

मिल में समुद्र तट से दूरी मील में	४	७	११	२१	२७	३६
ऊँचाई फीट में	२३	४६	११६	३०४	४२६	८७४
वर्षा इंच में	७१	७१	६६	१२०	१४६	१७४

आर्द्रता—जलपात और आर्द्रता से घना सम्बन्ध है। जहाँ अधिक वर्षा होती है, वहाँ की जल-वायु अधिक आर्द्र होती है। समुद्र तट की निकटता के कारण से भी आर्द्रता में विभिन्नता होती है। आर्द्रता और सूरज-प्रकाश का ईख की उपज से घना सम्बन्ध है। ईख की उपज के लिए सूरज का प्रकाश पर्याप्त होना चाहिए। इसकी अल्पतम सीमा ४५ प्रतिशत है। इसका आशय यह है कि जितना समय सूरज आकाश में रहता है, उस समय का ४५ प्रतिशत प्रकाश पौधे पर पड़ना चाहिए। किसी-किसी स्थान में तो सूरज-प्रकाश ८० प्रतिशत तक पहुँच जाता है।

वायु—भारत में वायु का बहना नियमित रूप से होता है। इसका वेग साधारणतया १० से २० मील प्रति घण्टा होता है। यदि वेग ३० मील प्रति घन्टा हो जाय तो इससे चक्रवात (तूफान) पैदा होता है और उससे पर्याप्त क्षति होती है। ऐसे चक्रवात भारत में कभी-कभी आते हैं। यदि चक्रवात का वेग ६० से ७० मील प्रति घण्टा हो तो इससे भयानक विपत्ति आ जाती है। अनेक पेड़ उखड़ जाते हैं, मकान की छतें उड़

जाती हैं, तार और बिजली के खम्भे उखड़ जाते अथवा गिर जाते हैं। ऐसे चक्रवात कभी-कभी ही आते हैं। इनसे फसलों की भी बड़ी हानि होती है।

ईख पर जलवायु का प्रभाव—ईख के दैहिक व्यापार पर जल-वायु का जो प्रभाव पड़ता है, वह बड़ा जटिल है। जलवायु से ईख की वर्द्धन गति, परिपक्व होने के समय और ईख के संघटन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। भूमध्य रेखावाले स्थलों के ताप में इतना कम भेद होता है कि वर्द्धनगति का अन्तर जानना कठिन होता है। भूमध्य रेखा से दूर स्थलों की जल-वायु ठंढी होती है और उससे उसपर ठंढक का प्रभाव पड़ता है। जाड़े के दिनों में पर्व की लम्बाई उष्ण दिनों की ईख के पर्व की लम्बाई से प्रायः सवाई या डेढ़ा बड़ी होती है। स्तम्भ का व्यास भी कम होता है। ईख के पकने का समय ताप पर निर्भर करता है। कुछ स्थानों में दिसम्बर में बोई बुरबन ईख में सितम्बर में फूल लगने लगते हैं। वाल्टर (Walter) ने देखा है कि मौरिशस में समुद्र तल पर बोई ईखें १३ महीने में पकती हैं ; पर ११०० ऊँचे तल पर बोई ईखें २१ महीने में पकती हैं।

ईख के संघटन पर ताप का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिन स्थानों का ताप-एक-सा ऊँचा रहता और ठंढ नहीं पड़ती है, वहाँ की ईखों में चीनी कम होती और विपर्यस्त शर्करा अधिक रहती है। वहाँ की ईख अविराम वृद्धि में रहती है और कारखाने में पहुँचते समय अधपकी, पकी और अतिपकी दशाओं में पाई जाती है। समधिक उष्ण जल-वायु में नियमित काल की वृद्धि से ऐसी ईख प्राप्त होती है जिसे परिपक्व होने का पूरा समय नहीं मिलता। ऐसी ईखों के रस में ठोस अंश की और चीनी की मात्रा कम होती है। रस कम शुद्ध होता है और विपर्यस्त-शर्करा की मात्रा अधिक रहती है। जहाँ अधिक समय में ईख परिपक्व होती है, वहाँ ईख का रस अधिक शुद्ध और मीठा होता है और रस में चीनी अधिक रहती है। ऐसी स्थिति उन्हीं स्थलों में प्राप्त होती है जो उष्ण प्रदेशों के सन्निकट में हैं। हवाई टापू और पेरू में ऐसी स्थिति प्राप्त होती है। यदि इन स्थलों की ईखों में पानी रोक दिया जाय तो महत्तम मीठा और शुद्धतम रस प्राप्त होता है।

ईख के संघटन पर ताप का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका वर्णन मिकौड (Mecaud) ने किया है। यह आँकड़े कोस्टारिका में जिसकी अक्षरेखा ८°-११° उ० है, पकी लाल रंग की ईख से किये विश्लेषण से प्राप्त हैं।

ईख के संघटन पर ताप का प्रभाव (मिकौड)

ऊँचाई फुट	ताप	ईख में		रस में		
	फ०	शर्करा प्रतिशत	जल प्रतिशत	शर्करा प्रतिशत	जल प्रतिशत	शुद्धता
४६३७	६२'५	१५'६	७२'४३	१८'७६	२२'०८	८:'९९
५३७९	६४'५	१५'५९	७३.२४	१८'७१	२२'०८	८९.९८
४५४७	६६'०	१६'३८	७१'९६	१९'८४	२२'२१	८९'३६
४१९५	६८'०	१६'४५	७१'३४	२०'११	२१'२१	९४'८३
३६४१	७०'०	१६'६३	७१'२९	२०'३२	२२'१०	९१'९५
२८४४	७२'५	१७'००	७१'३४	२०'४२	२४'६०	८२'९८
२३६१	७४'५	१७'३८	७३'९४	२०'५०	२१'९८	९३'२९
११४८	७८'०	१६'८०	७४'००	१९'८८	२०'९८	९४'७७
७१८	७९'०	१६'०६	७४'६०	१८'९२	२०'८६	९०'६८
३३	८०'५	१४'४५	७५'३८	१७'०८	१८'६०	९१'८५

ईख पर वर्षापात का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि वर्षा का बंटन नियमित रूप से हो तो उससे अधिक लाभ होता है। यदि २४ घन्टे में १२ इंच वर्षा हो तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना दो-दो इंच करके ६ बार हफ्ते-हफ्ते पानी बरसने से होता है। रवसन (Rawson) का मत है कि यदि विगत सालभर के वर्षापात का ज्ञान हो तो ईख की पैदावार ऐसी कूती जा सकती है कि उसमें साढ़े छः प्रतिशत से अधिक की गलती न हो। मैक्सवेल हौल का मत है कि यदि वर्षा ५६ और ७६ इंच हो तो फसल का अनुपात फी एकड़ में क्रमशः १४'४१ और १५'५६ होगा।

ऐसा समझा जाता है कि प्रायः स्थायी वर्षापात के स्थलों की ईखों में चीनी की मात्रा कम रहती है। फसल काटने के समय यदि घोर वर्षा हो तो वर्षा होने के अनेक दिनों तक रस में पानी की मात्रा अधिक रहती है। यदि रस की शुद्धता में कमी न हो तो चीनी की मात्रा में कमी नहीं होती, केवल रस में तनुता (dilution) आ जाती है।

ईख पर सूखा का असर यह होता है कि ईख की पैदावार कम हो जाती है। ऐसी ईख में तन्तु की मात्रा प्रतिशत ऊँची रहती है; क्योंकि पर्व की लम्बाई कम होती है और वर्धित उत्स्वेदन के कारण जल का उद्वाष्पन अधिक होता है।

आर्द्रता—ईख पर आर्द्रता का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। ईख के लिए सब से अनुकूल जलवायु उष्ण होती है। उष्णता के साथ-साथ बीच-बीच में सूखा मौसम हो और बीच-बीच में समुद्री वायु मिले तो और भी अच्छा होता है। समुद्र तटवाले टापुओं में ईख की पैदावार बड़ी अच्छी होती है। इससे पता लगता है कि ईख की उपज के लिए नमकवाली समुद्री वायु अधिक अनुकूल होती है। भारत और पूर्वी एशिया में वहाँ ही ईख अच्छी पैदा होती है, जहाँ की जलवायु उष्ण और आर्द्र है और बीच-बीच में सूखी गरमी मिलती है।

ईख के संघटन पर सूर्य-प्रकाश का बहुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि सूर्य-प्रकाश द्वारा ही पौधों में वह परिवर्तन होता है जिसे हम प्रकाश-संश्लेषण अथवा भा-संश्लेषण कहते हैं।

वायु का सबसे अधिक प्रभाव मिट्टी के पानी के अंश पर पड़ता है। वायु से मिट्टी का पानी उड़ जाता है। मिट्टी की तह पर की वायु हटते रहने के कारण उद्वाष्पन की गति तेज होती है और पानी अधिक उड़ता है। कौन वायु बहती है, इसका भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि ऐसी वायु बहती हो जो समुद्र से आती है तो उससे उद्वाष्पन कम होता है; क्योंकि समुद्री वायु में आर्द्रता अधिक रहती है। बिहार और उत्तर प्रदेश में पूर्वी हवा में आर्द्रता अधिक रहती है और उससे मिट्टी इतनी जल्दी नहीं सूखती जितनी पछिवा हवा से सूखती है। पछिवा हवा में आर्द्रता कम रहती है।

ईख के बोने का समय—ईख के बोने और काटने का समय बहुत कुछ वर्षा और ताप पर निर्भर करता है। ईख की कटाई तभी होती है जब ईख पक जाती है। यह उसी समय होता है जब मौसम सूखा हो। भारत में नवम्बर से ईख की कटाई शुरू होती है। ईख की बोआई फरवरी या मार्च में होती है। साधारणतया जाड़े की वर्षा इस समय कुछ होती है। वर्षा के बाद शीघ्र ही बोआई होती है। भिन्न-भिन्न देशों में काटने का समय भिन्न-भिन्न होता है। कुछ देशों के ईख काटने का समय यहाँ दिया जाता है—

भारत	नवम्बर से अप्रिल
जावा	मई से नवम्बर
मौरिशस	अगस्त से दिसम्बर
हवाई टापू	दिसम्बर सेसितम्बर
क्यूबा	दिसम्बर से जून
पेरू	अक्टूबर से फरवरी
फिजी	जून से नवम्बर
फिलिपाईन	दिसम्बर से मार्च
ल्युसियाना	अक्टूबर से जनवरी
ब्रेज़ील	अक्टूबर से फरवरी
इजिप्ट	दिसम्बर से मार्च
मेक्सिको	दिसम्बर से मई
स्पेन	मार्च से मई

४ से ६ महीने तक फ़सल की कटाई होती है। प्रारम्भ में जो ईख काटी जाती है, वह पकी नहीं होती और उसमें चीनी की मात्रा कम होती है। धीरे-धीरे चीनी की मात्रा बढ़ती है और काटना शुरू होने के तीसरे और चौथे महीने में चीनी की मात्रा महत्तम होती है। इसके बाद चीनी की मात्रा कम होनी शुरू होती है और तब ईख अतिपक्व हो जाती है। भारत में भिन्न-भिन्न ईखों में भिन्न-भिन्न मासों में चीनी की मात्रा निम्न प्रकार की रहती है—

ईख	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रिल
को० ४५३	१०·४५	१२·१८	१३·३२	११·८८	१४·००	१३·६१
को० ३१३	१२ ८०	११·८४	१४ ७२	१५·२०	१४ ६६	१४ ३६
को० ५१३	१२·४६	१३·११	१४·३१	१४·६०	१४ ५०	१४ १२
बी० ओ० ११	१३·१२	१३·६८	१४ ६८	१५ ००	१५·२५	१४·४२
बी० ओ० २४	११·८४	१३·००	१४·१२	१५·०७	१४·६२	१३·५५

ईख की विभिन्नता और जलवायु—अधिकांश किस्म के ईखों की उष्ण स्थलों में ही महत्तम उपज होती है। कुछ किस्म की ईखें तो उष्ण स्थलों से हटा लेने पर बिलकुल पनपती नहीं। कुछ किस्म की ईखें हैं जो उत्तर भारत के ठंढे स्थलों में ही उपजती और उष्ण स्थलों में उनकी आवश्यक वृद्धि नहीं होती है।

लाल और नीलारुण किस्म की ईखें ठण्डे स्थलों में अच्छी उगती हैं। राजीव (Striped) ईख कुछ स्थलों में धीरे-धीरे नीलारुण ईख में परिणत होती है। इसका कारण यह समझा जाता है कि नीलारुण ईख में ताप-शोषण की क्षमता अधिक होती है।

कुछ असित (dark) रंग की ईख ठण्डे स्थलों के लिए अधिक उपयुक्त पाई गई है। दक्खिन अमेरिका के कुछ कम उष्ण स्थलों में इसी किस्म की ईख अधिकता से उपजती हैं। जो ईख ठण्डे स्थलों में उपजती है, ऐसी बात नहीं है कि वह उष्ण स्थलों में न उपजे। अनेक ऐसी ईखें उष्ण स्थलों में भी सफलता से उपजती हैं।

यूबा ईख समधिक उष्ण स्थलों, नेटाल और मेडीरा में सफलता से उपजती है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि हर स्थान के लिए एक या दूसरे किस्म की ईख होती है, जो सबसे अधिक उपजती है।

मिट्टी

मिट्टी—चट्टानों के बिखरने या टूटने-फूटने से मिट्टी बनती है। इस कारण मिट्टी की प्रकृति चट्टानों की प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि चट्टान बलुई है तो उससे बनी मिट्टी के कण बड़े और दरदरे होते हैं। यदि चट्टान बारीक कणवाले हैं तो उससे चिकनी महीन और लसदार मिट्टी प्राप्त होती है। मिट्टी बनने की क्रिया बड़ी धीमी गति से, पर बराबर होती रहती है। मिट्टी बनाने का काम मनुष्य की शक्ति से बाहर है। अनेक युगों, लाखों और करोड़ों वर्षों से आज की मिट्टी बनती आ रही है। आज भी यह काम नियमित रूप से हो रहा है। मिट्टी का बनना प्राकृतिक साधनों से होता है। पानी, हवा तथा ऋतुओं का मिट्टी बनने में पर्याप्त हाथ है।

चट्टान—चट्टानों की प्रकृति से मिट्टी दो प्रकार की मानी गई है। एक वह मिट्टी है जो अम्लिक चट्टानों से बनती है। दूसरी वह मिट्टी है जो भास्मिक चट्टानों से प्राप्त होती है। अम्लिक चट्टानों में सिलिका (बालू) की मात्रा ६५ से ७५ प्रतिशत रहती और भास्मिक चट्टानों में ४० से ५५ प्रतिशत। पर इन दोनों प्रकार के चट्टानों के विभाजन की कोई स्पष्ट रेखा नहीं है। एक वर्ग धीरे-धीरे दूसरे वर्ग में प्रविष्ट करता है। मेरिल (Merril) ने चट्टानों को तीन वर्गों में विभक्त किया है।

		सिलिका पतिशत
अम्लिक वर्ग	ग्रेनाइट (granite)	७८-६३
	लिपेराइट (leparite)	७६-६८
	ओबसिडीयन (obsidian)	८३-७१
मध्यम वर्ग	सियेनाइट (Syenite)	७२-५५
	ट्रेकाइट (trachyte)	६४-६०
	हयालोट्रेकाइट (hyalotrachyte)	६४-६०
	अन्डेसाइट (andesite)	६७-५५
भास्मिक वर्ग	डायबेस (diabase)	५४-४८
	बेसाल्ट (basalt)	५१-४१
	पेरिडेटाइट (peridetite)	४३-३४

अम्लिक मिट्टी का निर्माण भास्मिक मिट्टी के निर्माण-काल से बहुत प्राचीन है। अम्लिक मिट्टी में पोटाश की मात्रा अधिक रहती है और भास्मिक मिट्टी में लोहे और चूने की मात्रा अधिक रहती है।

मिट्टी के निर्माण में जल का प्रभाव—जब पानी चट्टानों पर बरसता है तब चट्टानें भींगतीं और उससे मुलायम हो जाती हैं। वर्षा के पानी में वायु से कार्बन डाय क्साइड आ जाता है। चट्टानों पर कार्बन डायक्साइड की धीरे-धीरे क्रिया होती है। चट्टानें मुलायम हो जातीं और ऊपर का स्तर छोटे-छोटे कणों में अलग हो जाता है।

ऊँची चट्टानों पर बर्फ भी जमती है। बर्फ के जमने से उसका दबाव चट्टानों पर पड़ता है, क्योंकि इस क्रिया में जल का न्यून आयतन बर्फ के अधिक आयतन में परिणत होता है। इस दबाव से चट्टानें चिटकतीं और उनमें दरारें पड़ जाती हैं। पानी के ऊँचे

से नीचे गिरने पर भी चोट से चट्टानें टूटती हैं। पानी के बहाव से पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े परस्पर रगड़ते हुए पानी के साथ बहते हैं और इससे क्रमशः छोटे होते जाते हैं। जितनी अधिक दूर वे पानी से बहते हैं, उतने ही सूक्ष्म होते जाते हैं। यही कारण है कि गंगा और सरयू की बालू बहुत महीन होती है और सोन तथा फल्गु की बालू बहुत मोटी होती है।

वायु का प्रभाव—वायु की क्रियाएँ चट्टानों पर निरन्तर होती रहती हैं। वायु में एक गैस ऑक्सिजन रहती है। यह गैस बड़ी क्रियाशील होती है और चट्टानों को आक्रान्त करती हैं। इससे चट्टानों की ऊपरी तहें आक्रान्त होने के कारण भङ्गुर हो जाती हैं और चट्टानों के छोटे-छोटे कण चट्टानों से अलग होकर गिरते और पानी से बहाकर दूर ले जाये जाकर मिट्टी का रूप धारण कर लेते हैं। हवा से मिट्टी के बारीक टुकड़े भी उड़ा कर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाये जाते हैं। इन टुकड़ों, पत्थरों और काटों के गिरने से भी चट्टानों पर चोटें पड़ती हैं और उससे वे टूटते रहते और कुछ कण अलग होते रहते हैं।

ऋतुओं का प्रभाव—साल में गर्मी और सर्दी बारी-बारी से आती रहती है। गर्मी से सब चीजें फैलती या बड़ी होती और सर्दी से सिकुड़ती या छोटी होती हैं। चट्टानें भी गर्मी से बढ़ती और सर्दी से सिकुड़ती हैं। इस घटती-बढ़ती के कारण चट्टानें कमजोर हो जाती हैं और धीरे-धीरे छोटे-छोटे कणों में टूट जाती हैं।

वनस्पति का प्रभाव—पौधों से भी मिट्टी के बनने में सहायता मिलती है। बीजों को जब उपयुक्त मिट्टी और आवश्यक जल मिल जाता है, तब वे उगते हैं और उनकी जड़ें मिट्टी में फैलती हैं। जड़ों के फैलने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। ये जड़ें चट्टानों को तोड़-फोड़ कर स्थान बना लेती हैं। यह साधारण अनुभव है कि पीपल के पेड़ की जड़ें पक्की दीवारों को तोड़कर स्थान बना लेती हैं। ऐसा ही कार्य पहाड़ों पर भी वृक्षों द्वारा होता है और चट्टानों के टूटने से मिट्टी बनती रहती है। लोई या फंगस जाति के कुछ पौधे चट्टानों के मुलायम भागों को भी अपनी जड़ों से तोड़ते हैं। इस प्रकार चट्टानों के तोड़ने-फोड़ने में पौधों का प्रमुख हाथ है।

बिजली का प्रभाव—बादलों के कारण हवा में बिजली की गरज और चमक होती है। यह बिजली कभी-कभी पृथ्वी पर भी गिरती है और गिरकर चोटें करती और चट्टानों को चूर-चूर कर देती है।

हर स्थान की मिट्टी की परत (स्तर) दो प्रकार की होती हैं। एक तो ऊपरी तह की परत होती है। इस ऊपरी तह की मिट्‌टी को हम मृदा कहेंगे। अंग्रेजी में इसे सायल (Soil) कहते हैं। साधारण भाषा में मृदा का अर्थ मिट्टी होता है, पर इस ग्रन्थ में हम मृदा शब्द उस मिट्टी के लिए ही प्रयुक्त करेंगे जो मिट्टी धरती के ऊपरी तह पर होती है और जिस अर्थ में अंग्रेजी का 'सायल' शब्द उपयुक्त होता है। मृदा के नीचे एक दूसरा स्तर होता है। इस स्तर को हम उन्मृदा कहेंगे। अंग्रेजी में इस नीचले स्तर की मिट्टी को 'सब सायल' (Subsoil) कहते हैं। मृदा और उन्मृदा की प्रकृति में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। हवा, पानी, खाद और घास-पातों के सड़ने से और जोताई और गोड़ाई से मृदा खेती के योग्य होती है। उन्मृदा में उपर्युक्त पदार्थों के अभाव से वे खेती

के योग्य नहीं होती। मृदा का विश्लेषण बहुत प्रचुरता से हुआ है। भारतीय, अमेरिकी और हवाई टापू की मृदा के विश्लेषण से निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त होते हैं—

पादार्थ	भारतीय	अमेरिकी	हवाई
समस्त सिलिका	७७.६३	८५.५२	३२.६३
विलेय सिलिका	०.३५	६.४०	१७.५६
पोटाश	०.६४	०.४०	०.३४
सोडा	०.०५	०.२७	०.३५
चूना	१.०२	०.७५	१.३०
मैगनीशिया	—	०.६८	१.१८
मैगनीज़ ऑक्साइड	—	०.१२	०.५०
लोहा ऑक्साइड	२.०८	३.८१	२८.०२
अलुमिना	२.५०	५.१५	२०.७२
फ़ास्फ़रिक अम्ल	०.०२५	०.१६	०.३५
गन्धकाम्ल	—	०.०४	०.३२
नाइट्रोजन	०.०४७	०.१८	०.३३

मृदा की भौतिक स्थिति के कारण वैज्ञानिकों ने मृदा को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है। वे वर्ग हैं—१. कंकरीली, २. रेतीली (बलुआर), ३. दुमट और ४. मटियार। यह विभाजन मृदा के विस्तार की दृष्टि से होने से बिलकुल अनियमित है और एक वर्ग का सरलता से दूसरे वर्ग में समावेश हो जाता है। इङ्गलैण्ड में मृदा का विभेद निम्नलिखित ढ़ंग से करते हैं—

स्थूल रेतीली मृदा—इसके कण के व्यास ०.०५ और ०.०२ इंच के बीच होते हैं।

मध्यम रेतीली मृदा—इसके कण के व्यास ०.०२ और ०.०१ इंच के बीच होते हैं।

सूक्ष्म रेतीली मृदा—इसके कण के व्यास ०.०१ और ०.००४ के बीच होते हैं।

अति सूक्ष्म रेतीली मृदा—इसके कण के व्यास ०.००४ और ०.००२ के बीच होते हैं।

दुमट मृदा—इसके कण के व्यास ०.००२ और ०.०००२ के बीच होते हैं।

मटियार मृदा—इसके कण के व्यास ०.०००२ इंच से छोटे होते हैं।

एक तीसरी रीति से भी मृदा का वर्गीकरण किया गया है। इस रीति में मृदा को दो वर्गों में विभक्त करते हैं। एक वर्ग को अवसाद मृदा (Sedimentary soil) और दूसरे वर्ग को पर्यु ढ़ (Transported) मृदा कहते हैं। जो मृदा उसी स्थान की चट्टानों से ही बनी होती है, उसे अवसाद मृदा कहते हैं। अवसाद मृदा का संघटन उस स्थान की चट्टानों के संघटन का द्योतक है। पर्यु ढ़ मृदा जिन चट्टानों से बनी होती है, उनसे दूर हवा या पानी अथवा हिमनदी द्वारा दूर बहाकर लाई जाकर इकट्ठी होती है। इनमें जो पर्यु ढ़ मृदा धीरे-धीरे ले आकर किसी पर्वत के ढाल पर इकट्ठी होती है, उसे समूढ़ मृदा (Colluvial soil) कहते हैं और जो पर्यु ढ़ मृदा नदी द्वारा बहाकर

दूर मैदान में किसी रुकावट के कारण जमती है, उसे जलोढ़ (alluvial) मृदा कहते हैं। कुछ लोगों ने मृदा को शुष्क मृदा (arid soil) और अक्लिन्न मृदा (humid soil) में विभक्त किया है। साधारणतया उष्ण प्रदेशों की मिट्टी शुष्क मृदा और मन्दताप प्रदेशों की मिट्टी अक्लिन्न मृदा कही जाती है।

ये सबही विभाजन ऐसे हैं कि एक वर्ग दूसरे वर्ग में इतनी सूक्ष्मता से प्रविष्ट करता है कि कुछ मृदा के लिए यह कहना कठिन हो जाता है कि वह किस वर्ग का है। फसल उगाने की दृष्टि से उपर्युक्त चार वर्गों—(१) कंकरीली, (२) रेतीली, (३) दुमट और मटियार के अतिरिक्त तीन वर्ग और जोड़े जाते हैं। ये तीन वर्ग हैं—(१) कालीमृदा, (२) उसरीली मृदा और (३) उपजाऊ मृदा।

कंकरीली मृदा—ऐसी मिट्टी बिहार के छोटानागपुर, मध्य भारत, दक्खिनी पठार और उत्तर प्रदेशों में पाई जाती है। इस मिट्टी में कंकड़ और पत्थर मिले रहते हैं। इसका धरातल ऊँचा-नीचा होता है। इस कारण ऐसी धरती की सींचाई का प्रबन्ध ठीक नहीं हो सकता। ऐसी धरती से तीन काम होते हैं—(१) घास खूब उपजती है। पशुओं के लिए वहाँ चरागाह अच्छा होता है। इस कारण पशु-पालन का व्यवसाय सरलता से किया जा सकता है। (२) ऐसी भूमि में पेड़ सरलता से उगते हैं। इसमें जंगल होते हैं। इन जंगलों में उपयोगी लकड़ियाँ उपजाई जा सकती हैं। इन पेड़ो पर लाह के कीड़े भी उपजाकर उनसे लाह प्राप्त किया जा सकता है। (३) ऐसी भूमि से मकान बनाने के पत्थर निकाले जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश के चुनार और बिहार के सासाराम, पलामू इत्यादि जिलों में ऐसे पत्थर निकाले जाते हैं।

रेतीली मृदा—रेतीली मिट्टी के कण बड़े-बड़े और खुरखुरे होते हैं। इनमें चिपक नहीं होती। इससे ऐसी मिट्टी में पानी नहीं टिकता ; पर ऐसी मिट्टी की जोताई और गोड़ाई सरलता से हो जाती है। पानी धारण करने की क्षमता के अभाव से इनमें फसलें उसी समय तक उपज सकती हैं जब तक बरसात रहे। ऐसी भूमि नदियों की तली और समुद्र-तट पर पाई जाती है। इसका रंग प्रायः चमकीला होता है। कहीं-कहीं अन्य रंगों की भी होती है। इसके अन्दर वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से होता है; पर सरदी और गर्मी का प्रभाव तत्काल पड़ता है। इससे ऐसे खेतों के पौधे गर्मी में जल्द झुलस जाते हैं। पूर्णतया रेतीली भूमि खेती के लिए उपर्युक्त नहीं होती, पर ऐसी भूमि में तरबूज, खरबूज, ककड़ी सरीखी फसलें अच्छी होती हैं।

रेतीली भूमि के सुधारने के प्रयत्न हुए हैं। कुछ सीमा तक इनका सुधार हो सकता है। इनके सुधार के लिए निम्नलिखित रीतियाँ उपयुक्त हो सकती हैं -

१. मिट्टी में चूना मिलाना। २. मिट्टी में गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाना। ३. मिट्टी में चिकनी मिट्टी मिलाना। ४. खेत में पानी भरकर जोताई करना ताकि उसपर आस-पास की मिट्टी आकर जम जाय।

दुमट—दुमट में आधी चिकनी और आधी रेतीली मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी सब प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त है। इसमें हर प्रकार की फसलें पैदा की जा सकती हैं। ईख के लिए तो यह सर्वथा उपयुक्त है। ऐसी मिट्टी में पानी सोखता और वायु सरलता से प्रविष्ट करती है। ऐसी मिट्टी की जोताई-गोड़ाई सरलता से होती है। दुमट मिट्टी दो प्रकार

की होती है। एक कड़ी या भारी दुमट, जिसमें चिकनी मिट्टी ६० से ७० प्रतिशत रहती है और शेष ४० से ३० प्रतिशत बालू रहती है। दूसरी हल्की दुमट, जिसमें चिकनी मिट्टी ३० से ४० प्रतिशत रहती है।

काली मृदा—काली मिट्टी भारत के कुछ ही स्थलों—बंबई, मध्यप्रदेश और छोटा नागपुर—के कुछ भागों में पाई जाती है। ऐसी मिट्टी कोयला आदि खनिज पदार्थों से मिले रहने से बनती है। कुछ लोगों का मत है कि ज्वालामुखी पहाड़ों के उद्‌गार के कारण मिट्टी काली होती है। यह मिट्टी चिकनी मिट्टी से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। चिकनी मिट्टी के ही गुण इस मिट्टी में होते हैं। ऐसी मिट्टी में दरारें फटती हैं और मिट्टी कठोर होती है। भींगने पर बड़ी लसदार हो जाती है और इसमें हल चलाने में कठिनाई होती है। ऐसी मिट्टी में पानी सोख जाता है और नमी नीचे बनी रहती है। इसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी मिट्टी उपजाऊ होती है और इसमें ईख अच्छी उपजती है।

ऊसरीली मिट्टी—यह मिट्टी कुछ अंश तक चिकनी मिट्टी से मिलती जुलती है। केवल भौतिक गुणों में कुछ भिन्न होती है। ऐसी मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट, सोडियम सल्फेट और सोडियम क्लोराइड विशेष रूप से पाये जाते हैं। इन लवणों के कारण ही मिट्टी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है। ऐसी भूमि को उपजाऊ बनाने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। यदि ऐसी मिट्टी में छोआ डालकर जोत दिया जाय तो इसमें फसलें उपज सकती हैं। ऐसी भूमि सुधारने के जो उपाय बताये गये हैं, उनमें निम्नलिखित रीतियाँ उल्लेखनीय हैं—

१. जमीन की गहरी जोताई कर नमकवाले पानी को बाहर निकाल देना।

२ ऐसी भूमि में ऐसी फसल बोना जिसकी जड़ गहरे तक जाती है, जैसे अरहर, चना इत्यादि।

३. मिट्टी में हवा का प्रवेश कराने के लिए कंकड़-पत्थर इत्यादि डालना।

४. भूमि के ऊपर दो-तीन इंच मोटी बालू की तह बिछाना।

उपजाऊ मिट्टी—ऐसी मिट्टी में बालू के सात भाग, चिकनी मिट्टी के तीन भाग, चूना के एक भाग और खाद के एक भाग रहते हैं। ऐसी मिट्टी अच्छी उपजाऊ होती है। इसमें ईख अच्छी उपजती है।

मिट्टी का विश्लेषण—ऐसा समझा जाता था कि मिट्टी के विश्लेषण से खेत उपजाऊ है अथवा नहीं इसका बहुत-कुछ पता लग सकता है; पर अब मालूम हुआ है कि खेत के उपजाऊ होने के लिए अनेक अन्य बातों का ज्ञान, मिट्टी की भौतिक अवस्था, पानी का बहाव, जोताई, बैक्टीरिया की कार्यशीलता और अन्य पदार्थों की उपस्थिति का ज्ञान अत्यावश्यक है। इन बातों के ज्ञान के बिना यह कहना कठिन है कि कोई मिट्टी उपजाऊ है अथवा नहीं। मिट्टी में लोहे की उपस्थिति, नमक की उपस्थिति, अमोनियम सल्फेट की उपस्थिति से भी मिट्टी की प्रकृति में भेद हो जाता है। अमोनियम सल्फेट के कारण मिट्टी की अम्लता बढ़ जाती है। सोडियम नाइट्रेट के कारण मिट्टी की भास्मिकता बढ़ जाती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं जिनका प्रभाव जमीन की उपजाऊ

शक्ति पर पड़ता है। मिट्टी के विश्लेषण से मिट्टी की प्रकृति का ज्ञान होता है। मिट्टी के नमूने को खेतों से रसायनशाला में लाकर उसका विश्लेषण करते हैं। ज्योंही मिट्टी रसायनशाला में आती है, उसे वायु में सूखने के लिए फैला देते हैं। यदि मिट्टी हल्की है तो वह दो से तीन दिनों में सूख जाती है और यदि भारी है तो सूखने में चार से छः दिन लग जाते हैं।

अब मिट्टी का भौतिक और रासायनिक दोनों प्रकार के अवयवों के लिए परीक्षण करते हैं। भौतिक विश्लेषण अन्तरराष्ट्रीय सोडा रीति से किया जाता है और रासायनिक विश्लेषण राइट (१६३६) रीति से किया जाता है। मिट्टी का सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से निष्कर्षण (extract) निकालते हैं। विलयन में फास्फेट, पोटैसियम, कैलसियम, लोहा और अलुमिनियम के अंश आ जाते हैं। अविलेय सिलीका और सिलिकेट अविलेय रह जाते हैं। केल्डाल रीति से नाइट्रोजन की मात्रा निकालते हैं। वाकले और ब्लेक की रीति से कार्बन की मात्रा और पानी से जल विलेय लवणों की मात्रा निकालते हैं। पी० एच० मूल्य भी निकालते हैं। भारत की, विशेषतः बिहार की, मिट्टियों का विश्लेषण पूसा फार्म के मिट्टी रसायनज्ञ श्री शिवनाथ प्रसाद जी ने बड़े विस्तार से गत १५-२० वर्षों से किया है। उन्होंने शीघ्र विश्लेषण की एक नई प्रणाली भी निकाली है, जिसकी वैज्ञानिकों के द्वारा काफी प्रशंसा हुई है। मिट्टी विश्लेषण के उनके आंकड़े मैं यहाँ दे रहा हूँ।

चिकनी मिट्टी नरकटियागंज (चम्पारन) की

	गहराई	०"-५"	५"-१३"	१३"-२३"	२३"-४०"
	बालू	४३·७६	४१·६६	३८·६३	४०·२६
	साद (silt)	४०·६२	३५·६०	३६·०	३७·८५
	मिट्टी	१४·६०	२१·१५	२१·५५	२०·६०
	कैलसियम कार्बोनेट	१·०२	०·६६	०·८२	०·६६
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल निष्कर्ष	अविलेय	८५·३	८६·२	८२·१	८८·४
	विलेयसिलिका	०·२३	०·७७	०·१२	०·१८
	फास्फरस पेंटॉक्साइड (P_2O_5)	०·०२५	०·०६६	०·०८५	०·०८८
	पोटाश (K_2O)	०·६३४	०·६८४	०·५८१	०·६६६
	लोहा (Fe_2O_3)	२·०८	२·८८	५·४४	२·६२
	अलुमिना	२·५०	५·२७	६·८५	७·१०
	कार्बनिक कार्बन	०·४८४	०·५५६	०·२३७	०·२८७
	कार्बनिक नाइट्रोजन	०·०४७	०·०६७	०·०२८	०·०३०
	पी० एच०	७·६	७·२	७·२	७·४

चिकनी मिट्टी मोहवाल की

		०"-१२"	१२"-२६"	२६"-७२"
	गहराई	०"-१२"	१२"-२६"	२६"-७२"
	बालू	२१'७२	१२'८४	३६'१०
	साद	३१'६६	३ '०८	२७'६६
	मिट्टी	१५'३२	११'०८	१२'६४
	कैलसियम कार्बोनेट	३१'००	४४'६०	२३'३०
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल निष्कर्ष	अविलेय	५८'४१	४५'६६	६४'८६
	विलेय सिलिका	०'०६६	०'१११	०'११६
	फास्फरस पेन्टौक्साइड (P_2O_5)	०'११०	०'०७६	०'०८१
	पोटाश (K_2O)	०'७१६	०'८०४	०'६००
	लोहा (Fe_2O_3)	१'४०	२'६०	१'८७
	अलुमिना (Al_2O_3)	६'४१	३'४५	६'००
	कार्बनिक कार्बन	०'५१५	०'४६५	०'१८६
	कार्बनिक नाइट्रोजन	०'०८३	०'०७५	०'०३८
	पी० एच०	८'६	८ ६	८'६

भारत की मिट्टी में लोहे और अलुमिना की मात्रा अधिक रहती है। उसमें पोटाश और मैगनीशिया भी प्रर्याप्त रहते हैं। चूना, फास्फरिक अम्ल और नाइट्रोजन की मात्रा साधारणतया कम रहती है। नाइट्रोजन की औसत मात्रा ०.१ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। फास्फरिक अम्ल की मात्रा भी पर्याप्त नहीं रहती है।

ईख के लिए लाल मिट्टी बड़ी अच्छी होती है। पीली मिट्टी में फेरस लवण होने के कारण यह ईख के लिए उतनी अच्छी नहीं है। मैंगनीज और टाइटेनियम के कारण ईख अच्छी उपजती है। लाल मिट्टी हल्की होती है। इसकी जोताई और गोड़ाई में सहुलियत होती है। ऐसी मिट्टी से पानी सरलता से बह जाता है। ऐसी मिट्टी की विशिष्ट गुरुता १.१ होती है। पानी के शीघ्र बह जाने और वायु के प्रवेश से जड़ों के बढ़ने में सरलता होती है। रासायनिक संगठन के समान ही मिट्टी की भौतिक दशा का महत्त्व होता है।

सातवाँ प्रकरण

खाद

मनुष्यों और अन्य प्राणियों के जीने और पनपने के लिए जैसे भोजन की जरूरत पड़ती है, वैसे ही पौधों को भी खाद की आवश्यकता होती है। बिना खाद के पौधे बढ़ते नहीं और अन्त में सुखकर मर जाते हैं। साधारणतया मिट्टी में पौधों का भोजन रहता है। पर खेतों में पौधों को बारबार उगाते रहने के कारण मिट्टी में खाद की मात्रा और उससे उसकी उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य कुछ वर्षों तक जमीन में फसल उपजाकर उसे छोड़ देता था और अन्य जमीन में फसल उपजाता था। कुछ वर्षों में प्राकृतिक साधनों से मिट्टी में उर्वरता, उपजाऊ शक्ति, फिर आ जाती थी और तब फिर उसमें फसलें उगाई जाती थीं। पर अब आबादी इतनी बढ़ गई है कि जमीन को परती रखना सम्भव नहीं है। इस कारण जमीन की उर्वरता को बढ़ाने के लिए हमें आज प्रयत्न करना पड़ता है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप ही खादों की उत्पत्ति हुई। खाद का उद्देश्य आज केवल पौधों को भोजन पहुँचाना ही नहीं है, वरन् इससे मिट्टी की प्राकृत दशा का सुधार भी है और लाभदायक बैक्टीरिया की उपस्थिति और वृद्धि के लिए मिट्टी को उपयुक्त बनाना भी है।

पेड़-पौधों के सम्बन्ध में अनेक वज्ञानिकों के द्वारा आज अनुसन्धान हुए और हो रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हम आज पेड़-पौधों को अधिकता से उगा ही नहीं सकते. वरन् अनेक नये-नये पौधों को उगाकर अधिक सुगन्धित और सुन्दर फूल, अधिक स्वादिष्ट और मीठे फल और अधिक बलवर्द्धक और पुष्टकर अनाज उपजा सकते हैं।

पौधों को उगाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। ये सारी शक्तियाँ हमें सूरज से प्राप्त होती है। भूमण्डल की सारी शक्तियों का उद्गम वास्तव में सूरज ही है यदि ऐसे सूरज को हम प्रतिदिन नमस्कार करें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। सारा संसार ही आज शक्ति की उपासना करता है।

सूरज की शक्ति को पौधों के उगाने में किस प्रकार लगावें, यही कृषि-विज्ञान का उद्देश्य है। पौधों को उगाने में निम्नलिखित पदार्थों की आवश्यकता होती है—

१. सूरज की किरण

२. जल

३. वायु

४ खाद या उपजावक

५. ताप, रासायनिक क्रियाएँ और बैक्टीरिया की उपस्थिति।

पृथ्वी के कुछ भागों में जिन्हें हम उष्ण प्रदेश कहते हैं, सूरज की किरणों और गर्मी पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यकता से अधिक रहती हैं। कुछ प्रदेशों में जैसे उत्तरी ध्रुव में आवश्यकता से कम पर अधिक भागों में आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त रहती है। कुछ स्थलों में जरूरत से ज्यादा वर्षा होती है और कुछ स्थलों में जरूरत से कम। पानी की कमी कुछ सीमा तक कृत्रिम उपायों—सींचाई—से पूरी की जा सकती है। पौधों को वायु की भी वैसी ही आवश्यकता होती है जैसे मनुष्यों को। पत्तों के द्वारा पौधे वायु को ग्रहण करते हैं। यह वायु उन्हें वायुमण्डल से प्राप्त होती है। पौधों की जड़ों को भी वायु की आवश्यकता होती है। पौधों को वायु प्रदान करने के लिए हमें प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। जोताई और गोड़ाई से जड़ों में वायु पहुँचती है।

कुछ भूमि तो पौधों को उगाने के लिए पर्याप्त उपजाऊ हो सकती है। पर चूँकि अनेक प्रकार के पौधे एक ही खेत में और बारबार उगाये जाते हैं, इससे खेत की उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है। कुछ भूमि के लिए खाद या उर्वरक की ज़रूरत नहीं हो सकती; पर अधिक भूमि के लिए जिनमें उर्वरा-शक्ति कम रहती अथवा जिनकी उर्वरा शक्ति पौधों के बारबार उगाने से नष्ट हो गई है, उनमें खाद या उर्वरक देने की आवश्यकता होती है।

कोई भी मिट्टी पौधों को उगाने के लिए सब प्रकार से परिपूर्ण नहीं होती और कोई भी मिट्टी उसी दृष्टि से बिलकुल निकम्मी नहीं होती, यद्यपि केवल बालू के मैदान पौधों के उगाने के लिए बिलकुल निकम्मे होते हैं। निकम्मी मिट्टी का सुधार हो सकता है और वह बहुत कुछ उपजाऊ बनाई जा सकती है। परिपूर्ण मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कृत्रिम उपायों से कायम रखी जा सकती है। जो ज़मीन कुछ वर्षों तक परती पड़ी रहती है और जिसपर केवल घास-पात पेड़-पौधे उगते और मर कर सूखते रहते हैं, वह ज़मीन साधारणतया उपजाऊ हो जाती है। ऐसी भूमि के लिए कुछ काल तक खाद की आवश्यकता नहीं होती; पर जो ज़मीन ऊसर होती है, उसे उपजाऊ बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। कभी-कभी पानी के अभाव और कभी-कभी पानी के आधिक्य से भी ज़मीन ऊसर हो जाती है।

पेड़-पौधों के उगने के लिए किन-किन पदार्थों की आवश्यकता होती है, इसका पता पेड़-पौधों की बनावट से लगता है। पौधों को उन्हीं पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनसे वे बने हैं। गेहूँ के पौधे कार्बन, ऑक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, गंधक, फ़ास्फ़रस, पोटैसियम, कैलसियम, मैगनीसियम अलुमिना, लोहा, सोडियम, सिलिका, क्लोरीन और आयोडीन से बने हैं। ईखों में भी प्रायः ये ही सब तत्त्व रहते हैं, यद्यपि इन तत्त्वों की आपेक्षिक मात्रा में कुछ विभिन्नता अवश्य रहती है। पेड़-पौधों को इन सभी तत्त्वों की आवश्यकता होती है।

कार्बन—पौधे कार्बन को हवा से लेते हैं। हवा में बहुत थोड़ा अंश कार्बन डायक्साइड नामक गैस का रहता है। दस हज़ार भाग वायु में प्रायः ४ भाग कार्बन डायक्साइड का रहता है। यह गैस पदार्थों के वायु में जलने से और मनुष्य और अन्य प्राणियों के साँस लेने से बनती है। मनुष्य और अन्य प्राणियों से निकली साँस में कार्बन डायक्साइड का पर्याप्त अंश रहता है। इस गैस से चूने का पानी दुधिया (सफ़ेद दूध-सा) हो जाता है। इस दुधिया होने का कारण यह है कि चूने में कैलसियम ऑक्साइड

या हाइड्रोक्साइड रहता है। यह जल में कुछ विलेय होता है। चूने के पानी में यही कैलसियम हाइड्रोक्साइड घुला हुआ रहता है। ऐसे चूने के पानी में कार्बन डायक्साइड ले जाने से कैलसियम कार्बोनेट बनता है। कैलसियम कार्बोनेट जल में घुलता नहीं है। यह सफ़ेद होता है। इस कैलसियम कार्बोनेट के बनने के कारण ही कार्बन डायक्साइड से चूने का पानी दुधिया दूध-सा सफ़ेद हो जाता है।

कार्बन डाय-क्साइड को पेड़-पौधे सूरज की रोशनी में ही ग्रहण कर सकते हैं। पेड़-पौधों के पत्तों में एक हरा रंग होता है। इस हरे रंग को क्लोरोफील कहते हैं। क्लोरोफील को पत्तों से निकालकर रसायनज्ञों ने पूर्ण विश्लेषण किया है। इसके संघटन का भी बहुत - कुछ पता लगाया है। कृत्रिम रीति से क्लोरोफील अभी तक तैयार नहीं हो सका है ; पर पेड़-पौधों में यह प्रचुरता से पाया जाता है। क्लोरोफील की सहायता से ही पेड़-पौधे वायु से कार्बन डायक्साइड को ग्रहण कर सकते हैं। सूर्य प्रकाश में यह क्लोरोफील अपना कार्य करता है। यदि सूर्य का प्रकाश न हो तो पेड़ पौधे कार्बन डायक्साइड को ग्रहण नहीं कर सकते। कार्बन डायक्साइड को ग्रहण कर पौधे कार्बन से वृद्धि प्राप्त करते और आक्सिजन को वायु में छोड़ देते हैं। इससे वायु में आक्सिजन के मिल जाने से वायु शुद्ध होता रहता है और पौधे कार्बन लेकर बढ़ते हैं। यही कारण है कि पौधों की वृद्धि के लिए सूर्य का प्रकाश बहुत आवश्यक है। जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, वहाँ के पौधे हरे-भरे नहीं रहते, बढ़ते नहीं और पीले पड़कर अन्त में नष्ट हो जाते हैं। कुछ थोड़े-से पौधे ऐसे भी हैं जो अँधेरे में भी उगते हैं ; पर इनकी संख्या कम है और ये उतने उपयोगी नहीं होते। सूर्य का प्रकाश ईश्वर की देन है। मनुष्य में सूर्य-प्रकाश उत्पन्न करने का सामर्थ्य नहीं है। पर आजकल अनेक ऐसे प्रयोग हो रहे हैं जिनमें कृत्रिम प्रकाश—बिजली की रोशनी—में पौधों के उगाने की चेष्टाएँ हो रही हैं। कुछ दशाओं में सफलताएँ मिली हैं और कुछ में नहीं। इस सम्बन्ध में मनुष्य केवल यही कर सकता है कि जमीन में ऐसे बड़े-बड़े पेड़ न उगावें जो छोटे-छोटे पौधों को सूर्य प्रकाश के उन तक पहुँचने में बाधा डालें। किसानों का यह साधारण अनुभव है कि बाग बगीचों के आस-पास की भूमि में फसल अच्छी नहीं उगती। ईख के लिए सूर्य का प्रकाश बहुत आवश्यक है। यही कारण है कि उष्ण प्रदेशों में ही ईख उपजती है, शीत प्रदेशों में नहीं।

ऑक्सिजन—ऑक्सिजन को जारक भी कहते हैं; क्योंकि जारण क्रिया साधारणतया ऑक्सिजन के कारण ही होती है। ऑक्सिजन को पौधे कुछ तो पत्तों के द्वारा और कुछ जड़ों के द्वारा ग्रहण करते हैं। पौधों के उपजने के लिए ऑक्सिजन आवश्यक है। ऑक्सिजन के बिना वे उपज नहीं सकते। पत्तों के द्वारा ऑक्सिजन की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि सारा वायुमण्डल ऑक्सिजन से भरा हुआ है। प्रत्येक पाँच भाग वायु में एक भाग ऑक्सिजन का रहता है ; पर जड़ों के पास ऑक्सिजन पहुँचाने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होती है। साधारणतया जमीन के जोतने से मिट्टी टूटकर भुरभुरी हो जाती है और तब ऑक्सिजन मिट्टी के अन्दर प्रविष्ट कर जड़ों के पास पहुँचती है। यदि पानी से मिट्टी बैठ गई हो तो गुड़ाई से उसे

भुरभुरी बनाते हैं जिससे वायु प्रविष्ट कर जड़ तक पहुँचती रहे। पौधों को कुछ ऑक्सिजन पानी से भी प्राप्त होता है; क्योंकि पानी हाइड्रोजन और ऑक्सिजन नामक गैसों से बना है।

हाइड्रोजन—पेड़-पौधों को जल से हाइड्रोजन प्राप्त होता है। इसके लिए मिट्टी में नमी रहनी चाहिए। पेड़-पौधों की वृद्धि बहुत अंशों में जल पर निर्भर करती है। पौधों के लिए सींचाई बड़ी आवश्यक है। ईख के लिए तो जल की और भी आवश्यकता होती है; क्योंकि ईख में जल का अंश अधिक रहता है। जल के बिना पौधों की वृद्धि ठीक से नहीं होती। पौधों का सारा हाइड्रोजन जल से ही प्राप्त होता है।

नाइट्रोजन - सभी पौधों को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन के बिना पौधे बढ़ नहीं सकते। यद्यपि पौधे नाइट्रोजन के समुद्र में रहते हैं; क्योंकि वायु के प्रत्येक पाँच भाग में चार भाग नाइट्रोजन का होता है, पर थोड़े से पौधे ही वायु का नाइट्रोजन ग्रहण कर सकते हैं। शेष पौधे मिट्टी से ही नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं।

नाइट्रोजनवाले खाद से पौधों के मिट्टी से बाहरवाले अंश की उपज अधिक होती है। इससे डाल-पात अधिक होते और पौधे देर से पकते हैं। अनाज की अपेक्षा पुआल की मात्रा अधिक होती है। पौधों के स्तम्भ कुछ दुर्बल अवश्य होते हैं और अनाज के दाने कुछ कम गुणवाले होते हैं, पर इससे रोगों के आक्रमण की सम्भावना कम होती है।

यदि खेतों में नाइट्रोजनवाले खाद न डाला जाय तो मिट्टी के नाइट्रोजन की मात्रा बहुत कुछ घट जाती है। कभी-कभी नाइट्रोजन की मात्रा प्रायः २७ प्रतिशत तक कम हो सकती है। नाइट्रोजन की यह कमी प्रायः ८ इंच गहराई तक देखी गई है। यदि खेतों में गोबर की खाद डाली जाय तो प्रति एकड़ ६६० पाउण्ड तक नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

जो पौधे वायु का नाइट्रोजन ग्रहण कर सकते हैं; वे थोड़े से छेमीवाले, अरहर, नील, मटर और सनई आदि के पौधे हैं। इनकी जड़ों में कुछ गाँठे होती हैं, जिनमें बैक्टीरिया रहती हैं। यही बैक्टीरिया वायु के मुक्त नाइट्रोजन को संयोजित (युक्त) कर ऐसे रूप में परिणत करती है जिससे पौधे बढ़ते और मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाते हैं।

पौधों के उगाने से मिट्टी का नाइट्रोजन पौधों में चला जाता और पौधों को खेतों से हटा लेने पर फिर खेत में नहीं पहुँचता। इससे नाइट्रोजन की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है। कुछ प्राकृतिक साधन हैं जिनसे वायु का नाइट्रोजन मिट्टी में मिलता रहता है। एक ऐसा साधन वायु में बिजली का कड़कना है। बिजली की गरज से वायु के नाइट्रोजन और औक्सिजन परस्पर संयुक्त हो नाइट्रोजन के औक्साइड बनते हैं। ये औक्साइड पानी में घुलकर वर्षा से धरती पर गिरकर मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाते हैं। इस कारण बिजली की गरज से किसानों को बड़ा लाभ होता है। उनके खेतों की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। एक दूसरी रीति से भी नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है। सूर्य की प्रखर किरणों से वायु का नाइट्रोजन मिट्टी में बैक्टीरिया की सहायता से संयोजित हो जाता है; पर इसके लिए मिट्टी में कार्बनिक, औद्भिद और जान्तव, पदार्थों की उपस्थिति आवश्यक है। पर इन प्राकृतिक साधनों से नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि अपेक्षाकृत अल्पमात्रा में होती है, इस कारण खाद के रूप में नाइट्रोजन डालने की आवश्यकता बराबर रहती है।

चूना—मिट्टी कभी-कभी अम्लिक हो जाती है। खाद के रूप में अमोनियम सल्फेट

डालने से भी मिट्टी अम्लिक हो जाती है। अमोनियम सल्फ़ेट का नाइट्रोजन पौधों में चला जाता है ; पर गन्धकाम्ल मिट्टी में ही रहकर मिट्टी को अम्लिक बना देता है। इस अम्लता को दूर करने के लिए बीच-बीच में दो-तीन वर्षों में मिट्टी में चूना डालने की आवश्यकता होती है। चूना डालने से खेतों की पैदावार बढ़ी हुई पाई गई है।

फ़ास्फ़रस—पौधों को थोड़े अंश में फ़ास्फ़रस की आवश्यकता होती है। पौधों के उगाने और फ़सल के काट लेने से फ़ास्फ़रस की मात्रा क्रमशः कम होती जाती है, इस कारण फ़ास्फ़रस खाद को समय समय पर मिट्टी में डालने की आवश्यकता होती है। फ़ास्फेट खाद से फ़सल शीघ्र पकते, जड़ें अधिक फैलती, अनाज की अपेक्षा पुआल की मात्रा कम होती और पुआल दृढ़ होता है। पौधों में रोगों के अवरोध का—आक्रमण रोकने का—गुण बढ़ जाता है और फल तथा जड़ें स्वादिष्ट होती हैं। पौधों में फल और फूल भी अधिकता से लगते हैं।

यदि मिट्टी में ०.०१ से १ प्रतिशत फ़ास्फ़ेट विद्यमान है तो ऐसी मिट्टी में फ़ास्फ़ेट खाद से कोई लाभ नहीं होता ; पर यदि फ़ास्फ़ेट की मात्रा कम है तो उसमें फ़ास्फ़ेट से बहुत लाभ होता है।

पोटाश—चिकनी मिट्टी में पोटाश की आवश्यकता नहीं होती ; पर हल्की मिटी में पोटाश की आवश्यकता होती है। पोटाश से स्टार्च बनने और दाने लगने में सहायता मिलती है और पौधे दृढ होते हैं।

यदि मिट्टी में ०.००८ प्रतिशत पोटाश है तो ऐसी मिट्टी में पोटाश खाद देने से कोई लाभ नहीं होता। यदि पोटाश की मात्रा, ०.००५ से ०.००८ प्रतिशत है तो पोटाश देने से लाभ होगा, यह संदिग्ध है। पर यदि पोटाश की मात्रा ०.००५ प्रतिशत से कम है तो ऐसी मिट्टी में पोटाश देने से विशेष लाभ होता है।

खाद—खादों को वैज्ञानिकों ने दो वर्गों में विभक्त किया है। एक साधारण खाद और दूसरा विशेष खाद। किसी-किसी ने खादों को प्राकृतिक और कृत्रिम (बनावटी) खादों में भी विभक्त किया है। कुछ लोगों ने खादों को जीवित खाद और खनिज खाद में वर्गीकरण किया है। साधारण खादों में निम्नलिखित खाद प्रमुख हैं।

१. घुरे की खाद। इसमें कूड़ा-करकट, बहारन, राख, गोबर इत्यादि सड़ा हुआ रहता है।
२. गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद।
३. विष्ठा की खाद।
४. हरी खाद।

विशेष खादों में निम्नलिखित ये हैं—

१. खली की खाद।
२. हड्डी का चूरा
३. अमोनियम सल्फेट
४. सोडियम नाइट्रेट (चीली का शोरा)
५. कैलसियम नाइट्रेट
६. कैलसियम स्यानामाइड
७. पोटैसियम नाइट्रेट (देशी शोरा)

घुरे की खाद—हमारे देश में हर मकान के सामने घुरे का ढेर होता है। घर के कूड़ा-करकट, बहारन, राख, शाक-भाजियों के निरर्थक अंश, गोबर इत्यादि सब एक स्थान पर इकट्ठे होते रहते हैं और बरसात के दिनों में पानी से भींगकर सड़ते-गलते और इस प्रकार खाद बनते हैं और गरमी के दिनों में—बरसात से पहले—अथवा रबी फसल के कातिक महीने में बोने से पहले खेतों में डाल दिये जाते हैं। यह खाद अच्छी होती है ; पर यदि इसके तैयार करने में कुछ सावधानी की जाय तो और भी अच्छी गुणवाली खाद प्राप्त हो सकती है। इस खाद के सुधारने के लिए दो बातों का ध्यान आवश्यक है। यह कूड़ा-करकट यदि गड्ढे में रखा जाय तो उससे अधिक अच्छी खाद बनेगी और यदि उस गड्ढे में समय समय पर मास में एक बार भी पानी से भर दिया जाय तो इससे सड़ने में सहायता मिलेगी और तब उत्कृष्ट कोटि की खाद तैयार हो सकती है।

कम्पोस्ट खाद—कम्पोस्ट खाद बड़ी उत्तम होती है। इस खाद के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी का कथन है—"कम्पोस्ट खाद में वह जादू है जिसके बल से धूल से भी खाद्यान्न उत्पन्न किया जा सकता है और करोड़ों रुपये की बचत की जा सकती है। क्या भारतीय किसान इस जादू का प्रयोग सीखेंगे ?

कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए हमें बाहर से पैसा खर्च कर सामान मँगाने की आवश्यकता नहीं है। हम इसे आसानी से अपने पास के सामानों से तैयार कर सकते हैं। इसके लिए थोड़ा परिश्रम अवश्य करना पड़ेगा ; पर बिना परिश्रम कोई उपयोगी काम तो हो ही नहीं सकता।

घुरे और कम्पोस्ट खाद में फरक इतना होता है कि कम्पोस्ट में गोबर की मात्रा कम होती है और इसके बनाने में पेशाब की मिट्टी और राख की मात्रा आवश्यक समझी जाती है। कूड़ा-करकट का उपयोग जितना कम्पोस्ट खाद में होता है, उतना घुरे की खाद में नहीं होता। घुरे की खाद में गोबर प्रधान होता है और कम्पोस्ट खाद में कूड़ा-करकट। कम्पोस्ट खाद की विशेषता यह है कि घर तथा खेतों की व्यर्थ से-व्यर्थ वस्तुओं को पौधों के भोजन खाद में परिणत किया जाता है। कम्पोस्ट खाद केवल दो महीने में तैयार हो जाती है और इसमें पानी बड़ी मात्रा में लगता है। इसे बारबार उलटने-पलटने की आवश्यकता होती है। कम्पोस्ट खाद में साधारणतया एक प्रतिशत से कम नाइट्रोजन नहीं रहता, जहाँ घुरे की खाद में आधा प्रतिशत से अधिक नहीं रहता।

कम्पोस्ट खाद तैयार करना—कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए वानस्पतिक पदार्थ, पशुओं के पेशाब से सनी हुई मिट्टी, गोबर और राख चाहिए। विष्ठा का भी उपयोग हो सकता है।

वानस्पतिक पदार्थ—वानस्पतिक पदार्थों में पौधों की जड़ें, तने, सूखी पत्तियाँ, बैलों के नाद से छूटा हुआ भूसा, घास, ईख के पत्ते, केले के तने, जंगल तथा घास के मैदानों की छुटी हुई लकड़ियाँ, पेड़ों से गिरि हुई पत्तियाँ, जंगली नील अथवा अन्य जंगली पेड़-पौधे सम्मिलित हैं। इनके रखने का तरीका यह है कि जो वस्तुएँ मुलायम हैं, उन्हें सुखाकर एक ढेर में दबाकर रखना चाहिए। जो वस्तुएँ कड़ी हों, उन्हें बैलों से अथवा बैल-गाड़ी के पहियों से कुचलवाकर जब वे नरम हो जायँ, तब इकट्ठा कर रख देना

चाहिए। अगर वस्तुएँ अधिक कड़ी न हों तो गड्ढा खोदकर नम मिट्टी से ढक देने से दो-तीन महीनों में वे बिलकुल नरम हो जाती है। तब उन्हें इकट्ठा कर एक स्थान पर रख देना चाहिए।

पेशाब की मिट्टी—एक छः इंच मोटी मिट्टी की तह पशुशाला में बिछा देना चाहिए। इस मिट्टी में पेशाब सोख ली जाती है। कभी-कभी इस मिट्टी को कुदाल से उलट-पुलट देने की आवश्यकता होती है ताकि मिट्टी भुरभुरी होकर खुल जाय और नीचे की सुखी मिट्टी ऊपर आ जाय। ऐसा करने से दो-चार महीने में सारी मिट्टी पेशाब से तर हो जाती है। जब मिट्टी तर हो जाय तब इसे एक गड्ढे में छप्पर के नीचे इकट्ठा कर देना चाहिए।

गोबर—पशुओं का गोबर गोहरी या चिपड़ी पाथ कर जलावन के लिए उपयुक्त करना ठीक नहीं है; क्योंकि खाद के रूप में परिणत करने से गोबर से अधिक लाभ होता है। गोबर को जलावन के लिए काम में लाना कदापि उचित नहीं है, जलावन के लिए दूसरे अन्य पदार्थों को उपयुक्त करना चाहिए।

राख—घर की सारी राख एक छप्पर के नीचे इकट्ठा करते रहना चाहिए ताकि कम्पोस्ट खाद तैयार करने में वे उपयुक्त हो सकें।

इन पदार्थों के अतिरिक्त पानी और थोड़ा पुराना कम्पोस्ट खाद की आवश्यकता होती है। यदि पुराना कम्पोस्ट खाद न मिल सके तो कम्पोस्ट तैयार करने से दस-बीस दिन पहले एक छोटा गड्ढा खोदकर उसमें हरी पत्तियाँ, पेशाब की मिट्टी, गोबर और पानी डालकर छोड़ देना चाहिए। बीच-बीच में उसे उटकेरते और आवश्यकतानुसार पानी देते रहना चाहिए। प्रायः १५ दिनों में कम्पोस्ट तैयार हो जायगा। इसी को पुराने कम्पोस्ट खाद के स्थान में नया कम्पोस्ट तैयार करने में लगा सकते हैं।

कम्पोस्ट खाद का तैयार करना—कम्पोस्ट बनाने में गड्ढे की आवश्यकता होती है। इन गड्ढों की संख्या खाद बनाने के प्राप्त सामानों पर निर्भर करती है। ५ से १० तक आवश्यकतानुसार बनाये जा सकते हैं। इन गड्ढों की गहराई तीन फुट से ज्यादा न होनी चाहिए, डेढ़ फुट गहरा खोदकर खोदी हुई मिट्टी से ऊँची मेड़ बना देना चाहिए। इससे गड्ढा तीन फुट गहरा हो जावेगा। यदि वानस्पतिक पदार्थ पर्याप्त हो तो एक जोड़े बैल के लिए गड्ढा का क्षेत्रफल ४० वर्ग फुट (लम्बाई ८ और चौड़ाई ५ फुट) होना चाहिए। यदि फार्म में १० जोड़े बैल हैं तो गड्ढे की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई क्रमशः २५ फुट, १५ फुट और ३ फुट रह सकती है। एक-एक जोड़े गड्ढे एक स्थान पर रहना चाहिए। एक जोड़े से दूसरे जोड़े में १२ फुट का अन्तर और एक ही जोड़े में एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे में ६ फुट का अन्तर होना चाहिए। बड़े गड्ढे बनाने के स्थान में छोटे-छोटे गड्ढे बनाना कहीं अच्छा होता है।

गड्ढा भरना—पशुशाला में छः इंच मोटी मिट्टी की तह पर एक फुट मोटी घास-पात बिछा देना चाहिए। बैल इसे रात भर कुचलेंगे। इस पर पेशाब करेंगे। इससे घास-पात मुलायम हो जायगा। कम्पोस्ट बनाने के लिए पहले कुछ स्लरी तैयार करना चाहिए। स्लरी तैयार करने की विधि निम्नलिखित है।

ताजा गोबर २½ तसला (एक तसला प्रायः १० सेर का होता है।)
राख ½ तसला
पुराना कम्पोस्ट १ तसला
पेशाब की मिट्टी ½ तसला
पानी १० टिन (एक टिन का पानी प्रायः २० सेर होता है।)

इन सब पदार्थों को किसी बरतन में रखकर डंडे से भली-भाँति मिला देना चाहिए।

अब घास-पात जो बैल के नीचे रात भर रखा हुआ है और जिसमें पेशाब, मिट्टी गोबर मिला हुआ है उसे गड्ढे में डाल देना चाहिए। ऊपर से और गोबर भी उसमें डाल देना चाहिए। गड्ढे को प्रायः तीन इंच इन पदार्थों से भर देना चाहिए। इसके बाद ऊपर तैयार स्लरी जो एक दिन पहले तैयार की गई है, उसपर बिछा देना चाहिए, जिससे सब भींग जाय। ऐसे ही छः दिनों तक करना चाहिए। छठें दिन तक वह गड्ढा भर जायगा। उस गड्ढे को फिर पेशाब की मिट्टी से पूरा ढक देना चाहिए। प्रतिदिन गड्ढे में तीन-चार कनस्टर पानी डालते जाना चाहिए। गड्ढे भर जाने पर उसके १२ वें दिन १५ कनस्टर पानी गड्ढे में छोड़ना चाहिए। फिर उसके बाद १५ वें दिन पानी और कुछ पुराना कम्पोस्ट डालकर तमाम भरे हुए वानस्पतिक पदार्थ को उलट देना चाहिए। चौबीसवें दिन फिर १५ कनस्टर पानी देना चाहिए। ३० वें दिन फिर सबको उलटकर उसमें १० से १५ कनस्टर पानी डालना चाहिए। ३८ वें दिन फिर १५ कनस्टर पानी ऊपर से डालकर फिर ४५ वें दिन १५ कनस्टर पानी डालकर ६० वें दिन कुछ पानी डालकर उलट देना चाहिए। ६० दिन में कम्पोस्ट खाद तैयार होता है। इसे गड्ढे से निकालकर बाहर रख देना चाहिए। उस गड्ढे को फिर और कम्पोस्ट तैयार करने में इस्तेमाल करना चाहिए। यदि १० गड्ढे बने हैं। तो ६० वें दिन सब गड्ढे भर जायगे और क्रमशः प्रति छठे दिन एक-एक खाली होते जायँगे। ऐसी प्रस्तुत खाद को चौरस भूमि में ढेर में रख सकते है। इस ढेर की चौड़ाई ५ फीट और ऊँचाई ३½ फीट तक रह सकती है। ६७ वें दिन १० से १५ कनस्टर पानी इस ढेर पर देना चाहिए फिर ७५ वें दिन उतना ही पानी देना चाहिए। ९० वें दिन कम्पोस्ट पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है। ऐसे तो कम्पोस्ट ६० दिन में ही तैयार हो जाता है, पर ९० दिन के बाद उसे खेतों में अवश्य डाल देना चाहिए नहीं तो नाइट्रोजन कुछ निकल जाता है। यदि ९० वें दिन किसी कारणवश कम्पोस्ट खेत में न डाला जाय तो मिट्टी से ढककर छोड़ देना चाहिए।

चीनी कम्पोस्ट—बहुत-से किसानों को ऊपर बनाए तरीकों से कम्पोस्ट तैयार करने में झंझट मालूम हो सकती है। उनके लिए निम्नलिखित विधि, जिसे चीन देश के चतुर किसान खाद तैयार करते हैं, उपयोगी है। इससे एक एकड़ में १० गाड़ी खाद डालने से कपास की उपज इन्दौर में दुगुनी हो गई थी।

जितना घास-पात या लकड़ी मिले उनको इकट्ठा कर गड़ासे से काटर अथवा बैल के नीचे कुचला कर बारीक कर देना चाहिए। इसके बाद एक भाग खेत की मिट्टी, एक भाग सड़ी हुई खाद और ½० भाग राख लेकर २५-३० भाग खूब बारीक किये हुए घास-पात या लकड़ी में मिलाकर एक ढेर में रख देना चाहिए। इसमें प्रतिदिन पानी देते रहना और उलटते रहना चाहिए। बरसात के दिनों में कुछ कम और गर्मी के दिनों में कुछ ज्यादा पानी

देना चाहिए। उचित मात्रा में पानी डालने और उलटने से सड़ना बहुत जल्द होता है। जब खाद रंग में काला और छूने में भुरभुरा हो जाय तो उसे तैयार समझना चाहिए और खेतों में डालना चाहिए। ध्यान रहे कि पानी की कमी न होनी चाहिए। अधिक पानी भी न होना चाहिए। उससे भी हानि हो सकती है।

विष्टा की खाद—कम्पोस्ट की नाईं विष्टे और मूत्र की भी खाद बनाई जा सकती है अथवा विष्टे को केवल गड्ढे में गाड़कर कुछ दिनों के लिए छोड़ देने से विष्टा सड़कर उसकी खाद बन जाती है। विष्टे की खाद उत्तम कोटि की होती है। तीन फुट लम्बा, तीन फुट चौड़ा और तीन फुट गहरा गड्ढे में विष्टे को रखकर एक इंच मोटी मिट्टी की तह दे देने से दो महीने में सड़कर खाद तैयार हो जाती है। ऐसी खाद फी एकड़ जमीन में ३ से १० टन तक डाली जा सकती है। इन खादों के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रतिवर्ष जमीन में खाद डाली जाय, हर दूसरे या तीसरे साल में भी खाद डालने से काम चल सकता है।

हरी खाद—कुछ जल्दी उगनेवाले पौधों को उगाकर जब वे पर्याप्त बड़े या प्रौढ हो जाते हैं, तब उन्हे खेतों में जोत देने से वे खाद का काम करते हैं। साधारणतया ऐसे ही पौधे उगाए जाते हैं जो छेमीवाले हैं और वायु से नाइट्रोजन ग्रहण करने में समर्थ हैं। इन पौधों की जड़ों में गाँठे होती हैं, ये गांठें आलपीन के सिर सा या उससे कुछ बड़ी होती हैं। इन गाँठों की परीक्षा से मालूम हुआ है कि उनमें असंख्य बैक्टीरिया भरी पड़ी हैं। ये बैक्टीरिया सहजीवन (Symbosis) में रहते हुए नाइट्रोजन का संयोजन करती हैं। अनेक देशों में हरी खाद का उपयोग होता है। मौरिशस, हवाई और क्यूबा में इसका अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। ल्युसियाना में राज माष (Cowpeas) का उपयोग होता है। स्टब्स का कथन है कि इसके बोने से फी एकड़ प्राय: १०० पाउण्ड तक नाइट्रोजना आ जाता है। मौरिशस टापू में जो पौधे इस काम के लिए उपयुक्त होते हैं, वे हैं:— (१) मुद्ग प्रजाति Phaseonlus Lunatus, (२) The Pois Muscat, (३) परावत कलाय, (सामान्य तुवरी) Pigeon pea (Cajanus indicus) और (४) नीली भस्म पत्र Indigo sauvage (Tephrosia candide)।

भारत में सनई, नील और ढेंचा इस काम के लिए प्रयुक्त होता है। हरी खाद के अनेक लाभ हैं। वायु से नाइट्रोजन ग्रहण करने के साथ-साथ ये पौधे जमीन के नीचे के भाग से खाद लाकर ऊपर के भाग में इकट्ठा करते हैं; क्योंकि इन पौधों की जड़ें दूर तक नीचे जाती हैं। इनसे पौधों के परिवर्तन—सस्यावर्तन—का भी लाभ होता है, परती जमीन के दोषों को दूर करता है। इससे रोगों के अथवा कीड़ों के आक्रमण का भय कम हो जाता है। धरती को उपजाऊ बनाने में हरी खाद से बड़ी सहायता मिलती है। मटियार मिट्टी के सुधारने में भी इससे सहायता मिलती है।

खली की खाद—तेलहन के अनेक बीज हैं जिनसे तेल निकाल लेने पर जो सूखा पदार्थ बच जाता है, उसे खली कहते हैं। कुछ खलियाँ जानवरों को खिलाई जाती हैं और कुछ खलियाँ जानवर नहीं खाते। जो खलियाँ जानवरों को खिलाई जाती हैं, वे सरसों, तीसी और राई की हैं। तिल की खली को तो मनुष्य भी खाते हैं। जो खलियाँ जानवर

नहीं खातें, उनमें नीम, रेंड़ी बिनौला और महुआ की हैं। इन खलियों में नाइट्रोजन रहता है। इस कारण पौधों के लिए ये बड़ी उपयोगी हैं।

रेंड़ी खली में	नाइट्रोजन की मात्रा	४·२०	प्रतिशत रहती है।
बिनोले ,,	,,	७·००	,,
मुंगफली ,,	,,	४ से ८	,,
नारियल ,,	,,	३·६	,,
सोया ,,	,,	६	,,

नीम की खली सर्वोत्तम है। इसमें नाइट्रोजन के अतिरिक्त कुछ ऐसा पदार्थ भी रहता है जो दीमक और अन्य कीड़ों से फसल की रक्षा करता है। खली में तेल का अंश कम-से-कम मात्रा में रहना चाहिए नहीं तो खली जल्दी सड़ती नहीं है। खली को खूब पीसकर कुछ मिट्टी के साथ मिलाकर खेत में डालना अच्छा होता है। यदि इन खलियों को सड़ाकर खेतों में डाला जाय तो और भी अच्छा होता है।

हड्डी का चूरा—हड्डी का चूरा खाद के रूप में उपयुक्त होता है। इस चूरे में नाइट्रोजन का अंश ४ से ६ प्रतिशत रहता है और कैलसियम फास्फेट की मात्रा ४० से ५० प्रतिशत। हड्डी की चर्बी के अंश को निकालकर तब उसे चूर्ण कर छोटे छोटे टुकड़ों में अथवा धूल के रूप में तैयार करते हैं। हड्डी के चूरे का पौधों पर प्रभाव देर में होता है; क्योंकि यह धीरे-धीरे सड़कर ऐसे रूप में परिणत होता है जिससे पौधे लाभ उठा सकें। इसी कारण धूल के रूप में डालने से जल्दी फायदा होता है। इसे जमीन के ऊपर छितराकर गोड़ाई कर देना चाहिए। गोबर की खाद के साथ मिलाकर जमीन में देने से अधिक लाभ होता है। प्रति एकड़ में ३-४ मन हड्डी की खाद पर्याप्त होती है। हड्डी की खाद से फूल, फल और तरकारियों के गुण और उपज दोनों बढ़ जाती हैं। फल जल्दी पकते हैं। वे अधिक पुष्ट और स्वास्थ्यकर होते हैं।

अमोनियम सल्फेट—अमोनियम सल्फेट में नाइट्रोजन की मात्रा प्राय: २१ प्रतिशत रहती है; पर जो अमोनियम सल्फेट बाजारों में बिकता है, उसमें नाइट्रोजन की मात्रा प्राय: २० प्रतिशत ही होती है। इस खाद का असर धीरे धीरे होता है। इसे कुछ राख में मिलाकर प्रति एकड़ डेढ़-दो मन के हिसाब से छोड़ना चाहिए।

सोडियम नाइट्रेट—चीली के शोरा के नाम से यह ज्ञात है। वस्तुत: यह चीली से आता है जहाँ मैदानों में इकट्ठा होकर वहाँ से बटोरकर बाहर भेजा जाता है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा प्राय: १५ प्रतिशत रहती है। सोडियम नाइट्रेट पत्तों पर नहीं पड़ना चाहिए नहीं तो वे झुलस जाते हैं। इसका असर पौधों पर बहुत जल्द पड़ता है। पौधों के पर्याप्त बढ़ जाने पर भी खेतों में डालने से उसका असर होता है।

कैलसियम नाइट्रेट—कैलसियम नाइट्रेट जो बाजारों में बिकता है, उसमें नाइट्रोजन की मात्रा प्राय: १२ प्रतिशत होती है। चूने पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से यह बनता है।

कैलसियम स्यानामाइड—यह एक कृत्रिम खाद है जो कैलसियम कारबाइड पर नाइट्रोजन की क्रिया से बनती है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा २० प्रतिशत होती है।

पोटैसियम नाइट्रेट—इसे देशी शोरा भी कहते हैं। इस खाद में नाइट्रोजन के

अतिरिक्त पोटाश भी रहता है। राख में भी पोटाश रहता है। पोटैसियम सल्फेट और पोटैसियम क्लोराइड भी खाद के रूप में उपयुक्त होते हैं।

उपर्युक्त खादों के अतिरिक्त सूखे रक्त, सूखी मछलियाँ, ग्वानो (एक प्रकार की पक्षियों की विष्ठा), खनिज फ़ास्फेट, चूने के सुपर फ़ास्फेट इत्यादि खाद के रूप में उपयुक्त होते हैं।

खाद देने की रीतियाँ—

१. खादों को बारीक चूर्ण करके खेतों में डालना चाहिए ताकि पौधे उनसे शीघ्र लाभ उठा सकें।

२. घूरे या कम्पोस्ट खाद फसल के बोने से पहले ही खेतों में डालना चाहिए; क्योंकि उनका असर देर से होता है।

३. कृत्रिम खादों या उर्वरकों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दो-तीन बार में देना चाहिए।

४. कृत्रिम खादों को पौधों की जड़ों के पास देना चहिए ताकि वे उनसे शीघ्र लाभ उठा सकें।

५. बिना सड़ी हुई खाद खेतों में न देना चाहिए। इससे खेतों में कीड़े लगते और सड़ने में गर्मी उत्पन्न होने के कारण पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं।

ईख में खाद—जावा और डेमेरा में अमोनियम सल्फ़ेट की खाद ईख के लिए उपयुक्त होती है। जावा में साधारणतया प्रति एकड़ भूमि में ३५० पाउण्ड खाद—२५०-४५० पाउण्ड—और डेमेरारा में कुछ कम प्राय: ३०० पाउण्ड उपयुक्त होती है। जावा में कुछ वर्षों तक खली की खाद भी उपयुक्त होती थी; पर अब ऐसा नहीं होता। डेमेरारा में मिट्टी में यदि फ़ास्फ़रस की मात्रा कम है तो लोहे के कारखाने से प्राप्त फ़ास्फ़ेट स्लैग (धातुमल) उपयुक्त होता है।

हवाई टापुओं में जहाँ प्रति एकड़ ईख की उपज सबसे अधिक है, बहुत अधिक मात्रा में खाद का उपयोग होता है। सोडियम नाइट्रेट अत्यधिक और अमोनियम सल्फ़ेट अल्पमात्रा में उपयुक्त होते हैं। खाद की मात्रा प्रति एकड़ ४०० पाउण्ड तक पहुँच जाती है। हवाई टापुओं की जल-वायु ऐसी है कि वहाँ ईख के फ़सल की कटाई २४ महीने पर भी हो सकती है। ईख के इतने दिनों तक खेतों में रहने के कारण वहाँ दो बार खाद डालने की रीति है। पहली बार सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट का मिश्रण और दूसरी बार केवल सोडियम नाइट्रेट डाला जाता है। ऐसा करने से पैदावार बहुत बढ़ जाती है। हवाई टापुओं में मिट्टी के विश्लेषण से यदि फ़स्फ़रस और पोटाश की मात्रा कम हुई तो नाइट्रोजन खाद के साथ-साथ फ़ास्फेट और पोटाश खाद भी डाली जाती है। मौरिशस और बुरबन में हवाई टापुओं की नाई ही खाद उपयुक्त होती हैं। ल्युसियाना में बिनौले की खली और सुपर फ़ास्फेट अधिकता से उपयुक्त होते हैं।

मिस्र में जब पौधे छोटे-छोटे रहते हैं तब सींचाई के बाद सोडियम नाइट्रेट की खाद डाली जाती है। कुछ स्थानों में पशुओं को खेतों में बाँधकर उनके मल-मूत्र से खाद का काम लेते हैं।

भिन्न-भिन्न देशों में खाद डालने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं। कुछ टापुओं में जहाँ खाद डालने के लिए सस्ते मज़दूर मिल जाते हैं, हाथों से ईख की जड़ पर खाद डाली जाती है। ईख की जड़ के पास एक छोटा सुराख बनाकर चम्मच से आवश्यक मात्रा में खाद को डाल देते हैं। दूसरा तरीका है ईखके चारों ओर एक घेरा बनाकर उस घेरे में राख डालना। जावा में ७ से १० ग्राम तौल की खाद की गोलियाँ बनाकर जड़ों में खाद देते हैं। जिन देशों में मज़दूर महँगे हैं, वहाँ खेतों में खाद छींट दी जाती है और जोतकर मिट्टी में मिला दी जाती है। कुछ देशों में हल से सीता (हराई) बनाकर उसमें खाद डाल देते हैं। कुछ स्थानों में सोडियम नाइट्रेट को पानी में घुलाकर उस पानी से ईख को सींचते हैं।

कुछ लोगों का कथन है कि हवाई टापुओं में आवश्यकता से अधिक खाद उपयुक्त होती है।

खाद देने का समय—खेतों में नाइट्रोजन इस रूप में रहना चाहिए कि पौधे उसे शीघ्र ग्रहण कर लाभ उठा सकें। ऐसे नाइट्रोजन से ईख की उपज जल्दी और प्रचुरता से बढ़ती है। सूखा से ईख पर कम असर होता है। नाइट्रोजन का सबसे पहला काम स्तम्भ में रस उठाना होता है। इस अवस्था में पत्तियाँ रस को काम में लाने में असमर्थ होती है। इस कारण जड़ों से कलियाँ फूटती हैं और उनसे शाखें निकलकर पौधों को कई शाखावाले कर देती हैं। नाइट्रोजन से केवल यही नहीं होता, वरन् ईख की जड़ें भी चारों ओर फैलतीं और मिट्टी से अधिक मात्रा में खाद खींचने में वे समर्थ होती हैं। इससे पत्तियों की वृद्धि प्रचुरता से होती और पौधे मोटे हो जाते हैं।

कभी कभी यह प्रश्न पूछा जाता है कि ईख के खेतों में खाद केवल एक बार देनी चाहिए अथवा दो बार करके देनी चाहिए। विशेषज्ञों का मत है कि दो बार करके खाद देना उत्तम है। मेरा अपना अनुभव है कि घुरे या कम्पोस्ट खाद को ईख के बोने से पहले खेतों में डालना चाहिए और खेत को जोतकर खाद को मिट्टी में भलीभाँति मिला देना चाहिए। खेत की ईखें जब कुछ बढ़ जायँ तब रासायनिक खाद जड़ों में डालनी चाहिए।

खादों का असर पौधों की वृद्धि पर कैसे पड़ता है, इसका ज्ञान महीने-महीने ईख के विश्लेषण से प्राप्त हुआ है। इससे पता लगता है कि ज्यों ही ईख के पौधे बढ़ने लगते हैं, मिट्टी से खनिज पदार्थों का शोषण होता है। यदि जल-वायु अनुकूल है और मिट्टी में पर्याप्त खाद है तो ऐसे समय पौधों की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। छठे से नवें महीने में प्रगति धीमी हो जाती है। फिर दसवें और ग्यारहवें महीने में प्रगति महत्तम होती है। ऐसे समय में डंठल और पत्तियों की मात्रा सबसे अधिक रहती है, अबतक जितने नाइट्रोजन और खनिज लवणों का शोषण होना होता है सब हो जाता है। इस समय सूखे पत्तों का भार सबसे अधिक होता है। दसवें मास तक ईखों को जितना फ़ास्फ़रिक अम्ल, गन्धकाम्ल, पोटाश, सोडा और सिलिका ग्रहण करना होता है पौधे ग्रहण कर लेते हैं। जिन-जिन खनिज लवणों—चूना, मैगनीशिया और नाइट्रोजन—की कमी रहती है, वे सब ग्यारहवें मास में सोख लिये जाते हैं। बारहवें मास में उपर्युक्त अन्तिम तीन तत्त्व निकलना शुरू होते हैं और जबतक ईख पकती नहीं, निकलते रहते हैं।

ईखों को अब शीघ्र पकना चाहिए। इससे ईख में चीनी की मात्रा बढ़ती है। पकने पर पोटाश, क्लोराइड और सोडा स्तम्भ से पत्तियों और शिखर पर चले जाते हैं और

क्लोराइड, ग्लुकोज (द्राक्ष-शर्करा), अलुमिनायड और पेक्टीन वहाँ ही रहते हैं। पकने पर पौधों का कुछ आहार फिर मिट्टी में लौट जाता है। यह बात ईख के विश्लेषण से स्पष्टरूप से ज्ञात होता है। यदि दोबारा रासायनिक खाद देना हो तो ईख बोने के तीन मास के अन्दर देना चाहिए। बरसात शुरू होने के एक मास पहले तक अवश्य दे देना चाहिए। ऐसा न करने से बरसात के पानी से खाद के बह जाने की सम्भावना हो सकती है।

खाद की मात्रा—खेतों में कितनी खाद देनी चाहिए, यह मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करती है। यह निर्विवाद है कि नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए। खेतों का नाइट्रोजन प्रतिवर्ष निकलता रहता है। इस कमी की पूर्त्ति होना अत्यावश्यक है। यदि मिट्टी में फ़ास्फ़ेट की मात्रा कम हो तो फ़ास्फ़ेट खाद भी डालनी चाहिए। कभी-कभी खेतों में चूना डालने की आवश्यकता होती है। प्रति एकड़ भूमि में प्राय: १५ गाड़ियाँ (एक गाड़ी में १५ मन रहना चाहिए) कम्पोस्ट खाद डालना चाहिए। फिर प्रति एकड़ में २० से ३० मन खली की खाद और प्राय: डेढ़ से दो मन रासायनिक खाद।

नाइट्रोजन खाद—नाइट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फ़ेट और सोडियम नाइट्रेट उपयुक्त होते हैं। भारत के सिन्दरी कारखाने में अब पर्याप्त मात्रा में अमोनियम सल्फ़ेट बनने लगा है। इसका ही उपयोग उचित है, सोडियम नाइट्रेट और अन्य खाद चूने के नाइट्रेट और स्यानामाइड बाहर से आते हैं। इस कारण इनका उपयोग न करना ही अच्छा है।

अमोनियम सल्फेट में एक दोष बताया जाता है कि इसके उपयोग से मिट्टी गन्धकाम्ल के कारण अम्लिक हो जाती है। इससे जमीन की उर्वरता घट जाती है। कुछ लोगों का मत है कि यह बात ठीक नहीं है। खेतों की उर्वरता घट जाने का कारण मिट्टी की अम्लता नहीं, वरन् नीचे की तह की भास्मिकता है।

सोडियम नाइट्रेट अच्छी खाद है; पर जैसे मैं कह चुका हूँ हमारे देश में यह बनती या पाई नहीं जाती है। हवाई टापुओं, मिस्र और मौरिशस में ईख के खेतो में यह प्रचुरता से उपयुक्त होती है; पर इसके उपयोग में भी एक दोष बताया गया है। वह है मिट्टी में विलोष्टन पैदा करना अर्थात् मिट्टी में ढेले बनने का दोष उत्पन्न करना। सोडियम नाइट्रेट वायु से पानी का शोषण भी करता है। जल का यह शोषण इसके उपयोग का बाधक समझा जाता है।

यदि सोडियम नाइट्रेट प्राप्य हो तो उतम यह होगा कि अमोनियम सलफेट और सोडियम नाइट्रेट मिलाकर खेतों में डाला जाय अथवा एक साल अमोनियम सलफेट डाला जाय और दूसरे साल सोडियम नाइट्रेट डाला जाय। सोडियम नाइट्रेट के स्थान में भारतीय शोरा, पोटैसियम नाइट्रेट, भी उपयुक्त हो सकता है।

फ़ास्फ़ेट खाद—साधारणतया फ़ास्फ़ेट जल में घुलते नहीं। सुपर फ़ास्फ़ेट कुछ-कुछ घुलता है। इस कारण फ़ास्फ़ेट को महीन पीसकर खेतों में डालना चाहिए। सुपर फ़ास्फ़ेट से फ़ास्फ़रिक अम्ल चूने या लोहे या अलुमिना के साथ फ़ास्फ़ेट बनता है। चूने के फ़ास्फेट को तो पौधे ग्रहण कर लेते हैं; पर लोहे या अलुमिना के फ़ास्फ़ेट को ग्रहण नहीं करते। इस कारण चूनेवाले मिट्टी के लिए तो सुपर फ़ास्फ़ेट अच्छी खाद है; पर मटियार

मिट्टी के लिए ठीक नहीं। ऐसी मिट्टी के लिए लोहे के कारखाने की फ़ास्फेट मैल अच्छी होती है।

फ़ास्फेट खाद यदि ठीक तरह से डाला न जाय तो उसका लाभकारी असर ठीक नहीं होता। यह साधारणतया जल में घुलता नहीं है। इस कारण जहाँ रखा जाता है वहाँ ही पड़ा रहता है। यदि खाद पौधों की जड़ों तक नहीं पहुँच सकती तो पौधे उससे लाभ नहीं उठा सकते। यह बात नाइट्रोजन खाद में नहीं होती; क्योंकि नाइट्रोजन खाद प्रायः घुलनेवाले होते हैं और घुलकर शीघ्र ही जड़ों में पहुँच जाते हैं।

फ़ास्फेट खादों को सतह के चार या पाँच इंच नीचे जमीन में देना चाहिए ताकि वे जड़ों के निकट में रहें। इन्हें कतारों में—जैसे ईख बोई जाती है, वैसे ही—डालना चाहिए।

चूने—चूने से ईख की फसल को कोई लाभ नहीं होता; पर इससे जमीन की दशा बहुत कुछ सुधर जाती है। यदि मिट्टी में अम्लता है तो वह दूर हो जाती है। मटियार मिट्टी चूने से कुछ ढीली हो जाती है और चूने से पोटाश इस रूप में आ जाता कि पौधे उससे लाभ उठा सकते है। पाँच-छः वर्षों में एक बार प्रति एकड़ प्रायः १० से १२ मन के हिसाब से चूना डालना चाहिए। चूने के स्थान में खड़िया (कैलसियम कार्बोनेट) भी उपयुक्त हो सकता है। चूना-पत्थर महीन पीसकर खेतों में डाला जा सकता है। मिट्टी में मैगनीशिया की अपेक्षा चूने का अंश अधिक रहना चाहिए। प्रति दो भाग चूने में मैगनीशिया का एक भाग रहना चाहिए।

आठवाँ प्रकरण

सिंचाई

ईख की खेती में सिंचाई बहुत आवश्यक है। खेतों में पेड़-पौधों को पानी देने को सिचाई कहते हैं। संसार के अधिकांश स्थलों में जहाँ ईख की खेती होती है, प्राकृतिक साधन (वर्षा) से ही सिंचाई होती है। पर ऐसे स्थलों की कमी नहीं है जहाँ कृत्रिम साधनों से सिंचाई की व्यवस्था होती है। कृत्रिम साधनों से सिंचाई होनेवाले देशों में भारत, हवाई टापुएँ, पेरू, मिस्र, स्पेन के कुछ भाग, मौरिसस के कुछ भाग, जावा, क्यूबा, जमैका, मैक्सिको, फारमोसा और पोर्तुगाली पूर्वी अफ्रिका के कुछ भाग हैं। भारत के बहुत थोड़े भागों—जैसे उत्तर बिहार के कुछ भागों—में कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। अन्य भागों में कृत्रिम सिंचाई बहुत आवश्यक है। जहाँ वर्षा ४० इंच से कम होती है, वहाँ कृत्रिम सिंचाई और भी आवश्यक है। अन्य स्थलों में बिना कृत्रिम सिंचाई के भी काम चल सकता है।

सिंचाई में जो पानी उपयुक्त होता है, उसे नापने के अनेक तरीके हैं। पर इन तरीकों में किसी का उपयोग भारत में नहीं होता। इससे यह जानना सम्भव नहीं है कि किस स्थान में कितना पानी ईख की सिंचाई में उपयुक्त होता है।

सिंचाई की अनेक रीतियाँ हैं। एक रीति में जमीन के वाह्य तल पर पानी छिड़का जाता है। दूसरी रीति में खेतों में छोटी-छोटी क्यारी बनाकर उसे पानी से भर दिया जाता है। तीसरी रीति में हलों से सीता बनाकर उसे पानी से भर दिया जाता है। चौथी रीति में ईख के पेड़ों के पार्श्व में नली बनाकर पानी से भर दिया जाता है। पाँचवीं रीति में नीचे से नलों द्वारा पानी लाकर ईख के पौधों पर छिड़का जाता है।

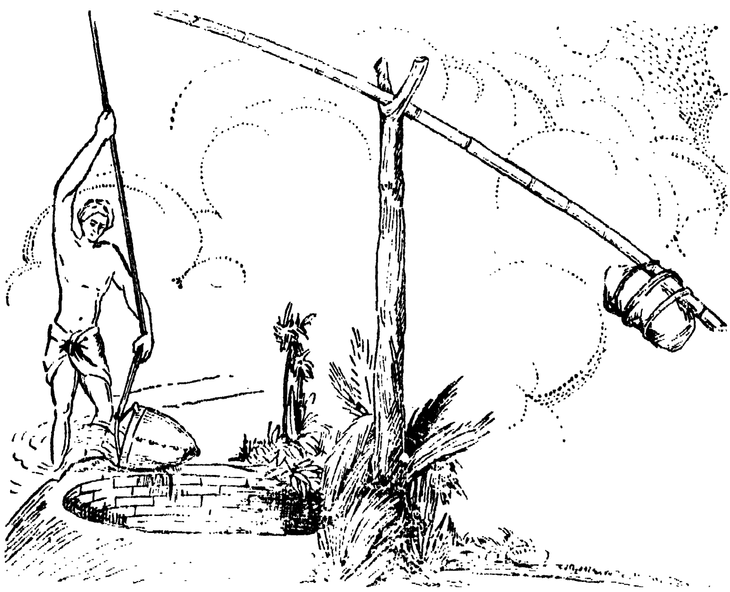
सिंचाई के खर्च भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होते हैं। वास्तविक खर्च सिंचाई की रीति और मौसम पर निर्भर करता है। भारत से बाहर देशों में सिंचाई में पर्याप्त धन खर्च होता है और उससे किसानों को लाभ भी होता है। वहाँ बड़े परिमाण में खेती भी होती है और कृषि के आधुनिकतम यंत्र उसमें उपयुक्त होते हैं। भारत में ईख की खेती अलग-अलग किसानों के द्वारा होती है। वे आधुनिक साधनों को ईख की खेती में उपयुक्त नहीं कर सकते। यदि किसान परस्पर मिलकर सामूहिक रूप से ईख की खेती करें तो सम्भव है कि वे आधुनिकतम साधनों को उपयुक्त कर उससे अधिक लाभ उठा सकते हैं।

भारत में दो रीतियों से सिंचाई का पानी प्राप्त होता है। एक रीति में कुँओं से ढेकी, रहट या पुरवट अथवा प्रशियन वील (चक्की) से पानी प्राप्त होता

है। दूसरी रीति में पानी को किसी स्थान पर इकट्ठा कर रखते हैं और आवश्यकतानुसार पानी को नाली द्वारा ले जाकर सिंचाई का काम करते हैं अथवा नहर से नाली द्वारा पानी बहाकर ले जाकर सिंचाई करते हैं।

साधारणतया ईख के खेतों को प्रारम्भ में कहीं-कहीं पाँच-पाँच दिनों पर, कहीं-कहीं आठ-आठ दिनों पर और कहीं-कहीं दस-दस दिनों पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। पीछे १५ से २० दिनों पर सिंचाई हो सकती है और फसल के काटने के तीन मास पूर्व सिंचाई की बिलकुल आवश्यकता नहीं होती और बन्द कर दी जाती है।

बिहार की सिंचाई—ईख बोने से पहले खेतों को पहले पानी से पटा लेते हैं। तब उसमें ईख बोते हैं। जब ईख की शाखें फूटती और बढ़ती हैं, तब बीच-बीच में खेतों को पटाते और गोड़ाई करते हैं। सिंचाई के लिए पानी कुँओं से प्राप्त होता है। ढेकी द्वारा या पुरवट (मोट) द्वारा या प्रशीयन चक्की द्वारा पानी खींचते हैं। ईख बोने के बाद बारी-बारी से खेतों को पटाते और गोड़ाई करते हैं। यह क्रम उस समय तक जारी रहता है जब तक बरसात शुरू न हो जाय। बरसात शुरू हो जाने पर फिर सिंचाई की आवश्यकता नहीं

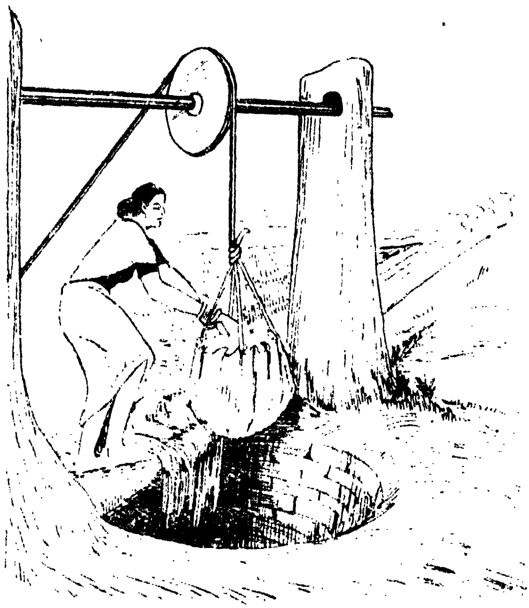


चित्र १२, ढेंकी से पानी खींचा जा रहा है

होती। बरसात का पानी ही पर्याप्त होता है। आखिरी वर्षा अक्टूबर में होती है। अक्टूबर के बाद फिर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। सब मिलाकर १० से १७ बार ईख के बढ़ने की दशा में खेतों की सिंचाई की आवश्यकता हो सकती है। ५ से ७ बार गोड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ नहर है, वहाँ नहर से पानी लेकर ईख के खेतों की सिंचाई होती है। जहाँ कुँओं से सिंचाई होती है, वहाँ कुँओं को छिछले होने के कारण कुछ ही समय में उसका पानी सूख जाता है। इस कारण ईख के खेतों की सिंचाई जितनी होनी चाहिए, उतनी नहीं होती। सिंचाई की इस कमी से ईख की पैदावार जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं होती। गहरे कुँओं का भारत के अनेक प्रदेशों में बड़ी आवश्यकता है और कुछ

प्रदेशों में ऐसे कुँओं के खोदवाने का प्रयत्न राज्य की ओर से हो रहा है। यदि गहरे कुँए या नलकूप हो जायँ तो उनसे पम्प द्वारा पानी भी खींचा जा सकता है। सामान्य कुँओं से पम्प द्वारा पानी खींचने से शीघ्र ही वे सूख जाते हैं। आवश्यकता से अधिक पानी भी ईख की फसल को हानि पहुँचाता है।

हवाई टापुओं में सिंचाई में लोगों ने पर्याप्त धन लगाया है। करोड़ों रुपया सिंचाई के साधनों में वहाँ लगाये गये हैं। दूर दूर से पानी लाकर खेतों की सिंचाई होती है। कुछ स्थानों में बहुत बड़े बड़े जलाशय बने हैं जिनमें अरबों गैलन (एक गैलन पाँच सेर या एक पसेरी का होता है) पानी अँटते हैं। वहाँ सीता बनाकर ही खेतों की सिंचाई होती है।



चित्र १३; पुरवट से पानी खींचा जा रहा है।

पेरू में पहाड़ों की बर्फ के गलने से पानी बनता है और वही पानी सिंचाई के लिए उपयुक्त होता है।

मौरिसस में नदियों और जलाशयों से पानी प्राप्त होता है। यहाँ कुँओं से पानी पम्प करने का कोई प्रबन्ध नहीं है।

मिस्र में नील नदी के पानी से खेतों की सिंचाई होती है। डेमेरारा में साधारणतया सिंचाई नहीं होती। वहाँ सिंचाई से फसल नष्ट होने का डर रहता है; क्योंकि नीचे की मिट्टी में कुछ ऐसे पदार्थ रहते हैं जो फसल को नष्ट कर देते हैं।

जावा में सिंचाई का प्रबन्ध सरकार की ओर से होता है। समय-समय पर ईख की सिंचाई के लिए पानी मिलता है; क्योंकि वहाँ बहुत-कुछ पानी धान की खेती में खर्च होता है।

पानी की मात्रा—जावा में सिंचाई के सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे पता लगता है कि ईख की सिंचाई के लिए प्रति सेकंड प्रति एकड़ ०·००७२ घनफुट जल की आवश्यकता होती है। इस हिसाब से प्रति १०० एकड़ भूमि के लिए प्रति दिन ५६०,००० गैलन जल की आवश्यकता होती है। पानी की यह मात्रा प्रतिवर्ष ६२ इंच वर्षा के बराबर है। पर चूँकि सिंचाई की आवश्यकता सालो भर नहीं पड़ती, इस कारण वास्तव में यह ३६ इंच वर्षा के बराबर ही है।

एक दूसरे विशेषज्ञ का कथन है कि हवाई टापू में १०० एकड़ भूमि की सिंचाई के लिए दस लाख गैलन जल की आवश्यकता होती है। इतने पानी में इसका केवल एक-तिहाई भाग ईख की जड़ों तक पहुँचता है। शेष जल इधर-उधर खाई-खंदकों में नष्ट हो जाता है।

पूना में पानी की आवश्यकता के सम्बन्ध में जो परीक्षण हुए हैं, उनसे पता लगता है कि ईख की खेती में ३० इंच प्राकृतिक वर्षा के अतिरिक्त २८ बार सींचने के लिए ७५ से ८० इंच पानी की आवश्यकता होती है।

अनुसन्धान से पता लगता है कि ईख के पौधों को शुरू में उतना पानी नहीं चाहिए जितना पीछे आवश्यकता होती है। पर शुरू में पौधों के छोटा होने के कारण सूर्य की किरणों और वायु के प्रवाह से पानी भाप बनकर अधिक उड़ता और अपेक्षाकृत उतना कम पानी से काम नहीं चलता जितना पौधों के शोषण के कारण पानी की आवश्यकता होती है।

हवाई टापुओं में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे पता लगता है कि ईख के छोटे पेड़ों को प्रति सप्ताह आधा इञ्च पानी चाहिए। इससे अधिक पानी से पेड़ पीले पड़ जाते और रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। जैसे-जैसे पेड़ बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार तीन-चार मास तक प्रतिदिन एक इञ्च के हिसाब से पानी की आवश्यकता होती है। इसके बाद प्रतिदिन प्रायः डेढ़ इञ्च पानी की आवश्यकता होती है। जब पौधे पूर्ण रूप से बढ़कर प्रौढ होते हैं, तब तीन इञ्च तक पानी की आवश्यकता होती है। यह उनकी समस्त आवश्यकताएँ हैं। इससे अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। इतने पानी से प्रति पाउण्ड चीनी प्राप्त करने में प्रायः एक हजार पाउण्ड जल की आवश्यकता होती है।

ईख का उत्स्वेदन—जैसे मनुष्य साँस द्वारा पानी के अंश को बाहर निकालता है, वैसे ही पेड़-पौधे भी पानी को बाहर निकालते हैं। पौधों की इस क्रिया को 'उत्स्वेदन' कहते हैं। मैक्सवेल ने एक द्रोणी में ईख को उपजाकर देखा है कि ईख के उत्स्वेदन में ७ मास में १७४·५ पाउण्ड पानी की आवश्यकता होती है। इस पानी में १४८ पाउण्ड तो जड़, स्तम्भ और पत्तों के बनने में उपयुक्त हुआ था। शेष पानी पौधों की साँस द्वारा उत्स्वेदन क्रिया से बाहर निकल गया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो आँकड़े दिये हैं, वे इस प्रकार हैं—

निरीक्षण-काल	ईख की उम्र—मास में	उत्स्वेदन—ग्राम में
मई	१	८६०
जून	२	६५००
जुलाई	३	११०००
अगस्त	४	१६८००
सितम्बर	५	२००५०
अक्तूबर	६	२११००

कामेरलिंग के प्रयोगों से, जिन्हें उन्होंने जावा में किया था, पता लगता है कि औसतन प्रायः २५० सी० सी० जल पौधे प्रतिदिन अपने समस्त वर्धनकाल में उत्स्वेदन द्वारा बाहर निकाल देते हैं। जल की यह मात्रा प्रति एकड़ लगभग १६०० टन तक पहुँचती है। उत्स्वेदन की मात्रा बहुत कुछ ईख की प्रकृति पर निर्भर करती है। कुछ किस्म की ईखों के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है और कुछ के लिए कम जल से भी बिना किसी हानि के काम चल सकता है।

जल की अनुकूलतम मात्रा—खेतों में पानी तीन रूपों में रहता है। एक पानी मिट्टी में पूर्णतया शोषित रहता है। इस जल को हम उन्देत्तीय (Hygroscopic) जल कहेंगे। इस जल को पौधे साधारणतया ग्रहण नहीं करते। दूसरा जल जिसे पौधे ग्रहण करते हैं, उसे केशाल (Capillary) जल कहते हैं। तीसरा जल जो खेतों में रह सकता है, उसे आकर्षक (gravitational) जल कहते हैं। आकर्षक जल ईख के लिए हानिकारक होता है। पौधों का सामान्यवर्द्धन आकर्षक जल से रुक जाता है। पौधों की सामान्य उद्भिद्-वृद्धि साधारणतया उसी दशा में होती है जब केशाल जल पर्याप्त रहता है। जो जल केशाल आकर्षण से शोषित हो जाय, उसी जल से पौधों की सबसे अधिक वृद्धि होती है। मिट्टी में जल की इस आदर्श अवस्था की उपस्थिति की मात्रा भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियों में भिन्न-भिन्न होती है।

उन्देत्तीय जल की मात्रा प्रतिशत २ से १० तक रह सकती है। बलुयार मिट्टी में प्राय: २ प्रतिशत और मटियार मिट्टी में १० प्रतिशत तक रह सकती है। जिर्णकी (peaty) मिट्टी में इसकी मात्रा ४० प्रतिशत तक पहुँच सकती है। इस कारण जल की आवश्यक मात्रा मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करती है।

कुछ स्थानों की मिट्टी में सिलिका (रेत), फेरिक आक्साइड, अलुमिना और धारण (Humnus) की मात्रा अधिक रहने से उन्देसीय जल की मात्रा बहुत अधिक हो सकती है। ऐसी मिट्टी में ४५ प्रतिशत जल रहने से ही पौधे सर्वोत्तम बढ़ते हैं। कुछ मिट्टियों में ३० प्रतिशत जल से भी सर्वोत्तम वृद्धि हो सकती है। इस कारण मिट्टी में जल की अनुकूलतम मात्रा मिट्टी की प्रकृति पर बहुत-कुछ निर्भर करती है।

पानी का गुण—ईख की सिंचाई के लिए पानी कैसा होना चाहिए, इसपर बहुत कुछ अन्वेषण हुए हैं। मैक्सवेल का मत है कि प्रति गैलन जल में यदि लवण की मात्रा १०० ग्रेन हो तो ऐसे जल का उपयोग ठीक नहीं है। एक दूसरे विशेषज्ञ का मत है कि प्रति गैलन जल में लवण की मात्रा ४० ग्रेन से अधिक नहीं रहनी चाहिए। कुछ लोगों ने देखा है कि प्रति गैलन में यदि सोडियम क्लोराइड की मात्रा १९५ ग्रेन है तो भी उससे ईख की उपज में कोई हानि नहीं होती। यदि मिट्टी में कैलसियम सल्फेट अथवा कार्बोनेट हो तो नमक का बुरा प्रभाव बहुत-कुछ कम होता है।

पानी में लवणों की प्रकृति का ईख पर बहुत-कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि पानी में चूने और मैगनीशिया के कार्बोनेट और सल्फेट हैं तो उनका पौधों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, पर यदि सोडियम या पोटैसियम क्लोराइड हैं तो उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि भूमि ऐसी है कि उसका पानी बहकर बाहर नहीं निकल जाता तो नमक की मात्रा क्रमश: बढ़ती जाती है और अन्त में इतनी अधिक हो जाती है कि पौधों पर उसका विषैला प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि वर्षा के पानी द्वारा ऐसी भूमि से नमक को बहाकर ले जाने का अवसर मिलता हो तो नमकवाले जल से सींचने से कोई हानि नहीं होती।

मिट्टी के जल का संरक्षण—ईख की भूमि के जल का बहुत-कुछ अंश भाप बनकर उड़ जाता है। कुछ सीमा तक इस जल का निकलना रोका जा सकता है। सिंचाई के बाद यदि महीन मिट्टी खेतों में छिड़क दी जाय तो एक संरक्षक स्तर बन जाता है, जो केशिका आकर्षण के द्वारा पानी को ऊपर उठने से रोकता है। पानी का उड़ना मिट्टी की

प्रकृति पर भी बहुत-कुछ निर्भर करता है। जिस मिट्टी में धारण अधिक होता है, उसमें जल के रोक रखने की शक्ति अधिक रहती है। खेतों में हरी खाद और ईख की पत्तियों के जोत देने से धारण की मात्रा बढ़ जाती है

वायु के प्रवाह और वेग पर भी मिट्टी के जल का उद्वाष्पन बहुत-कुछ निर्भर करता है। जल की इस प्रकार की हानि को खेतों के चारों ओर ऐसे पौधों को उगाकर रोका जा सकता है जो शीघ्र ही बढ़कर वायु के वेग को रोकें, नहीं तो बहुत-कुछ कम कर सकें। कुछ स्थानों में किसान ऐसा करते भी हैं। ईख के खेतों के चारों ओर अरहर या सनई या जोन्हरी की धारी लगा देते हैं।

जलवायु की आर्द्रता का भी उद्वाष्पन पर बहुत असर पड़ता है। यदि वायु आर्द्र है तो उद्वाष्पन की गति धीमी हो जाती है। आर्द्रता की १२'५ प्रतिशत वृद्धि से उद्वाष्पन में ५० प्रतिशत कमी होते देखा गया है।

सिंचाई का व्यय—ईख की सिंचाई में जो व्यय होता है, वह हर स्थान पर और हर देश में एक नहीं होता। स्थान की परिस्थिति पर यह बहुत-कुछ निर्भर करता है। इस व्यय के दो हिस्से होते हैं। एक पानी का प्राप्त करना और दूसरा पानी खेतों में पहुँचाना। जहाँ पानी नहरों से प्राप्त होता है अथवा किसी जलाशय से लिया जाता है, वहाँ पानी के प्राप्त करने में विशेष प्रयत्न और विशेष व्यय नहीं करना पड़ता है। नहर की दर नियमित होती है और उस दर से कर देना पड़ता है। पर जहाँ पानो नीचे से ऊपर उठाकर निकाला जाता है, वहाँ पानी उठाने में विशेष खर्च पड़ता है।

हवाई टापुओं में गत विश्व-युद्ध से पहले प्रति एकड़ भूमि के सींचने में प्राय: २०० रुपया अथवा प्रति टन ईख के उपजाने में ४ से ५ रुपया खर्च पड़ता था। यह समस्त खर्च का प्राय: दो-तिहाई भाग होता था।

विश्व-युद्ध से पहले विशेषज्ञों का मत था कि भारत में ईख उपजाने में प्रति एकड़ ८० से १६० रुपया तक खर्च पड़ता था। विश्व-युद्ध के बाद सभी चीजों की कीमत बढ़ गई है। मजदूरी की दर तो प्राय: दुगुनी हो गई है। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि सिंचाई का खर्च विश्व-युद्ध के पहले से प्राय: दुगुना हो गया है। ईख के उत्पादन का खर्च भी प्राय: इसी अनुपात में बढ़ गया है। ईख के उत्पादन में जितना खर्च आज पड़ता है, उसका अष्टमांश खेत की जोताई में, चतुर्थांश खाद में, अष्टमांश बोआई और गोड़ाई में और शेष आधा भाग सिंचाई में लगता है।

भारत में सिंचाई

सदा बहनेवाली नहरों द्वारा—भारत के कुछ प्रदेशों में अनेक नहरें हैं जिनमें बारहों मास पानी बहता रहता है। इन नहरों में कई सैकड़ों मील लम्बी हैं और इनके खोदने में बहुत रुपया खर्च हुआ है। ऐसी नहरें राज्य द्वारा ही बनाई जा सकती हैं। अँगरेजी राज्य के समय में अनेक ऐसी नहरें बनी थीं, जिनमें १५० करोड़ से अधिक रुपया लगा था। ऐसी नहरों से प्राय: ५ करोड़ एकड़ भूमि उपजाऊ बना दी गई है; पर ये नहरें भारत ऐसे विशाल देश के लिए पर्याप्त नहीं है। ये नहरें

भारत की नदियों से निकली हैं। इनमें कुछ नदियों का पानी तो हिमालय की बर्फ से पिछलकर आता है। इस कारण उनमें पानी बराबर बहता रहता है। यद्यपि वर्षाऋतु में पानी बहुत अधिक रहता है, पर ग्रीष्म में पानी कम हो जाता है।

आज जबसे भारत स्वतन्त्र हुआ है, अनेक नदियों में बाँध बाँधकर वर्षा का पानी इकट्ठा करने का प्रयत्न हो रहा है। इससे दो बड़े लाभ होंगे। अधिक वर्षा होने से इन नदियों में बाढ़ आ जाती थी और नदियों के किनारे के गाँव बह जाते थे। इन बाँधों से अब ऐसा न हो सकेगा। वर्षा का अधिक पानी बाँध के निकट झील के रूप में इकट्ठा रहेगा और वर्षा के बाद जब ये नदियाँ सूख जाती हैं, तब उनमें पानी बहता रहेगा। जिससे यह पानी सिंचाई के कामों में लगाया जा सके। इन कृत्रिम झीलों से नई-नई नहरें भी निकाली जा सकती हैं, जो उन स्थानों में बहती हुई जायँगी जहाँ नदी नहीं जाती है। इससे नदी के पानी से सिंचाई का क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ जायगा और फसलें अधिक उपजाई जा सकती हैं। नदी का ऐसा बाँध आज दामोदर नदी में बाँधा जा रहा है। दामोदर नदी बिहार की विन्ध्या पहाड़ी से निकलकर बिहार और बंगाल में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। प्रायः हर दूसरे और तीसरे साल दामोदर नदी की बाढ़ से गाँव दह जाते थे और फसलें नष्ट हो जाती थीं। यह अब रोकी जा सकती है। इस दामोदर घाटी योजना में कई करोड़ रुपये खर्च होंगे। इसमें चार बाँध रहेंगे। एक तिलैया में, दूसरा कोनार में, तीसरा मैथन में और चौथा पंचकोट में। तिलैया बाँध प्रायः तैयार हो गया है। कोनारबाँध भी प्रायः पूरा हो गया है। मैथनबाँध और पंचकोट बाँध सन् १६५५ में पूरा होगा।

इन बाँधों पर जल-प्रपात से बिजली भी पैदा होगी। यह जल-विद्युत् बड़ा सस्ता होगा और इससे अनेक उद्योग-धन्धों के स्थापन और सञ्चालन में सहायता मिलेगी। गृह-उद्योग-धन्धे भी इससे पनप सकते हैं। छोटी छोटी मशीनों को स्थापित कर बिजली से चलाकर लोग अपने गाँवों में व्यापार की अनेक वस्तुओं का निर्माण कर सकते हैं। इस सस्ती बिजली से कुँओं से भी पानी निकालकर खेतों को सींच सकते हैं। ऐसी ही योजना देश के अन्य नदियों में भी बन रही है और बनाने का प्रयत्न हो रहा है। उड़ीसा की नदी में इसी प्रकार का एक बाँध बाँधा जा रहा है। उत्तर प्रदेश और पूर्व पंजाब में भी ऐसी योजना बन रही है। उत्तर बिहार की कोसी और गंडक नदियों में भी बाँध बंधाने की योजना चल रही है। और बाँध बाँधने का काम प्रायः निश्चित हो गया है। इन नदियों की बाढ़ से पर्याप्त जान और माल की हानि होती है। सन् १६५४ ई० की कोसी की बाढ़ अन्य बाढ़ों से बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। कोसी नदी का बहाव तो हर साल बदलता रहता है और पुराने गाँव नदी के तल में चले जाते और नये-नये गाँव उनके स्थान में बनते हैं। ऐसे गाँवों के लोगों की कठिनता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

नहर बनाने के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जहाँ से नदी का पानी सरलता से काटा जा सके, जहाँ नदी का मुख बहुत चौड़ा न हो और उसका फर्श पथरीला हो। जहाँ से नहर निकलती है उसे नहर का मस्तक कहते हैं। नहर का ढाल बहुत हलका होता है जिससे पानी धीरे-धीरे बहता है। नहर का तल ऊँचा होना चाहिए ताकि नहर से पानी सरलता से निकाला जा सके। नहर से छोटी छोटी नलियाँ काटकर खेतों में ले जाते हैं।

बरसाती नहरें—कुछ नहरें ऐसी हैं जिनमें बरसात में ही, नदी में पानी आने से, पानी आ सकता है। ये नहरें गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण ये उतने काम की नहीं हैं।

तालाब—कुछ स्थानों में दीवारों को उठाकर या बाँध को बाँधकर वर्षा का पानी इकट्ठा करते हैं। ऐसे जलाशयों को तालाब कहते हैं। पोखरा भी इन्हें कहते हैं। ऐसे जलाशयों से पानी बहने के लिए जो नाला होता है उसे पइन कहते हैं। वर्षा समाप्त हो जाने के बाद इन पोखरों से पानी लेकर खेतों की सिंचाई करते हैं। साधारणतया गरमी में ये सूख जाते हैं। जिस साल काफी वर्षा नहीं होती, उस साल ये तालाब पानी से भरते नहीं और तब जाड़े में ही जल्दी सूख जाते हैं।

कुँआ—कुछ स्थानों में पृथ्वी-तल के अन्दर, थोड़ी गहराई पर ही, पानी रहता है। ऐसे स्थानों में कुँआ खोदकर जल निकालते हैं और उससे खेतों की सिंचाई करते हैं। कहीं-कहीं कुँए गहरे होते हैं। बिहार में पानी कम गहराई पर निकल आता है। उत्तर प्रदेश में अधिक गहराई पर और पंजाब में और भी अधिक गहराई पर पानी निकलता है। पर ऐसे कुँए जल्दी सूख जाते हैं। कुँओं का पानी जल्दी सूखे नहीं, इसके लिए आवश्यक है कि नल-कुँए बनाये जायँ। नल-कुँओं में पानी २०० फुट या इससे भी गहरे तल से आता है। इससे ये कुँए सूखते नहीं हैं।

कुछ स्थानों में पानी ढेंकुल द्वारा कुँओं से निकाला जाता है। ऐसा वहाँ ही होता है, जहाँ कुँओं में १० से ३० फुट के अन्दर पानी रहता है। बिहार में साधारणतया ढेंकुल ही उपयुक्त होती है। ढेंकुल में आदमी ही पानी खींचते हैं। अधिक गहराई के कुँओं से पुरवट या रहट द्वारा पानी निकाला जाता है। इसमें बैल पानी को नीचे से खींचते हैं।

नवाँ प्रकरण

खेत की जुताई और ईख की बोआई

ईख बोने के लिए खेत की जुताई अच्छी होनी चाहिए। अच्छी जुताई के लिए नीचे लिखी बातों का होना आवश्यक है।

१. कुँड बिलकुल सीधा रहना चाहिए।

२. कुँड की मिट्टी बराबर पलटते रहना चाहिए और वहाँ हर स्थान पर मिट्टी एक-सी होनी चाहिए।

३. खेत के उगे हुए खर और खाद बिलकुल ठीक तरह से मिट्टी में दबे हुए होना चाहिए।

४. खेत का कोई भी भाग जोतने के लिए बाकी न बचा रहना चाहिए।

५. बोने के लिए खेत की जुताई एक-सी होनी चाहिए जिससे बीज कहीं ऊँचा और कहीं नीचा न पड़े।

६. भूमि की नीची सतहें भी, जहाँ तक हल पहुँच सकता हो, एक-सी जुती रहनी चाहिए।

जुताई के लिए भारत में हल का उपयोग होता है। हल कई प्रकार के होते हैं। भारत में जुताई के लिए देशी हल ही अधिकता से उपयुक्त होते हैं। देशी हल के निम्न-लिखित भाग होते हैं।

१. फार—फार लोहे का वह भाग है, जो मिट्टी को फाड़ता है। फार लम्बा और नोकीला होता है।

२. चौही—चौहीं लकड़ी का बना हुआ होता है। इसके ऊपर फार लगा हुआ रहता है। कहीं-कहीं इसीको हर या हल भी कहते हैं।

३. नगरा—यह लकड़ी का बना हुआ होता है। इसमें हरीस और मुठिया जड़ी हुई होती है। कही हरीस हल और कही परहथ —दोनों के छिद्र में ही जड़ी रहती है।

४. परहथा—यह नगरे का एक भाग होता है। कहीं-कहीं एक ही में और कहीं-कहीं अलग से लकड़ी ठोककर बनाया जाता है।

५. मुठिया—मुठिया परहथे के सिर पर लगी रहती है। हरवाहा उसे पकड़कर हल चलाता है।

६. हरीस—हरीस एक लम्बी लकड़ी की बनी होती है जो जुए में जोती जाती है।

७. पचाय या पच्चड़—एक लकड़ी का टुकड़ा जो हरीस की जड़ में ठोक दिया जाता है। इससे हल की गहराई ठीक की जाती है।

भारत में हल बैलों से चलते हैं। कहीं-कहीं भैंसें भी जोते जाते हैं। बैलों को खेत के चारों तरफ घुमाते हैं। हमेशा बायें बैल को ही मुड़ना पड़ता है। पहले कुँड के ठीक ऊपर दूसरा कुँड बनाया जाता है जिससे दो कुँडों के बीच में विना जुती हुई जमीन न रह जावे।

मिट्टी पलटनेवाले हलों से दो तरह की जुताई होती है। एक में किनारे से बीच की ओर और दूसरे में बीच से किनारे की ओर। पहले तरह की जुताई में हल मिट्टी को बाहर पलटता रहता है। इसलिए पहले कुँड की मिट्टी पलटकर किनारे जमा होती है और अगले कुँडों की मिट्टी पिछले कुँड़ों को ढंकती जाती है; लेकिन आखिरी कुँड खाली रह जाता है। दूसरी रीति की जुताई में आखिरी कुँड बिना मिट्टी का रह जाता है।

खेत को समतल बनाने के लिए मिट्टी पलटनेवाले हलों की दोनों तरह की जुताई एक दूसरे के बाद होनी चाहिए।

खेत के कुँडों की गहराई और चौड़ाई हल के गाँत, पहियों और भार पर निर्भर करती है। कुँडों की गहराई इतनी नहीं होनी चाहिए कि बैलों पर अधिक जोर पड़े।

देशी हल के स्थान में आजकल मिट्टी पलटनेवाले अन्य प्रकार के हलों का उपयोग अधिकाधिक बढ़ रहा है। ऐसे हल दो प्रकार के होते हैं। १. बिना पहियावाले हल जैसे मेस्टन, गुर्जर, वट्स, मानसूल इत्यादि। २. पहियादार हल जैसे पंजाब, विक्टरी, टर्नरेस्ट इत्यादि।

मिट्टी पलटनेवाले पहियादार हल अच्छे होते हैं। इनका ही उपयोग पाश्चात्य देशों में होता है। इस हल से खेत की जुताई अच्छी होती है; पर इन्हें खींचने के लिए अधिक बल (force) की आवश्यकता होती है। इस कारण देशी और मिट्टी पलटनेवाले हलों को मिलाकर सरजेम्स् मेस्टन ने एक हल निकाला है, जिसे आज 'मेस्टन हल' के नाम से पुकारते हैं।

मेस्टन हल

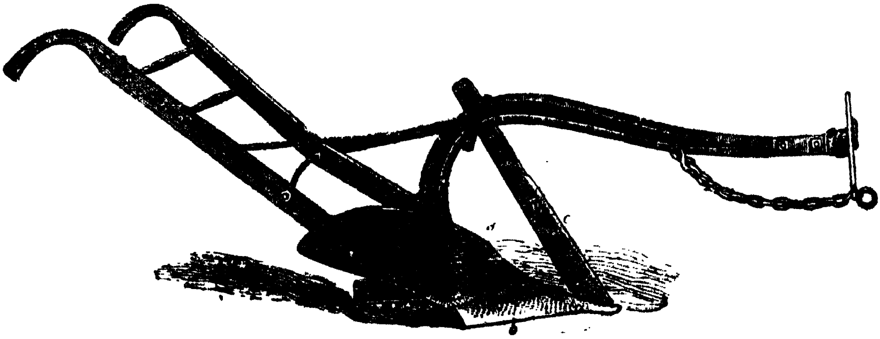
मेस्टन हल छोटा और हल्का होता है। इसका खिंचाव देशी हल से भी कम होता है। देशी हल की तरह इसमें भी हरीस और परहथा रहते हैं। इसमें सिर्फ मोलबोर्ड और फार नये किस्म के होते हैं।

गुर्जर हल—यह हल मेस्टन हल-सा ही होता है।

वाट्स हल—वाट्स हल मेस्टन हल से बड़ा होता है। यह छः इञ्च गहरा और पाँच इञ्च चौड़ा कुँडा बनाता है। यह दो किस्म का बनता है। एक किस्म का हल मेस्टन की तरह ही लम्बी हरीस का होता है। दूसरे किस्म में हरीस छोटी होती है और जंजीर से जुए में जुटी रहती है।

मानसूल—यह वाट्स हल से बड़ा होता है। इससे गहरी और चौड़ी जुताई होती है। मटियार मिट्टी के लिए यह अच्छा समझा जाता है। इससे एक और लाभ होता है। यदि इसका एक सिरा घिस जाय तो दूसरा सिरा काम में लाया जा सकता है।

पहियादार मिट्टी पलटनेवाला हल—इस हल में फार ऐसा होता है जो भूमि को या तो क्षैतिज काटता है अथवा उर्ध्वाधार। इसमें मोलबोर्ड भी होता है जो भूमि की मिट्टी को पलट देता है। इस हल में कितना बल लगेगा, वह इस बात पर निर्भर करता है।



चित्र १४—सामान्य मोल्डबोर्ड हल

एक धरती कटने की रुकावट, दूसरा मिट्टी के उठाने और पलटने की शक्ति और तीसरा हल को भूमि में दबाने की शक्ति। ऐसे हलों के निम्नलिखित भाग होते हैं—

१. मेलबोर्ड या ब्रेस्ट—यह ढालवें लोहे या इस्पात का बना होता है। इसपर पालिश अच्छी चढ़ी रहती है। यह तिरछा बना हुआ होता है। इससे मिट्टी सरलता से उलट जाती है।

मेलबोर्ड की लंबाई और मिट्टी के भुरभुरे होने से घना संबंध है। जब मेलबोर्ड लम्बा और धीरे-धीरे टेढ़ा होता है तब मिट्टी बिना टूटे हुए ही पहली कुंडी की मिटटी के पास ही उलट कर ढेर हो जाती है। पर इस दशा में हल के खिंचाव की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। बलुआर मिट्टी में तीरछे मोलबोर्डवाले हल से मिट्टी कम खिंचाव की शक्ति से ही उलट जाती है।

२. फार—इस हल के फार इस्पात के होते हैं। मिट्टी मे ये बहुत घिसते हैं। पथरीली ज़मीन के लिए ये फार पीटवे लोहे के भी बन सकते हैं। इनके नीचे का भाग कठोर बना लिया जाता है।

३ कोल्टर या काटनेवाली छूरी—यह इस्पात का अथवा पीटवे लोहे का फार-सा बना हुआ होता है। घिस जाने पर बदला जा सकता है। यह हरीस के स्थान में बीम में लगा होता है।

पंजाब हल—यह मानसूल हल-सा ही होता है; पर उस से बड़ा होता है। इसमें दो पहिए लगे होते हैं। इसमें कुँड की चौड़ाई और गहराई ज्यादा या कम करने के लिए भी पुर्जे लगे रहते हैं। इससे छः इंच गहरी और आठ इंच चौड़ी कुंडिया बनती हैं। इस हल के लिए अच्छे बैल चाहिए। इस का खोलना और जोड़ना सरल और जल्दी सीखा जा सकता है।

विक्टोरीया राजा हल—इन हलों की बनावट पंजाब हल की ऐसी ही होती है।

विशेष-विशेष कामों के लिए काम में आनेवाले हलों में निम्नलिखित हल उल्लेखनीय हैं।

१. टर्न रेस्ट हल—यह हल छोटे और बड़े कई तरह के होते हैं। इससे हल की और गहरी दोनों प्रकार की जुताई हो सकती है; पर भारी और सख्त ज़मीन के लिए यह बहुत अच्छा होता है। इसमें दो जोड़ी बैल लगते हैं। पर हलकी भूमि में एक जोड़ी बैल भी हलको खींच सकते हैं, इससे मिट्टी एक तरफ पलटी जा सकती है जिससे जोतने पर खेत समतल बना रहता है।

२. पत्थरतोड़ हल—कड़ी और मटियार ज़मीन को जोतने के लिए नये किस्म के हल बने हैं। इसमें इस्पात की नोक पर छड़ लगी रहती है जो कड़ी से-कड़ी जमीन को अच्छी तरह काट और जोत सकती है। इस का मिट्टी उलटनेवाला पुर्जा छोटा होता है। इसमें खिचाव-बल कम लगता है।

इन हलों में देशी हल की तुलना में केवल मिट्टी उलटनेवाला पुर्जा ज्यादा होता है। इनके पुर्जों को यथास्थान ठीक तरह से कसा हुआ रहना चाहिए। इनकी ढिवरी ढीली नहीं रहनी चाहिए। इन हलों में मेस्टन हल सबसे सरल है। यह छोटे और बड़े दोनों प्रकार के बैलों के लिए ठीक किया जा सकता है।

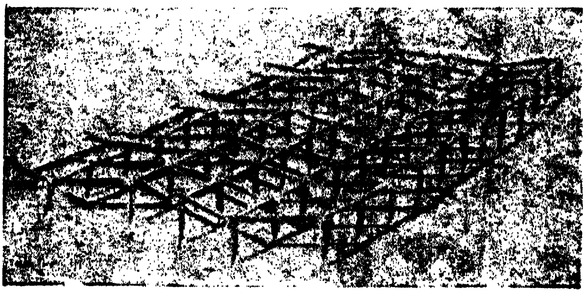
पंजाब हल में कुछ विशेषताएँ हैं। जुताई की गहराई कम या ज्यादा सरलता से की जा सकती है। छेददार कुन्दे में जंजीर को ऐसा कसना चाहिए कि हल न तो बाहर भागे और न बहुत ज्यादा बेजुती जमीन में जावे। इसका परहथा ठीक रहना चाहिए और एक-सा चलना चाहिए। यह हल लम्बा और मजबूत होता है। इसमें एक जोड़ी बैल लगता है। सारी जुताई का काम एक-सा होता है। इसमें हल को ठीक तरह से चलाने का प्रबन्ध रहता है। आगेवाला पहिया गहराई को ठीक रखता है। गरमी और बरसात दोनों मौसमों में इससे जुताई अच्छी होती है। आठ घंटे में यह एक एकड़ जमीन छः से आठ इंच तक कूड़े की गहराई जोत सकता है। यह सख्त और चिकनी मिट्टी को जोत सकता है। इसमें तीन हंडरवेट बल की आवश्यकता होती है। इसकी कीमत प्रायः ५० से ६० रुपये होती है। मेस्टन हल इससे सस्ता होता है। २० से ३० रुपये में मिल सकता है।

सामूहिक खेती करने में कल्टीवेटर और हैरो (Cultivator and Harrow) उपयुक्त होते हैं। दोनों के सिद्धान्त एक ही हैं। कल्टीवेटर में पहिये लगे होते हैं। हैरो में पहिये का होना आवश्यक नहीं है। कल्टीवेटर और हैरो केवल मिट्टी खोदते हैं। खाद और खर को मिट्टी में मिलाते नहीं है। मिट्टी के खोदने से भूमि में वायु अच्छी तरह से प्रविष्ट कर सकती है। इससे बैक्टीरिया उत्तेजित हो जाती है। मिट्टी भूरी भूरी हो जाती, घास-पात नष्ट हो जाते और पानी का निकास ठीक हो जाता है।

केवल कल्टीवेटर और हैरो से ही खेत बोने के योग्य नहीं हो जाता। इससे जुताई जल्दी और कम खर्च में होती है। देशी हल से पाँच गुना अधिक खेत जोता जाता है। खेत को जल्दी सुखाने के लिए कल्टीवेटर अच्छा है। इससे ढेला नहीं बनता, पपड़ी टूट जाती है, घास-पात भी इनसे निकल जाता है।

भारत में कई प्रकार के कल्टीवेटर मिलते हैं। कानपुर कल्टीवेटर सबसे सस्ता होता है। इस कल्टीवेटर में ऐसे पुर्जे लगे रहते हैं जिनसे जुताई की चौड़ाई कम या ज्यादा की जा सकती है। इससे पौधे उगे खेतों की भी पौधों को बिना नुकसान पहुँचाए जुताई कर

सकते हैं। मक्का और कपास के खेतों की गुड़ाई इससे सरलता से हो सकती है। अन्य खेतों की गुड़ाई और निकाई भी इससे अच्छी और जल्दी हो जाती है। हाथ से निकाई और गुड़ाई करने से खेतों में जो सख्ती आती है, वह इससे नहीं आती। बरसात के शुरू होने पर इससे जमीन की जुताई जल्दी होती है। देशी हल के बराबर गहड़ा चलता हुआ उससे चौगुनी अधिक जुताई करता है। खेतों से जड़ निकालने के लिए भी यह बड़ा उपयोगी होता है।



चित्र ११—काँटेवाला हैरो मिट्टी खोदने के लिए

कल्टीवेटर घोड़ों से या बैलों से चल सकता है। पाँच काँटोंवाला कल्टीवेटर भी होते हैं। इसमे जुताई की चौड़ाई कम या ज्यादा करने के लिए पुर्जे भी लगे रहते हैं। इन से बनी क्यारियाँ आलू बोने के लिए अच्छी होती है। मिट्टी चढ़ाने के लिए भी यह अच्छा होता है।

जिगजैग हैरो—हैरो कई प्रकार के होते हैं। इनमें सीधे-सीधे काँटे लगे रहते हैं। काँटे की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है। जिगजैज हैरो बीजों के मिलाने और खर-पात निकालने के काम में आते हैं। इसकी चौड़ाई साढ़े सात फुट से नौ फुट तक होती है।

ढैग हैरो—यह हैरो खरों को नोचकर दूर करने के लिए बहुधा इस्तेमाल होता है। इसे बीच-बीच में उठा देते हैं ताकि खेत का इकट्ठा कूड़ा नीचे छुटकर ढेर हो जाता है।

स्प्रिंगटूथ हैरो—यह बहुत कुछ ढैग हैरो से मिलता-जुलता है। इसका स्प्रिंगदार काँटा आवश्यकता के अनुसार बदला जा सकता है। इससे जुताई जल्दी होती है। इस कारण जिनके पास बहुत जमीन हो, उनके लिए बड़ा लाभदायक होता है। बरसात के बाद की जुताई के लिए भी, जहाँ जुताई शीघ्र करना है, यह बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इससे जुताई में गहराई देशी हल के बराबर रही होती है।

लीवर हैरो—इस हैरो में ३, ५ और ७ काँटे रह सकते हैं। इसमें बैलों पर बड़ा जोर पड़ता है। पर हर प्रकार के बैलों से खींचा जा सकता है। यह हैरो लाभदायक होता है।

एकमी हैरो—यह हल्की जुताई के लिए अच्छा होता है। इससे ढेले भी फुट जाते हैं।

लायलपुर तिकुनिया हैरो—यह हैरो बहुत सस्ता पड़ता है। इसमें लोहे के चौखट में लोहे की कीलें लगी रहती हैं। ये कीलें इस प्रकार लगाई जाती हैं कि जोतने के समय बीच की भूमि को न छोड़े।

चेन हैरो—यह हैरो खेतों के घास-पात निकालने के लिए अच्छा समझा जाता है।

डिस्क हैरो—जमीन को तोड़कर मिट्टी महीन करने के लिए यह अच्छा होता

है। इससे मिट्टी भी कुछ पलट जाती है। जो घास-पात छोटे हैरो के चलाने से नहीं जाते, वे इससे निकल जाते हैं। इसमें तवे लोहे के डण्डे में जोड़े होते हैं। बैठने के लिए एक गद्दी भी लगी रहती है। आवश्यकतानुसार तवे को भिन्न-भिन्न कोणों में बदल सकते हैं।

हैण्ड हैरो—हैण्डहैरो बागों और कतार में बोई जानेवाली फसलों में निकाई और गुड़ाई के लिए अच्छा होता है। छोटे-छोटे खेतों के लिए भी लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह खुरपी से अढ़ाई गुना ज्यादा काम करता है।

खुरपी खेतों से घास-पात निकालने और गुड़ाई करने के लिए खुरपी का उपयोग होता है। खुरपी भिन्न-भिन्न आकार की होती हैं। घास-पात की जड़े निकालने के लिए लंबी खुरपी उपयुक्त होती है। ऊपर से थोड़ी नीची मिट्टी से खर के काटने के लिए चौड़ी खुरपी का उपयोग होता है। खुरपी इस्पात की होती है और उसमें लकड़ी की मूँठ लगी रहती है।

हँसिया या हँसुआ—फसल काटने के लिए तीन प्रकार के हँसुए का उपयोग होता है। एक सादा बिना दाँतवाला हँसुआ। दूसरा दाँतवाला हँसुआ, तीसरा तलवार की तरह बड़ा हँसुआ। इन हँसुओं की सहायता से फसलें हाथ से काटी जाती हैं। फसल काटने के लिए अब मशीनों का उपयोग भी कहीं-कहीं, विशेषतः उन खेतों में जहाँ बड़े पैमाने पर खेती होती है, हो रहा है।

पाटा या हेंगा—खेत की मिट्टी को बराबर करना, ढेलों को फोड़कर मिट्टी को महीन करना और मिट्टी को दबाकर उसके पानी को उड़ जाने से रोकने के लिए खेतों में पाटा या हेंगा देने की आवश्यकता होती है। पाटा या हेंगा लकड़ी के तख्ते या दो बाँसों को जोड़कर बनाया जाता है। इसमें रस्सी लगाकर बैलों से खींचवाते हैं। खेत की जुताई हो जाने पर पाटा चलाना आवश्यक होता है। पाटा के स्थान में बेलन का भी उपयोग होता है। बेलन पत्थर के होते हैं और लकड़ी के भी। पत्थर के बेलन भारी होते है और उससे बैलों पर बहुत जोर पड़ता है। लकड़ी के बेलन हल्के और अच्छे होते हैं।

खेतों के खर-पतवारों को निकाल डालना बहुत आवश्यक है; क्योंकि ये खर-पतवार जमीन के खाद और पानी को खींच लेते हैं जिससे पैदावार की कमी होती है। ये सूर्य की किरणों को भी रोकते और इससे वास्तविक फसलों की बाढ़ को रोकते हैं। इन खत पतवारों में कीड़े-मकोड़े इकट्ठे होकर फसल को भारी हानि पहुँचाते हैं।

खत-पतवारों को नाश करने के लिए खेतों का जोतना बहुत आवश्यक है। जोतने से ये मिट्टी में दबकर सड़कर खाद बनते हैं।

मशीन—खेतों के काटने के लिए मशीनों का उपयोग वहाँ ही हो सकता है जहाँ खेत बड़े-बड़े होते हैं और जहाँ खेती सामूहिक ढंग से हो रही है। फसल को काटकर पुलियों में बाँध लेने के लिए भी बाइण्डर लगी हुई मशीनें मिलती हैं। इन मशीनों को 'मोअरे' या 'रीअर' कहते हैं।

ईख बोने के लिए खेत की जुताई गहरी और अच्छी होनी चाहिए। इसके लिए बारह से पन्द्रह बार तक की जुताइयाँ आवश्यक हैं। जुताई किसी मिटटी पलटनेवाले हल से हो तो अच्छा है। किसानों का कथन है कि जुताई ऐसी होनी चाहिए कि यदि तीन फुट ऊँचे से पानी से

भरा घड़ा जोते खेत में गिरा दिया जाय तो खेत की मिट्टी इतनी कोमल होनी चाहिए कि घड़ा फूटे नहीं। यदि ईख को नालियों में बोना हो तो तीन फुट की दूरी पर प्राय: छ: इंच गहरी नालियाँ बनानी चाहिए।

भारत में ईख के बोने का समय फरवरी से मार्च तक है। एक एकड़ भूमि के लिए ४० से ४५ मन ईख लगता है। बुवाई के लिए बीज स्वस्थ और नीरोग रहना चाहिए बीज के लिए उत्कृष्ट कोटि का स्वस्थ ईख चुनने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। ईख को टुकड़ों में ऐसा काटना चाहिए कि प्रत्येक टुकड़े में दो से तीन आँखें हों, बोआई या तो नालियों में हो या प्राय: तीन फुट की दूरी पर सीधी कतारों में हो।

ईख के खेत में खाद की आवश्यकता पड़ती है। प्रति एकड़ में प्राय: १०० से १४० पाउण्ड नाइट्रोजन और ४० से ६० पाउण्ड सुपर-फ़स्फेट की आवश्यकता होती है। इसके लिए प्रति एकड़ में २५ से ३० गाड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, डाली जाती है। यदि उसमें १५ से २० मन खली की खाद रहे तो अच्छा होता है। यदि खाद पुरानी हो तो अमोनियम सल्फेट या चीली शोरा डालकर नाइट्रोजन खाद की कमी पूरी की जा सकती है।

प्राय: १५ से २० दिन के बाद ईख के अंकुर आँखों से निकल आते हैं। जब ये अंकुर प्राय: छ: इंच के हो जायँ तब उन्हें अच्छी तरह से सींचने की आवश्यकता पड़ती है। सींचने के बाद जब पानी सूख जाय तब कुदाल से अच्छी तरह से गुड़ाई कर देनी चाहिए। खेतों में जो घास-पात उग आवें, उन्हें निकालकर खेतों को पूर्णरूप से साफ़ कर देना चाहिए। गर्मियों में ईख को प्राय: पाँच बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। प्रत्येक सिंचाई के बाद कुदाल अथवा किसी गोड़नेवाले हल से खेत की पपड़ी तोड़कर गुड़ाई कर देनी चाहिए। नालियों में बोई ईख की जड़ पर प्रत्येक सिंचाई के बाद दो इंच मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। यह क्रम तब तक जारी रखना चाहिए जब तक बरसात शुरू न हो जाय। इससे नालियों की ईख पर इतनी मिट्टी चढ़ जाती है कि वहाँ मेड़ बन जाती है और मेड़ों की जगह पर नालियाँ बन जाती है। कतारों में बोई ईख पर भी पहली वर्षा होने पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिए ताकि अधिक वर्षा से ईख गिर न पड़े। बरसात सुरू हो जाने पर फिर और कुछ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

जल्दी पकनेवाली ईख अक्टूबर के अन्त में तैयार होती है। देर से पकनेवाली ईख दिसम्बर में तैयार होती है।

यदि ईख के पौधों में कोई बीमारी लगी हो तो उसका उपचार करना चाहिए। कृषि-विभाग की सलाह से रोगों के निवारण का प्रयत्न करना चाहिए। भिन्न-भिन्न रोगों के निवारण के लिए भिन्न-भिन्न ओषधियाँ और भिन्न-भिन्न उपचार किये जाते हैं। उनका उपयोग जल्दी-से-जल्दी करके पौधों को रोगमुक्त कर रोग फैलने को रोकना चाहिए।

यदि ईख का बीज स्वस्थ है, किसी रोग का आक्रमण नहीं हुआ है और समय-समय पर आवश्यकतानुसार ईख के खेतों की सिंचाई हुई है और आवश्यक मात्रा में खाद डाला गया है तो प्रति एकड़ में ८०० मन तक ईख पैदा हो सकती है।

दसवाँ प्रकरण

ईख के विनाशी कीड़े और रोग

ईख की फसल के अनेक शत्रु हैं। इन शत्रुओं को पहचानने, उनकी प्रकृति का अध्ययन करने और उनसे बचने के उपायों की खोज निकालने के लिए स्थान-स्थान पर शोधशालाएँ खुली हुई हैं जिनमें इन सब बातों की आज खोजें हो रही हैं। इस सम्बन्ध में पर्याप्त साहित्य भी प्रतिवर्ष निकल रहा है, पर अभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रश्न हल हो गया है, अथवा निकट भविष्य में हल होनेवाला है। इस दिशा में अब भी बहुत कुछ काम करना बाकी है और दिन-प्रतिदिन नई समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं।

घास-पात—ईख के खेतों में घास-पात का होना फसल के लिए हानिकारक है। इन घास पातों को खेतों से निकाल देना बहुत आवश्यक है। खेतों की अच्छी जोताई से बहुत-सी घास आप-से-आप नष्ट हो जाती है। पीछे जो घास उग आवें, उन्हें गोड़ाई से सावधानीपूर्वक निकाल फेंकना चाहिए। खेतों में अनेक प्रकार की घासें उपजती हैं। कुछ घासें तो विशेष रूप से ईख के पौधों को हानि पहुँचाती हैं। सामान्य क्षेत्र-नाशिनी घास जिसे अँग्रेजी में स्ट्रिगाल्यूटीआ (Strigalutea) कहते हैं, एक ऐसी घास है जिसका ईख पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अन्य देशों में भी इसी प्रकार की घासें पाई गई हैं। केवल खेतों की घासों को ही नहीं निकालना चाहिए, वरन् आसपास के खेतों और सड़कों के निरर्थक घासों को भी सफाई कर देनी चाहिए ताकि वे खेतों में फैलने से रोके जा सकें। ऐसे घास-पातों पर विनाशी कीड़ों के पैदा होने और खेतों में फैलने से भी इससे रोका जा सकता है। इन घास-पातों पर कवक (Fungus) भी पैदा हो सकते हैं, जो पीछे ईखों को आक्रान्त कर सकते हैं। इन घास-पातों के नाश का सर्वोत्तम उपाय खेतों की जोताई और गोड़ाई है। कुछ रासायनिक विषों का भी उपयोग हुआ है। ऐसे विषों में सोडियम आर्सीनेट एक प्रमुख रासायनिक द्रव्य है जिसका उपयोग सफलता के साथ हुआ

पशु—कुछ पशु भी ईख की फसल के शत्रु हैं। भारत में हाथी, भालू, सियार और जंगली सूअर बहुधा ईख के पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। इन पशुओं से बचने के लिए खेतों के चारों ओर टट्टी लगा देते हैं, जिससे ये पशु खेतों में प्रविष्ट न कर सकें। चौकीदारों से भी खेतों की रक्षा की जाती है। आग जलाकर अथवा कुछ आवाज कर इन पशुओं को भगाया जा सकता है।

कुछ स्थानों में चूहे भी बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। ये केवल ईख के पेड़ों को ही नष्ट नहीं करते, वरन् बाँधों और मेड़ों में मिट्टी चालकर पानी के मार्ग में रुकावट डालते हैं।

चूहों के मारने के अनेक उपाय हैं और यदि किसी खेत में हों, तो उन्हें अवश्य मार डालना चाहिए।

कुछ स्थानों में खरहे भी ईख के खेतों को हानि पहुँचाते हैं। कहीं-कहीं खेतों के मजदूर भी शत्रुता के कारण ईख को नष्ट करते हैं; पर भारत में ऐसा होते नहीं सुना गया है—यद्यपि क्यूबा में यह घटना बहुत सामान्य है।

विनाशी कीड़े—अनेक कीड़े हैं जो ईख के पौधों का आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर देते हैं। ऐसे कीड़े अपने आहार के लिए ही ऐसा करते हैं। उनका और कोई उद्देश्य नहीं होता। इनमें कुछ कीड़े तो ऐसे हैं जो ईख पर ही विशेष रूप से आक्रमण करते हैं। ऐसे कीड़े साधारणतया शल्किपक्ष्मा वर्ग के हैं। इन्हें अँग्रेजी में लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera) वर्ग के कहते हैं। इस वर्ग में कीड़े, फतिङ्गे और तितली हैं। एक दूसरे वर्ग के कीड़ों को कंचुकपक्ष्मा (Coleoptera) कहते हैं। गोबरौला इसी वर्ग का है। एक तीसरे वर्ग का कीड़ा मत्कुण हेमिपटेरा, (Hemiptera) या तुण्डिगण (Rhynchcta) वर्ग का है। ऐसे कीड़े खटमल वर्ग के हैं। इनमें प्रथम दो वर्गों के कीड़े डिम्भावस्था में (Larvae) अण्डे से तत्काल बाहर निकलने की अवस्था में ही हानि पहुँचाते हैं। अन्तिम वर्ग के कीड़े प्रौढ़ावस्था में ही विनाशकारी होते हैं।

इन कीड़ों के आक्रमण के ढंग से हम इन्हें निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

१. छिद्रक या उन कीडों के डिम्भ, जो स्तम्भ में छेदकर ईख को नष्ट कर देते हैं। ये कीड़े शल्किपक्ष्मा और कंचुकपक्ष्मा वर्ग के हैं।

२. मूल-भक्षक डिम्भ या मक्षिजातक डिम्भ। ये मिट्टी में डिम्भ पैदाकर जड़ को नष्ट कर देते हैं। ये कंचुकपक्ष्मा वर्ग के कीड़े हैं।

३. पत्र-भक्षक डिम्भ। ये पत्तों को भक्षणकर पेड़ों को नष्ट करते हैं। ये शल्किपक्ष्मा वर्ग के कीड़े हैं।

४. पत्र और स्तम्भ छेदक कीड़े। ये पत्तों और स्तम्भों में छेदकर देते हैं। ये मत्कुण वर्ग के कीड़े हैं।

शल्किपक्ष्मा छिद्रक—ईख के पौधों में छेद करनेवाले फतिङ्गों का पता बहुत दिनों से लगा है। सन् १७१४ ई० में हैमिल्टन ने इसका वर्णन पहले-पहल किया था। पीछे अन्य कई लोगों ने इनका वर्णन किया है। इस वर्ग के अनेक फतिङ्गे हैं। पर इन सबों में बहुत घना सम्बन्ध है। जो छिद्रक (borer) देखे गये हैं, उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:—

शिखर छिद्रक—Scirpophaga auriflua—ये सफेद रंग के होते हैं। भारत में पाये जाते हैं।

Sc. monostigma—ये काले धब्बेवाले होते हैं। भारत में पाये जाते हैं।

Sc. intacta—ये सफेद रंग के होते हैं और जावा में पाये जाते हैं।

Sc. Chrysorrhoea—ये भारत में पाये जाते हैं।

Chilo enfuscatellus—ये पीले रंग के कीड़े जावा में पाये जाते हैं।

Grapholi thaSchista ceane—ये भुरे रंगवाले भी जावा में पाये जाते हैं।

स्तम्भ छिद्रक—Chilo auricilia—ये सुनहले किनारे के होते हैं और भारत में पाये जाते हैं।

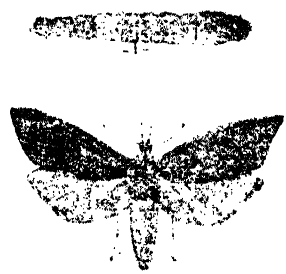
C. Simplex—ये भी भारत में पाये जाते हैं।

Non agria uniformu—ये नीलारुण रंग के कीड़े भारत में पाये जाते हैं।

Anerastia allutella—ये हर रंगवाले भी भारत में पाये जाते हैं।

मूल छिद्रक—Polyocha saccharella—ये भारत में पाये जाते हैं।

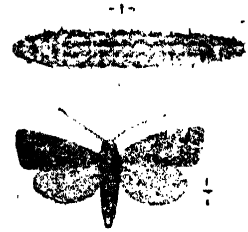
इन छिद्रकों के आक्रमण का ढंग प्राय: एक-सा ही होता है। फतिङ्गे पत्तों पर अण्डे देते हैं। इन अण्डों से डिम्भ निकलकर ईख में स्तम्भ की आँखों में प्रविष्ट करते अथवा शिखर के उद्भिदीय स्थान पर प्रविष्ट करते हैं। इस अन्तिम दशा में शाखें मर जाती हैं और पेड़ सूख जाता है। पहली दशा में ईख की हानि होती है, रस अशुद्ध होता और कवक के आक्रमण विशेषकर लाल गलन (red rot) की सम्भावना बढ़ जाती है। बड़े-बड़े ईख-चूषक की प्रकृति इससे भिन्न होती है। ये अपने अण्डों को जमीन के निकट रखते हैं और इनका डिम्भ धीरे-धीरे स्तम्भ के नीचले भाग में प्रविष्ट कर ऊपर और नीचे दोनों ओर बढ़ते हैं। ऐसे डिम्भों और फतिङ्गों के चित्र यहाँ दिये हैं।



चित्र १६—एक डिम्भ और उससे निकला फतिङ्गा

अनेक वैज्ञानिकों ने इन छिद्रकों का विस्तार से अध्ययन किया है। भारत के छिद्रकों का वर्णन कृषि-विभाग की पत्रिका "एग्रिकल्चर जर्नल ऑव इन्डिया" के १९०८ अंक में दिया हुआ है। अन्य देशों में पाये जानेवाले ऐसे कीड़ों का वर्णन अमेरिका और यूरोप के पत्रों में छपे हैं। मैक्सवेल ने एक छिद्रक का वर्णन इस प्रकार किया है :—

इस छिद्रक के अण्डे चिपटे, अण्डाकार और उन्नतोदर होते हैं। उसकी लम्बाई एक इंच का पचीसवाँ भाग $\frac{1}{२५}$, होती है। वे झुण्ड में अण्डे देते हैं। अण्डों की संख्या १० से ३० तक होती है। नये अण्डे हल्के पीले रंग के होते हैं। ३६ घण्टों मे रंग नारंगी हो जाता है और अन्त में नारंगी रंग कपिल वर्ण का हो जाता है। अण्डों के केन्द्र में पीछे काला हो जाता है। यदि अण्डे ईख पर रखे हों तो उसके पत्तों को आक्रान्त करते हैं। कुछ बड़े होने पर वे गाँठों को आक्रान्त करते हैं। डिम्भ अन्दर-अन्दर खाते हुए ३० से ३५ दिनों में बाहर निकल आते हैं। छ: दिनों तक वे कोशितावस्था (pupation) में रहते हैं। उसके बाद कीड़े पूर्णरूप में आ जाते हैं। फतिङ्गे दिन में निष्क्रिय रहते हैं। केवल चार दिनों तक जीवित रहकर १०० से ३०० अण्डे देते हैं।



चित्र १७ एक दूसरे प्रकार का डिम्भ उससे निकला फतिङ्गा

पत्र-भक्षक पदातिजातक—कभी-कभी पत्तों के खानेवाले कीड़े पदातिजातक (Caterpillar), बहुत बड़ी संख्या में अकस्मात् प्रकट होते और अकस्मात् ही लुप्त हो जाते हैं। ये पदातिजातक कहाँ से कैसे प्रकट होते हैं, इसका रहस्य मालूम नहीं है।

यह सम्भव है कि कहीं बाढ़ के कारण ये अपने स्थान से भागकर आये हों। ये कीड़े अनेक प्रकार के होते हैं। हवाई टापुओं में इन कीड़ों के प्रायः ३५ जातियों का पता लगा है। यद्यपि ये सब एक ही प्रजाति (genera) के हैं। इनमें 'युद्धकृमि', 'घास-युद्ध-कृमि' प्रमुख हैं। ये फतिङ्गों के डिम्भ होते हैं।

शल्किपक्षविनाशी कीड़े—ये कीड़े 'खटमल' वर्ग के हैं। ये साधारणतया सूखे पत्ते खाते हैं; पर कभी-कभी ईख की आँखों में प्रवृष्ट कर उन्हें नष्ट कर देते हैं। ये कीड़े बहुत अधिकता से फैले हुए देखे गये हैं। इसी प्रजाति का एक दूसरा कीड़ा 'पर्णबेल्लन' (leaf roller) है जो हवाई टापुओं में ईख को बहुत हानि पहुँचाता है।

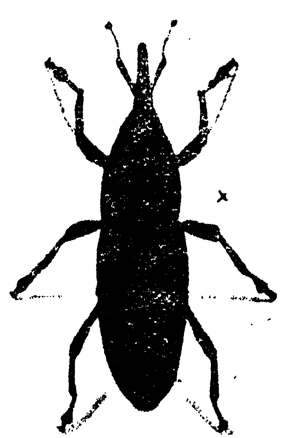
कंचुकपक्षा विनाशी कीड़े—कंचुकपक्षा कीट शल्किपक्ष कीट की भाँति ही विनाशकारी होते हैं; पर इनके आक्रमण का ढंग भिन्न होता है। ये डिम्भ को ज़मीन में रखते हैं। डिम्भ जड़ों को खा जाते हैं। ऐसे कीटों को 'मक्षिजातक' (Grub) कहते हैं। ये भी कई जाति के होते हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं। इन कीड़ों से बड़ी हानि होती है। एक मूल-छिद्रक कीट का जीवन-इतिहास इस प्रकार का है—



चित्र १८—इस कीड़े को Apogonia Destructorn कहते हैं।

"अगस्त और सितम्बर में कीड़े पत्तों के वाह्यतल पर अण्डा देते हैं। दस दिन के बाद अण्डों से मक्षिजातक निकलकर ज़मीन पर गिर पड़ता और शीघ्र ही आहार की खोज में ज़मीन को खोदता है। मक्षिजातक मिट्टी में ३१२ दिन रहता है और ईख, शकरकंद की जड़ों को भक्षण करता रहता है और तब अण्डा देता है। फिर वही जीवन-चक्र उसका चलता है। पहले एक इंच का अटारहवाँ भाग होता है; पर प्रौढ़ावस्था में पहुँचते-पहुँचते मक्षिजातक एक इंच का हो जाता है।

मत्गुण (Hemipterous) कीड़े—इन्हें तुण्डगण (Rhyrotous) भी कहते हैं। इन कीड़ों की विशेषता यह है कि इनके मुख निकले हुए होते हैं जिन्हें चोंच (Beak) या तुण्डक (Rostrum) कहते हैं। ये तुण्डक पशुओं अथवा उद्भिदों से रस चूसने के लिए होते हैं। इसी प्रजाति के कीड़े खटमल और जुआ हैं। ये स्तम्भ और पत्तों में छेद कर देते हैं जिन छेदों से कवक (Fungus) प्रविष्ट करते हैं। यद्यपि ये कीड़े अत्यन्त छोटे होते हैं और उनसे इतनी अधिक हानि नहीं होती; पर इनकी संख्या बड़ी होने और बड़ी शीघ्रता से बढ़ने के कारण ये फसल के बहुत बड़े शत्रु समझे जाते हैं।



चित्र १९—यह एक प्रकार का गोबरैला है जो ईख को रोगग्रस्त कर देता है।

ऋजुपक्षा (Orthopterous) विनाशी कीड़े—ये कीड़े ईख के बड़े शत्रु नहीं हैं। ये कभी-कभी ही ईखों को आक्रान्त करते हैं। ये दिन में जड़ों को खाते और रात में निकलकर ईख के ज़मीन के ऊपर के भागों को आक्रान्त करते हैं।

भारत में दीमक ईखों को बहुत हानि पहुँचाती है ये ईख के कर्तन और अँकुरने के बाद छोटी-छोटी शाखों को आक्रान्त कर नष्ट कर देती हैं।

बनारस में लेखक ने अपने बगीचे में जो ईखें लगाई थीं, उन्हें इन्होंने कई बार नष्ट कर दिया था। बिहार में इनका आक्रमण अधिक नहीं होता। इसी जाति के कुछ और कीड़े होते हैं जो ईख की फसल को बड़ी हानि पहुँचाते हैं।



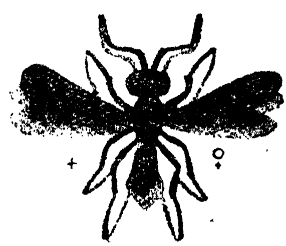
चित्र २० —चित्र १९ के गोबरैले से रोग-ग्रस्त ईख-स्तम्भ

एक-वरूथिन (Acarid) विनाशी कीड़े—वरूथी (Mite) एक प्रकार के कीड़े होते हैं जो ईख पर पाये जाते हैं और उसकी बहुत हानि पहुँचाते हैं। पर ये अन्य हानिकारक कीड़ों को नष्ट भी करते हैं। कुछ छिद्रकों को नष्ट करते हुए ये देखे गये हैं।

सूत्र कृमिवर्ग (mematode worms) के कीड़े—इस वर्ग के कुछ कीड़े ईखों को आक्रान्त करते देखे गये हैं।

व्यापक कृमि आक्रमण—जब से ईख की खेती विस्तृत रूप से प्रारम्भ हुई है, अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब कीड़ों का आक्रमण व्यापक रूप से हुआ है। अठारहवीं सदी में वेस्ट इण्डिज में एक बार ईख की खेती पर चीटियों का व्यापक आक्रमण हुआ था। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में delphax racchari vora, asciracid, का व्यापक आक्रमण हुआ था और उससे अपार क्षति हुई थी। सन् १८६० ई० में वदरगु (Cocid) का, झिंगुरो का और बीसवीं सदी में कुछ ऐसे ही अनेक व्यापक आक्रमण समय-समय पर हुए और उनसे ईख की फसल की क्षति हुई हैं।

विनाशी कीड़े बड़ी शीघ्रता से फैलते हैं। एक मादा कीड़ा हजारों अण्डा देती है। इस कारण यदि इन कीड़ों के विस्तार के रोकने का प्रयत्न न हो तो ईख की ही नहीं, अन्य सब प्रकार की खेती करना असम्भव हो जायगा। इन कीड़ों की वृद्धि के रोकने के कुछ साधन तो प्राकृतिक हैं और कुछ कृत्रिम।



चित्र २१—यह एक 'ईख मक्खी' है जो ईख को रोग-ग्रस्त कर देती है।

प्राकृतिक साधनों में कुछ ऐसे कीड़े हैं जो विनाशी कीड़ों को नष्ट कर देते हैं। जब विनाशी कीड़े व्यापक रूप से आक्रमण करें तो उनके नष्ट करनेवाले कीड़ों का उपयोग किया जा सकता है। पर ऐसा देखा गया है कि इन उपयोगी कीड़ों के नाश करनेवाले कीड़े भी फिर पैदा हो जाते हैं और उन्हें नाश कर देते हैं।

इन कीड़ों के अतिरिक्त कुछ कवक भी पाये गये हैं जो विनाशीकीड़ों को आक्रान्त कर उनकी वृद्धि को कुछ सीमा तक रोकते हैं। ऐसे कवको का अध्ययन अभी

पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। कुछ लोगों ने ऐसे अनेक कवकों का पता लगाया है जो विनाशी कीड़ों को नष्ट करते हैं। ऐसे कुछ कवको का खेतों में उपयोग भी हुआ है और उनसे लाभ हुआ है। ऐसे कवकों का उपयोग अधिकता से फल-वृक्षों के संरक्षण में कैलफोर्निया में हुआ है जहाँ सेव और अंजीर की विस्तार से खेती होती है। इन प्रयोगों के फलस्वरूप ईख के विनाशी कीड़ों के नष्ट करने के अनेक सफल प्रयोग हवाई और मौरिशस टापुओं में हुए हैं।

विनाशी कीटों के नष्ट करनेवाले कवको के उपयोग में कुछ खतरा भी रहता है; क्योंकि कुछ दशाओं में कीड़ों के परजीवी (parasites) स्वयं ईखों के विनाशक बन जाते हैं। कुछ दशाओं में परजीवियों का जीवन विनाशी कीड़ों पर निर्भर था। इससे विनाशी कीड़ों के नष्ट हो जाने पर वे स्वयं नष्ट हो जाते थे। ऐसी दशा में इन परजीवियों से कोई हानि की सम्भावना नहीं रहती। एक अच्छा उदाहरण जैमेका में चूहों के नाश करने के लिए नेवले का उपयोग था। चूहों को नाश करने के लिए नेवले दूसरे देशों से लाये गये थे। जब चूहे नष्ट हो गये तब ये नेवले मुर्गों को आक्रान्त कर नष्ट करने लगे।

विनाशी कीड़ों को नाश करनेवाले साधनों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं। एक शिकारी पशु और दूसरे अण्डा देनेवाले परजीवी। हवाई टापुओं में कुछ कीड़ों को नष्ट करने के लिए मैना पक्षी इकट्ठे किये गये थे। कुछ कीड़ों को गवरैये पक्षी भी खा जाते हैं। एक भृंग (elatarid) छिद्रक के डिम्भों को खाते हुए देखा गया है। चींटियाँ भी अनेक डिम्भों को खा जाती हैं।

अण्डा देनेवाले परजीवियों का प्रभाव अधिक होता है। ये दो रीतियों से काम करते हैं। कुछ तो विनाशी कीड़ों के अण्डों को ही नष्ट कर देते हैं अथवा उन्हें निरर्थक बना देते हैं और कुछ उनके डिम्भों को नष्ट कर देते हैं। पहले वर्ग में अनेक कलापक्षा (hymenoptera) और द्विपक्षा (biptera) हैं। इनमें भुज तन्तु मक्षी (chalcidids) और (myramids) प्रमुख हैं। ये बरें और मक्खियों-से जीव हैं जो विनाशी कीड़ों के अण्डे में ही अपना अण्डा देते हैं। इनके अण्डों से निकले बच्चे विनाशी कीड़ों के अण्डों को खा डालते अथवा निरर्थक बना देते हैं।

नियंत्रण की अन्य रीतियाँ—विनाशी कीड़ों को नष्ट करने के लिए विषों का उपयोग होता है। चूहों को नष्ट करने के लिए तो विष का उपयोग सबसे उत्कृष्ट तरीका समझा जाता है। जो विष इस काम के लिए उपयुक्त होते हैं, उनमें स्यानोजन गैस, स्ट्रिकनीन, आर्सेनिक, जंगली प्याज़, फ़ास्फ़रस और बेरियम सलफ़ेट से प्रस्तुत पदार्थ प्रमुख है। इन्हें आटा, केला अथवा छोए के साथ मिलाकर खाने के लिए रख देते हैं।

आर्सेनिक से प्रस्तुत पदार्थों से पत्र-भक्षक पदातिजातकों का बहुत अंश में नियंत्रण होता है। ऐसे पदार्थ 'पेरिस ग्रीन' और 'लण्डन पर्पल' के नामों से बिकते हैं। ये पदार्थ शलभ (moth) छिद्रकों के रोकने में भी उपयुक्त हुए हैं। आस्ट्रेलिया में पोटैसियम स्यानाइड से मक्षिजातक के नष्ट करने में सफलता मिली है।

हाथ से पकड़ना—जहाँ मजदूर सस्ते और पर्याप्त मिलते हों, वहाँ हाथों से कीड़ों को पकड़कर नष्ट किया जा सकता है। जिन पत्तों पर शलभ छिद्रक हों, उन पत्तों को

काटकर निकाल लेते और अण्डों को इकट्ठा कर ऐसे पात्र में रखते हैं जिसको छोआ का स्तर घेरे रहता है। इससे पारिजातक भाग नहीं सकते। कुछ कीड़े जालों में भी पकड़े जाते हैं। कीड़ों को आकर्षित करने के लिए कुछ चरा का भी उपयोग होता है। खट्टे ईख की सहायता से एक बार सात लड़कियों ने चार घंटे में सोलह हजार गुबरैलों को पकड़ा था।

फसल में परिवर्तन—कीड़ों के आक्रमण से बचने के लिए कुछ लोगों ने राय दी है कि खेतों में बार-बार एक ही फसल नहीं उपजाना चाहिए। बीच-बीच में दूसरी फसलों के बदलते रहने से कीड़ों के आक्रमण की संभावना कम हो जाती है। हमारे देश में फसल के परिवर्तन से ही कीड़ों का आक्रमण उतना उग्र रूप नहीं धारण करता जितना अन्य देशों में ईख की फसल में होता है। यहाँ के किसान एक ही खेत में बारबार ईख नहीं बोते। वे हर साल ईख के खेतों को बदलते रहते हैं।

जलप्लावन—कुछ स्थानों में कीड़ों के नाश करने के लिए खेतों को पानी से भर देते हैं। इससे अनेक कीड़े मर कर नष्ट हो जाते हैं।

प्रसवन स्थलों का विनाश—कुछ कीड़ों को उनके प्रसवन स्थान पर ही मार डालने की चेष्टाएँ हुई हैं। टिड्डी दल के नष्ट करने का एक प्रयत्न इस दिशा में हो रहा है; पर इसमें पूरी सफलता नहीं मिली है; क्योंकि टिड्डियाँ अपना अण्डा साधारणतया मरुभूमि में देती हैं और वहाँ तक पहुँचना कुछ कठिन हो जाता है। कुछ कीड़े पैखाने के आस-पास पनपते हैं। ईख के खेतों के आस-पास के घास-पत्तों पर कुछ कीड़े पैदा होते हैं। यदि इन स्थानों को स्वच्छ रखा जाय और उनके आवास-स्थलों को नष्ट कर दिया जाय तो वे कीड़े कम हो जाते हैं और इस प्रकार उनका सामूहिक आक्रमण रोका जा सकता है। कुछ स्थानों में खेत के घास-पातों के जला देने से ऐसा समझा जाता था कि वहाँ के कीड़े नष्ट हो जायँगे; पर अनुभव से पता लगता है कि उन्हें जलाकर नष्ट कर देने से विशेष लाभ नहीं होता। घास-पातों को सड़ाकर खाद बनाने से ही विशेष लाभ है।

जोताई—मूल-भक्षक मक्षि जातकों के नष्ट करने के लिए उचित अवसर पर खेत की जोताई से कीड़े बाहर निकल आते हैं और पक्षियाँ, कबूतर और मुर्गे उन्हें खा जाते हैं। झिंगुरों के नाश करने के लिए यह रीति अच्छी प्रमाणित हुई है।

बीज-ईखों की परीक्षा—जो ईख बोई जायँ, उनकी पूरी जाँच करके उन्हें बोना चाहिए। ईख के अनेक रोग, जो ईख के कर्तन के द्वारा फैलते हैं और उनके साथ कीड़े भी फैलते हैं, वे सरलता से रोके जा सकते हैं।

ईख के रोग—ईखों के अनेक रोग होते हैं। इन रोगों में अधिकांश किसी विशिष्ट कवक के कारण और एक रोग तो दण्डाणु (bacillus) के कारण होता है। इनमें कुछ जीवाणु तो केवल ईखों पर कार्य करते हैं और अन्य किसी पौधे पर इनका कोई प्रभाव पड़ते नहीं देखा गया है। पर कुछ जीवाणु ऐसे हैं जो दूसरे पौधों और जड़ों को भी आक्रान्त करते हैं। इनमें कुछ रोग तो बहुत दूर-दूर स्थानों में पाये गये हैं। वह रोग, जिसमें स्तम्भ के अभ्यन्तर का भाग लाल हो जाता है, समान रूप से ही भारत, जावा, हवाई टापू, वेस्ट इण्डीज, लुई सियाना, ब्रेजिल, मौरिशस, आस्ट्रेलिया और आरजेन्टिना

में पाये गये हैं। इन रोगों में 'लाल गलन', संश्लेष रोग, पीतपट्टी रोग, मंडुर, कर्बुरित (mottled) रोग, त्वचाभ्रमि (Cork screwing) रोग इत्यादि अधिक महत्त्व के हैं।

पत्तों के रोग—ईख के कुछ रोग हैं, जो ईख के पत्तों या पत्तों के आवरणों को आक्रान्त करते हैं। ये रोग इतने महत्त्व के नहीं हैं। इनसे ईख के पत्ते आक्रान्त हो सूख जाते हैं। ऐसे रोगों में निम्नलिखित रोग महत्त्व के हैं—

पीतविंदु (yellow spots)—इस रोग में पत्तों पर मैले पीले चिह्न पड़ जाते हैं। ये चिह्न अनियमित आकार के होते हैं। पत्तों पर कपिल रंग का कवक जाल (mycelium) पाया जाता है। पत्तों पर बीजाणु (spores) देखे जाते हैं। पत्तों का नीचला तल रुफेद धूल से आच्छादित रहता है। यह रोग जावा में ही देखा गया है। इसके बीजाणु चित्र में दिये रूप के होते हैं।

नेत्र विंदु (Eye-spot)—इस कवक के बीजाणु चित्र में दिये रूप के होते हैं। इनमें छोटे-छोटे लाल विन्दु होते हैं, जो पीछे बढ़कर लम्बे सुण्डाकार में बदल जाते हैं। इनके किनारे के भाग पीले होते हैं। पीछे केन्द्र का अंश धुंधला पीला हो जाता है और उसके चारों ओर धुंधला लाल क्षेत्र रहता है। इस लाल क्षेत्र के चारों ओर चमकीला पीला किनारा होता है। इसकी लम्बाई डेढ़ इंच से दो इंच तक होती है। देखने में मोर-पंख के नेत्र-जैसे होते हैं। लेन्स से देखने पर पत्तों से रोएँ बढ़े हुए देखे जाते हैं। कुछ ईखों में यह रोग नहीं पाया जाता। कुछ ईखों में केवल आर्द्र मौसम में ही यह रोग देखा जाता है। भारत की ईखों में यह रोग देखा गया है। इस रोग का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

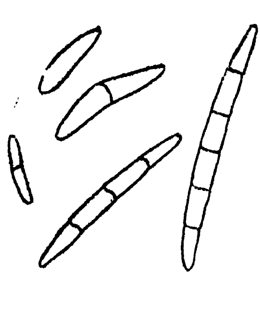


चित्र २२—पत्तों पर कपिल रंग का कवक-जाल (विशालित)

पत्र-आवरण का नेत्र-विन्दु—इस रोग में पत्र के आवरण में ईंट के रंग के



चित्र २३—पत्र-आवरण का नेत्र विन्दु



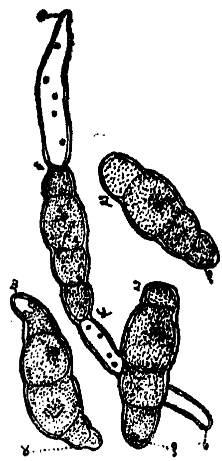
चित्र २४—पत्र-आधार के काल विन्दु के बीजाणु (Spores)

लाल विन्दु होते हैं। विन्दु का केन्द्र अन्त में काला हो जाता है। इसके बीजाणु

चित्र में दिये रूप से देख पड़ते हैं। इन की लम्बाई २० से ४० अणुभ (micron) और चौड़ाई सात अणुभ के होते हैं। अनेक देशों की ईखों में यह रोग पाया गया है।

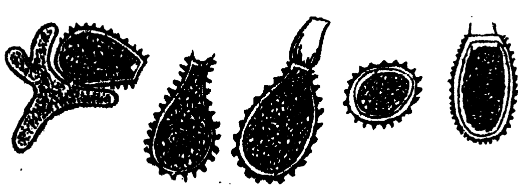
पत्र-आधार के काल-विन्दु (Black spot of the leaf Base)—इस रोग में पत्र का आधार काला हो जाता है। इसके बीजाणु के चित्र यहाँ दिए हैं। ये बलिता (bobbin) के आकार के १० से ५० अणुभ लम्बे और २ से ३·५ अणुभ चौड़े होते हैं। इनमें एक से सात पटियाँ (septa) होती हैं। यह रोग जावा में ही देखा गया है।

कपिल पत्र विन्दु (Brown leaf spot)—यह रोग बिहार में बहुत पाया गया है। अन्य देशों में भी पाया गया है। इंच के आठवें भाग लम्बाई का आरक्त कपिल वर्ण का अण्डाकार संकीर्ण विन्दु पहले-पहल होता है। धीरे-धीरे यह बढ़ता जाता है। पीछे इसके तीन संकेन्द्रित बलय, कपिल, लाल और पीले रंग के बनते हैं। अन्त में बिन्दु चौड़ा अण्डाकार हो जाता है। बलय गहरा कपिल रंग का और केन्द्र में पुआल के रंग का हो जाता है। इसके बलय चौथाई से तिहाई इंच लम्बे और चौथाई या इससे कुछ अधिक इंच चौड़े होते हैं। पीछे चित्र में दिये आकार के देख पड़ते हैं।



चित्र २५—बलय विन्दु के कवक

बलय विन्दु (Ring spot)—इसके कवक चित्र में दिये रूप के नेत्र विन्दु से ही होते हैं। इस विन्दु के आकार आधे इंच से अधिक नहीं होते और इतने ही चौड़े होते हैं। इनमें पीला चमकीला किनारा जैसा नेत्रविन्दु नहीं होता। इसके विन्दु के केन्द्र में धुंधला भुरा रंग लिए हुए सफेद रंग होता है। इसकी कणी (conidia) पत्ते की नीचली तह पर होती है। इसकी तीन कोशाएँ होती हैं। मध्य की कोशा बाह्य कोशाओं से बड़ी होती है। पीछे पत्ते पर छोटा काल विन्दु के रूप में धान्यावरण (perithecia) प्रकट होता है। प्रत्येक धानी (ascus) में चार बलिता-सदृश बीजाणु होते हैं। इस रोग का फैलना जल-वायु पर निर्भर करता है।



चित्र २६—पत्र-आवरण के लाल विन्दु, ईख मंडुर

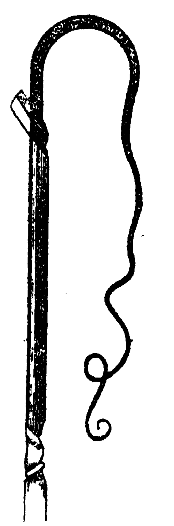
पत्र-आवरण के लाल विन्दु—इस रोग में पत्र के आवरण का रंग लाल हो जाता है। धीरे-धीरे यह सारे आवरण पर छाय जाता है। इसका रंग पीछे बदलकर नारंगी आभा की हो जाती है। पत्र के आवरण से रोग फैलकर स्तम्भ में आता और ग्रन्थि के निकट के कोमल भागों को आक्रान्त करता है। आक्रान्त भाग पर प्रचुर श्लेषमल (mycelium) छा जाता है और आल्पीन के सिरे के आकार के अनेक जालाश्म

(sclerotia) पैदा हो जाते हैं। रोग से आक्रान्त भाग की गंध छत्ते (mush rooms) सी होती है। छोटी ईखों में यह रोग प्रचुरता से होता है।

ईख मंडुर (Cane Rust)—ईख मंडुर के बीजाणुओं के विभन्न रूप चित्र में दिये हैं। इस रोग में पत्तों पर पतला नारंगी रंग की धारी प्रकट होती है। इन धारियों पर नारंगी रंग की धूल रहती है। इस धूल से इस रोग को अन्य रोगों से विभेद करते हैं। यह मंडुर कवक के बीजाणुओं से बना होता है।

स्तम्भ के रोग—जो कवक स्तम्भ को आक्रान्त करते हैं, वे ईख को अधिक क्षति पहुँचाते हैं। स्तम्भ के रोग अनेक हैं और उनका अध्ययन अधिक विस्तार से हुआ है।

कालिका (smut)—इस रोग से आक्रान्त होने पर ईख का रंग काला हो जाता है। इस रोग के कीड़े समस्त ईख में पाये जाते हैं। पर ईख का शिखर सबसे अधिक आक्रान्त होता है। वह काला चाबुक-सा पतला हो जाता है। इस काले भाग पर चिपचिपा दुर्गन्धवाला श्लेष्मा सटा रहता है। थोड़ा-बहुत सभी प्रकार की ईखों को यह आक्रान्त करता है। भारत तथा अनेक टापुओं में जहाँ ईख उपजती है, यह रोग पाया जाता है।


चित्र २७—कालिक रोग आक्रान्त ईख

सश्लेष्म (gumming) रोग—इस रोग में ईख पर गोंद जम जाता है। इस गोंद के बनने का कारण एक प्रकार की बैक्टीरिया है। ईख के काटने या छेदन पर ही गोंद निकलता है। ईख के शिखर पर भी दुर्गंधवाला श्लेष्मा इकट्ठी होती है। इससे ईख की वृद्धि रुक जाती है। यह रोग पहले-पहल जावा में देखा गया था। पीछे भारत, ब्रेजिल और आस्ट्रेलिया में देखा गया।

स्तम्भ का रक्तगलन (red rot)—इस रोग को सारु या सोका भी कहते हैं। इस रोग के बीजाणु चित्र में दिये गये हैं। यह रोग पहले जावा में देखा गया था। पीछे वेस्ट इण्डीज, भारत और हवाई टापू में देखा गया। यह रोग अन्दर-अन्दर फैलता है। जब पौधा बहुत आक्रान्त होता है, तब रोग बाहर प्रकट होता है। इससे स्तम्भ रोगी हो जाता है और पत्ते मर जाते हैं।

यदि रोगी ईख को सुखने के लिए छोड़ दिया जाय, तो उसपर काली लकीर प्रकट होती है। जिस ईख में यह रोग होता है, उसमें चीनी की मात्रा कम हो जाती है। रस की शुद्धता भी कम हो जाती है। इससे समझा जाता है कि इक्षु-शर्करा के परिवर्तन करने के


चित्र २८—सश्लेष्म रोग के कवक

किण्व (Enziyme) की उपस्थिति से चीनी की मात्रा कम हो जाती है। पहले समझा जाता था कि ईख की छाल के छिल जाने से यह रोग होता है; पर अब प्रमाणित हुआ है कि जड़ से यह रोग स्तम्भ में जाता है। यह रोग केवल ईख में ही देखा गया है, अन्य पौधों में

नहीं। इस रोग के होने की सूचना भारत, जावा, हवाईटापुओं और वेस्ट इण्डीज़ से मिली है। यह रोग वस्तुतः बहुत विस्तृत पाया गया है।

ईख शैथिल्य रोग (wilt)—इस रोग का पता पहले-पहल भारत में ही लगा था। पीछे अन्य देशों में लगा। इसका रंग लाल गलन से कुछ भिन्न होता है। इसका रंग कुछ नीलारुण (purple) होता है और लाल धब्बा पहले चमकीला; किन्तु पीछे धुंधला कपिलवर्ण का हो जाता है।

मूल रोग (Root Disease)—मूल रोगों का आशय यह नहीं कि यह रोग केवल जड़ों में ही होता है। इसका आशय केवल यही है यह रोग नीचले भागों में होता है। सम्भवतः इसके कवक मिट्टी में रहते हैं। ऐसे रोगों में शुष्क रोग महत्त्व का है।


चित्र २१—लाललन रोग के कवक से स्तम्भ का रक्तगलन

शुष्क रोग (Dry Disease)—ईख का यह बहुत बड़ा बुरा रोग है। इस रोग में स्तम्भ के आधार पर के पत्र-आवरण में एक श्वेत कवक जाल (myceliun) देख पड़ता है। इस कवक-जाल की पट्टी (Strand) जमीन में प्रविष्ट कर जड़ो का अपक्षय करती है। इससे जड़ों से पेड़ को पानी नहीं मिलता और पेड़ सूखने लगता है। यह रोग कभी वर्षा ऋतु में होता है और कभी सूखे मौसम में। इसके अतिरिक्त कुछ और छोटे-छोटे इसी प्रकार के रोग होते हैं जो ईख के पौधों को सुखा देते हैं।

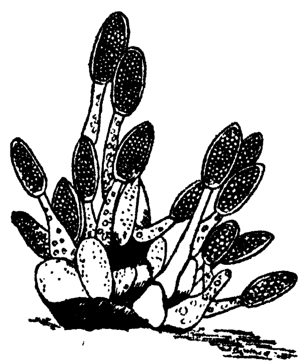
वल्क रोग—वल्क रोग से उन रोगों का आशय है जो ईख के वाह्य छिलके को आक्रान्त करते हैं। ऊपर में जिन रोगों का वर्णन है, उनमें भी कुछ रोग छिलके को आक्रान्त करते हैं। उन रोगों के सिवा कुछ विशिष्ट कवक होते हैं, जो ईख के छिलकों को आक्रान्त करते हैं। ऐसे एक रोग का वर्णन पहले-पहल सन् १८९० ई० में इन शब्दों में हुआ था—

"वल्क कवक से आक्रान्त ईख पर धुंधला लाल-कपिल रंग के धब्बे देखे जाते हैं। ये धब्बे ईख के आधार या मध्य भाग की एक या दो गाठों पर देखे जाते हैं। यह लाल धब्बा शीघ्र ही ऊपर और नीचे फैलकर अधिक धुंधला हो जाता है और ईख को सड़ा देता है। गाठों के बीच में छोटे-छोटे धब्बे भीतर से निकलकर वाह्य तल पर प्रकट हो जाते हैं।

इस रोग की विशेषता यह है कि यह पक्के ईख में ही फसल के काटने के कुछ पहले प्रकट होता है। इससे कुछ ही दिनों में सारी फसल सूख जाती है। जिस कवक से यह रोग होता है, उसका नाम पहले 'Trichosphaeria sacchari दिया गया था। पीछे इसका नाम पड़ा Melanconium sacchari। एक तीसरा वल्क कवक Cytospora Sacchari' भी भारत में पाया गया है। यह साधारणतया उसी दशा में पाया जाता है जब छिलके में कुछ चोट लगी होती है। यह चोट तुषार से हो सकता है अथवा छिद्रकों से अथवा तेज वायु से जिससे स्तम्भ मुड़ जाने के कारण उसमें दरारें पड़ जायँ। ऐसी चोट पर ही कवक आक्रमण कर ईख का अपक्षय कर निकम्मे बना देते हैं। चित्र में एक रोग ग्रस्त ईख और उसके बीजाणु का चित्र दिया हुआ है।

ईख के दो और रोग हैं जिनका सम्बन्ध किसी विशिष्ट जीव से नहीं देखा गया है। ऐसे एक रोग को सेरेह कहते हैं। दूसरे रोग को पीत पट्टी रोग भी Yellow stripe disease) कहते हैं।

सेरेह (Sereh)—सेरेह रोग में ईख की पीठ (Stool) में छोटे-छोटे वृन्त (Stalks) निकल आते हैं। इन वृन्तों में छोटी-छोटी गाँठें होती हैं। नीचे की कलियों से शाखें निकलती हैं, जिनमें छोटे-छोटे वृन्तों के झुण्ड होते हैं जो पत्तों से ढंके रहते हैं। ईख का समस्त पेड़ निम्बु घास के पेड़-सा दीख पड़ता है। जावा की भाषा में इस रोग को 'सेरेह' कहते हैं। एक दूसरे प्रकार के सेरेह में एक दो स्तम्भ सामान्य आकार के होते हैं और उनके ऊपरी भाग में छोटी छोटी गाँठें होती हैं और पंखे के आकार के शिखर बन जाते हैं। नीचे की आँखें भी अङ्कुरित हो छोटी-छोटी शाखें बनाती हैं। इस रोग के निम्नलिखित लक्षण दिये गये हैं। अभी तक निश्चित रूप में पता नहीं लगा है कि यह रोग क्यों होता है, यद्यपि इसपर बहुत कुछ काम हो चुके हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि एक प्रकार के सूत्रकृमि (Nematode) के कारण यह रोग होता है। इस कृमि का नाम (Heterodera Javanica) दिया गया है। पर अन्य लोग इस मत को स्वीकार नहीं करते। यह मत कि इस रोग का किसी कवक से सम्बन्ध है, स्वीकृत नहीं हुआ है। साधारणतया ऐसा समझा जाता है कि किसी विशिष्ट मिट्टी और संवर्ध (Cultural) परिस्थितियों के कारण यह रोग होता है और इस रोग के कारण ईख का जब स्वास्थ्य गिर जाता है, तब कुछ जीवी प्रविष्ट कर जाते हैं, जिनकी उपस्थिति का कुछ लोगों ने उल्लेख किया है। यह सम्भव है कि इस सेरेह रोग का पीत लकीर और श्लेष्मा से सम्बन्ध हो। यह निश्चित नहीं है कि रोग सांसर्गिक है अथवा नहीं। यह रोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है; पर जिस खेत में रोग हुआ है, उस खेत में स्वस्थ पेड़ लगाने से उसमें रोग होता हुआ नहीं देखा गया है। रोग सांसर्गिक हो अथवा नहीं; पर यह निश्चित है कि यह रोग एक पेड़ से दूसरे पेड़ में जाता है। जो स्तम्भ सेरेह से आक्रान्त होते हैं, उन स्तम्भों के कर्तन के बोने से उसमें रोग हो जाता हैं। यह रोग सब देशों की ईखों में पाया गया है।


चित्र २०—कालगलन रोग के बीजाणु

१. सेरेह की ऊपज झाड़ीदार होती है। इसकी लम्बाई तीन से चार सेन्टीमीटर होती है।

२. गाँठों के बीच का स्थान कम होता जाता है और पत्तों का आकार पंखे-सा हो जाता है।

३. ईख के पर्व आधे से तीन चतुर्थांश इंच लम्बे होते हैं।

४. ग्रन्थियाँ (Nodes) लाल रंग की होती हैं।

५. मूल तन्तुएँ वायु में बनती हैं।

६. तन्तु-वाही (Fibre-vascular) पोटल (Bund'es) लाल रंग के होते हैं। रोग का यह एक विशिष्ट लक्षण है, कि ग्रन्थियों पर यह अधिक स्पष्ट होता है।

ग्रन्थियों के बीच लाल धब्बे प्रकट होते हैं। स्तम्भ के लाल बिन्दु से यह भिन्न होता है।

७. आन्तभौम (Subterraneous) शाखाएँ अनेक बनती हैं।

८. मूल और आवरण सिन्दुर वर्ण के होते हैं।

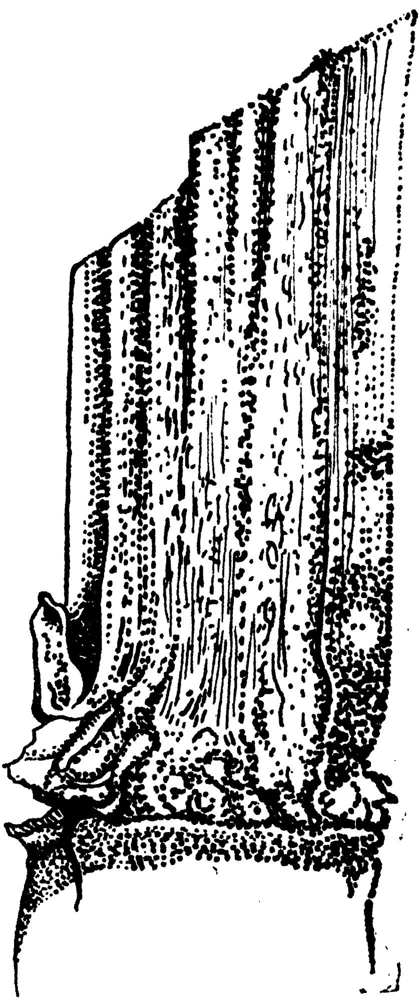
९. कुछ दशाओं में स्तम्भ पर मोम नहीं बनता।

१०. वृन्त के बढ़ते हुए भाग बहुधा लाल रंग के हो जाते हैं।

११. वृन्त और पत्र-आवरण परस्पर सटे हुए होते हैं।

१२. गौण जीवियों का सञ्चय होता है।

पीत पट्टी रोग—यह रोग भी अनेक देशों की ईखों में पाया गया है। इसके लक्षण पहले पत्ते पर प्रकट होते हैं। पारवेषित (Transmitted) प्रकाश में देखने से पत्तों में पीले धब्बे देख पड़ते हैं। यदि आक्रमण तीव्र है तो धब्बे एक दूसरे से मिले हुए पीली पट्टी में मालूम पड़ते हैं। इस रोग से ईख के भार में कमी हो जाती है; पर चीनी की मात्रा में कोई कमी नहीं होती। इस रोग से पत्ते के तल के कुछ भाग में स्थायीकरण (immobilisaton) हो जाता है। यह रोग भी रोगग्रस्त ईख के कर्तन में आता है और कर्तन से पौधों में फैलता है। यह रोग सांसर्गिक है।



चित्र ११—एक Thyradaria tarda नामक कवक से आक्रान्त ईख

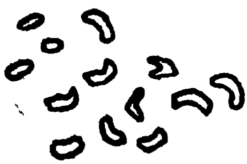
पीतरक्तता (Chlorosis)—क्लोरोफील के अभाव से कुछ ईखों में पीत पट्टियाँ बनती है। यह ऐसी ही मिट्टी में ईख बोने से पट्टियाँ बनती हैं जिसमें कैलसियम कार्बोनेट और नमक की मात्रा अधिक हो। यह रोग अनेक देशों की ईखों में पाया गया है। पेड़ों के दैहिक कार्यों के सञ्चालन में गड़बड़ (विक्षोभ) से यह रोग होता है। मिट्टी या पत्तों में लोहे के सल्फेट के डालने से यह कुछ सीमा तक अस्थायी रूप से दूर किया जा सकता है।

कवक रोगों का नियंत्रण—कवक रोगों के निवारण के लिए अनेक उपाय उपयुक्त होते हैं। ऐसे उपायों में निम्नलिखित महत्व के हैं—

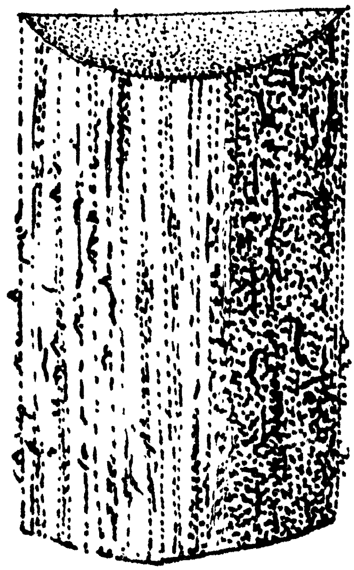
(१) ईख के बीजों के स्वस्थ रहने से अनेक रोगों का निराकरण हो सकता है। अनेक रोग, जो ईखों में पहले देखे जाते थे, ईख के बीजों के बदलने से अब नहीं

देखे जाते हैं। कुछ किस्म की ईखों में रोग लगते हैं और कुछ में नहीं। जिस ईख में रोग का आक्रमण कम हो उसे ही चुनकर बोना चाहिए। एक प्रकार की ईख में एक रोग होता है तो दूसरे प्रकार की ईख में दूसरा। किसी ईख में बल्क रोग होता है तो किसी ईख में मूल रोग। किसी ईख में 'रक्त गलन' होता है तो किसी में 'नेत्र विन्दु'। किसी-किसी ईख में 'पीत पट्टी' नहीं होती। 'चुन्नी' ईख में सेरेह की बीमारी नहीं होती है।

पौधों की स्वास्थ्यकर अवस्था—रोगवाले जीवी या बैक्टीरिया या कवक उन्हीं ईखों को आक्रान्त करते हैं जो दुर्बल हैं। ईख के दुर्बल होने के कारण मिट्टी की अवस्था है। यदि मिट्टी की अवस्था अनुकूल नहीं है तो पौधों को रोगों से आक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। कुछ रोग तो उन्हीं ईखों में होते हैं जिनके खेत की मिट्टी स्वास्थ्यकर नहीं



चित्र ३२—एक दूसरे कवक Cytospora Sacchari के बीजाणु।



चित्र ३३—चित्र ३२ में दिये कवक से आक्रान्त ईख।

है। इस कारण रोगों के आक्रमण से ईखों को बचाने के लिए मिट्टी की दशा सुधारना बहुत आवश्यक है। यदि असावधानी से जोताई हो. ईख के पौधे दुर्बल हो जायँ तो उसमें भी रोगों के आक्रमण का भय रहता है। इस कारण खेतों की जोताई का ठीक-ठीक होना बहुत आवश्यक है।

फसल का परिवर्तन—एक ही खेत में ईख के बार-बार बोने से ऐसे खेतों में ईख के रोगों के फैलने की सम्भावना रहती है। यदि ऐसे खेतों में दूसरे पौधे बोये जायँ तो कुछ ऐसा समय निकल आता है जिसमें खेतों में ईख नहीं रहती। इससे ईख के परजीवी कुछ तो अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जिन कवकों से 'जड़' रोग होते हैं, उन रोगों का, मिट्टी में होने के कारण फसल के परिवर्तन से, बहुत कुछ निवारण हो जाता है। फसल के परिवर्तन के स्थान में भिन्न-भिन्न किस्म की ईखों के बोने से भी रोगों से बहुत-कुछ छुटकारा हो जाता है। क्योंकि भिन्न-भिन्न ईखों के रोग एक-से नहीं होते। गेहूँ के सम्बन्ध में भी ऐसा ही देखा गया है।

स्वस्थ बीज का उपयोग—ईख के बीजों के सम्बन्ध में सावधानीपूर्वक चुनाव से रोगों का निवारण बहुत-कुछ किया जा सकता है। यदि बीज स्वस्थ ईख से अथवा स्वस्थ खेत की ईख से लिया गया है तो सम्भव है कि ऐसी ईखों में रोग का आक्रमण न हो। जावा में बीज के लिए विशिष्ट स्वस्थ स्थानों में ईख उपजाई जाती है। ऐसी ईख से सरेह रोग से कुछ सीमा तक प्रतिरक्षित (immune) पाई गई है। पीतपट्टी का रोग पित्रागत (heriditory) होता है। यदि रोग-रहित बीज का सावधानीपूर्वक चुनाव हो तो इस रोग का बहुत कुछ नियंत्रण हो सकता है। ईख के कर्तन के अच्छे चुनाव से अनेक रोगों का निवारण हो सकता है।

कवकमार द्रव्यों का उपयोग—ईख के कर्तन के कवकमार द्रव्यों से धोने से कवकों के आक्रमण का भय कम हो जाता है। कर्तन के न अंकुरने का कारण भी दूर हो जाता है। इसके लिए अनेक विलयन (घोल) उपयुक्त होते हैं। उनमें बोर्डो का मिश्रण एक अच्छा निर्मित है। इसके सरक्षण के गुण ज्ञात हो चुके हैं।

बोर्डो का मिश्रण इस प्रकार तैयार होता है। २५ पाउण्ड तूतिये को २५ गैलन जल में घुलाना, ४ पाउण्ड चूने को २५ गैलन जल में शान्त करना; शान्त चूने को धीरे-धीरे तूतिये के विलयन में डालना और बराबर हिलाते रहना। जब समस्त चूना पड़ जाय तब इस मिश्रण में इस्पात के चाकू का चमकीला फल डालें और तब यदि फल पर लाल निःक्षेप जम जाय तो कुछ और चूना डालना चाहिए।

ऐसे मिश्रण में ईख के कर्तन को आधा घंटा डुबाकर निकाल लेना चाहिए। बोर्डो मिश्रण के स्थान में कर्तन के छोरों को अलकतरे में भी डुबाया जा सकता है।

रोगजीवियों का विनाश—ईख में चूने के लेप से अनेक मूल-कवकों से रक्षा की जा सकती है। जिस ईख में रोग होने का सन्देह हो अथवा जो ईखें मर गई हों, उन्हें जलाकर नष्ट कर देना चाहिए, यद्यपि जलाकर नष्ट करने की रीति अच्छी नहीं है। जिन तरीकों से ईख में चोट पहुँचने का भय हो, उनसे सावधान रहना चाहिए। अनेक जीवी इन चोटों के द्वारा ही स्तम्भ में प्रविष्ट करते हैं। बाहर से जो ईख आवें, उनकी पूरी परीक्षा होनी चाहिए। उन्हें तभी उपयोग की आज्ञा मिलनी चाहिए जब स्पष्ट रूप से मालूम हो जाय कि उनमें कोई रोग नहीं है।

कृषि-विभाग—सरकार के कृषि-विभाग के खेतों में स्वस्थ ईख उपजाकर बीजों के लिए किसानों को देना चाहिए। प्रत्येक जिले के स्थान-स्थान पर प्रयोग के फार्म बने हैं। इन फार्मों में स्वस्थ ईख उपजाना चाहिए। किसानों के खेतों में भी जहाँ स्वस्थ ईखें हों, उन्हें धन देकर बीजों के लिए रखवाना चाहिए और बोने के समय उचित मूल्य पर किसानों में बाँटना चाहिए। किसानों को भी सहयोग समितियों की ओर से प्रयत्नकर स्वस्थ बीज का वितरण करना चाहिए।

ग्यारहवाँ प्रकरण

ईख की कटाई

ईख का पौधा जब प्रौढ़ हो जाता है और उसमें चीनी की मात्रा अधिकतम हो जाती है तब ईख की कटाई होती है। ईख की कटाई हाथों से होती है। एक आदमी जब ईख काटने में दक्ष हो जाता है, तब घंटे में हजारों पाउण्ड ईख काट सकता है। एक मजदूर दिन में चार टन तक ईख काटते हुए देखा गया है। ईख काटने में अनेक प्रकार के हथियार इस्तमाल होते हैं। इनमें चौड़े फल की छुरियाँ, बड़ा हसुआ, दाब और चौपायों के चारा या घास काटनेवाली गँड़ासी और चौड़े फल की कुदाल प्रमुख हैं।

फसल काटने के लिए अनेक मशीनों का आविष्कार हुआ है। गेहूँ, जौ इत्यादि फसलें बड़ी सरलता से इन मशीनों के द्वारा काटी जाती हैं। ईख काटने के लिए भी अनेक मशीनों का निर्माण हुआ है; पर इन मशीनों में सफलता नहीं मिली है। व्यापक रूप से इन मशीनों का उपयोग आज तक नहीं हो सका है। ईख काटने की मशीनें जितनी बनी हैं, वे प्रधानत: दो प्रकार की हैं। एक प्रकार की मशीन को चालक जहाँ चाहे, वहाँ ले जा सकता है। ऐसी मशीनों में काटने के भाग को 'कर्तक (Cutter) कहते हैं। कर्तक की बाहु में छुरियाँ लगी होती हैं और यही छुरियाँ ईख को काटती हैं। एक ऐसी ही मशीन को पाल (Paul) ने बनाया है। इसे पाल की मशीन कहते हैं। एक इसी प्रकार की मशीन पैक्सटन (Paxton) ने भी बनाई है। पैक्सटन की मशीन में हल्की गाड़ी में छुरियाँ और मोटर लगी हुई हैं। मोटर की छुरियाँ ईख को काटती हैं।

दूसरे प्रकार की मशीन को घोड़े खींचते हैं अथवा तेल या पेट्रोल जलाकर वह चलाई जाती है। इसमें दो आदमियों की आवश्यकता होती है – एक चालक की और दूसरे काटनेवाले की। इनके अतिरिक्त अन्य कई मशीनें भी बनी हैं; पर उनमें सफलता न मिलने के निम्नलिखित कारण हैं—

१. ईख काटने में अन्य फसलों के काटने की अपेक्षा अधिक अवरोध होता है; क्योंकि ईख के डंठल कड़े होते हैं और उनके काटने में अधिक दबाव की आवश्यकता पड़ती है।

२. ईख काटने में ईख के पेड़ को जड़ से काटना चाहिए। ऐसा करने से मशीन की छूरी को नुकसान पहुँचने की सम्भावना रहती है।

३. ईख के पेड़ सीधे खड़े नहीं रहते। वे इधर-उधर चारों तरफ गिरे-पड़े रहते हैं।

४ ईख की कटाई में ईख के साथ-साथ ईख के शिखर को भी काटना जरूरी है और चूँकि ईख की लम्बाई एक-सी नहीं होती, इस कारण ऐसा यन्त्र तैयार न हो सका है जो ईख काटने के साथ-साथ शिखर को भी काट सके।

५. ईख की कटाई में ईख के पत्तों को भी हटाना जरूरी है, मशीनों में पत्तों के हटाने का कोई सरल उपाय नहीं पाया गया है।

६. कुछ दशाओं में ईख की जड़ों को क्षति पहुँचाना ठीक नहीं है। इन जड़ों से ही फिर शाखें निकलती हैं। इस कारण मशीन ऐसी होनी चाहिए जो जड़ों को क्षति न पहुँचाये। सिंचाई की जो सीता बनती है, उसमें भी कोई क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। इस कारण ईख के काटने में भारी यंत्रों का उपयोग उचित नहीं होता।

उपर्युक्त कारणों से कोई ऐसी मशीन नहीं बनी है जो सब समस्याओं का समाधान कर सके। इस कारण अनेक मशीनों के पेटेन्ट होने पर भी ईख काटने में किसी यंत्र का व्यवहार आज व्यापक रूप से नहीं हो रहा है। पर दो प्रकार की मशीनों का यहाँ वर्णन कर देना आवश्यक है, जिनका कुछ सीमा तक व्यवहार होता है। ईख की कटाई में हमारे देश के गाँवों में साधारणतया किसान मजदूर नहीं लगाते। परस्पर सहयोग से वे एक दूसरे का खेत काटते हैं। बदले में पशुओं के खिलाने के लिए उन्हें हरे पत्तों का चारा मिल जाता है। इस रीति से ईख की कटाई के लिए लुईसिनिया में दो किस्म की मशीनें काम में लाई जा रही हैं। एक मशीन को मुन्सन-टौमसन (Munson-Thomson) मशीन कहते हैं। इस मशीन का ढाँचा इस्पात का बना होता है। यह ढाँचा वायु-नली युक्तवाले तीन पहियों पर रखा होता है। एक पहिया आगे रहता है और दो पीछे। आगे का पहिया कुछ छोटा होता है और पीछे के पहियों में बल लगा रहता है। पिछले दोनों पहियों की दूरी इतनी रहती है कि एकान्तरिक (alternate) सीताओं की दूरी के बराबर हो। इससे एक ही बार में दो पंक्तियों की ईखें काटी जा सकती हैं। पर आधुनिकतम मशीन में एक बार में एक ही पंक्ति की ईख काटने का विधान है। पर सामान्य सिद्धान्त दोनों के एक से ही हैं।

मशीन के पेंदे में जमीन के ठीक ऊपर काटनेवाली छुरियाँ लगी होती हैं। इन छुरियों को आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे कर सकते हैं। काटनेवाले भाग क्षैतिज तल पर वृत्ताकार आरी सा होता है। इस आरी के आगे एक लिपटा हुआ मुठिया होता है जो ईख को पकड़ता है जब आरी काटती है। कटा हुआ शिखर धातु के अधोवाप द्वारा जमीन पर गिर जाता है।

इस मशीन को बल पेट्रोल इंजन से प्राप्त होता है। इस मशीन में ईख के सूखे पत्ते अलग नहीं होते, ईख के डंठल में ही रह जाते हैं। पीछे डंठल को जलाकर दूर करते हैं। किसी-किसी स्थान में तो खेतों में ही पत्तों को जलाकर तब ईख काटते हैं। इस जलाने से रस की सफाई में कुछ दिक्कतें होती हैं। कुछ मिलवाले तो ऐसी जली ईखों को पाँच दिनों के बाद नहीं लेते हैं। कुछ मिलवाले ऐसी जली ईखों के साथ बिना जली ईखें मिलाकर पेरते हैं। इससे रस की सफाई की दिक्कतें बहुत-कुछ कम हो जाती हैं।

एक दूसरी मशीन में ईख के काट लेने पर उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते और कुचों और धौंकनी से पत्तों को हटाते हैं। ऐसी मशीन को सफलता नहीं मिली है।

वरटेले (Wartele) मशीन में चार पहिएवाले रबर टायर (पवि) के प्रक्षेत्र (farm) ट्रैक्टर कर्षित्र (tractor) होते हैं। इनका ढाँचा भी इस्पात छड़ का बना होता है। यह मशीन एक बार में एक ही पंक्ति काटती है।

जब मशीन को चालू करते हैं तब ईख पहले दो भुजावाले घूर्णक कर्तक के संस्पर्श में आती है। कर्तक तब शिखर को काट देता है। तब ईख अंगुलवाली शृंखला में आती है जो ईख को पकड़कर रबरयुत-प्रदर्शक (guide) में साट लेती है। उसी समय शीघ्रता से घूमता हुआ वृताकार आरी का फलक जमीन के ठीक ऊपर ईख को काट देता है। काटकर वह वाहक को दे देती है जो अनुयान (trailor) में डाल देता है। इस मशीन में भी पत्ते हटाने का कोई विधान नहीं है।

एक दूसरी मशीन फालकीनेर (Falkiner) की है, जो ईखों को काटती, साफ करती और लाद देती है; पर इसके जो प्रयोग हवाई टापू में हुए हैं, वे सन्तोषजनक नहीं हैं। इस मशीन में ६ से १२ इंच लम्बाई में ईखें कटती हैं।

भारत में ईख की कटाई में कुछ खर्च नहीं पड़ता; पर ढोलाई में अवश्य खर्च पड़ता है। पर अब जहाँ मिलों में ईख भेजने के लिए किसानों को काटना पड़ता है, वहाँ मजदूरों का उपयोग जरूरी हो गया है।

ईखों को काटकर उसकी सूखी पत्तियाँ अलग कर दी जाती है और शिखर की हरी पत्तियाँ भी काटकर अलग रख दी जाती हैं। ईख की सूखी पत्तियों का अब तक कोई समुचित उपयोग नहीं निकला है। इन्हें छप्पर छाने और जलाने के काम में लाते हैं या सड़ाकर खाद बना सकते हैं। हरी पत्तियाँ चारे के रूप में पशुओं को खिलाने के लिए उपयुक्त होती है।

ईख की कटाई और छिलाई के बाद उसे मिल में भेजते हैं। मिल में ईख के भेजने के अनेक साधन हैं और उनमें जो जिस स्थान के लिए उपयुक्त होता है, उसे काम में लाते हैं। कहीं-कहीं एक से अधिक रीतियाँ उपयुक्त होती हैं। जो भी वाहक इसके लिए उपयुक्त हो, उनपर हाथों से ही रखकर मिल में भेजते हैं। खेतों से ईखों को यांत्रिक साधनों से नहीं उठाते और किसी देश में ऐसा नहीं होता है। मजदूरों के द्वारा ही यह काम होता है। हाथों से ईखों को वाहक में अधिक सुव्यवस्थित रूप में रख सकते हैं। यांत्रिक साधनों से ऐसे सुव्यवस्थित रूप में रखना सम्भव नहीं है।

खेतों से ईखों को मिल तक पहुँचाने के लिए निम्नलिखित विधियाँ उपयुक्त होती हैं।—

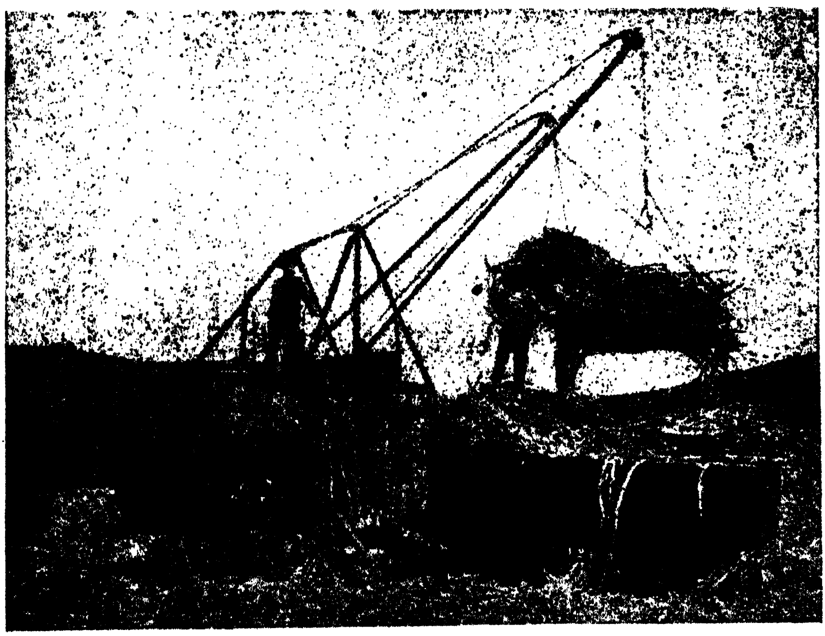
१. मनुष्य द्वारा सड़क पर लाना।
२. पशु द्वारा सड़क पर लाना।
३. पशु-गाड़ियों पर मिल या स्टेशन तक लाना।
४. मोटर वाहक द्वारा लाना।
५. ट्रैमवे से लाना।
६. रेलगाड़ियों से लाना।
७. नहर मार्ग से लाना।
८. विद्युत्-रज्जु मार्ग से लाना।
९. जलवाहक द्वारा लाना।

१. मनुष्य द्वारा सड़क पर लाना—यदि ईख ऐसे स्थल पर ऊपजी है, जहाँ बैलगाड़ी भी नहीं जा सकती, वहाँ किसान अपने सिर पर रखकर सड़कों पर लाते और वहाँ से किसी गाड़ी से मिल में या स्टेशन तक पहुँचाते हैं। एक मनुष्य एक से दो मन तक ईख एक बार में ढो सकता है। यह रीति अपेक्षतया कम स्थलों में ही उपयुक्त होती है।

२. पशु द्वारा सड़क पर लाना—कुछ स्थलों में ईख के ढोने के लिए खच्चर या बैल मिल जाते हैं। इन पशुओं पर लादकर ईखों को सड़क तक या यदि मिल निकट है तो मिल तक लाते हैं। एक अच्छा खच्चर आधा टन तक ईख ढो सकता है। इसकी चाल घंटे में प्राय: दो मील की होती है। बैल इससे कम ढोता है।

३. पशु-गाड़ियों पर ईख को लाना—भारत की अधिकांश ईखें खेतों से बैलगाड़ियों या भैंसागाड़ियों पर ही लादकर मिल में अथवा निकटतम स्टेशन पर आती हैं। इस रीति से खर्च बहुत कम पड़ता है। गाड़ियाँ स्वयं किसानों की ही होती हैं और वे ही उसे चलाकर ले जाते हैं। इन बैलगाड़ियों की गति बड़ी धीमी होती है। साधारणतया ये प्रति घंटा डेढ़ मील से अधिक नहीं चलतीं। देर होने से ईख की तौल में कमी हो जाती है और चीनी की मात्रा भी कम हो जाती है, यह आगे मालूम होगा। यदि निकट सड़क पर पहुँच जाने पर यदि मोटर-वाहक प्राप्य हो तो मोटर वाहक द्वारा ही ईख को मिल में पहुँचाते हैं। कुछ मिलवालों ने इन मोटर-वाहकों का प्रबन्ध किया है। देर से मिल में ईखों के पहुँचाने में किसानों को हानि होने के साथ-साथ मिलवालों को भी चीनी की कमी से हानि होती है।

४. मोटर-वाहक द्वारा लाना—कुछ स्थानों में जहाँ मिल मालिक ही ईख की खेती करते हैं, उन लोगों ने ईखों को मिल तक लाने के लिए मोटर-वाहकों का प्रबन्ध किया है। इससे ईखें खेतों से कटाई के बाद शीघ्र ही मिल में पहुँच जाती है और ईख का ह्रास



चित्र ३४—ईख लादने की मशीन

अधिक नहीं होता। मोटर-वाहक से खर्च भी कम पड़ता है। केवल प्राथमिक खर्च मोटर-वाहक के खरीदने में अधिक पड़ता है।

५. ट्रेम-वे से लाना—कुछ मिलमालिकों ने अपने खेतों से मिल तक ईख लाने के

लिए अपना ट्रेम-वे का प्रबन्ध किया है। भारत में सीमेन्ट कारखानों के मालिकों ने भी पत्थरों को लाने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया है। डालमियानगर में खानों से पत्थर ऐसे ही ट्रेम-वे मार्ग से आता है। कुछ टापुओं में ईखों को लाने के लिए इस ट्रेम-वे का प्रबन्ध है पर भारत में ईख को ढोने के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है ; क्योंकि बहुत ही कम ऐसे मिलमालिक हैं जो स्वयं ईख की खेती बड़े पैमाने पर करते हों। इससे प्राथमिक खर्च अधिक है; पर प्रतिदिन का खर्च बहुत कम पड़ता है। ट्रेम-वे को चलाने के लिए इंजन भी रखना पड़ता है। इस इंजन का ही खर्च प्रधान खर्च है।

६. रेलगाड़ियों से लाना—भारत में रेलडब्बों में ईख को मिल तक पहुँचाने की रीति है। इसके लिए भारतोय रेलवे ने विशेष खुले डिब्बों का प्रबन्ध किया है। जिस स्टेशन पर ईख आती है, वहाँ ये डब्बे खड़े रहते हैं और मिल के आदमी ईखों को तौलकर गाड़ी में भर देते हैं और ये डब्बे सीधे मिलों में पहुँच जाते हैं। यह रीति बहुत सुविधा-जनक है और इसमें खर्च भी अपेक्षाकृत कम पड़ता है। कभी-कभी डब्बों की कमी से ईख के पहुँचने में देर हो जाती है ; पर साधारणतया यह रीति अधिक सुविधाजनक है। इस तरीके से दस-दस, बीस-बीस मीलों से ईखें सरलता से मिलों में पहुँच जाती हैं।

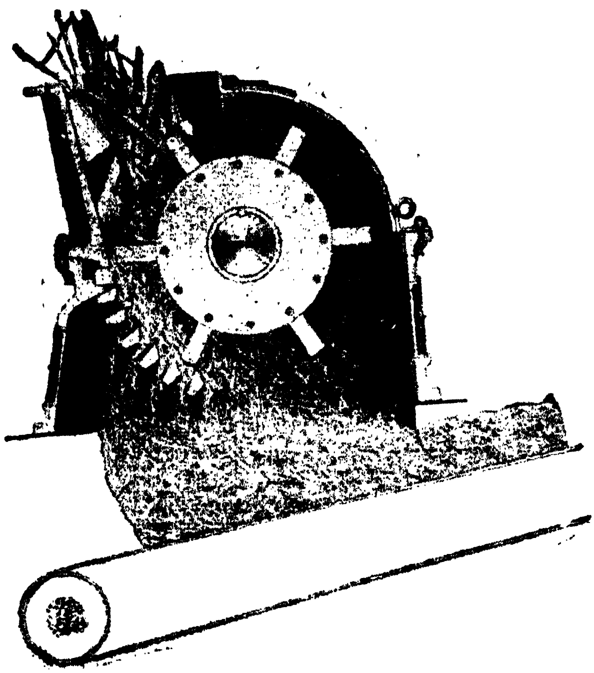
७. नहर-मार्ग से लाना—कुछ मिलें नहर के निकट स्थित हैं। इससे मिलों में ईख पहुँचाने के लिए नहर का मार्ग अधिक सुविधाजनक होता है। नहरों से ईखें नावों पर मिल में आती हैं और वहाँ से विद्युत्-रज्जु मार्ग से अथवा बसों से मिल में पहुँचती हैं।

८. विद्युत्-रज्जु-मार्ग से—कुछ स्थानों में खेतों से ईखें विद्युत्-रज्जु मार्ग से मिलों में पहुँचती हैं। इसके लिए कुछ-कुछ दूरी पर पर्याप्त ऊँचे खम्भे गड़े होते हैं। इन खम्भों पर चक्र होते हैं। इन चक्रों के सहारे धातु की रस्सियाँ तनी रहती हैं। एक ही रस्सी एक ओर से आने के लिए और दूसरी ओर से जाने के लिए होती है। इन रस्सियों पर वाहक टंगे रहते हैं। उसमें आलम्ब होते हैं। ये रस्सियाँ बिजली से चलती रहती हैं। वाहक से ईख आती है और उसे गिरा कर खाली वाहक लौट जाता है। डालमियानगर में ऐसे ही विद्युत्-रज्जु-मार्ग से नहर से मिल में ईखें जाती हैं।

जल-वाहक रीति—यह रीति हवाई टापुओं में उपयुक्त होती है। इस रीति में V-आकार का पानी का नाला होता है। यह नाला काठ का बना होता है। ये बारह-बारह फुट के लम्बे होते हैं ताकि सरलता से एक स्थान पर लाये जा सकें। इन नालों के दोनों बगलो में छः इंच ऊँचे उर्ध्वाधार तखते लगे रहते हैं। यह नाला एक हल्की लकड़ी के आधार पर स्थित होता है। यह नाला मिल के उस भाग तक जाता है, जहाँ दलित्र (crusher) स्थित है और ईख को दलित्र के पास पहुँचा देता है।

इस काठ के कृत्रिम नाले में पानी द्वारा ईखें बहाई जाती हैं। प्रति घंटा १० टन ईख को मिल तक पहुँचाने के लिए २४ घंटे में प्रायः १० लाख गैलन जल की आवश्यकता होती है। यह रीति बहुत ही महँगी पड़ती है, पर कुछ स्थलों के लिए जहाँ मिल समुद्र तट पर या तट के निकट स्थित है और खड्डों, दर्रों और जल मार्गों के कारण अन्य वाहक उपयुक्त नहीं हैं, जहाँ जल की प्रचुरता है, यह उपयुक्त प्रमाणित हुई है। इस रीति का दोष यह है कि यह एक दिशा में ही कार्य करता है। विपरीति दिशा में कार्य करने के लिए अन्य साधनों का उपयोग आवश्यक होता है।

ईख का अवतरण—मिल में ईख पहुँचने पर उसे उठाकर दलित्र में डाला जाता है। दलित्र में ले जाने के लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार हुआ है और उनके पेटेंट हुए हैं। इनमें केवल एक यंत्र का उपयोग भारत में होता है। इसे अन्त-हीन पट्टक वाहक कहते हैं। जिसका अंग्रेजी नाम है "The Endless beltrake" इस यंत्र का पेटेन्ट १८९७ ई० में पहले-पहल हुआ था। पीछे इसमें अनेक सुधार हुए। इस यंत्र के पात्र में ईख डाल दी जाती है। यह पात्र पट्टक पर घूमता है। पात्र के दोनों ओर तख्ते लगे रहते हैं। पटक चलता रहता है और नीचे से ऊपर उठकर जाता है। इसीमें ईख काटने की छुरियाँ लगी रहती हैं। ये ईखों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट देती हैं। ये छोटी-छोटी ईखें तब उस मशीन में जाती है, जहाँ उन्हें दबाकर फाड़ दिया जाता है। फाड़ी हुई ईख से रस जल्दी और अधिक मात्रा में निकलता है। इस यंत्र का चित्र यहाँ दिया



चित्र ३२—सियर बी-श्रेड्डर, ईख के फाड़ने की मशीन

हुआ है। भारत के अतिरिक्त हवाई टापू में भी इसी यंत्र का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त अन्य यंत्र भी बने हैं जिनका उपयोग कहीं-कहीं होता है।

कटी ईख का ह्रास—ईख के काटकर रखने से ईख का ह्रास हो जाता है। ह्रास का आशय यह है कि ईख की तौल और चीनी की मात्रा दोनों कम हो जाती है। ईख की तौल की कमी का कारण ईख का उद्वाष्पन (evaporation) या सूखना है। तौल की कमी बहुत-कुछ ताप और आर्द्रता पर निर्भर करती है। चीनी की कमी का कारण विपर्यय (inversion) है जिससे इक्षु-शर्करा, द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा में परिणत हो जाती है। विपर्यय का प्रारम्भिक कारण ईख के हरे शिखर में उस विकर का रहना है जो शिखर के काट लेने पर स्तम्भ में व्याप्त हो जाता है।

	रस की शुद्धि
शिखर कटी हुई ईख	८२·६, ८१·०, ८२·८, ८४·५, ८०·५
शिखर न कटी हुई ईख	७६·१, ७४·६, ७७·०, ७४·६, ७१·३

भारत की ईख के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनके आँकड़े इस प्रकार हैं—

दिन	प्राप्य चीनी	कमी प्रतिशत	समस्त कमी प्रतिशत
०	१००	०	०
१	९७·३	२·७	२·७
२	९२·०	५·३	८·०
३	७८·६	१३·४	२१·०
४	६७·६	१६·७	३२·१

जाड़े में ईख के रखने पर इजिप्ट देश में जो ह्रास देखा गया है, उसके आँकड़े इस प्रकार हैं—

दिन	तौल की कमी प्रतिशत	रस की शुद्धता
०	०	८८·५
४	२·५	८९·२
७	४·३	८८·१
११	१०·०	८९·६
१५	८·७	८७·०
२०	९·०	८७·८
२३	१२·५	८६·५
२५	१५·०	८७·१
२७	१८·०	८५·३

जावा की ईखों में जो प्रयोग हुए हैं, उनके आँकड़े इस प्रकार हैं। यह ईख छाया में रखा था।

दिन	तौल में कमी प्रतिशत	शुद्धता
०	०	९४·०
१	१·१	९३·५
२	२·१	९३·३
३	३·०	९०·३
४	३·९	८५·५
५	४·७	८२·०

ये आँकड़े उन्हीं ईखों के हैं, जो एक दिन खुले स्थान में रखी थीं और शेष दिन छाया में।

दिन	तौल में कमी प्रतिशत	रस की शुद्धता
०	०	७४'६
१	२'१	७४'२
२	३'३	८६'४
३	४'३	८०'०
४	५'४	७७'२
५	६'०	७४'७

उपर्युक्त आँकड़ों से साफ़-साफ़ मालूम होता है कि ईख के काटने और मिल में पहुँचाने के बीच ईख की तौल में पर्याप्त कमी होती है। इससे किसानों को भी ईख की तौल में कमी होने के कारण हानि होती है और चीनी की मात्रा में कमी होने के कारण मिलों को भी हानि होती है।

ईख के ह्रास के रोकने के अनेक उपाय बताये गये हैं, उनमें एक उपाय ईखों पर पानी का छिड़कना है। इस सम्बन्ध में बड़े पैमाने पर जो प्रयोग हुए हैं, उनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि ईखों पर पानी छिड़कने से ईखों का ह्रास बहुत-कुछ रोका जा सकता है। दिन में चार बार पानी छिड़कना चाहिए। ऐसा छिड़कना चाहिए कि समस्त ईखें भींग जायँ। भारत में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे पता लगता है कि थोड़ा पानी भी छिड़कने से काम चल सकता है; पर छिड़कना बहुत आवश्यक है।

एक वैज्ञानिक का मत है कि खेतों में ही ईख पर पानी छिड़ककर उसे पत्तों से ढककर मिल में लाने से उद्वाष्पन बहुत कुछ रोका जा सकता है। मिस्र देश में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे पता लगा है कि गर्मी के दिनों में ४ दिनों में ११ प्रतिशत और ८ दिनों में १७ प्रतिशत तक ईख की तौल में कमी हो जाती है। विपर्यय और उद्वाष्पन से प्राप्त चीनी की मात्रा आधी तक हो सकती है। इससे ईख के कट जाने पर जल्दी-से-जल्दी रस निकाल लेने की आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इससे खेत के मालिकों और मिल के मालिकों दोनों को लाभ होगा।

बारहवाँ प्रकरण

भारत में ईख की खेती

भारत में ईख अधिक बोई जाती है। ऐसा अनुमान है कि प्राय: चार करोड़ एकड़ भूमि में भारत में ईख की खेती होती है। सबसे अधिक ईख की खेती उत्तर प्रदेश में होती है। उसके बाद बिहार का स्थान आता है। उत्तर प्रदेश में प्राय: ५८ प्रतिशत ईख की खेती होती है और बिहार में दस प्रतिशत से कुछ अधिक ईख की खेती होती है। सारे भारत में लगभग १३६ चीनी के कारखाने हैं। इनमें ६६ कारखाने उत्तर प्रदेश में और तीस कारखाने बिहार में हैं। शेष कारखाने भारत के अन्य प्रदेशों में हैं। सन् १९४६ में दस करोड़ टन ईख से प्राय: १८ लाख टन चीनी बनी थी। इस प्रकार ईख से प्राय: दस प्रतिशत चीनी प्राप्त हुई।

प्रो० वकील के अनुसार सारी ईख का प्राय: पचास प्रतिशत और प्रो० वाडिया और मर्चेन्ट के अनुसार प्राय: साठ प्रतिशत ईखों से गुड़ बनाई जाती है। प्राय: दो करोड़ किसान ईख पैदा करते हैं।

चीनी का उत्पादन समस्त भारत में इस प्रकार हुआ :—

सन्	१९४६-४७	८०१००० टन
,,	१९४७-४८	१०७५००० टन
,,	१९४८-४९	१०००००० टन
,,	१९४९-५०	८१०००० टन

औसत दस लाख टन चीनी प्रतिवर्ष उत्पन्न होती है। सन् १९४९ में चीनी का सम्पूर्ण उत्पादन ६६ करोड़ रुपये का हुआ। सब मिलों की उत्पादन-शक्ति १११ लाख टन की है। सन् १९४९ में मजदूरी और वेतन के रूप में १८·३६ करोड़ रुपया बाँटा गया तथा सन् १९५० में केवल १४·८४ करोड़ रुपया। चीनी के व्यवसाय में प्राय: ४५ करोड़ रुपये की सम्पूर्ण पूँजी लगी है जिसमें केवल बिहार और उत्तर प्रदेश में ३९ करोड़ की पूँजी लगी है।

प्रो० वाडिया और मर्चेन्ट के अनुसार चीनी के मिलों में ३२ करोड़ रुपये की स्थायी पूँजी लगी है। इनमें १·१२ लाख श्रमिक और तीन हजार शिक्षित और औद्योगिक शिक्षित व्यक्ति लगे हैं।

बिहार में चीनी के कारखाने मुख्यत: सारन, चम्पारन, दरभंगा जिलों में और शाहाबाद के डेहरी-ऑन-सोन तथा बक्सर में हैं। इसके अलावा गया जिले के गुरारू और वारसलीगंज में तथा पटना जिले के बिहटा में है।

बिहार में ईख उपजानेवाले भाग का क्षेत्रफल	३६६,००० एकड़
ईख की उपज	३६२००,००० टन

प्रति एकड़ ईख की उपज	८·६ टन
कितनी प्रतिशत ईख मिलों में खपती है	७० प्रतिशत
ईख के कारखानों में कार्यकर्त्ताओं की संख्या	२६४४१
उत्पादक पूंजी	८·२ करोड़
कितने रुपये की ईख मिलों द्वारा खरीदी गई	८·६ करोड़ रुपया
कितने रुपयों की चीनी बनी	१४·७ करोड़

सरकार को ईख के कर से प्राय: एक करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है।

इतने एकड़ में ईख बोने पर भी अपने काम के लिए पूरी चीनी भारत में नहीं बनती। हमारे देश में प्रतिवर्ष प्राय: १२ लाख टन चीनी की आवश्यकता होती है। चीनी की कमी की पूर्ति के लिए बाहर से चीनी आती है। यदि देश में उच्च कोटि की ईखें बोई जायँ और उनका उत्पादन उन्नत कृषि से बढ़ा दिया जाय तो गुड़ और चीनी की उत्पादन की मात्रा बहुत-कुछ बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए विशेष प्रयत्न और किसी निश्चित योजना के साथ कार्य करने की आवश्यकता है।

ईख के एक डच विशेषज्ञ डा० सी० वान डिलेविन, जिसका जन्म दक्खिन अफ्रिका में हुआ है और जो अभी कुछ दिन हुआ भारत आया था, कोयाम्बटोर में एक भेंट में प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया को बताया कि भारत में ईख का उत्पादन प्रति एकड़ डेढ़ से तीन टन होता है। संसार में ईख के उत्पादन का यह सबसे नीचला अंक है। हवाई और जावा में प्रति एकड़ में आठ टन और पेरू, मिस्र और अन्य देशों में चार से छ: टन होता है। इस कारण ईख के उत्पादन की वृद्धि की शक्ति अभी भारत में बहुत अधिक है।

यद्यपि भारत में ईख के सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान-केन्द्रों में एक बड़ी मात्रा में अनुसंधायक अनुसन्धान कर रहे हैं; पर उनके फलों का प्रकाशन उचित ढंग से नहीं हो रहा है। ये केवल कुछ पत्रों, कार्यवाहियों और वार्षिक विवरणों में ही छपते हैं जिससे वे किसानों तक नहीं पहुँच पाते। फारमोसा ऐसे छोटे टापू में ईख के चार पत्र हैं जहाँ भारत ऐसे विशाल देश में एक भी ऐसा नहीं है।"

डिलेविन ने सन्तोष प्रकट किया कि भारत में ईख-विकास-योजना नामक एक संस्था बनी है जो अनुसन्धानों को व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा कर रही है। इससे भारत के ईख-उद्योग के विकास में बहुत-कुछ सहायता मिलेगी।

डिलेविन ने खेद प्रकट किया कि आज भारत ही ऐसा देश है जहाँ ईख का दाम तौल पर आँका जाता है। अन्य सब देशों में चीनी की मात्रा पर ईख का मूल्य आँका जाता है। इसका बुरा परिणाम यह है कि ईख में चीनी की मात्रा बढ़ाने की ओर किसानों का ध्यान नहीं जाता और उच्च कोटि के ईख बोने का वे प्रयास नहीं करते।

डिलेविन का मत है प्रति एकड़ ३५० पाउण्ड नाइट्रोजन खाद डालने से यद्यपि ईख की पैदावार बहुत बढ़ जाती है; पर चीनी की मात्रा में इससे वृद्धि नहीं होती। चीनी की मात्रा कम ही हो जाती है। कम-से-कम कुछ स्थानों में चीनी की मात्रा पर ईख के मूल्य निर्धारण करने की परिपाटी चलानी चाहिए।

बिहार प्रदेश में बिहार-सहयोग संघ कायम हुआ है जिसकी ओर से ईख-उत्पादन का प्रयत्न हो रहा है। उन्नत कृषि से बिहार में १० से १२ टन और मद्रास और बम्बई

में २८ से ३२ टन तक ईख की पैदावार बढ़ाई गई है। कुछ विशेष क्षेत्रों में विशेष प्रयत्न से ४० टन प्रति एकड़ तक ईख पैदा हुई है। पर औसत पैदावार अवश्य ही अन्य देशों—हवाई, जावा, क्यूबा फिलिपाइन—से बहुत कम है। इस सम्बन्ध में दक्खिन में कोयम्बटोर और उत्तर में पूसा और पटने में ईख के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान हुए और हो रहे हैं। इनमें उच्च कोटि की ईखें पैदा की गई हैं।

बिहार सहयोग-संघ की ओर से १६ नवम्बर १६५१ को पटना राजभवन में एक समारोह हुआ था जिसमें राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने उन किसानों को पारितोषिक दिया था जिन्हें अधिक ईख उत्पादन में सफलता मिली थी। प्रथम ५०० रुपये का पुरस्कार दरभंगे जिले के एक किसान श्री लक्ष्मी सिंह को मिला था जिन्होंने एक छोटे खेत में प्रति एकड़ में १०० टन से अधिक ईख उपजाई थी। ईखों की लम्बाई १६ से १८ फुट थी जहाँ साधारण किसानों के खेतों में ईख की लम्बाई ७ फुट से अधिक नहीं होती। दूसरा ३०० रुपये का पुरस्कार श्री शक्तिमोहन मिश्र को मिला था, जिन्होंने प्रायः १०० टन ईख प्रति एकड़ के हिसाब से उपजाई थी। तीसरा पुरस्कार उन दो किसानों को मिला था जिन्होंने प्रायः ६० टन प्रति एकड़ के हिसाब से ईख उपजाई थी।

इन किसानों ने अपने खेतों में कम्पोस्ट खाद का उपयोग किया था। थोड़ी मात्रा में अमोनियम सल्फेट और खली का भी उपयोग किया था। ईख जो इन लोगों ने बोई थी, वह को० ४५३ और बि० ओ० ११, उच्चकोटि की थी। खेतों को खूब जोता था। समय पर सिंचाई की थी। ईख की पैदावार बढ़ाने में प्रमुख भाग कम्पोस्ट खाद का ही था। उत्तर बिहार की मिट्टी ईख के लिए बड़ी उत्तम है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्नत कृषि, उचित मात्रा में खाद और समय पर सिंचाई से ईख की पैदावार बहुत-कुछ बढ़ाई जा सकती है। यदि किसानों को सरलता से खाद प्राप्त हो सके और उचित सिंचाई का प्रबन्ध हो तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में इतना ईख पैदा होने लगे कि हमको फिर बाहर से चीनी मँगाने की आवश्यकता नहीं पड़े।

बंगाल—बंगाल के राजशाही और बर्दवान जिलों में ईख उपजाई जाती है; पर आधे से अधिक बंगाल के पाकिस्तान में चले जाने से ईख का क्षेत्रफल बंगाल में बहुत कम हो गया है। बंगाल की अधिक ईख गुड़ बनाने में उपयुक्त होती है।

बिहार—बिहार के पटना, शाहाबाद, सारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मोतिहारी, गया, मुंगेर, पुर्निया और भागलपुर जिलों में पर्याप्त भूमि में ईख बोई जाती है। बिहार में चीनी के ३० कारखाने हैं जिनमें ईख का बहुत अधिक भाग चीनी बनाने में उपयुक्त होता है। शेष जो ईख बच जाती है, वह गुड़ बनाने में लगती है। सन् १६५१-५२ में १५ मार्च तक बिहार के कारखानों में ५,०६,६५,५७४ मन और १५ सेर ईख पेरी गई थी जिससे ५३,१३,६४२ मन १४ सेर चीनी बनी। मार्च के अन्त तक उत्तर बिहार के ११ कारखाने बन्द हो गये थे। दक्खिन बिहार के तीन कारखाने पूर्ण रूप से चलते रहे और १५ मार्च तक ५१ लाख मन ईख पेरी जा सकी जबकि गतवर्ष केवल ३७ लाख मन ईख पेरी गई थी।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों, मेरठ, गोरखपुर, बिजनौर, आजमगढ़, मुजफ्फरनगर, कानपुर, प्रयाग, बस्ती, बरेली, फैजाबाद, खेरी, सीतापुर, बाराबंकी, गोंडा, सुल्तानपुर, बनारस, गाजीपुर और बलिया में ईख प्रचुरता से उपजती है। चीनी

और गुड़ बनाने में ये ईखें उपयुक्त होती हैं। उत्तर प्रदेश वस्तुत: गुड़-निर्माण का केन्द्र है। बनारस, हापुड़, मेरठ और कानपुर में गुड़ के प्रमुख बाजार हैं। उत्तर प्रदेश में कई नहरें हैं जिनसे ईख की सिंचाई में बड़ी सुविधा होती है।

पंजाब—पंजाब के पर्याप्त क्षेत्रफल में, प्राय: सभी जिलों में ईख बोई जाती है। यहाँ चीनी के कारखाने हैं और गुड़ बनता है।

मध्य प्रदेश—मध्य प्रदेश के प्राय: सभी जिलों में ईख की खेती होती है। यहाँ चीनी के कारखाने भी हैं। पर्याप्त मात्रा में गुड़ बनता है।

राजस्थान—राजस्थान के ग्वालियर, जयपुर, भरतपुर, टोंक, कोटा और अलवर में ईख की खेती होती है। जहाँ की मिट्टी अच्छी काली है और जल प्राप्य है, वहाँ प्रति एकड़ ५० मन तक गुड़ पैदा होता है अन्यथा ३० से ४० मन प्रति एकड़ ही गुड़ पैदा होता है।

विन्ध्य प्रदेश—विन्ध्य प्रदेश में भी ईख उपजती है; पर पानी की कमी के कारण ईख की फसल अधिक नहीं होती।

बंबई—बंबई प्रदेश के प्रत्येक जिले में ईख बोई जाती है। यहाँ कई प्रकार की ईखें बोई जाती हैं। पूना, सतारा, बेलगाँव, नासिक, सूरत, कनारा इत्यादि जिलों के काफी क्षेत्रफल में ईख की फसल होती है। पर अपेक्षाकृत अन्य प्रदेशों से कम। यहाँ की ईख में सिंचाई आवश्यक है। बिना सिंचाई के ईख पैदा नहीं होती।

मद्रास—मद्रास के कोयम्बटोर, गोदावरी, त्रिचनापल्ली, दक्खिन आरकट, उत्तर आरकट, विजगापटन, सलेथ कुडुप्पा जिलों में ईख बोई जाती है।

मैसूर—मैसूर में भी ईख उपजती है।

सन् १९३०-३१ में इम्पीरियल इण्डियन ऑव एग्रिकल्चर के सिफारिश पर भारत सरकार ने चीनी को संरक्षण प्रदान करने का प्रश्न टैरिफबोर्ड के पास भेजा और प्रति हंडरवेट (एक हंडरवेट ११२ पाउन्ड का होता है) चीनी पर ७ रु० ४ आ० आगम कर लगा दिया। इसके अतिरिक्त प्रति हंडरवेट पर १ रु० १३ आ० अधिभार (Surcharge) भी लगा दिया। यह कर और अधिभार क्रमश: बढ़ता गया है। जैसे इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है—

प्रति हंडरवेट चीनी पर	उत्पादन कर			समस्त आयात कर		
	प्रति हं० रु०	आ०	पा०	प्रति हं० रु०	आ०	पा०
१ अप्रैल से ३१ मार्च १९३४	१	५	०	९	१	०
१ अप्रैल १९३४ से २७ फरवरी १९३७	२	०	०	९	४	०
२८ फरवरी १९३७ से ३१ मार्च १९३९	२	०	०	९	१२	०
१ अप्रैल १९३९ से २८ मार्च १९४०	३	०	०	९	१२	०
१ मार्च १९४० से ३१ मार्च १९४२	३	०	०	९	१२	०
१ अप्रैल १९४२ से ३१ मार्च १९४९	३	०	०	११	११	२
	+२० प्रतिशत अधिभार					
१ अप्रैल १९४९ से	३	१२	०	१२	९	७
	+२० प्रतिशत अधिभार					

उत्पादन कर भारत की बनी चीनी पर भी लगता है।

भारत में चीनी के उत्पादन के आँकड़े पृष्ठ १७ में दिये गये हैं :—

अभी तक हमारा चीनी का व्यवसाय सरकार के संरक्षण पर चल रहा है। आज यदि यह संरक्षण हट जाय तो हमारे देश में बाहर से सस्ती चीनी आने लगे और यहाँ का सारा चीनी का व्यवसाय नष्ट हो जाय। यह स्थिति ठीक नहीं है। इतने वर्षों तक संरक्षण रहते हुए भी यदि चीनी का व्यवसाय अपने पैरों पर खड़ा होने में असमर्थ है तो यह अवश्य ही दुःख और गम्भीर चिन्तन की बात है। इसके कई कारण हैं। इनमें निम्नलिखित कारण विचारणीय हैं :—

१. ईख की पैदावार प्रति एकड़ बहुत कम होती है। ईख का उत्पादन, उन्नत कृषि और बीज के चुनाव से बढ़ाना चाहिए।

२. ईख में चीनी की मात्रा कम रहती है। चीनी की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

३. ईख के कारखानों की मशीनें पुरानी हैं और उनसे ईख की सारी या अधिकांश चीनी निकाली नहीं जा सकती है। नई-नई मशीनों का उपयोग होना चाहिए ताकि अधिक-से-अधिक मात्रा में चीनी का प्रत्यादान (recovery) हो सके। सीठे में चीनी का रह जाना राष्ट्रीय-हानि है जिसका प्रत्यादान जल्द-से-जल्द होना चाहिए।

४. ईख के कारखानों में जो छोआ और सीठा प्राप्त होते हैं, उनका उपयोग ऐसा होना चाहिए कि उनसे अधिक मूल्य प्राप्त हो सके। इससे चीनी के उत्पादन का मूल्य बहुत कुछ घटाया जा सकता है।

५. चीनी के कारखाने कुछ ही मास चलते हैं। शेष मास चीनी के कारखाने के कर्मचारियों को बिना काम के रहना पड़ता है। कुछ कर्मचारियों को तो पूरा वेतन दिया जाता है और कुछ को आधा और कुछ को बिलकुल नहीं। कुछ ऐसे व्यवसाय खोज निकालना चाहिए जिनमें इन कर्मचारियों को लगाया जा सके ताकि सालो भर वे काम करते रहें। इससे चीनी के लागत मूल्य में बहुत-कुछ कमी हो सकती है और तब बाहर की चीनी से मुकाबला करने में हम समर्थ हो सकेंगे।

६. चीनी और गुड़ के उत्पादन में सहयोग होना चाहिए। दोनों में प्रतिद्वन्द्विता हानिकर है। कुछ क्षेत्र गुड़ के लिए छोड़ देना चाहिए और कुछ क्षेत्र चीनी के लिए।

७. चीनी के व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण हितकर होगा अथवा नहीं, इसपर गम्भीर विचार होना चाहिए।

८. उत्पादन-कर से प्राप्त धन को ईख और चीनी की उन्नति में लगाना चाहिए। इस कर से बिहार से प्रायः ३ करोड़ और उत्तर प्रदेश से प्रायः ८ करोड़ रुपया प्राप्त होता है। इसका वस्तुतः बहुत कम अंश ईख की उन्नति में लगाया जाता है।

९. ईख का सेस और चीनी का उत्पादन कर चीनी के उत्पादन का खर्च बढ़ाता है जिससे यहाँ की चीनी बाहर के देशों में नहीं बिक सकती है।

१०. चीनी का न्यूनतम मूल्य नहीं निश्चित होना चाहिए। कुछ समय के लिए तो न्यूनतम मूल्य का निश्चयन चीनी की मिलों और किसानों दोनों के लिए हानिकारक है।

तेरहवाँ प्रकरण

भारत में ईख के अनुसन्धान

भारत में अनेक वैज्ञानिकों ने ईख के सम्बन्ध में खोजें की हैं। उनमें दो नाम उल्लेखनीय हैं। एक नाम है डा० सी० ए० बारबर का। जब भारत-सरकार ने ईख की उन्नति के लिए दक्खिन भारत के कोयम्बटोर नामक स्थान में "इम्पीरियल केनब्रीडिंग स्टेशन" नामक संस्था सन् १६१२ ई० में खोली तो बारबर साहब उसके प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् १६१६ ई० में अवकाश ग्रहण कर वे इङ्गलैण्ड लौट गये। उसी संस्था में सन् १६१२ ई० में ही बारबर साहब के नीचे काम करने के लिए मद्रास विश्वविद्यालय के स्नातक रायबहादुर सर तिरूवदी सम्भासिव वेंकटरमण नियुक्त हुए। यह महाशय सन् १६०७ ई० में मद्रास-कृषि-विभाग के औद्भिदी विभाग में एक कर्मचारी नियुक्त हुए थे। बारबर साहब के अवकाश ग्रहण करने के बाद वेंकटरमण साहब "इम्पीरियल केनब्रीडिंग स्टेशन" के अध्यक्ष होकर भारत कृषि सर्विस में प्रविष्ट हुए। २३ वर्षों के बड़े गौरव, प्रतिष्ठा और सफलता के साथ इस पद पर रहकर वेंकटरमण साहब ने सन् १६४२ ई० में अवकाश ग्रहण किया। ईखों के प्रशंकरण के सम्बन्ध में वेंकटरमण ने जो बहुमूल्य काम किया है, उससे आपका स्थान संसार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों में आ गया है। प्रशंकरण वह क्रिया है जिससे दो विभिन्न गुणवाले पौधों अथवा पशुओं के संयोग से एक तीसरा पौधा या पशु उत्पन्न किया जाता है जिसमें दोनों पौधों या पशुओं के गुण मिले रहते हैं।

बारबर साहब पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने प्रशंकरण द्वारा ईख के उन्नत करने के प्रयोग सफलता के साथ किये। आपके चले जाने के बाद वेंकटरमण ने इस सम्बन्ध में अधिक सफलता के साथ अनेक प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों से वेंकटरमण संसार के वैज्ञानिकों में सुप्रसिद्ध ही नहीं हो गये हैं; वरन् ईख से चीनी बनाने के उद्योग में उन प्रयोगों से बड़ी सहायता मिली है। आज वेंकटरमण द्वारा उत्पन्न कोयम्बटोर की ईखें केवल भारत में ही नहीं, वरन् अन्य देशों में भी व्यापक रूप से बोई जा रही हैं।

वेंकटरमण ने प्रशंकरण के अनेक प्रयोग किये हैं। उनमें दो प्रयोग बड़े महत्त्व के हैं। एक प्रयोग में उन्होने ईख और ज्वार के प्रशंकरण से एक ऐसी नई ईख उपजाई है जो जल्दी परिपक्व हो जाती है, खेतों में खड़ी रहती, गिर नहीं पड़ती है। इन ईखों में रोगों के आक्रमण के रोकने, विनाशकारी कीड़ों से बचने और अन्य विपरीत परिस्थितियों के सामना करने की क्षमता अधिक बढ़ गई है। ईख और ज्वार के प्रशंकरण के सफल प्रयोग सन् १६३० में शुरू हुए थे। ये प्रयोग पीछे हवाई टापू, जावा और फ्लोरिडा में दुहराये

गये और ठीक उतरे। ये नई ईखें मद्रास, उत्तर प्रदेश और बिहार में व्यापक रूप से आज बोई जा रही हैं।

एक दूसरे प्रकार का प्रशंकरण ईख और बाँस के बीच हुआ है। इससे जो ईख पैदा हुई है, वह देर से परिपक्व होती है। यद्यपि शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से इस ईख का महत्त्व बहुत अधिक है; पर औद्योगिक दृष्टिकोण से इस ईख के महत्त्व का अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। मेरे विचार में यह ईख भी औद्योगिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की है और इसको बोना चाहिए।

सन् १९५२ में उत्तर प्रदेश में ईख की बोआई बहुत अधिक हुई थी। अप्रैल मास में भी खेतों में पर्याप्त ईखें लगी हुई थीं। चीनी के कारखानेवाले अब ईखों को लेना स्वीकार नहीं करते; क्योंकि अधिक परिपक्व हो जाने पर चीनी की मात्रा कम हो जाती है। यदि कारखानेवाले ईखों को अब न लें तो इन्हें जलाकर ही नष्ट करना पड़ेगा। यदि किसान देर से परिपक्व होनेवाली ईख भी कुछ बोएँ तो यह कठिनता दूर हो जायगी। ऐसी ईखें देर से पकने के कारण उनमें चीनी की मात्रा में कमी नहीं होगी और तब कारखानेवाले ऐसी ईखें लेने में आपत्ति नहीं करेंगे।

वेंकटरमण के ईख-अभिजनन के प्रयोगों से आज भारत के चीनी उत्पादन की स्थिति बिलकुल बदल गई है। एक समय बाहर से देश में चीनी का आयात पर्याप्त मात्रा में होता था; पर आज सन् १९५३ में चीनी का उत्पादन इतना बढ़ गया है कि भारत से बाहर चीनी भेजने की आज्ञा भारत सरकार ने दे दी है।[१] ईख के इन सफल प्रयोगों के कारण वेंकटरमण 'ईख उद्योग-धन्धों की अन्तरराष्ट्रीय संस्था के उपाध्यक्ष चुने गये थे और सन् १९२९ और सन् १९३५ में क्रमशः जावा और ब्रिस्बन में अन्तरराष्ट्रीय सभा में भारत की ओर से प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। एडिनबरा में अन्तरराष्ट्रीय जनन-विद्या की सन् १९३९ की बैठक में भारत की ओर से भेजे गये थे। सन् १९३७ में भारतीय वैज्ञानिक कांग्रेस ने आप को खोजों के कारण अपना अध्यक्ष चुना था। सरकार की ओर से पहले आप को 'राव साहब' की फिर 'राव बहादुर' की, फिर सि० आई० ई० की और अन्त में 'सर' की उपाधि मिली है।

ईखें प्रधानतया दो प्रकार की होती हैं—एक मोटी और दूसरी पतली। मोटी ईखें मद्रास, बंबई और आसाम में अधिकता से उपजाई जाती हैं। उत्तर भारत—उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब—में यह थोड़ी तायदाद में अधिकांश चूसने के लिए बोई जाती है। इन मोटी ईखों को बंबई में पुण्डिया, मद्रास में पूवन और उत्तर भारत में पौण्ड्या कहते हैं।

मोटी ईख उष्ण देश का पौधा है। उष्ण देश में ही किसी स्थान में इसका जन्म हुआ है। उष्ण देश में ही यह सबसे अच्छी उपजती है। भारत में मद्रास और बंबई इसके घर हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब की जलवायु इसके अनुकूल नहीं है। यहाँ

१ यद्यपि भारत सरकार ने कुछ चीनी देश से बाहर भेजने की आज्ञा दे दी थी; पर पीछे चीनी का मूल्य बढ़ जाने के कारण सरकार को बाहर से चीनी मँगा कर बेचने का प्रबन्ध करना पड़ा है।

की जलवायु इतनी कठोर है कि यह ठीक-ठीक न बढ़ती है और न पकती ही है। इन प्रदेशों में यह ईख केवल नगरों के निकट चूसने के लिए बोई जाती और नगरों में बिकती है। चूसने के लिए ईखों का बल्क (बाहर का छिलका) कोमल होना चाहिए। ईखों में रस अधिक होना चाहिए और रस अधिक मीठा होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि ईख परिपक्व हो। परिपक्व होने पर ईक्षु-शर्करा की मात्रा अवश्य बढ़ जाती है। पर अपरिपक्व दशा में द्राक्षशर्करा की मात्रा अधिक रहने से रस की मिठास में विशेष कमी नहीं होती; क्योंकि द्राक्ष-शर्करा ईक्षु-शर्करा के समान ही प्रायः मिठी होती है।

मोटी ईख को उष्ण प्रदेश का पौधा होने के कारण यह समझना भूल है कि यह भारत की स्वदेशी है। किसी-न-किसी समय यह ईख बाहर से ही भारत में आई। इस ईख का जन्म-स्थान दक्खिन प्रशान्त का कोई द्वीप समझा जाता है। भारत की अपनी ईख पतली ईख है जो भारत से ही संसार के विभिन्न भागों में गई है।

मोटा और पतली ईखों के कई भेद हैं। उनमें औद्भिदीय अन्तर भी है। इसी भेद के कारण बारबर ने पतली ईख का नाम सैकेरम बरबेरी (Saccharum barbari) रखा है। दूसरे प्रकार की ईख का नाम सैकेरम औफिसिनेरम है। ये दोनों प्रकार की ईखें दो जातियों की हैं। मोटी ईख का पतली ईखों से अभिजनन के प्रयोग सफलता से हुए हैं। इसका अभिजनन एक जंगली ईख कांस (Saccharum spontaneum) के साथ भी हुआ है। इस प्रकार से प्राप्त मोटी ईख की विशेषता यह है कि इसका प्रशंकरण अन्य गणों (Genera) की ईखों से भी हो सकता है। ऐसे प्रशंकरण के अनेक प्रयोग वेंकटरमण द्वारा किये गये हैं। इस प्रकार से उत्पन्न ईखों की संख्या फिर परस्पर प्रशंकरण से और भी बढ़ाई जा सकती है और वास्तव में बढ़ाई गई है।

अभिजनन—जंगली पतली ईखों में सहनशीलता अधिक होती है। जलवायु की कठोरता के सहन करने की क्षमता उनमें अधिक होती है। उनकी जड़ें गहरे तक जातीं और उनकी उपज अच्छी होती है। जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन को वे सहन कर सकती हैं। ये गुण उनकी सन्तति में भी होते हैं। पर अच्छी ईखों में केवल इन्हीं गुणों से काम नहीं चल सकता। अच्छी ईखों में चीनी की मात्रा अधिक होनी चाहिए। ईखें अधिक मीठी होनी चाहिए। जंगली ईखें अधिक मीठी नहीं होती। मोटी ईखों में चीनी अधिक होने के कारण मिठास अधिक होती है।

इन गुणों के संमिश्रण के लिए जंगली ईखों का मोटी ईखों से प्रशंकरण द्वारा उनका अभिजनन (Nobilisation) कराया गया है। इस प्रथम क्रिया को प्रथम अभिजनन कहते हैं। ईख के सुधारने का यह प्रयास प्रथम क्रम है। इस प्रथम अभिजनित ईख में पतली जंगली ईख के गुण आ जाते हैं; पर चीनी की मात्रा में वृद्धि नहीं होती। इस प्रथम अभिजनित ईख को फिर मोटी ईख से प्रशंकरण कराया जाता है। इससे उत्पन्न ईख में चीनी की मात्रा बढ़ी हुई होती है। ऐसी ईख को द्वितीय अभिजनित ईख कहते हैं। इस क्रिया को बार-बार दुहराकर ऐसी मोटी ईखें प्राप्त की गई हैं जिनमें मोटी होने के साथ-साथ अच्छी जड़वाली ईखें प्राप्त हुई हैं जो जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन को सहन कर सकती हैं। अच्छी ईख उत्पन्न करने के लिए साधारणतया चार से पाँच अभिजनन की आवश्यकता होती है।

'को० ४१९' और 'को० ४२१' के दोष—इन ईखों में कुछ दोष भी हैं। जहाँ ये ईखें विभिन्न मिट्टी में उपजाई जा सकती हैं, अल्कली मिट्टी में भी यह उपजती है। कम या अधिक पानी से इसमें काम चल सकता है। यदि खेतों में पानी लग जाय तो उससे हानि नहीं होती। इसकी पैदावार अच्छी होती है; पर इनमें कुछ दोष भी हैं। यह ईख सीधी खड़ी नहीं रहती, नय जाती है और नय जाने से कभी-कभी टूट भी जाती है। काट लेने पर इन्हें यदि शीघ्र पेर कर रस न निकाल लिया जाय, तो इनमें शीघ्र ही ह्रास होना शुरू हो जाता है। इनमें कीड़े भी जल्दी लगते हैं और रोगों से आक्रमण की सम्भावना भी अधिक रहती है। 'को० ४१९' देर से परिपक्व भी होती है। परिपक्व होने में प्राय: तेरह महीने लगते हैं। यदि इन्हें परिपक्व होने से पहले पेरा जाय, तो गुड़ अच्छा नहीं बनता। इसके रस को अन्य अच्छे गुड़ देनेवाली ईखों के रसों के साथ मिलाकर तब गुड़ बनाया जाता है। 'को० ४२१' ईख खड़ी रहती है, नयती नहीं। छिद्रक और अन्य कीड़ों और रोगों से बचने की क्षमता इसमें अधिक होती है; पर शैथिल्य रोग (wilt) इसे अधिक आक्रान्त करता है और उससे बचने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

इन ईखों के अतिरिक्त अन्य ईखें भी उपजाई गई हैं। इनमें 'को० ३६०' में चीनी की मात्रा अधिक रहती है। इसका गुड़ भी अच्छा बनता है; पर इसका शिखर भारी होने के कारण यह गिर पड़ती है। 'को० ४००' और 'को० ४०१' चूसने के लिए अच्छी ईखें हैं।

इन नई ईखों का प्रचार उतना नहीं हुआ है, जितना होना चाहिए। जावा में सन् १९२४ ई० में 'पोओजे २८७८' ईख निकली और सन् १९२९ ई० में सारे जावा के प्राय: ६५ प्रतिशत खेतों में बोई गई। इतनी शीघ्रता से कोयम्बटोर ईखों का प्रचार नहीं हुआ है। यह आवश्यक है कि हम सर्वोत्कृष्ट ईखों का प्रचार करें ताकि गुड़ और चीनी के उत्पादन-मूल्य को कम कर सकें। ऐसा करने से ही भारत की चीनी संसार के अन्य देशों की चीनी से प्रतिद्वन्द्विता में ठहर सकती है।

अभी भी नई ईखों के निकालने में हमें आगे बढ़ना है। हमें ऐसी ईखें उत्पन्न करना चाहिए जो जल्दी परिपक्व हों, देर से परिपक्व हो, जिनमें चीनी की मात्रा अधिक हो, जिनके गुड़ अच्छे बनें, जिनमें कम जल से काम चल सके और जिनमें रोगों और कीड़ों के आक्रमणों के रोकने की क्षमता हो।

चौदहवाँ प्रकरण

गुड़, भुरा और खाँड़सारी चीनी[1]

भारत में जितनी ईख उपजती है, उसका अधिकांश भाग गुड़ बनाने में उपयुक्त होता है। प्रो० वकील के अनुसार सारी ईख का प्राय: ५० प्रतिशत और प्रो० वाडिया और मर्चेंट के अनुसार प्राय: ६० प्रतिशत ईखों से गुड़ बनाया जाता है।

प्राचीन समय में ईखों को लकड़ी के बेलनों में दबाकर रस निकालते थे। फिर उस रस को आग पर गाढ़ा करते थे। समय के परिवर्तन के साथ-साथ रस निकालने के साधनों में भी तरक्की होती गई। पहले लोहे के दो बेलन और फिर लोहे के तीन बेलन इस्तेमाल होने लगे। बेलन उर्ध्वाधार होते थे और क्षैतिज भी। दो बेलनवाले कोल्हू में ईख का रस पूरा नहीं निकलता था। इसका अधिक भाग सीठे में रह जाता था। इससे तीन बेलनवाले कोल्हू इस्तेमाल में आये। तीन बेलनवाले कोल्हुओं से रस अधिक निकलता है और सिठे में अपेक्षाकृत कम रस रह जाता है। ये कोल्हू बैल से चलते थे और आज भी चलते हैं।

रस को कपड़ों में छानकर लोहे के कड़ाहों में गाढ़ा करते हैं। इन कड़ाहों को गरम करने के लिए मिट्टी का चूल्हा बनाते हैं। चूल्हे में ईख की सूखी पत्तियों को अथवा सूखे सीठे को जलाते हैं। इससे जलावन में कुछ खर्च नहीं पड़ता। रस जब पर्याप्त गाढ़ा हो जाता है, तब उसे लकड़ी के कलछों से बार-बार चलाकर तब मिट्टी के गड्ढे में गाढ़े रस को ढालकर ठंढे होने के लिए छोड़ देते हैं। गड्ढे के आकार की गुड़ की चक्की बन जाती है। चक्की बनाने के स्थान में गुड़ को छोटे-छोटे लड्डू भी हाथों से बनाते हैं। बिहार में इस गुड़ को भेली कहते हैं। ये लड्डू भिन्न भिन्न विस्तार और आकार के होते हैं। छोटी बेर के आकार से लेकर एक से डेढ़ सेर वजन तक के लड्डू भी होते हैं। लड्डू के आकार भी एक-से नहीं होते। कहीं-कहीं गोलाकार बनते हैं और कहीं-कहीं चिपटे। अब तो लकड़ी के साँचों में ढालकर बर्फी के आकार के भी गुड़ बनते हैं। इस प्रकार से प्राप्त गुड़ स्वच्छ नहीं होते। देखने में मैले लगते हैं। इनका रंग हल्का से लेकर गाढ़ा तक होता है।

कृषि-विभाग ने गुड़ तैयार करने के तरीकों में और उसमें उपयुक्त होनेवाले साधनों में पर्याप्त सुधार किये हैं।

---

१. यह प्रकरण 'बिहार-कृषि-विभाग' द्वारा प्रकाशित पुस्तिका नं० १०७ के आधार पर लिखा गया है।

उत्तर प्रदेश में गुड़ और रवा बनाने की उन्नत रीति[१]—प्राचीन तरह के कोल्हू से और एक कड़ाह में पकाकर ईख में जो शर्करा होती है, उसका प्रायः अर्धांश ही हमें प्राप्त होता है। शेष अर्ध भाग ईख के सीठा और विपर्यय द्वारा खो जाता है। विपर्यय आदि द्वारा जो हानियाँ होती हैं, उनको दूर करने के लिए समय-समय पर रस को साफ और गाढ़ा करने में अनेक प्रकार की उन्नति की गई है, और वर्तमान समय में दो मुख्य तरीके, देशी तौर पर खाँड़ बनाने में व्यवहृत किये जाते हैं—एक पुराना रूहेलखण्ड बेल का तरीका और दूसरा नया भूपाल बेल का तरीका। रूहेलखण्ड बेल में साधारणतया पाँच कड़ाहियाँ होती हैं और भपाल बेल में नौ कड़ाहियाँ। ये कड़ाहियाँ एक भट्ठी के ऊपर लगी रहती हैं। पहली कड़ाही को 'हौज', दूसरी को 'निखार', तीसरी को 'खौला', चौथी को 'मांझा' और पाँचवी को 'पड़छा' कहते हैं। भूपाल बेल में दो हौज, तीन निखार, एक खोला, एक माँझा और दो पड़छे होते हैं। हौज और निखार गहरी कड़ाहियाँ हैं। खौला इनसे जरा छोटी और कम गहरी है। माँझा जरा और छोटी और कम गहरी तथा पड़छे छोटी-छोटी और छिछली कड़ाहियाँ हैं। इन सब का भी असल मतलब यही है कि रस जलने न पावे और जहाँ तक सम्भव हो, इक्षु-शर्करा द्राक्ष-फल-शर्कराओं में परिवर्त्तित न होने पावे।

बेल चलाने का तरीका—पड़छे में पौन टीन रस और माँझे में प्राय. डेढ़ टीन रस डाल दिया जाता है और खौला, निखार तथा हौज, यदि रस पूरा हो तो, भर दी जाती हैं, नहीं तो खौले को भर देते हैं और बाछियों में चार-चार या पाँच-पाँच टीन रस डाल देते हैं। एक-दो टीन शुद्ध पानी, एक-दो टीन भिंडी का रस और एक नाद सज्जी और चूने का पानी रख लेते हैं। देखने की असल बात यह है कि रस शीघ्र गरम हो, ताकि उसमें किसी भाँति का परिवर्त्तन न होने पावे। दस-पन्द्रह मिनट के अन्दर पड़छे का रस उबाल में आ जाता है और फौरन भिंडी आदि पदार्थों से साफ कर दिया जाता है। इतने में ही माँझे का रस भी उबाल पर आ जाता है और उसकी सफाई की बारी आती है। यदि खौले में कुछ देर लगे तो पड़छे और माँझे के रस में थोड़ा ठंडा पानी मिलाकर उसके उबाल को कम कर देते हैं। खौले और निखार का रस तैयार हो जाने पर वह रस माँझे और पड़छे में पहुँचता जाता है तथा राब तैयार हो-होकर कलसी या टीनों में भर-भर कर रखी जाती है। प्रायः आठ टीन रस के लिए एक टीन दुल्ला या भिंडी के रस की आवश्यकता होती है। इससे कम होने पर भली-भाँति सफाई नहीं होती। भिंडी या दुल्ला तब मिलाना चाहिए, जब रस से ऊपर का मोटा मैल प्रायः फटने पर आ जाय और फिर निखारे हुए साफ रस में सज्जी या चूने का पानी का यथेष्ट व्यवहार करना चाहिए। प्रायः रूहेलखण्ड में भिंडी, सज्जी और चूना भी कम व्यवहार में आते हैं। नतीजा यह होता है कि कम व्यवहार से सफाई पूर्ण रूप से नहीं होती और चूने या सज्जी के पानी के कम व्यवहार से राब का दाना कमजोर हो जाता है, यानी इक्षु-शर्करा आंशिक रूप से द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा में परिवर्त्तित हो जाती है। भोपाल बेलवाले इस ओर से अधिक सतर्क रहते हैं; क्योंकि भोपाल के कृषि-विभाग के सञ्चालक ने इस ओर विशेष ध्यान दिया था। सरकारी

---

१. यह प्रकरण प्रस्तुत लेखक-द्वारा सम्पादित मासिक 'गङ्गा' के विज्ञानाङ्क में प्रकाशित श्री रघपाल संघी के लेख से लिया गया है।

शुगर टेकनालाजिस्ट श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव ने बिलारी आदि में देशी तरीके से खाँड बनाने पर अनेक प्रयोग किये हैं और उन्होंने इस बात पर पूर्णतया जोर दिया है कि चूने और सज्जी के पानी का पूरा प्रयोग होना चाहिए। फिर यह राब या तो खाँची के तरीके से, सेवार के जरिये से, सफेद चीनी के रूप में तैयार कर ली जाती है या सेंट्रिफ्यूगल मशीनों के जरिये से चीनी बना ली जाती है। उक्त दोनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार से बनी हुई शक्कर पाटों द्वारा धूप में सुखा ली जाती है। खाँची तरीके में जब राब में पूरी तरह से दाना पड़ जाता है, तब उसको बोरों में भर देते हैं; और फिर, उन बोरों को एक के ऊपर एक, दस-बारह की तायदाद तक, लाद देते हैं और कभी-कभी उनके ऊपर और भी बोझ रख दिया जाता है। इस तरीके से राब का शीरा बोरे के छिद्रों से बाहर निकल जाता है और दाना उसके भीतर रह जाता है। दो आदमी द्वारा भी राब के इन बोरों को पैरों से कुचल-वाकर शीरा निकाल दिया जाता है। सबसे नीचेवाला बोरा, जिसका शीरा भली-भाँति निकल गया है, निकालकर एक हौज में डालकर खाली कर लिया जाता है, जो पक्के चूने आदि का बना होता है। इसी प्रकार एक के बाद दूसरे बोरों से जब यह हौज भर जाता है, तब उसके ऊपर सेवार घास की एक तह रख दी जाती है, जिसके असर से ऊपर की चीनी की तह साफ हो जाती है। यह साफ तह खुरचकर निकाल ली जाती है और फिर दूसरी तह पर सेवार रख दी जाती है। इसी प्रकार सारी चीनी साफ हो जाती है।

पाटा—एक चौरस जमीन का टुकड़ा या तो लीप-पोतकर ठीक कर लिया जाता है या पक्का फर्श बनवा लिया जाता है। उसी पर एक मोटे कपड़े की चादर बिछा दी जाती है। कभी-कभी इस चादर के नीचे एक टाट भी होता है। इसी को 'पाटा' कहते हैं। इसपर साफ शक्कर फैला दी जाती है और शक्कर पर पाँव में सफेद कपड़े के पातावे पहने हुए तथा बैसाखी लिये हुए कुली लोग एक विचित्र प्रकार से घूमते और चीनी को पैरों से मलते जाते हैं। इस प्रकार चीनी सूख जाती है।

बेल की भट्ठी भी खास तौर से बनाई जाती है। यह भट्ठी लम्बी होती है। यह सामने से झोंकी जाती है और पीछे से धुआँ निकलती है। सबसे आगे पड़छा कड़ाही और सबसे पीछे हौज नाम की कड़ाही रहती है और सब कड़ाहियाँ जमा दी जाती हैं. लेकिन पड़छा योंही छोड़ दिया जाता है। ताकि समयानुसार उसको हटाया और फिर रखा जा सके।

राब बनाने के लिए कलसियों से अधिक अच्छे टीन हैं। क्योंकि कलसियों के फुटने आदि से बहुत राब नुकसान हो जाता है। टीनों से अच्छी चीज इस काम के लिए छोटे-छोटे क्रिस्टलाइजर हैं जो चीनी के कारखानों में उपयुक्त होते हैं। इनमें राब का दाना एक-सा पड़ता है और किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं होता। बेलों में ईख पेरने के लिए अक्सर वाहन कोल्हू या चाटानुगा कोल्हू व्यवहृत होता है। इसमें मजबूत बैलों के व्यवहार से काफी रस निकलता है। हाल में कहीं-कहीं मैरी कम्पनी (मद्रास) के या विलायत के बने हुए तीन-तीन कोल्हुओं के दो-दो तीन-तीन जोड़े भी बेलों में ईख पेरने के लिए व्यवहृत होने लगे हैं, जिनको तेल-इंजिन द्वारा चलाते हैं। बेलों से ईख की समस्त चीनी का ६० से ७० प्रतिशत तक चीनी निकल आती है और नवीन वैज्ञानिक मिलों से ७५ से ९० प्रतिशत तक।

चूल्हे के बनाने में भी अब सुधार हुआ है। पहले ईख की पत्तियों या सूती कतरन

को इन चूल्हों में जलाते थे। अब इन सूती कतरनों को कम्पोस्ट खाद बनाने में उपयुक्त करते हैं। इनके स्थान में अब ईख के सीठे को ही जलावन के काम में लाते हैं। इस नये चूल्हे के बनाने में खर्च भी कम पड़ता है। इस नये ढंग के चूल्हे के लिए केवल धूप में सूखी कुछ ईंटों और कुछ लोहे की छड़ के टुकड़ों की जरूरत होती है। चूल्हे से निकलनेवाली बर्बाद जाती आँच को काम में लाने के लिए मिट्टी की चिमनियों से हवाबंद ऐशपिट के रास्ते भट्ठी में ले जाई जाती है। इस तरह आँच ठंढी हवा से बर्बाद नहीं होती। इसका भी बन्दोबस्त किया गया है कि ईंधन चूल्हे में बराबर मिलता रहे। चूल्हे के मुँह से भट्ठी में ठंढी हवा का जाना भी रोक डाला गया है जिससे जलावन के खर्च में और भी कमी हो गई है।

एस० बी० कड़ाह—ये कड़ाह लोहे के मजबूत चदरे के बने और चिपटे पेंदेवाले होते हैं। कड़ाह के किनारे और पेंदे क्रमशः १/८" और ३/८" के होते हैं। कड़ाह ७ इंच गहरा रहता है और इसके सिरे पर तथा पेंदे का व्यास क्रमशः ४ फूट ४ इंच और तीन फूट चार इंच होते हैं। एक बार में तीन मन रस इस कड़ाह में औंटा जा सकता है। पर अच्छे किस्म के गुड़ के लिए एक घानी में डेढ़ मन से ज्यादा रस नहीं औंटना चाहिए।

इनके अलावा लकड़ी का 'गुड़दाम' और 'छनौटा' तथा और-और छोटे औजार भी रहते हैं। खाद को छनौटे से निकाल लेते हैं। खाद के साथ जो रस चला जाता है, उसे बर्बाद जाने से बचाने के लिए मैल को एक ऐसे टोकरे में डालते हैं जिसके ऊपर पतला कपड़ा दिया रहता है। रस चू-चूकर मिट्टी के नाद में एकत्र होता है। यह रस फिर दूसरी घानी में नये रस के साथ औंटा जाता है।

बिहार में गुड़ तैयार करने की उन्नत रीति—गरम कड़ाह में बोरे से छानकर करीब डेढ़ मन रस उड़ेला जाता है। रस को साफ करने के लिए 'सुपर फ़ास्फ़ेट विलयन' चार छटाँक और उसके बाद 'भिंडी म्यूसिलेज' चार छटाँक मिलाते हैं और इसे अच्छी तरह फेंट दिया जाता है। अगर फ़ास्फेट नहीं मिले तो 'भिंडी म्यूसिलेज' थोड़ा और मिलाना चाहिए। जैसे जैसे नीचे से आँच लगती है, ऊपर कड़ाह में मैल जमता जाता है। जब रस उबाल खाने लगे और मैल फट जाय तब इसे अच्छी तरह से अलग कर दें। फिर चार छटाँक 'भिंडी म्यूसिलेज' डालते हैं ताकि मैल बिलकुल न रह जाय। रस खौलाते समय आधा तोला सोडा बाइकार्बोनेट पानी में घोलकर खौलते रस पर छिड़क देना चाहिए और तब मैल काटना चाहिए। जब उफान आना बंद हो जाय तब आँच कम कर दें और गाढ़ा होते हुए रस को लकड़ी के गुड़दाम (पैंढ़नी) से अक्सर चलाते रहें ताकि रस कहीं लग न जाय। गुड़ बनाने लायक रस तैयार हुआ या नहीं, इसकी जाँच नीचे बताये तरीके से हो सकती है—

१. बुलबुले उठना—जब रस उतारने लायक हो जाता है, उस समय कड़ाह में रस के बुलबुले बहुत जोर से फूटने और भाप फेंकने लगते हैं। जब बुलबुले फैलकर सारे कड़ाह में फुटने लगे तब कड़ाह को आग पर से उतार ले।

२. कलछुल से जाँच—लकड़ी कलछुल से गर्म रस निकालकर फिर कड़ाह में उड़ेला जाता है। रस की आखिरी बूँद से तार उठता है। जब रस उतारने लायक हो

जाता है, तब ऐसे तार हवा में सूख जाते हैं। अगर रस उतारने लायक नहीं होगा तो रस का तार फिर बूँद की शक्ल का हो जायगा।

३. 'फुट' की जाँच—बाँस की एक पतली नली लें और उसे छील-छालकर साफ करें। नली का एक सिरा गाढ़ा होते हुए रस में डालें और दूसरी ओर से तुरंत फूँकें। फूँकते ही हवा में एक सूखा रेशम-सा बुलबुला आ जायगा और फुट की आवाज करके फट जायगा। अगर ऐसा हो तो समझें कि रस अब तैयार हो गया और कड़ाह को तुरन्त उतार लें। यह बड़ा आसान तरीका है और जाँच अच्छी होती है। थोड़े से अभ्यास से ये सभी तरीके सीख लिये जा सकते हैं। एक जाँच के बाद दूसरी जाँच कर लेने से नतीजा अच्छा होता है।

गुड़ को दानेदार बनाना—गुड़ को दानेदार बनाने से गुड़ कड़ा होता है और इसमें ज्यादा रवा पड़ता है। यह ज्यादा दिनों तक टिकाऊ भी होता है। बिना रवे का गुड़ ज्यादा पसीजता है; पर दानेदार उतना नहीं पसीजता। जब कड़ाह उतारा जाता है तब उसे कुछ मिनटों के लिए ठंढा होने को छोड़ देते हैं। इसके ऊपर करीब चौथाई तोला पिसी हुई चीनी छिड़ककर करीब पाँच मिनट बाद ऊपर-नीचे चला देते हैं। ऐसा दो या तीन बार करते हैं जब तक कि उसमें काफी दाना नहीं पड़ जाय। ताजा और पूरी तरह से तैयार रस में केवल एक बार ऐसा करना ही काफी होता है। ठीक समय पर गुड़ को चक्की बनाने में बहुत सावधानी करनी चाहिए। दाना डालने के बाद रवा जल्दी ही पड़ जाता है। इसलिए गुड़ की चाशनी से चक्की उस समय बना लें जबकि यह लसदार रहे, नहीं तो गुड़ ठीक नहीं जमेगा और पपड़ीदार हो जायगा।

रस साफ़ करने के लिए 'फ़ास्फेट' विलयन तैयार करना—गुड़वाले कड़ाह में करीब दो सेर सिंगल या डबल सुपर फॉस्फ़ेट डेढ़ मन पानी में औटें और औंटते-औंटते जब आधा मन रह जाय, तब उतार लें। विलयन के गंदले अंश को मिट्टी के बरतन में रख दें और सतह पर तैरनेवाले स्वच्छ चीज़ को काम में लावें। को० ३३१ नामक ईख से गुड़ बनाने में फ़ास्फ़ेट विलयन डालने से गुड़ का रंग उतना अच्छा नहीं आता जो और दूसरी ईखों से आता है। कोयम्बटोर ३३१ ईख से तैयार होनेवाले गुड़ में केवल 'सोडियम हाइड्रो सल्फ़ाइट ब्लैकिट' देने से ही रंग खूब अच्छा होता है। चाशनी उतारने के दो-चार मिनट पहले एक चमच 'ब्लैकिट' डाल कर खूब मिला दें। इससे तुरत ही गुड़ में सुनहला रंग आ जाता है।

ए० सी० चीनी की तैयारी—तैयारी के पहले की हालत में इसे भुरा कहते हैं। अगर इसे अच्छी तरह तैयार किया जाय तो गुड़ से ज्यादा कीमत मिलती है। इसके लिए भी रस साफ करने का वही तरीका है जो गुड़ का है। फर्क केवल इतना ही है कि सोडा-बाइ-कार्बोनेट का व्यवहार ज्यादा किया जाता है। चाशनी को चटचटा होने से बचाना चाहिए। थोड़ा 'साइट्रिक' अम्ल डाल देने से इसका खतरा बहुत कुछ नहीं रहता। इसकी चाशनी में ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। इस चीनी की चाशनी गुड़ से कुछ कम समय में ही तैयार होती है इस चाशनी की जाँच ऊपर बताये तौर पर गुड़दाम से ठीक होती है। जैसे ही इस जाँच से पता लग जाय कि रस तैयार हो गया खूब, चलाकर कड़ाह को चूल्हे से उतार लें। गर्म चाशनी को लोहे के छोटे-छोटे बर्तनों में उड़ेल देते हैं और

चला-चलाकर ठंढा करते हैं। बराबर चलाते रहने से चाशनी सख्त नहीं होती और दाने पड़ जाते हैं। लकड़ी को थापी से गर्म और दानेदार चाशनी को बरतन की दीवार से मसलकर तोड़ डालते हैं और यह सफेद बुकनी के रूप में हो जाता है। अगर रस ताजा नहीं रहता या ठीक तौर से न पकी हुई या खराब ईखों का रहता है, तो इसका बहुत डर रहता है कि चाशनी में चटचटाहट आ जाय। ऐसी हालत में, औटते समय अखीर में कुछ ग्रेन साइट्रिक अम्ल डालना चाहिए और जब चाशनी तैयार हो जाय तब दाने डाले जायँ।

रवा गुड़ तैयार करना—रवा गुड़ खूब कड़ा नहीं होता। कहीं-कहीं लोग इसे बहुत पसंद करते हैं। चूँकि यह कुछ गीला होता है, इसलिए इसे रखना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना एक कठिन सवाल हो जाता है। इसे केवल स्थानीय व्यवहार के लिए तैयार करते हैं। इसके तैयार करने की रीति करीब-करीब वही है जो गुड़ की। फर्क केवल इतना है कि इस की चाशनी गुड़ की अपेक्षा कुछ जल्दी तैयार होती है। जब रस तैयार हो जाय तब कड़ाह को चूल्हे से उतार लें और भाप में ठंढा करें। फिर कुछ देर तक थापी से घोटकर मिट्टी के बर्तन में उड़ेल देना चाहिए ताकि रवा पड़ जाय।

खांडसारी चीनी या देशी चीनी बनाना—खांडसारी चीनी तैयार करने की रीति सरल है और अब कम खर्च में अच्छी तरह तैयार हो सकती है। इसके लिए भी रस उसी तरह साफ किया जाता है जिस तरह गुड़ के लिए। इसकी चाशनी देखने के लिए एक आसान और सस्ता यंत्र है जिसे राबामीटर कहते हैं। इसकी कीमत सिर्फ तीन आने हैं और सूगरकेन स्पेशलिस्ट, बिहार, पूसा के पास से मँगाई जा सकती है। औटते समय जब उफान आना बंद हो जाय और रस सारे कड़ाह में उबलने लगे, किसी वर्तन में गाढ़े रस का नमूना निकाल लें और यह यंत्र उसमें डाल दें। यंत्र का लाल सिरा चाशनी के अन्दर रहता है। यह यंत्र वर्तन में तैरने लगेगा। जब तक यंत्र का लाल सिरा नजर न आने लगे, चाशनी को धीरे-धीरे औंटना जारी रखें। यह जाँच तब तक जारी रखें जब तक कि यंत्र का लाल सिरा नजर न आने लगे और तब कड़ाह को आग पर से उतार लें। उतार कर इसको ठंढा होने के लिए नाद में उड़ेल दें और हवा लगने दें। राब को साफ करने के लिए, इसपर एक चमच 'ब्लैंकिट' छिड़ककर तब नाद में उड़ेलना चाहिए। हवा लगने से राब पूरी तरह साफ हो जाता है। ब्लैंकिट डालने से रवा पड़ने में भी मदद मिलती है। अखीर में सब मिट्टी के या लोहे के जैसी सहूलियत हो, बर्तनों में रखा जाता है। एक हफ्ते के अन्दर पूरा रवा पड़ जाता है और राब सेन्ट्रीफ्यूगल मशीन में चलने लायक हो जाता है। एक हफ्ते तक जब राब रखा रहता है तब उसके बीच-बीच में इसे फेटते रहना भी चाहिए ताकि राब जल्दी तैयार हो। सेंट्रीफ्यूगल मशीन से चक्कर देने के बाद चीनी को धूप में सुखाकर सूखी जगह में रख लें। चीनी बनने के बाद बचा छोआ फिर उबाला जा सकता है और दोयम चीनी तैयार की जा सकती है; पर यह किफायत नहीं होती। इस छोये से सस्ते किस्म का गुड़ अलबत्ता बनाया जा सकता है।

छोआगुड़—छोआ में बराबर हिस्सा पानी मिलाते हैं। हर पानी में एक टीन छोआ और एक टीन पानी। इसे भी औटने का वही तरीका है जो गुड़ का है। इसमें साफ करने के लिए कुछ डालने की आवश्यकता नहीं, केवल सोडा बाइकार्बोनेट थोड़ा मिलाते हैं। चाशनी को तब तैयार समझें जब शीरे का एक बूँद पानी में ठंढा करने से उँगली

पर जम जाय। खाँडसारी चीनी का औसत उत्पादन ५.५ प्रतिशत होता है और छोए के गुड़ का ४.५ प्रतिशत। अगर हाथ से चलानेवाला सेन्ट्रीफ्यूगल मशीन काम में लाया जाय तो खाँडसारी चीनी तैयार करने के जरूरी सामानों के खर्च में भी काफी कमी हो सकती है।

बिगड़े हुए रस से शर्बत या गुड़—बिगड़े हुए रस से बनाये शर्बत और गुड़ में रासायनिक परिवर्तन से चीनी का हिस्सा कम बर्बाद जाता है। यह शर्बत और गुड़ ज्यादा दिनों तक टिकता भी है। आमतौर पर ऐसा शर्बत और गुड़ काला होता है।

बिगड़े हुए रस से गुड़ की तैयारी—यह गुड़ भी मामूली ढंग से तैयार किया जाता है; लेकिन रस को पहले 'सुक्रेट ऑव लाइम' से निराकरण कर लेते हैं। अगर रस साफ करते समय 'फास्फेट' विलयन डालना हो तो अम्ल उदासीन करने के लिए 'सुक्रेट ऑव लाइम' का भी बराबर भाग डालना चाहिए। इसमें सोडा बाइ-कार्बोनेट डालने की जरूरत नहीं है।

बिगड़े हुए रस से शर्बत तैयार करना—जब पेरने से फाजिल ईख हो या अगर ईख खराब होने लगे तब जल्दी पेरना खतम करने के लिए मरे हुए रस से शर्बत तैयार किया जा सकता है। ऐसे रस से तैयार शर्बत गुड़ के बनिस्बत ज्यादा साफ होता है। शर्बत और गुड़ बनाने के बीच औंटते समय चीनी का रासायनिक परिवर्तन अधिक होता है। इसलिए गुड़ की अपेक्षा शर्बत में चीनी ज्यादा रहती है। दूसरे मौसम में इस शर्बत से आसानी से गुड़ या खांडसारी चीनी तैयार हो सकती है। शर्बत भी उसी तरह तैयार होता है जिस तरह गुड़। फर्क केवल इतना है कि इसका शीरा जल्दी तैयार होता है। उफान खतम होने के कुछ ही मिनट बाद कड़ाह को आग से उतार लेना चाहिए। शर्बत को मिट्टी के घड़ों में रखना सस्ता होगा।

सुक्रेट ऑव लाइम—पौने चार पाउंड मामूली चूना साढ़े चौदह पाउंड पानी में घुला कर कम-से-कम चार घंटे तक पड़े रहने दें ताकि घुलकर विलयन बन जाय। इस चूने में ३३ पाउंड रस मिलाकर सारी रात छोड़ दें। 'सुक्रेट ऑव लाइम' दो दिनों तक ठीक रहता है।

सुक्रेट ऑव लाइम का व्यवहार—१०० भाग रस और ३५ भाग सुक्रेट ऑव लाइम मिलाने से रस मारा जाता है। औंटने के लिए कड़ाह में रस देते वक्त ही सुक्रेट ऑव लाइम मिला देना चाहिए।

गुड़ भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। रंग भी इनका काला से लेकर सुनहरे पीले रंग का होता है। इनमें इक्षु शर्करा की मात्रा ८० से ८५ प्रतिशत तक रहती है। द्राक्ष-शर्करा की मात्रा ३ से ६ प्रतिशत। इसमें जल का अंश तीन से सात प्रतिशत और राख की मात्रा तीन से चार प्रतिशत रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ कार्बनिक पदार्थ और विकर भी इसमें रहते हैं। आहार की दृष्टि से चीनी से गुड़ कहीं अच्छा है।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

ईख की पेराई

ईख से चीनी बनाने में पहला काम रस निकालना है। प्राचीन समय में लकड़ी के बेलनों से ईख को दबाकर रस निकालते थे और फिर उस रस को गाढ़ा करते थे। आज-कल कोल्हू में ईख की पेराई होती है। ये कोल्हू उर्ध्वाधार होते हैं। पर चीनी बनाने के लिए जिस कल में ईख की पेराई होती है, उस कल में बेलन क्षैतिज होते हैं। इन बेलनों में ईख के जाने से ईख पर बेलनों का दबाव पड़ता है और तब ईख से रस निकल आता है। विभिन्न मिलों में उपयुक्त होनेवाले बेलनों में ज्यादा अन्तर नहीं होता; यद्यपि उनके उपसाधनों में भिन्न-भिन्न कारखानों में बने होने के कारण कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य रहता है।

ईख—मिल में जो ईखें आती हैं, उनमें वाह्य-वल्क (rind) और अभ्यन्तर मज्जक (pith) होते हैं। ईख वस्तुत: एक खोखला बेलन होता है जो अनेक पर्व-संधियों द्वारा छोटे-छोटे बेलनों में बँटा रहता है। पर्वसन्धियाँ भी वल्क की ही बनी होती है।

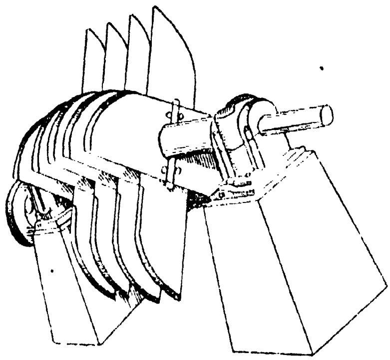
वल्क और पर्व-सन्धियाँ कठोर काष्ठ-प्रकृति की होती हैं। इनमें भी रस रहता है। ऐसे रस को हम 'वल्क रस' कहेंगे। यह रस उतना शुद्ध नहीं होता। मज्जक कोमल प्रकृति का होता है। इससे प्राप्त रस अधिक शुद्ध होता है। इसे हम 'मज्जक रस' कहेंगे। ईख वस्तुत: रस और तन्तुओं की बनी होती है। तन्तुओं में फिर वल्क तन्तु और मज्जक-तन्तु होते हैं। ईख में वस्तुत: तीन भाग—मज्जक, वल्क और पर्व-सन्धियाँ होते हैं अथवा ईख में पर्व और पर्व-सन्धि। ईख से विभिन्न पदार्थ निम्नलिखित मात्रा में प्राप्त होते हैं:—

समस्त ईख में—

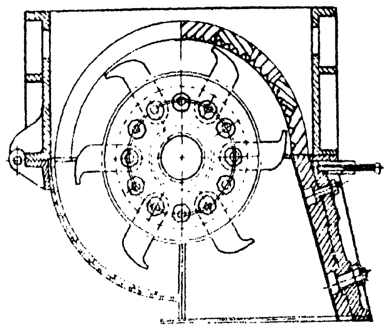
प्रति ईख में ईख का भार	१००
तन्तु का भार	१३.७ प्रतिशत
समस्त ठोस का भार	१७·१ प्रतिशत
शर्करा का भार	१४·८ प्रतिशत

मज्जक में—

प्रति १०० भार ईख में मज्जक का भार	७७·० प्रतिशत
तन्तु का भार	८·० प्रतिशत
समस्त ठोस का भार	१८·५ प्रतिशत
शर्करा का भार	१६·७ प्रतिशत



चित्र ३८—ईख काटने के आम्यत् चाकू



चित्र ३९—ग्रुण्डलर का ईख विपाटक



चित्र ३८ (क)—ईख काटने के क्रकच चाकू

बल्क और पर्व-सन्धि में—

प्रति १०० भार ईख में बल्क और पर्व-सन्धि	२३'० प्रतिशत
तन्तु का भार	३३'० प्रतिशत
समस्त ठोस का भार	१२'८ प्रतिशत
शर्करा का भार	८'५ प्रतिशत

समस्त रस—

प्रति १०० ईख में रस का भार	८६'३
समस्त ठोस	१६'८ प्रतिशत
शर्करा	१७'१ प्रतिशत

मज्जक रस—

प्रति १०० ईख में मज्जकरस का भार	७०'८ प्रतिशत
समस्त ठोस	२०.२ प्रतिशत
शर्करा	१८'५ प्रतिशत

बल्क और पर्वसन्धि—

प्रति १०० ईख में बल्क और पर्व-सन्धि भार	१५'५
समस्त ठोस	१८'३ प्रतिशत
शर्करा	१२'७ प्रतिशत

यहाँ समस्त ठोस भुजाय रीति से निकाला गया है और शर्करा एक-ध्रुवियन रीति से निर्धारित शर्करा की मात्रा है। समस्त ठोस और शर्करा निकाल लेने पर अन्तर से तन्तु की मात्रा निर्धारित होती है।

चीनी की मिलों में ईख से रस निकालने में ईखों को पहले छोटा-छोटा काटकर कुचलते हैं। इससे ईख का बल्क बहुत-कुछ टूट जाता है। फिर इसे और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते अथवा दलते या पीसते हैं। ऐसे दलित ईख की मोटाई ०'२५ इंच से लेकर महीन चोकर के आकार तक हो सकती है। ऐसी महीन ईख के गुद्दे से प्रति वर्ग इंच पर प्राय: चार से पाँच हजार पाउण्ड दबाव से रस निकालने में पहले निचोड़ में ५८ से ६४ प्रतिशत, दूसरे निचोड़ में ८ से १२ प्रतिशत, तीसरे निचोड़ में तीन से छ: प्रतिशत और चौथे निचोड़ में दो से तीन प्रतिशत रस निकलता है। सब निचोड़ मिलाकर प्राय: ७० प्रतिशत रस निकलता है। यदि कुचलने की गति ऊँची है और ईख छोटे-छोटे टुकड़ों में कटा हुआ है तो रस अधिक निकलता नहीं तो कम।

जब ईख को दबाया जाता है तब पहले उससे कम दबाव पर भी अधिक रस निकलता है। सीठे के तन्तु जब एक सीमा पर पहुँच जाते हैं, तब उससे रस निकालने के लिए अधिक दबाव की आवश्यकता होती है।

ज्योंही ईखें खेतों में कटे, उन्हें मिल में पहुँचा देना चाहिए। देर करने से, ईख के धूप में सूखने से, चीनी की मात्रा में कमी होती है। यह कहना कठिन है कि ईख के काटने के बाद देर से मिल में पहुँचाने से चीनी की मात्रा में कितनी कमी होती है।

मिल में पहुँचने पर ईख को गाड़ी अथवा ट्रक अथवा रेल डब्बे से उतारने के अनेक यांत्रिक साधन बने हैं। जहाँ की जल-वायु ठंढी है और ईख के रखने से अधिक ह्रास नहीं

होता, वहाँ ईख को उठाकर अन्तहीन (endless) वाहक (conveyor) अथवा उत्थापक (elevator) पर रखते हैं। यह उत्थापक लोहे अथवा लकड़ी के तख्तों का बना होता है जो लोहे की एक जंजीर द्वारा, जो तखतों के दोनों तरफ गड़ारियों पर लगे रहता है, घूमा करता है और तख्ते पर रखी ईखें इञ्जन की ताकत से ऊपर की ओर चढ़ती जाती हैं और खाली पटरी नीचे की ओर खिसकी जाती है। कभी-कभी ईखों को उठाकर ढेर में भी इकट्ठा करते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर इच्छानुसार जब चाहें तब उठाकर ले जा सकें। ईखों को उठाने के लिए जो साधन उपयुक्त होते हैं, उसे 'संकिर साधन' (raking device) कहते हैं।

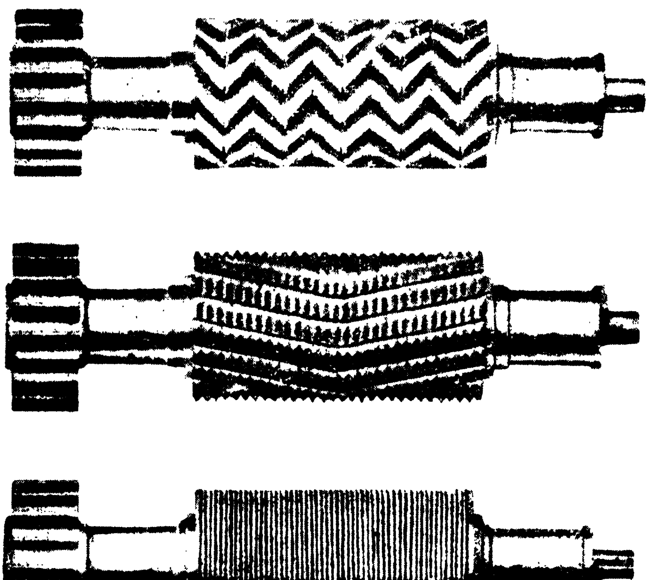
कहीं-कहीं राशि-उत्थापन और राशिपातन युक्ति (Hoists and Dumping device) का उपयोग होता है। राशिउत्थापन में एक बार में गाड़ी के तृतीयांश को उठाकर अधोवाप (hopper) में रखने की क्षमता होती है जहाँ से, जैसा ऊपर कहा गया है, उत्थापक द्वारा ईख को कोल्हू में ले जाते हैं। बोझों के तोड़ने में यहाँ कुछ समय लगता है। राशि-उत्थापन में लोहे की सिकड़ी बोझे को पकड़कर जुए में (yoke) बाँधकर ईख को ले जाती है।

राशिउत्थापन और राशिपातन रीति बड़ी सरल है। इससे ईख कम परिश्रम से और शीघ्रता से गाड़ियों से उठाकर अधोवाप में रखी जाती है। चबूतरे से ईख को अधोवाप में उड़ेल देने के लिए जलप्रेरित (hydraulic) बल का उपयोग होता है।

कोल्हू—ईख को कुचल या दलकर उससे रस निकालने के लिए कोल्हू का उपयोग होता है। इसके लिए जो कोल्हू उपयुक्त होता है, वह बहु-पेषणी होता है। इनमें त्रि-बेलन पेषणी (grinders) के ३ से ७ कुलक (set) होते हैं। ये पेषणी बिजली द्वारा संचालित होती है। बिजली के व्यवहार से चीनी के कारखानों में जलावन की खपत बहुत कम हो गई है। नई मिलों के लिए तो बिजली का उपयोग अवश्य ही सस्ता है; पर पुरानी मिलों के लिए जहाँ वाष्प इंजन का उपयोग होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ईखें उत्थापक द्वारा चलकर घूमते हुए चाकुओं [चित्र ३८] द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दी जाती हैं और फिर आगे चलकर विपाटक (Splitter) से फाड़ दी जाती हैं। (चित्र ३६)

जिन कारखानों में घूमते हुए चाकू नहीं लगे रहते, वहाँ एक ऐसे कोल्हू का उपयोग करते हैं जो ईखों को टुकड़े-टुकड़े करता हुआ फाड़ता भी जाता है। ऐसे कोल्हुओं में एक 'राजेवस्की दलित्र' (चित्र ४०) है। यह दलित्र अथवा विपाटक दो-दो बेलनों का होता है; पर इन दोनों बेलनों के दाँतों में अन्तर होता है। इन बेलनों से निकलकर कटी और फटी ईखें तीन-तीन बेलनों के अनेक जोड़ों में से गुजरती हैं। साधारणत: अच्छे मिलों में कोल्हू के चार से पाँच जोड़े होते हैं। कहीं-कहीं छ: सात अथवा इससे भी अधिक होते हैं। इन कोल्हुओं के दाँतों में विभेद होता है। पहले के कोल्हुओं में दाँत मोटे-मोटे होते हैं और पीछे के कोल्हुओं में छोटे छोटे।

ये कोल्हू बड़े-बड़े इंजन द्वारा चलाये जाते हैं। इनपर कमानियों (toggles) अथवा जल-प्रेरित बल द्वारा परिमित बोझ डाला जाता है ताकि कोल्हुओं पर कोई आघात (जरब) न पहुँचे और ईखें भी भली-भाँति पीसी जा सकें। पहले और दूसरे कोल्हू से निकलने के बाद ईखों में बहुत कम गीलापन (तरी) रहता है। इस कारण उसपर ऊपर से



चित्र १६ (क)—राजेवस्की या क्रजेवस्की दलित्र, फलटन दलित्र और मिलबेलन

पानी देकर भिंगोया जाता है और इस प्रकार भिंगोई ईखों को अगले कोल्हू में पेरकर रस निकाला जाता है। चूँकि हर कोल्हू में सामान्य पानी देने से रस में पानी की मात्रा बहुत बढ़ जायगी, इस कारण पतला रस ईख को भिंगोने के लिए काम में लाया जाता है। केवल अन्तिम कोल्हू में सामान्य पानी का व्यवहार होता है। इस रीति से ९० से ९६ प्रतिशत ईख की शर्करा रस में निकल आती है। रस निकाल लेने के बाद ईख का जो छिलका और गुद्दा बच जाता है, उसे सीठा कहते हैं। सीठे के उपयोग की आज अनेक चेष्टाएँ हो रही हैं।

ईख से रस निकालने में, जैसा ऊपर कहा गया है, दो क्रम होते हैं। पहले क्रम में ईख के कठोर वाह्यतल को तोड़कर कोशाओं को विदीर्ण करते हैं। दूसरे क्रम में ईख को दलते अथवा पीसते हैं। इन कामों के लिए निम्नलिखित साधन उपयुक्त होते हैं —

१. घूमते हुए चाकुओं से ईख को काटना। यहाँ ईख केवल कट जाता है। उससे रस नहीं निकलता।

२. विपाटक (Splitter) द्वारा ईख को फाड़ना। यहाँ भी ईख से रस नहीं निकलता।

३. दलित्र द्वारा ईख को तोड़ना और दबाना। इससे रस का बहुत-कुछ अंश निकल आता है।

४. कहीं-कहीं उपर्युक्त क्रियाएँ एक साथ ही सम्पन्न होती हैं।

आम्यत् ईख-चाकू—इस चाकू का उपयोग थोड़े समय से ही आरम्भ हुआ है। पहले-पहल चाकू का उपयोग हवाई टापू में हुआ। फिर अन्य स्थलों में फैला। ये चाकू मोटर द्वारा अथवा वाष्प टरबाइन द्वारा अथवा उच्च-वेग इंजन द्वारा घूमते हैं। यदि चाकू की धारें तेज नहीं हैं तो अधिक बल की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य धारों के लिए प्रति घंटा प्रति टन ईख के लिए एक से दो अश्वबल की आवश्यकता होती है। इन चाकुओं से विपाटक और दलित्र में ईखों के पेरने में सहायता मिलती है। इस क्रिया से ईख पेरने में प्राय: १२ से २० प्रतिशत की वृद्धि होती है। इस कारण इनका उपयोग आज शीघ्रता से बढ़ रहा है। आधुनिक मिलों में ये चाकू उपयोग में आते हैं।

विपाटक (Shredders)—कोल्हू में पेराई के लिए ईख को भेजने से पहले उसे फाड़ने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा फाड़नेवाला मशीन पहले-पहल सेम्युएल फिस्के (Samuel Fiske) ने बनाया था। इसका उपयोग पहले-पहल लुयिसियान में हुआ था। ऐसी मशीन में दो उषाएँ (Shafts) होती हैं। इन उषाओं में शंक्वाकार (Conical) के काटने के बिम्ब (Disk) होते हैं, जो एक दूसरे में गुत्थम-गुत्थ कपोत-पुच्छित होता है। ये दोनों उषाएँ विपरीत दिशा में घूमती हैं। इनके वेग भी विभिन्न होते हैं। ऊपर का बिम्ब उच्च वेग से घूमता है। इसमें प्रति मिनट में प्राय: १३५ घूर्णन (Revolution) होते हैं। नीचे का बिम्ब कम वेग से प्रति मिनट में प्राय: ३५ घूर्णन देता है। इन बिम्बों से ईखें फट जाती हैं। यहाँ जो थोड़ा रस निकलता है, वह फटी ईख में शोषित हो जाता है। इस प्रकार की मशीनों को विपाटक अथवा श्रेडर कहते हैं। विपाटक की उपयोगिता आज बहुत बढ़ रही है। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के विपाटकों को पेटेंट कराया है। जो विपाटक

आज उपयुक्त होते हैं, वे उच्चवेग छुरीवाले होते हैं। ऐसे विपाटकों में एक सियरबी श्रेडुर (Searby Shredder) है। इसका उपयोग आज अधिकाधिक हो रहा है। इसमें एक क्षैतिज उषा होती है। इस उषा में छः-छः हथौड़े उर्ध्वाधार तल में लगे रहते हैं। हथौड़े ७⁄८ इंच और २⅜ इंच के होते हैं और उषा प्रतिमिनट में १२०० घूर्णन देती है। प्रतिमिनट में ईख पर ७२०० आघात पड़ते हैं। इससे ईखें पीसकर रूई-सी हो जाती हैं। इन पिसी ईखों को तब कोल्हू में ले जाते हैं।

कोल्हू का बेलन चिकना रहना चाहिए अथवा प्रसीतावाला होना चाहिए इसपर बहुत-कुछ विचार हो चुका है। प्रसीतावाले बेलन से कोल्हू की ईख पेरने की क्षमता बढ़ जाती है। इससे अधिकतम रस भी निकलता है। ईख के चाकू, दलित्र, सियरबी श्रेडुर के साथ-साथ बारह बेलनवाले कोल्हुओं से ६८ प्रतिशत तक शर्करा निकाली जा सकती है।

दलित्र, क्रशर (Crushers)—दलित्र में दो अथवा दो से अधिक प्रसीतावाले बेलन होते हैं, जो ईख को दबाकर ४० से ७० प्रतिशत रस को निकाल लेते हैं। ईख को वास्तविक कोल्हू में आने से पहले दलित्र में आना बहुत आवश्यक है। प्रायः सभी कारखानों में दलित्र उपयुक्त होते हैं। भ्राम्यत् चाकू और श्रेडुर वस्तुतः दलित्र के सहायक अथवा पूरक होते हैं।

क्यूबा में क्रजेवस्की ने क्रजेवस्की दलित्र का आविष्कार किया था। ऐसे दलित्र के बेलन का चित्र ४१ यहाँ दिया हुआ है। यह बेलन धीरे-धीरे घूमता है; पर तेज घूमनेवाले दलित्र का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। ऐसे दलित्र में प्रसीताएँ होती हैं जिनसे रस के बह जाने में सहूलियत होती है।

एक दूसरे प्रकार का दलित्र 'फल्टन' का दलित्र है। यह दलित्र राजेवस्की दलित्र से बिल्कुल भिन्न-भिन्न होता है। इसमें काटनेवाले दाँत अँगरेजी के वी (V) अक्षर के आकार के होते हैं। ये १·७५ इंच से ३ इंच के अन्तराल (pitch) पर कुन्तल (spiral) में स्थित होते हैं। दो दाँतों के बीच में प्रसीता होती है। दाँतों पर से गुदा को हटाने के लिए अपोदघर्षक (scrapers) भी लगे रहते हैं।

इसमें और जो सुधार हुए हैं, उनमें द्वि-दलित्र का उपयोग है। यहाँ कोल्हू में आने के पूर्व ईख दो दलित्रों में होकर गुजरती है। पूर्व दलित्र के ४२ इंच व्यास के बेलन के दाँतों के अन्तराल ३ से ४ इंच के होते हैं। कुछ मिलों में त्रिदलित्र भी उपयुक्त होते हैं। द्वि-दलित्र और त्रि-दलित्र ऐसे समय में बने थे; जब भ्राम्यत् चाकू का उपयोग नहीं होता था। अब दलित्र के बेलन के वेग में पर्याप्त तीव्रता आ गई है। पहले जहाँ प्रति मिनट में २५ से ३० फुट वेग थे, वहाँ अब ४५ से ५० फुट प्रति मिनट हो गया है।

कोल्हू—आधुनिक कोल्हू में तीन बेलन होते हैं। एक बेलन पेंदे में होता है, जहाँ ईखें प्रविष्ट करती हैं। इस बेलन को 'ईख बेलन' कहते हैं। इसकी प्रतिकूल दिशा में दूसरा बेलन होता है। यहाँ से सीठा निकलता है। इसे 'सीठा बेलन' अथवा 'मोचन बेलन' (discharge roll) कहते हैं। ये दोनों बेलन दृढतापूर्वक स्थित होते हैं। तीसरा बेलन जल-प्रेरित (hydraulic) आरोध (ram) से नियंत्रित होता है और ऊपर-

नीचे उठ-गिर सकता है। सीठा-बेलन में जल-प्रेरित दबाव डाला जाता है। सीठा एक बेलन से दूसरे बेलन में एक ढालवें पट्ट द्वारा जाता है।

ईधर कुछ वर्षों से कोल्हुओं में अनेक सुधार हुए हैं। कोल्हुओं के भार, विस्तार और बल में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

ऊपर कहा गया है कि दलित्र और पहले कोल्हू में ईख का प्राय: ६० प्रतिशत रस निकल जाता है। इसमें ईख के प्राय: ७० प्रतिशत चीनी निकल आती है। अब ईख में गीलापन कम रह जाता है। शेष रस और चीनी को निकालने के लिए ईख को भिंगोना पड़ता है। ईख को भिंगोने के लिए पतला रस अथवा पानी अथवा रस और पानी—दोनों उपयुक्त होते हैं। इस भिंगोने की क्रिया को कहीं मृदुकरण (Maceration) कहते हैं, कहीं अन्तश्चूषण (Inhibition) और कहीं अनुवेधन (Saturation) कहते हैं। अन्तरराष्ट्रीय संघ ने अन्तश्चूषण शब्द का उपयोग ही अधिक उपयुक्त बनाया है। यह क्रिया अब सभी मिलों में उपयुक्त होती है। दूसरे, तीसरे इत्यादि कोल्हुओं में आने के पूर्व ईख को भिंगोते हैं। पहले कुछ कोल्हुओं में पतला रस उपयुक्त करते हैं और अन्तिम एक या दो कोल्हुओं में केवल जल उपयुक्त करते हैं।

ईख का यह अनुवेधन एक-दो अथवा संयुक्त हो सकता है। एक-अनुवेधन में केवल पानी का उपयोग होता है। द्वि-अनुवेधन में पानी अथवा कोल्हुओं से प्राप्त पतले रस का, और संयुक्त-अनुवेधन में पानी और दो या दो से अधिक कोल्हुओं से प्राप्त रस का, उपयोग होता है।

अनुवेधन में पानी सीठे पर छिड़का जाता है। ऐसे सीठे से कोल्हू से निकाला रस भी सीठे पर छिड़कने के लिए उपयुक्त होता है। पानी का छिड़कना सीठे के केवल एक ओर अथवा ऊपर-नीचे दोनों ओर हो सकता है। कोल्हू के बेलन से ज्योंही सीठा निकले, त्योंही पानी देने से प्रसार में पानी शीघ्र सोख जाता है।

साधारणतया पहले दो कोल्हुओं में पानी या पतला रस नहीं डालते। तीसरे और चौथे कोल्हुओं से निकलते ही उसपर पानी अथवा पतला रस छिड़कते हैं। चौथे कोल्हू से निकले रस से तीसरे कोल्हू से निकले सीठे को भिंगोते हैं और पाँचवें कोल्हू से निकले रस से चौथे कोल्हू से निकले सीठे को भिंगोते हैं। पम्प द्वारा इन रसों को सीठे पर छिड़कते हैं। पतले रसों के किण्वन की सम्भावना रहती है। इस कारण रस को खट्टा होने से बचाने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता रहती है। बीच-बीच में मिल को बन्द कर मशीन को पूरी सफाई करनी चाहिए। कम-से-कम हफ्ते में एक बार तो कोल्हुओं और टैंकों की सफाई अवश्य होनी चाहिए।

सीठे को भिंगोने के लिए कितना पानी इस्तेमाल करना चाहिए, यह बहुत-कुछ मिल की स्थिति, कोल्हू के समावेशन, ईख की प्रकृति और ईंधन और शर्करा के मूल्य पर निर्भर करता है। अधिक पानी देने से जो रस प्राप्त होता है, उसमें चीनी की मात्रा कम रहने से पानी के उद्वाष्पन में अधिक ईंधन खर्च होता है। इससे चीनी के उत्पादन का मूल्य बढ़ जाता है। पहले १० से १५ प्रतिशत जल का उपयोग होता था। आज प्राय: पचीस प्रतिशत तक पानी का उपयोग होता है। कहीं-कहीं इससे भी अधिक पानी का उपयोग होता है। कुछ देशों में तो १५ से २० प्रतिशत पानी से ही काम चल जाता है।

अनुवेधन में जो पानी इस्तेमाल होता है, वह उष्ण होना चाहिए अथवा ठंढा यह बहुत-कुछ पानी की प्रकृति और ईंधन के सस्तापन पर निर्भर करता है। उष्ण जल यदि सस्ता प्राप्त हो सके, इसमें कोई विशेष खर्च न पड़े, तो उष्ण जल का उपयोग ही अच्छा होता है। यदि बायलर से निकले वाष्प के संघनन से उष्ण जल प्राप्त हो तो वह सबसे उत्तम है; 'क्योंकि ऐसा जल वस्तुत: बहुत शुद्ध, स्रवित, होता है। कुछ लोगों का मत है कि ठंढे और उष्ण जल से शर्करा के निष्कासन में कोई अन्तर नहीं होता। पर कुछ लोगों का स्पष्ट मत है कि यद्यपि शर्करा की मात्रा कुछ अवश्य बढ़ जाती है; पर गोंद की मात्रा भी बढ़ जाती है जिससे रस के परिष्कार में कुछ कठिनता होती है। इन सब बातों के होते हुए भी साधारणत: उष्ण जल का ही आज अधिक उपयोग हो रहा है। इन साधनों के द्वारा ईख की ९० प्रतिशत से अधिक चीनी सरलता से निकल आती है।

इस प्रकार से प्राप्त रस स्वच्छ नहीं होता, गँदला होता है। चीनी के सिवा इसमें शर्कराएँ, गोंद, कार्बनिक अम्ल, अकार्बनिक अम्ल, पोटाश लवण, रंगीन पदार्थ, अल्बुमिनीय पदार्थ, धूल, तन्तुएँ और अनेक प्रकार के पदार्थ और कोलायड (श्लेषाभ) रहते हैं।

कोल्हू में पेरे हुए रस का संगठन

	प्रथम कोल्हू	द्वितीय कोल्हू	तृतीय कोल्हू
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
जल	८४·६४	८५·४०	८५·३५
शर्करा	१२·१३	११·४१	११·३०
लघ्वीकरण शर्करा	१·५४	१·२९	१·२०
अल्बुमिन	०·१८	०·५०	०·५८
राख	०·३७	०·५८	०·७७
गोंद, अम्ल इत्यादि	०·३४	०·८२	०·७७
रस का निष्काशन प्रतिशत	६४·५०	५·५०	२·१३

रस का छानना--कोल्हू से निकले रस को सबसे पहले छानते हैं। इस छानने से रस से बड़े-बड़े टुकड़े निकल जाते हैं। ये छनने पीतल के पट्ट के होते हैं, जिनमें छोटे-छोटे छेद होते हैं। इन छेदों के व्यास प्राय: ०·०४ इंच के होते हैं अथवा प्रतिवर्ग इंच में प्राय: ३२४ गोल छेद होते हैं। यदि छेद और छोटे हों तो पट्ट भी अधिक पतले होते हैं और तब पट्ट के टूट जाने का भय रहता है। इन पट्टों के तल पर से सीठे के टुकड़ों को समय-समय पर हटाने के लिए ब्रश रहते हैं जो समय-समय पर हटाते रहते हैं।

इस प्रकार छान लेने पर भी रस स्वच्छ नहीं होता। यह अब भी गँदला रहता है; क्योंकि कोलायड अशुद्धियाँ अब भी इस रस में रहती हैं। ऐस्बेस्टस द्वारा छानने से

कोलायड अशुद्धियाँ बहुत-कुछ दूर हो जाती हैं ; पर यह क्रिया बहुत ही धीमी होती है। ऐस्बेस्टस के छेद बन्द हो जाते हैं, और ऐसे रस के गरम करने से भी अधिक स्कंधन नहीं होता। इससे मालूम होता है कि स्कंधित होनेवाले पदार्थ बहुत-कुछ ऐस्बेस्टस द्वारा निकल जाते हैं। १०० सी० सी० रस से ०·१५ से ०·२५ ग्राम तक कोलायड निकल जाते हैं।

ऐलेक्ट्रोलायड से कोलायड स्कंधित नहीं होते। बड़ी मात्रा में केवल कैलसियम क्लोराइड से स्कंधित होते हैं। कुछ लोगों का दावा है कि बिजली के प्रवाह से कोलायड स्कंधित हो जाते हैं। कोलायड ऋण विद्युत् से आविष्ट होते हैं।

उपर्युक्त प्रकार के छनने के उपयोग से सुविधाएँ और असुविधाएँ दोनों हैं। सुविधाएँ हैं कि इनका समावेशन जितना अधिक चाहें, सरलता से कर सकते हैं और वे दृढ अथवा सघन होते हैं। इसमें असुविधा यह है कि यह छनना शीघ्र ही घिस जाता है। शीघ्र घिसने से बचाने के लिए यदि पट्ट को मोटा बनाते हैं तो उसका छेद आवश्यकता से बड़ा हो जाता है। उसके पट्टक (belt) जल्दी मलीन (foul) हो जाते हैं और उससे रस में रासायनिक क्रियाएँ हो चीनी की मात्रा कम हो जाती है। रस के बहने के मार्ग और इकट्ठा होने की टंकी को, ठीक स्थान पर न होने के कारण, बिलकुल स्वस्थ दशा में रखना कठिन हो जाता है। रस के टपकने से उत्थापक भी अस्वास्थ्यकर हो जाता है।

अनेक प्रकार के छननों का आज आविष्कार हुआ है, जिससे छानने की क्रिया शीघ्र सम्पादित हो जाती है और सीठा तथा रस सरलता से अलग-अलग हो जाते हैं। कुछ मशीनों में 'नत पट्ट-तल' होता है, जो बिजली द्वारा अथवा यंत्रों के द्वारा कम्पित रहकर पट्टतल को स्वच्छ रखता है। कोल्हू से निकले रस इस पट्ट तल पर गिरकर छनते जाते हैं। इस नत पट्ट-तल को कोल्हू के ऊपर भी रख सकते हैं। उस दशा में रस को पम्प द्वारा ऊपर भेजा जाता है।

इस छनने का उद्देश्य यही है कि गरम होने और चूने के संसर्ग में आने से पूर्व सारा सीठा भी निकल जाय ; पर इससे एक असुविधा भी होती है कि सीठा के निकल जाने पर जो मिट्टी जमती है, वह इतनी महीन होती है कि फिल्टर-प्रेस से निकलने में कठिनता होती है। इस कठिनता को दूर करने के लिए अधिक चूने के उपयोग का सुझाव रखा गया है ; पर अधिक चूने से रस की प्रकृति में विकार आ जाता है। कुछ लोगों ने किसलगुहर मिट्टी का उपयोग अच्छा बतलाया है और कहीं-कहीं यह उपयुक्त भी होता है।

रस छानने के छनने और पात्र (निःस्यन्द) बिलकुल स्वस्थकर दशा में न हो तो रस की बहुत कुछ चीनी नष्ट हो सकती है। गरम करने से तो सूक्ष्माणुओं की क्रिया और बढ़ जाती है। इस कारण सूक्ष्माणुओं की क्रिया की वृद्धि को रोकने के भरपूर प्रयत्न होना चाहिए। सबसे सरल रीति तो यह है कि रस को शीघ्र-से-शीघ्र गरम किया जाय ताकि उच्च ताप पर सूक्ष्माणुओं की क्रियाएँ बिलकुल बन्द हो जाय।

एक ने यह सुझाव रखा है कि उच्च-दवाव उष्ण-जल-नली के पतले प्रोथ से यदि गरम पानी छिड़का जाय तो सारे पात्र, छनने, उत्थापक इत्यादि में उष्ण जल प्रविष्टकर सूक्ष्माणुओं की क्रिया को रोक देगा।

दूसरे लोगों ने कृमिनाशक ओषधियों के उपयोग का सुझाव रखा है। प्रयोग से मालूम हुआ है कि प्रतिवर्ग सेंटीमीटर रस में १५ लाख से ५० लाख तक सूक्ष्माणु पाये गये

हैं। इन सूक्ष्माणुओं के विनाश के लिए एक ने क्लोरीन का उपयोग बतलाया है। इसके लिए २५ हजार भाग जल में एक भाग क्लोरीन पर्याप्त है।

रस की अम्लता और क्षारीयता—ईख के रस का अम्लिक होने का तात्पर्य रस में मुक्त हाइड्रोजन आयन की उपस्थिति है। अम्ल जब जल में घुलते हैं, तब वे आयनों में विभक्त हो जाते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल हाइड्रोजन और सल्फेट आयनों में, नाइट्रिक अम्ल, हाइड्रोजन और नाइट्रेट आयनों में, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, हाइड्रोजन और क्लोरीन आयनों के रूप में जलीय विलयन में रहते हैं। हाइड्रोजन आयनों के कारण ही अम्लों की अम्लता होती है। हाइड्रोजन आयन पर धन विद्युत आवेश होते हैं।

इसी प्रकार क्षारों की क्षारीयता हाइड्रोक्सील आयन के कारण होती है। सब क्षार जलीय विलयन में हाइड्रोक्सील आयन में विघटित हो जाते हैं। क्षारक सोडा सोडियम और हाइड्रोक्सील आयनों में, चूना कैलसियम और हाइड्रोक्सील आयनों में विघटित हो जाते हैं। हाइड्राक्सील आयनों में ऋण विद्युत् आवेश होते हैं। अम्लों और क्षारों में अविघटित अम्ल अथवा क्षार भी रहते हैं।

रस की अम्लता साधारणतः कुछ सूचकों से जानी जाती है। इन सूचकों के रंग बदल जाते हैं। हाइड्रोजन आयन से उनके रंग एक होते हैं और हाइड्रोक्सील आयन से दूसरे होते हैं। फीनोल्फथलीन हाइड्रोजन आयन की उपस्थिति में बिना रंग का होता है और हाइड्राक्सील आयन की उपस्थिति में गहरा कृमिज रंग का हो जाता है।

अम्लों और क्षारों के नार्मल विलयन होते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल के नार्मल विलयन के १००० सी० सी० में ४९ ग्राम अम्ल रहता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के नार्मल विलयन के १००० सी० सी० में ३६·५ ग्राम अम्ल रहता है। क्षारक सोडा के नार्मल विलयन के १००० सी० सी० में ४० ग्राम सोडियम हाइड्राक्साइड रहता है।

रस में हाइड्रोजन आयन का सान्द्रीकरण बड़े महत्व का है। इससे रस में घुले पदार्थों का कुछ ज्ञान होता है। हाइड्रोजन आयन के सान्द्रीकरण का महत्वपूर्ण प्रभाव रस के विश्लेषण, अन्य क्रियाओं के नियंत्रण, रस के परिष्करण, किण्वन इत्यादि पर पड़ता है। इस हाइड्रोजन आयन के सान्द्रीकरण का सोरेन्सन ने एक विशिष्ट नाम दिया है जिसे पी०एच कहते हैं। इसे pH लिखा भी जाता है। पीएच और हाइड्रोजन-आयन सान्द्रीकरण का सम्बन्ध निम्न समीकरण से सूचित होता है—

$$pH = \log_{10} \frac{1}{H^+}$$

हाइड्रोजन आयन का वास्तविक सान्द्रीकरण प्रति लिटर (अधिकतम विघटित अम्ल) में १ ग्राम से (अधिकतम विघटित क्षार) में $\frac{१}{१०^{१४}}$ ग्राम हो सकता है। अधिकतम विघटित अम्ल का पीएच शून्य (०) से अधिकतम विघटित क्षार का पीएच १४ तक हो सकता है।

किसी द्रव की अम्लता अथवा क्षारीयता पीएच संख्या से नापी जाती है। जल में हाइड्रोजन और हाइड्राक्सील बराबर-बराबर मात्रा में रहते हैं। ऐसे द्रव अथवा विलयन को

जिसमें हाइड्रोजन और हाइड्रोक्सील आयन सम मात्रा में हो, तो उसे उदासीन कहते हैं। जल में इन आयनों की संख्या निर्धारित हुई है। एक करोड़ लिटर जल में हाइड्रोजन की मात्रा एक ग्राम और हाइड्रोक्सील की मात्रा एक ग्राम-समतुल्य पाई गई है। इसे दूसरे शब्दों में जल में १/१०००००००० हाइड्रोजन और १/१०००००००० हाइड्रोक्सील आयन होते हैं। ये अंक विलयन की अम्लता और क्षारीयता की माप है। इन अंको का उपयोग सुविधाजनक नहीं है। ऐसे अंक की आवश्यकता है जो इस भिन्न के भाजक के शून्य को बतावे। इस शून्य के अंक को ही 'पी एच' संख्या कहते हैं। इस कारण 'पी एच' का अर्थ है विभाजक के शून्य की संख्या। यह संख्या विलयन में हाइड्रोजन आयन की मात्रा को सूचित करती है। जल के हाइड्रोजन आयन की संख्या में भिन्न के भाजक में सात शून्य है। अतः शुद्ध जल का पी एच ७ है। यह पी एच बिलकुल उदासीनता के विलयन को सूचित करता है। यदि इस पानी में कुछ अम्ल डालें ताकि उसकी अम्लता दस गुना बढ़ जाय तो हाइड्रोजन आयन की संख्या बढ़ जायगी और तब उसका पी एच ६ हो जायगा।

पी एच

	हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता	पी एच
महत्तम अम्लता	१	०
प्रबल अम्लता	१/१०	१
	१/१००	२
अल्प प्रबल अम्लता	१/१,०००	३
	१/१०,०००	४
अल्प अम्लता	१/१००,०००	५
अत्यल्प अम्लता	१/१,०००,०००	६
उदासीन	१/१०,०००,०००	७
अत्यल्प क्षारीयता	१/१००,०००,०००	८
अल्प क्षारीयता	१/१,०००,०००,०००	९
अल्प प्रबल क्षारीयता	१/१०,०००,०००,०००	१०
	१/१००,०००,०००,०००	११
प्रबल क्षारीयता	१/१,०००,०००,०००,०००	१२
	१/१०,०००,०००,०००,०००	१३
महत्तम क्षारीयता	१/१००,०००,०००,०००,०००	१४

पीएच का मान अम्लों और क्षारों के विघटन से सरलता से निकाला जा सकता है; पर विलयनों में और भी अनेक पदार्थ रहते हैं जो आयनीकरण को परिवर्तित कर देते हैं। ऐसी दशा में अम्लों अथवा क्षारों के आयनीकरण को रोकने के लिए कुछ पदार्थों को डालने की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में अम्लों अथवा क्षारों के डालने पर पीएच में कोई परिवर्तन न हो, इसे रोकने के लिए जिन पदार्थों को डालते हैं, उन्हें बफ़र विलयन कहते हैं। अनेक दुर्बल अम्लों, क्षारों, जिलेटिन और केसीन सदृश कार्बनिक पदार्थों के

मिश्रणों का बफ़र विलयन के रूप में उपयोग होता है। कुछ विलयन ऐसे होते हैं, जिनके तनु करने से पीएच के मान में कोई अन्तर नहीं होता; पर कुछ दशाओं में अन्तर होता है। इस कारण विलयन के तनु करने में सतर्कता आवश्यक है।

अनेक लोगों ने भिन्न-भिन्न बफर विलयन के उपयोग का सुझाव रखा है। इनमें सब से अच्छा बफ़र विलयन डाइ-सोडियम-फ़ास्फ़ेट और साइट्रिक अम्ल के विलयन का है। इसके लिए डाइ-सोडियम-फ़ास्फेट सूखा और मणिभ होना चाहिए। साइट्रिक अम्ल भी सूखा और मणिभ होना चाहिए। पहले में मणिभीकरण जल के दो अणु और दूसरे में एक अणु रहते हैं। प्रमाप बफ़र विलयन के तैयार करने में शुद्ध पोटैसियम हाइड्रोजन थैलेट के १·०२ ग्राम मणिभ को १०० मिलिलिटर आसुत जल में घुलाते हैं। ऐसे विलयन का पीएच मान १८° और ४०° शे० के बीच स्थायी ३·९७ होता है।

डाइ-सोडियम-हाइड्रोजन फ़ास्फ़ेट और साइट्रिक अम्ल के विलयनों के मिश्रण से जो प्रमाप बफ़र विलयन तैयार होते हैं, उनके पीएच मान निम्नलिखित होते हैं—

पीएच	०·२ अणु Na_2HPO_4 $2H_2O$	०·१ अणु साइट्रिक अम्ल	पीएच	०·१ अणु Na_2HPO_4 $2H_2O$	०·१ अणु साइट्रिक अम्ल
	मिलिलिटर	मिलिलिटर			
२·२	०·४०	१९·६०	५·२	१०·७२	९·२८
२·४	१·२४	१८·७६	५·४	११·१५	८·८५
२·६	२·१८	१७·८२	५·६	११·६०	८·४०
२·८	३·१७	६·८३	५·८	१२·०९	७·९१
३·०	४·११	१५·८९	६·०	२·६३	७·३९
३·२	४·९४	१५·०६	६·२	१३·२२	६·७८
३·४	५·७०	१४·३०	६·४	३·८५	६·१५
३·६	६·४०	१३·५६	६·६	१४·५५	५·४५
३·८	७·१०	१२·९०	६·८	१५·४५	४·५५
४·०	७·७१	१२·७२	७·०	१६·४७	३·५३
४·२	८·२८	११·७२	७·२	१७·३७	२·६१
४·४	८·८२	११·१८	७·४	१८·१७	१·८३
४·६	९·३५	१०·६५	७·६	१८·७३	१·२७
४·८	९·८६	१०·१४	७·८	१९·१५	०·८५
५·०	१०.३०	९·७०	८·०	१९·४५	०·५५

इस रीति में किसी सूचक रंग की आवश्यकता होती है, जिसका रंग पीएच मान के परिवर्तन से बदल जाय। चूँकि ये सूचक रंग किसी सीमित और निश्चित पीएच

मान में ही रंग बदलते हैं, इस कारण अनेक सूचक रंगों की आवश्यकता होती है। इन रंगों के प्रायः एक प्रतिशत विलयन उपयुक्त होते हैं। इन रंगों को क्षारक सोडा में घुलाकर विलयन तैयार करते हैं। इन सूचकों के विलयनों को ऐसी बोतलों में रखनी चाहिए जो क्षारों के प्रति प्रतिरोधक हो। बोतलों को काँच अथवा रबर के काग से बन्द कर अन्धेरे में रखना चाहिए।

सूचक	सान्द्रीकरण प्रतिशत	पीएच विस्तार	रंग परिवर्तन
ऐसिड क्रिसोल रेड	०·०२	०·२-१·८	रक्त से पीत
ऐसिड मिटा-क्रिसोल पर्पल	०·०४	१·२-२·८	रक्त से पीत
बेंज़ाल येलो	०·१	२·४-४·०	रक्त से पीत
ब्रोम फीनोल ब्लू	०·०४	३·०-४·६	पीत से नीला
मेथिल रेड	०·०४	४·४-६·०	रक्त से पीत
ब्रोमक्रीसोल पर्पल	०·०४	५·२-६·८	पीत से नीललोहित
ब्रोमथाइमोल ब्लू	०·०४	६·०-७·६	पीत से नील
फीनोल रेड	०·०२	६·८-८·४	पीत से रक्त
क्रिसोल रेड	०·०२	७·२-८·८	पीत से रक्त
मिटा-क्रिसोल पर्पल	०·०४	७·६-९·२	पीत से नीललोहित
थाइमोल ब्लू	०·०४	८·०-९·६	पीत से नीला
थैलिन रेड	—	८·६-१०·२	पीत से रक्त
टोलिल रेड	—	११·०-१२·६	पीत से रक्त
पेरेज़ो ऑरेंज	—	११·०-१२·६	पीत से नारंगी
ऐसील ब्लू	—	१२·०-१३·६	रक्त से नीला

रस पर अम्लों का प्रभाव—ईख के रस में इक्षु-शर्करा रहती है। अम्लों से इक्षु-शर्करा का विपर्यय होकर उससे सम-तुल्य मात्रा में द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा प्राप्त होती है।

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

इक्षु-शर्करा   जल   द्राक्ष-शर्करा   फल-शर्करा

विपर्यय की गति हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता पर निर्भर करती है। साधारण दशा में विपर्यय की गति क्रियाशील पुञ्ज की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि अम्ल की सान्द्रता और क्रिया का ताप एक रहे तो ऐसी स्थिति में २० प्रतिशत विलयन की गति १० प्रतिशत विलयन की गति से दुगुनी होती है।

भिन्न-भिन्न अम्लों में हाइड्रोजन आयन की मात्रा भिन्न-भिन्न रहती है। इससे विभिन्न अम्लों से इक्षु-शर्करा का विपर्यय विभिन्न होता है। फिर अम्लों की सान्द्रता का भी विपर्यय पर प्रभाव पड़ता है।

ताप का भी विपर्यय पर प्रभाव पड़ता है। ताप की वृद्धि से विपर्यय की गति बढ़ती और कमी से कम होती है।

कुछ लवणों से भी विपर्यय की गति बढ़ती और कुछ लवणों से कम होती है। नाइट्रेट और हेलायड से गति बढ़ती और सलफेट, सलफाइट और औक्जैलेट इत्यादि से कम होती है। आम्लिक लवणों से विपर्यय की गति बढ़ती हुई पाई गई है। भारी धातुओं के लवणों-जैसे जिंक सफेट-से गति बढ़ती हुई देखी गई है। सम्भवत: इन लवणों के आंशिक जलांशन से हाइड्रोजन आयन के मुक्त होने से ऐसा होता है।

किएवों के द्वारा विपर्यय अधिक शीघ्रता से होता है। इन किएवों की क्रिया २० प्रतिशत विलयन में और २५° से ४०° श० ताप पर महत्तम होती है। उच्च ताप क्रम पर विकर धीरे-धीरे नष्ट होने लगते और ७५° श० पर तो प्राय: पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। ईख के शिखर पर विकर रहता है और धीरे-धीरे डंठल में नीचे फैलता है। इस कारण कटी ईख में विकर की क्रिया धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। विकर की क्रिया पर भी ताप का प्रभाव पड़ता है। गरमी में ईखों में शीघ्रता से विकार पैदा हो जाता है। २०° श० पर यह विकार प्राय: होता ही नहीं।

ईख के रस में शर्करा के अतिरिक्त दुर्बल अम्लों के उदासीन लवण—प्रधानत: चूने और पोटाश के—और अल्प मात्रा में दुर्बल अम्ल रहते हैं। दुर्बल लवणों की उपस्थिति से अम्लों की विपर्यय-क्रिया बहुत अल्प होती है। रस में चूना डालने से अम्लों की क्रिया कम हो जाती है। केवल ताप की वृद्धि से इक्षु-शर्करा का विनाश नहीं होता, यदि ताप बहुत उच्च न हो। पर ताप की वृद्धि से विशेषत: १२०°-१३०° श० के बीच शर्करा का विनाश शीघ्रता से होता है। कुछ लवणों की उपस्थिति से इस विनाश की गति और भी तीव्र हो जाती है, पर दुर्बल अम्लों के लवणों से विनाश की गति में ह्रास होता है।

अल्प क्षारों से इक्षु-शर्करा का विनाश नहीं होता; पर उसमें कुछ समावयवी परिवर्तन अवश्य होते हैं। इस परिवर्तन से शर्कराओं की प्रकृति में कुछ भेद अवश्य हो जाता है; पर उससे कोई विशेष क्षति नहीं होती। पर यदि क्षारों की मात्रा अधिक है तो लघ्वी-करण शर्कराएँ कुछ नष्ट अवश्य हो जाती हैं। इस विनाश से उत्पाद की प्रकृति ताप पर निर्भर करती है।

रस में चूना डालने से मुक्त अम्ल का उदासीकरण हो जाता है और कोलायड सकंधित हो अवक्षिप्त हो जाता है। फास्फरिक अम्ल, अलुमिना और लोहे के ऑक्साइड भी अवक्षिप्त हो जाते हैं। अलब्युमिन भी इससे स्कंधित हो जाता है। ईख-मोम, क्लोरोफिल और रंगीन पदार्थ भी निकल आते हैं। अधिक पदार्थ तब निकलते हैं जब रस चूने से फीनोल्फथलीन के प्रति क्षारीय हो जाता है। केवल गरम करने अथवा छानने से भी कोलायड निकल आते हैं। चूने का विशिष्ट कार्य फास्फरिक अम्ल को अवक्षिप्त करना होता है।

कुछ चूना तो अवक्षिप्त हो निकल जाता है, पर कुछ चूना विलयन में ही रह जाता है।

सोलहवाँ प्रकरण

सीठा

ईख से रस निकाल लेने पर जो अवशिष्ट भाग बच जाता है, उसे सीठा कहते हैं। कहीं-कहीं इसे 'खोर्या' भी कहते हैं। सीठे को अंग्रेजी में अमेरिकावाले 'बागास' और यूरोपवाले 'मेगास' कहते है। चीनी के कारखानों में सीठा एक महत्व का उत्पाद अथवा उप-उत्पाद है। इसकी मात्रा पर्याप्त होती है। यदि सीठे को अधिक उपयोगी कामों के लिए उपयुक्त किया जा सके और उससे अधिक धन प्राप्त किया जा सके तो चीनी के उत्पादन का मूल्य बहुत-कुछ घटाया जा सकता है और तब ईख की चीनी सफलता से चुकन्दर की चीनी से मुकाबला कर सकती है। सीठे को अधिक उपयोगी कामों में उपयुक्त करने के उद्देश्य से प्रस्तुत लेखक के अधीन एक छात्र डा० अभय सिंह ने प्रायः तीन वर्षों तक अन्वेषण कार्य किया था और उस कार्य से अभय सिंह को डाक्टर की, पी-एच. डी. की उपाधि मिली। इस अनुसन्धान का सारा खर्च उत्तर प्रदेश की सरकार से प्राप्त हुआ था। डा० अभय सिंह ने अपने थीसिस में जो कुछ वर्णन किया है, उसका सारांश मैं यहाँ दे रहा हूँ। इससे स्पष्ट रूप से पता लग जाता है कि सीठे में क्या-क्या चीजें रहती हैं, उनका निर्धारण कैसे हो सकता है और सीठे से क्या-क्या उपयोगी चीजें तैयार हो सकती हैं?

अभी तक सीठे के केवल दो प्रधान उपयोग हैं। कुछ सीठा मवेशियों को खिलाया जाता है। इस उपयोग में आनेवाले सीठे की मात्रा बहुत अल्प है। अधिकांश सीठा जलावन के लिए चीनी के कारखानों में उपयुक्त होता है। चीनी के कारखाने के सारे जलावन का काम इसीसे चलता है। साल के अन्त में कुछ सीठा बच भी जाता है। अमेरिकावालों ने सीठे से पल्प तैयार कर उससे कागज़ बनाने का प्रयत्न किया है। पर इससे उनलोगों का कथन है कि उच्चकोटि का कागज़ नहीं बनता। इससे निम्नकोटि का ही कागज़ बनता है, जो पदार्थों के ढकने के लिए उपयुक्त हो सकता है। इसका कारण वे बतलाते हैं कि सीठे के तन्तु छोटे होते हैं। इस कारण उत्तमकोटि का कागज नहीं बन सकता।

हवाई टापू में सीठे से कागज तैयार करने की कुछ चेष्टाएँ हुईं; पर किसी में व्यापार की दृष्टि से सफलता नहीं मिली। अच्छे कागज़ के लिए लम्बे रेशे की आवश्यकता होती है। सीठे में कुछ लम्बे रेशे अवश्य रहते हैं; पर छोटे रेशे की अपेक्षा उनकी संख्या कम है। पर कागज़ के तख्ते और अचालक दफ़्ती (पटल) बनाने में अधिक सफलता मिली है। सेलोटेक्स नाम से एक दफ़्ती बाजारों में बिकती है। यह गृह-निर्माण में भी उपयुक्त हो सकती है।

चीनी के कारखानों में ज्योंही कोल्हू से सीठा निकलता है, उसकी गाँठें बाँध दी जाती हैं और इन गाँठों को एक के ऊपर दूसरा रखकर खुली वायु में ढेर करते हैं। ऊपर से इसे ढँक देते हैं। जब ये गाँठे कारखानों में जाती हैं, तब गाँठों को खोल देते और शरेडुर में डालकर पक्त्र (digester) में ले जाते हैं। यहाँ रेज़िन, मोम औ पेक्टो-सेल्युलोज़ निकल जाते और साथहीं तन्तुएँ दृढ (tough) और लचीली हो जाती हैं। पक्त्र से यह धावक (washer) में जाता है और वहाँ से कागज़ परिष्कारी (refinery) में जाता है जहाँ तन्तुएँ अलग-अलग हो जाती हैं। जल-रोधक पदार्थ और अन्य रासायनिक द्रव्य यहाँ डाले जाते हैं, जिससे वह दीमक-सह हो जाय। यहाँ से यह उस मशीन में जाता है जहाँ तख्ती बनती है। इसमें कोई तन्तुओं का बाँधनेवाला पदार्थ नहीं डालते। तन्तुओं के परस्पर संपाश और अन्तर वयन (inter weaving) से वे बँध जाते हैं। वहाँ से यह लम्बे तख़्ते में उष्ण वायु-शोषित्र पर सूख कर प्रायः १२ फुट चौड़े चादरों में निकलता और आवश्यकतानुसार छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है।

प्रस्तुत लेखक ने इस सम्बन्ध में जो कुछ अन्वेषण किया है, उससे स्पष्टरूप से सिद्ध हुआ है कि सीठे से भी उच्चकोटि का पल्प तैयार हो सकता है और इस पल्प से केवल कागज ही नहीं, वरन् उच्च कोटि का कृत्रिम रेशम भी तैयार हो सकता है। इससे और भी अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, जिनका वर्णन आगे होगा।

सीठे में जल—सीठे में तीन रूपों में जल रह सकता है। सीठे के संगठन का एक आवश्यक अंग जल रह सकता है। सीठे के तल पर अधिशोषित जल रह सकता है। सीठे में केशाल-संघनित रूप में जल रह सकता है। कुछ लोगों का सुझाव है कि ठोस विलयन के रूप में भी जल रह सकता है। संगठन-जल और तल पर अधिशोषित जल में विभेद करना सरल नहीं है। तल पर अधिशोषित जल भी इतनी दृढता से चिपका रहता है कि उच्च शून्य और उच्च ताप पर ही पूर्ण रूप से निकाला जा सकता है। पर इस परिस्थिति में सुल्युलोज़ भी कुछ विच्छेदित हो जाता है।

सीठे में जल बड़ी दृढता से क्यों चिपका रहता है, इस पर अनेक मत हैं। कुछ लोगों ने सेल्युलोज़ के हाइड्रोक्सील समूह की अवशिष्ट बन्धुता के कारण का होना बतलाया है। कुछ लोगों का मत है कि हाइड्रोक्सील समूह के हाइड्रोजन को पुल बनने की क्षमता इसका कारण है। कुछ लोगों का मत है कि सेल्युलोज़ में हाइड्रोक्सील समूह की उपस्थित ही इसका कारण है। हाइड्रोक्सील के ऐसीटेट बनाकर हटा देने से जल के अधिशोषण की क्षमता बहुत-कुछ घट जाती है।

सेल्युलोज़ और काठ के पानी का अपशोषण एक महत्त्वपूर्ण भौतिक गुण है। इससे उनके अनेक भौतिक गुणों में विभेद हो जाता है। सेल्युलोज़ जब पानी का अपशोषण करता है तब वह फैलता है। इस फैलाव के साथ उष्मा की वृद्धि भी होती है। इस उष्मा को 'प्रसार की उष्मा' कहते हैं। इस उष्मा को हम सरलता से नाप सकते हैं।

सीठे में जल का निर्धारण—सीठे में जल के निर्धारित करने में सीठे के नमूने को लेकर एक स्वच्छ कैंची से छोटे छोटे टुकड़ों में काटते हैं। इन कटे टुकड़ों में से एक-से दो ग्राम को एक तौली हुई मूषा में तौलते हैं। अब मूषा को दाहक की छोटी ज्वाला से

तार-जाली पर रखकर गरम कर सुखाते हैं। इस प्रकार मूषा को १०५° से ११०° श० पर प्राय: छ:घंटा सुखाते हैं। बीच-बीच में उसे काँच-शलाका से उटकेरते भी रहते है जिससे नीचे का अंश ऊपर आ जाय और ऊपर का नीचे चला जाय। अब मूषा को वहाँ से हटाकर वायु-उष्मक पर १००° से १०५° श० पर २ घंटे तपाते हैं। बीच-बीच में मूषा को तौलते हैं। जब तौल में कोई अन्तर न रह जाय, तब इसे पूरा सूखा समझकर उससे सूखे सीठे की मात्रा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अनेक नमूनों के विश्लेषण से जल की मात्रा सीठे में ६ से ८ प्रतिशत पाई गई है। सीठे के बाह्य तल वल्क पर जल की मात्रा कुछ कम, प्राय: ६ प्रतिशत रहती है और अभ्यन्तर भाग, मज्जक में कुछ अधिक, प्राय: ८ प्रतिशत रहती है।

सीठे में खनिज लवण—सीठे में खनिज लवण निकालने के लिए सीठे को वायु में सुखाकर जलाना पड़ता है। जलने में सीठे की नियत मात्रा को पहले धीरे-धीरे प्राय: ४५०° श० पर गरम करते और तब ताप को धीरे-धीरे बढ़ाकर ८५०° श० पर लाते हैं। इस ताप पर तब तक रखते हैं, जबतक सारा कार्बन जल कर राख न हो जाय। प्राय: ७ से ८ मिनटों में समस्त कार्बन जल जाता है। इसमें अल्प मात्रा में अमोनियम नाइट्रेट अथवा ३ प्रतिशत हाइड्रोजन पेराक्साइड डालने से कार्बन का जलना पूर्णतया और शीघ्रता से हो जाता है। जब कार्बन पूरा जल जाय तब मूषा को ज्वाला से हटाकर शोषित्र (dessicator) में ठंडा कर तब तक तौलते जाते हैं जब तक दो तौल एक न हो जाय। इस प्रयोग के लिए प्राय: एक ग्राम सीठे उपयुक्त करते हैं और मूषा को मिट्टी के त्रिकोण पर रखकर तपाते हैं। इन प्रयोगों से सीठे में राख की मात्रा तीन से चार प्रतिशत पाई गई है।

राख में तत्त्वों की उपस्थिति—सीठे की राख में उष्ण हल्का हाइड्रोक्लोरिक का विलयन डालकर उसे पचाकर छान लेते हैं। विलयन में भास्मिक मूल के लिए सामान्य विश्लेषण रीति से परीक्षण करते हैं। राख में सोडियम, पोटैसियम, कैलसियम, मैगनीसियम और अल्प मात्रा में लोहा और अलुमिनियम पाये गये हैं। अम्ल मूलों में कार्बोनेट, क्लोराइड, सल्फेट, नाइट्रेट, फ़ास्फेट और सिलिका पाये गये हैं। इनमें कैलसियम की मात्रा सबसे अधिक पाई गई है। कैलसियम के बाद पोटैसियम की मात्रा आती है।

	राख प्रतिशत	CaO कैलसियम ऑक्साइड	K_2O पोटैसियम ऑक्साइड	Na_2O सोडियम ऑक्साइड	MgO मैगनीसियम आक्साइड	SiO_2 सिलिका	P_2O_5 फ़ास्फेट	SO_4 सल्फेट
सीठा १	३·००	४३·२	१६·३	१२·३	१·३	८·१	५·३	१·८
सीठा २	३·२५	४१·५	१८·२	१२·८	२·७	६·८	५·१	१·६
सीठा ३	३·५०	४६·०	१८·५	१२·६	२·५	६·६	५·४	१·४

इस राख की उपयोगिता पोटैसियम और फ़ास्फेट के कारण है। खाद के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे पोटैसियम लवण भी प्राप्त हो सकते हैं। पोटैसियम लवण बड़े उपयोगी हैं; पर ये किसी-किसी स्थान में ही परिमित मात्रा में पाये जाते हैं। राख में सिलिका पर्याप्त मात्रा में रहता है।

सीठे में नाइट्रोजन—सीठे में कार्बनिक नाइट्रोजन रहता है। यह नाइट्रोजन कुछ प्रोटीन के रूप में और कुछ अ-प्रोटीन के रूप में रहता है। सभी जीवित पदार्थों में प्रोटीन रहते हैं। जीव-कोशा का प्रोटीन महत्त्वपूर्ण अंश है। पौधों के प्रोटीन में वे ही गुण रहते हैं जो जान्तव प्रोटीन में। जलांशन से इनसे भी जान्तव प्रोटीन से ही एमिनो-अम्ल प्राप्त होते हैं।

कुछ पौधों में अ-प्रोटीन नाइट्रोजन में अल्कालायड होते हैं। अल्कालायड ऐसे अ-प्रोटीन पदार्थ हैं, जिनमें विशेष गुण होते हैं। विषाक्त होना अल्कालायड का एक विशेष गुण है। सीठे में अल्कालायड नहीं पाये गये हैं। इसमें ०·२ से ०·३ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। इसका प्राय: समस्त नाइट्रोजन प्रोटीन रूप में ही रहता है। ०·३ प्रतिशत नाइट्रोजन से सीठे में प्रोटीन की मात्रा प्राय: १·५ प्रतिशत होती है।

सीठे में रेज़िन—सीठे में रेज़िन भी होता है। रेज़िन के कुछ अंश वाष्प-शील होते हैं और कुछ अवाष्पशील। अवाष्पशील अंशों में कुछ अम्ल होते हैं जिनमें एबियेटिक और द-पिमेरिक अम्ल प्रमुख हैं। ये दोनों अम्ल काशिक होते हैं। रेज़िन, कागज़, साबुन, पेंट और वार्निश के निर्माण में उपयुक्त होता है। इससे आज और भी अनेक रसायन और भैषज द्रव्य बनते हैं। रेज़िन क्षारों में घुलकर साबुन बनता है। ऐसे साबुन को रेज़िन साबुन कहते हैं। सीठे में रेज़िन की मात्रा निम्नलिखित रीति से निर्धारित होती है—

सीठे के ५ ग्राम को अम्ल-एल्कोहल मिश्रण से साधते हैं। यह अम्ल-एल्कोहल मिश्रण ६५ प्रतिशत एलकोहल के १०० सी. सी. हिम्य एसिटिक अम्ल के ५ सी. सी. और जल के २५ सी. सी. को लेकर बनाते हैं। सौक्सलेट में जल-उष्मक पर ७०°-८०° श० पर एक घंटा रखकर तब पाँच-छः बार अम्ल-एलकोहल मिश्रण से निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इस निष्कर्ष को सान्द्रित कर कुछ सी. सी. बनाकर पृथक्कारी कीप में रखकर २५ सी. सी. ईथर और १५० सी. सी. जल डालते हैं। इसमें २० सी. सी. नमक का पानी डालकर ग्लू को निकाल लेते हैं। नमक के २० सी. सी. में प्राय: ४ ग्राम नमक रहना चाहिए। ज़ोरों से हिलाने से ग्लू पायस बनकर निकल आता है। पायस और पानी को अलग कर ईथर के अंश को फिर पूर्व की भाँति साधते हैं। अब ईथर के निष्कर्ष को मूषा में हस्तान्तरित कर पहले धूप में, फिर उष्ण वायु-उष्मक में ६०° से १००° श० पर सुखाकर तब मूषा को तौल कर रेज़िन की मात्रा प्राप्त करते हैं। यह तौलना तभी समाप्त होता है जब दो तौल एकसे न आ जाय। इस रीति से सीठे के विभिन्न नमूनों में १ से २ प्रतिशत रेज़िन पाया गया है।

सीठे में मोम—ईख के वाह्य भाग में, विशेषत: पर्व-सन्धि के सन्निकट में, मोम की पतली तह रहती है। किसी ईख में मोम की मात्रा अधिक रहती और किसी में कम। यह मोम ८२° पर पिघलता और १४६° श० पर उबलता है। यह जल और ठंढे एल्कोहल में अविलेय, ठंढे ईथर और क्लोरोफार्म में अल्प-विलेय और उष्ण एल्कोहल, उष्ण ईथर, उष्ण क्लोरोफार्म और उष्ण बेंजीन में विलेय होता है।

मोम का महत्त्व इस कारण है कि रस के निर्मलीकरण में इससे बाधाएँ उपस्थित होती हैं और मोम का द्रवणांक ऊँचा होने के कारण कार्नोबा और अन्य मोम के स्थान में इसका औद्योगिक उपयोग हो सकता है।

ईख का २० से ४० प्रतिशत मोम रस में चला जाता है। शेष ८० से ६० प्रतिशत सीठे में रहता है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि प्रतिटन में प्रायः ४½ पाउंड मोम रहता है। यह मोम कार्बनिक विलायकों से अलग किया जा सकता है। इसके लिए उष्ण एलकोहल, ईथर, कार्बन टेट्राक्लोराइड, कार्बन बाइ-सल्फ़ाइड, ऐसीटोन, किरासन और टोल्विन इस्तेमाल हो सकते हैं। जो विलायक निम्न ताप पर उबलते हैं; उनसे मोम प्राप्त होता है, वह कोमल होता है और जो विलायक उच्च ताप पर उबलते हैं, उनसे कठोर मोम प्राप्त होता है। ऐसीटोन इस काम के लिए अच्छा विलायक सिद्ध हुआ है।

सीठे में यूरोनिक-अम्ल—यूरोनिक-अम्ल वे हाइड्रोक्सील अम्ल हैं जो शर्करा के आक्सीकरण से प्राप्त होते हैं। इनमें प्राथमिक एलकोहलीय समूह का आक्सीकरण हो कार्बोक्सील समूह बनता है; पर एल्डीहाइड समूह ज्यों-का-त्यों रहता है। यह काठ में निरुदक के रूप में रहता है। यूरोनिक अम्ल की मात्रा निम्नलिखित रीति से निर्धारित होती है।

महीन पीसे हुए सीठे के चूर्ण के ५ ग्राम को लेकर एक फ्लास्क में रखें और उसमें १२ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (घनता १·०६) के १५० सी. सी. विलयन को डालें। इस फ्लास्क को पश्चवाही संघनक से जोड़ें और संघनक को एक अवशोषण मीनार से जोड़ दें। इस मीनार में एक बुन्द-कीप जोड़ दें। इस कीप में पंचमांश नार्मल बेरियम हाइड्राक्साइड के २५ सी. सी. को रखकर मीनार में टपकावें। इसमें प्रति सेकेंड २ से ३ वायु के बुलबुले प्रवाहित करें। प्रायः एक घंटे तक ७०° श० पर फ्लास्क को गरम करें। फिर छः घंटे तक १३५°-१४०° श० तक ताप को उठाकर उसी पर स्थित रखें। यूरेनिक अम्ल से कार्बन डाय-क्साइड निकलकर मीनार में बेरियम हाइड्राक्साइड से मिलकर अविलेय बेरियम कार्बोनेट बनता है। अवशिष्ट बेरियम हाइड्राक्साइड को फीनोल्फ़थलीन सूचक की सहायता से दशमांश नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा निराकरण कर उससे बेरियम हाइड्राक्साइड की मात्रा निर्धारित करते हैं। उससे प्रतिशत मात्रा निकालते हैं। निरुदक के रूप में यूरोनिक अम्ल की मात्रा ३ से ४ प्रतिशत पाई गई है।

पोटैसियम का निर्धारण—सोडियम लवणों के साथ-साथ यदि पोटैसियम लवण हैं, तो पोटैसिमय का निर्धारण निम्नलिखित रीति से होता है—

१. पोटैसियम क्लोरोप्लैटिनेट रीति

२. पोटैसियम पर-क्लोरेट रीति

३. पोटैसियम सल्फेट रीति

४. डाइ-पोटैसियम सोडियम कोबैल्टोनाइट्राइट रीति।

इनमें पहली और चौथी रीति अधिक विश्वसनीय पाई गई है। पहली रीति से अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है।

पोटैसियम क्लोरोप्लेटिनेट रीति—वह रीति उन्हीं पोटैसियम लवणों के लिए लागू है जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ बार-बार उद्वाष्पन से पूर्ण रूप से पोटैसियम क्लोराइड में परिवर्त्तित हो जाते हैं; क्योंकि पोटैसियम क्लोराइड ही प्लैटिनिक क्लोराइड के साथ अविलेय क्लोरोप्लैटिनेट में परिवर्त्तित हो अवक्षिप्त होता है। इस प्रकार पोटैसियम के अवक्षिप्त

करने के लिए अमोनियम और अन्य धातुओं के लवणों, सलफेटों, फ़ास्फ़ेटों और इसी प्रकार के अन्य मूलों को निकाल डालना बहुत आवश्यक है। सोडियम क्लोरोप्लैटिनेट ८० प्रतिशत एलकोहल में विलेय है। ऐसे एल्कोहल से सोडियम पोटैसियम से पृथक् हो जाता है।

सोडियम और पोटैसियम क्लोराइड के ०·२५ ग्राम को यथार्थता से एक पोरसीलेन रकाबी (dish) में तौलकर उसमें ५ से १० सी. सी. पानी डालो। अब उसमें प्लैटिनिक क्लोराइड का इतना विलयन डालो कि सारा क्लोराइड अवक्षिप्त हो जाय। अब विलयन को जल-उष्मक पर गरम कर कुल पानी को सुखा डालो। अब उसमें ८० प्रतिशत एलकोहल का २० सी. सी. डाल कर कांच शलाका से टोस को तोड़कर छोटा-छोटा करके उसे पोरसीलेन मूषा में डाल दो। दो-दो सी. सी. ८० प्रतिशत एलकोहल कई बार डालते जाओ। जब एलकोहल विलयन में कोई रंग न हो, तब क्रिया को बन्द करो। अब अवशिष्ट अवक्षेप सुनहले रंग का रह जायगा। अवक्षेप को प्रायः १३५° श० पर सुखा कर तौलो। गरम करने के समय मूषा को ढँककर रखो ताकि अवक्षेप उड़कर निकल न जाय। यहाँ जो तौल प्राप्त होगी, वह क्लोरोप्लैटिनेट की होगी।

प्लैटिनम-क्लोराइड कीमती रसायन है। इससे सस्ती रीति पर-क्लोरिक अम्ल रीति का उपयोग दिनदिन बढ़ रहा है।

सीठे में फ़ास्फ़ेट—सीठे को पहले राख में परिणत करते हैं। राख को पानी और अल्कली और खनिज अम्लों के साथ गरम करके सारे फ़ास्फ़ेट को विलेय फ़ास्फ़ेट में परिवर्त्तित करते हैं। अब अमोनियम फ़ास्फ़ो मोलिबडेट डालकर फ़ास्फ़ेट का अवक्षेप प्राप्त करते हैं। अवक्षेप को छान, धो और अल्कली विलयन के साथ साधकर विलयनमापन से फ़ास्फ़ेट की मात्रा का निर्धारण करते हैं।

सीठे में शर्करा—आधुनिक कोल्हू में भी ईख की समस्त शर्करा नहीं निकल आती। शर्करा का कुछ अंश सीठे में अवश्य रह जाता है। शर्करा की मात्रा को फेलिंग के विलयन से अथवा बेनिडिक्ट के विलयन से निकालते हैं।

फेलिंग विलयन रीति—इस रीति में निम्नलिखित विलयनों की आवश्यकता होती है—

(१) १ से २ प्रतिशत द्राक्ष-शर्करा के प्रमाप विलयन की।

(२) फेलिंग विलयन 'क' की। इस विलयन को एक लिटर में ६९·२८ ग्राम कॉपर सल्फेट को घुलाकर बनाते हैं।

(३) फेलिंग विलयन 'ख' की। इस विलयन को एक लिटर में ३४६·० ग्राम रौशेल लवण और १२० ग्राम अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट को घुलाकर बनाते हैं।

(४) एक प्रतिशत मेथिलीन ब्लू के विलयन की।

'क' विलयन का १० सी. सी. और 'ख' विलयन का १० सी. सी. पिपेट से लेकर फेलिंग के २० सी. सी. को ३००-फ्लास्क में रखते हैं। शर्करा के विलयन को बुरेट में रखते हैं। फेलिंग विलयन को तार-जाली पर रखकर गरम कर उबालते हैं। इस उबलते विलयन में शीघ्रता से १५ सेकंड के अन्तर पर शर्करा का विलयन डालते हैं।

जब मालूम हो जाता है कि ताँबे का विलयन प्राय: अवकृत हो गया है, तब उसमें मेथिलीन ब्लू के विलयन को प्राय: तीन-चार बूंदें डालकर और शर्करा विलयन डालकर सारे ताँबे को अवक्षिप्त कर लेते हैं। प्राथमिक प्रयोग के बाद दूसरा प्रयोग अधिक यथार्थता से करते हैं। यहाँ ताँबे के विलयन को तीन मिनट से अधिक नहीं उबालते। नीले रंग के पूर्ण रूप से लुप्त हो जाने से अन्तिम विन्दु का पता लगता है। ताँबे के पूर्णरूप से अवक्षिप्त हो जाने पर विलयन का रंग लाल अथवा नारंगी रंग का हो जाता है। प्रमाप विलयन से प्रयोग कर ताँबे के विलयन का बल मालूम करते हैं और उससे गणना कर निकालते हैं कि फेलिंग का १ सी. सी. विलयन कितनी शर्करा के समतुल्य है।

महीन कटे हुए सीठे के २० ग्राम को एक लिटर फ्लास्क में रखकर उसमें ५०० सी० सी० आसुत जल डालते हैं। इसे लगातार ६ घंटे उबालते हैं और बीच-बीच में जोरों से हिलाते जाते हैं। छ: घंटे के बाद फ्लास्क को ठंढा कर १० घंटा सामान्य ताप प्राय: ३०° श० पर रखते हैं। फिर फ्लास्क को ४ घंटे तक ७०° से ६०° श० पर गरम करते हैं। अब फ्लास्क के पदार्थों को बुकनरकीप पर रखे ही वस्त्र से छान लेते हैं। सारे तरल को बह लेने पर वस्त्र पर रखे सीठे को उष्ण जल से धो लेते हैं। तरल और धोवन दोनों को मिलाकर उद्वाप्पन द्वारा थोड़ी मात्रा, ५० सी०, सी० में सान्द्रित करते हैं। विलयन का रंग कुछ हल्का कपिलवर्ण का होता है। इस विलयन में नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का २० सी० सी० डालकर मिश्रण को ७०°-८०° श० पर ४ घंटा गरम करके ठंढा कर लेते हैं। अब इसे सोडियम कार्बोनेट के संतृप्त विलयन से उदासीन करके १०० सी० सी० बनाकर इसे फेलिंग विलयन से विलेयमापन करते हैं। इससे विपर्यस्त शर्करा की मात्रा मालूम होती है और उससे सीठे में उपस्थित चीनी की मात्रा निकालते हैं। सीठे में ४·४ से ४·८ प्रतिशत चीनी पाई गई है।

बेनीडिक्ट रीति—इसके लिए।

अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट	१०० ग्राम
सोडियम साइट्रेट	२०० ग्राम
और पोटैसियम सल्फोस्यानाइड	१२५ ग्राम

को गरमकर पानी में घुला लेते हैं। विलयन को तब छानकर ८०० सी० सी० बना लेते हैं। शुद्ध अनार्द्र कापर सल्फेट के १८·० ग्राम को तौलकर पानी में घुलाकर १०० सी० सी० विलयन बना लेते हैं। इस विलयन को ऊपर के विलयन में धीरे-धीरे डालते और कांच-शलाका से हिलाते जाते हैं। इस विलयन में पाँच प्रतिशत पोटैसियम फेरोस्यानाइड का ५ सी० सी० विलयन डालकर सारे विलयन का आयतन एक लिटर बना लेते हैं। क्यूप्रस ऑक्साइड के अवक्षेप को रोकने के लिए पोटैसियम फेरोस्यानाइड डालते हैं। इस विलयन का बल भी द्राक्ष-शर्करा के १ से २ प्रतिशत सान्द्रता के विलयन से प्रमापित करते हैं।

विपर्यस्त शर्करा के निर्धारण में बेनीडिक्ट विलयन के २५ सी० सी० को एक पोरसीलेन रकाबी में रखकर १० ग्राम अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट डालकर उससे रंध्री खर्पर के कुछ टुकड़े डालकर विलयन को उबालते हैं। इस उबलते विलयन में द्राक्ष शर्करा

के विलयन से श्वेत क्यूप्रस् थायोस्यानेट का अवक्षेप बनता है। प्रमाप द्राक्ष-शर्करा के विलयन के साथ विलेयमापन से विलयन का १ सी० सी० द्राक्ष-शर्करा के कितनी मात्रा के समतुल्य है, इसका ज्ञान हो जाता है। इसके लिए सीठे से उसी प्रकार निष्कर्ष निकलते हैं जैसे फेलिंग विलयन में वर्णित है। इस विधि द्वारा सीठे के मज्जक में ४'५ प्रतिशत, सीठे के वाह्य वल्क में ३'१ प्रतिशत और समस्त भाग में ४'२ से ४'५ प्रतिशत चीनी पाई गई है।

सेल्यूलोज का निर्धारण—साधारणतया सेल्यूलोज दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार का सेल्यूलोज ऐसा है जो सरलता से जलांशित हो जाता है। यह उबलते जल में अविलेय है; पर उबलते सोडियम हाइड्राक्साइड में शीघ्रता से घुल जाता है और सामान्य दबाव पर भी हल्के अम्लों से सामान्य शर्कराओं में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे सेल्यूलोज को 'हेमिसेल्यूलोज' कहते हैं। कुछ लोगों ने सेल्यूलोज को "सामान्य और संयुक्त" सेल्यूलोज में विभक्त किया है। सामान्य सेल्यूलोज रूई में रहता है। संयुक्त सेल्युलोज में सेल्यूलोज और हेमिसेल्यूलोज के अतिरिक्त लिगनिन, पेक्टिन और क्युटिन रहते हैं। जिस सेल्युलोज में लिगनिन रहता है, उसे 'लिगनो-सेल्यूलोज' कहते हैं। जूट, घास, सनई, पुआल और कुछ काठों के तन्तुओं में लिगनो-सेल्यूलोज रहता है। साधारणतया घास और पुआल में ५० से ६५ प्रतिशत सेल्यूलोज, २० प्रतिशत लिगनिन, कुछ हेमि-सेल्यूलोज और अन्य अवयव रहते हैं।

सेल्यूलोज तीन प्रकार के होते हैं। इन्हें अल्फा-सेल्यूलोज, बीटा-सेल्यूलोज और गामा-सेल्यूलोज कहते हैं।

अल्फा-सेल्यूलोज में पेंटोजन मिला रहता है। हल्के खनिज अम्लों से उबालने पर केवल ६० प्रतिशत पेंटोजन निकल जाता। पर अब भी १० प्रतिशत दृढ़ता से चिपका रहता है। सल्फेट रीति से प्राप्त काष्ठ-पल्प के १७ प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड से दो बार निष्कर्ष निकाल लेने पर भी सेल्यूलोज में पेंटोजन इस प्रकार पाया गया था—

अल्फा-सेल्यूलोज में	०'८ प्रतिशत पेंटोजन
बीटा-सेल्यूलोज में	१'२६ ,, ,,
गामा-सेल्यूलोज में	२'१६ ,, ,,

सेल्यूलोज में पेंटोजन की मात्रा पेंटोजन को फरफ्यूरल में परिणत कर फरफ्यूरल की मात्रा से निकाला जाता है। सीठे में फरफ्यूरल की मात्रा इस प्रकार निकालते हैं—

१. महीन कटे हुए सीठे के २ ग्राम को २५० सी० सी० फ्लास्क में रखकर फ्लास्क की गरदन में पृथक्कारी कीप और एक निकास-नली लगा देते हैं और निकास-नली में लिबिग संघनक जोड़ देते हैं। अब फ्लास्क में १२ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन के १० सी० सी० को डालकर तरल का आसवन इस प्रकार करते हैं कि १० मिनट में ३० सी० सी० तरल आसुत हो। ज्योंही ३० सी० सी० आसुत इकट्ठा हो, फ्लास्क में ३० सी० सी० अम्ल डाल देते हैं। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जबतक आसुत फरफ्यूरल से मुक्त न हो जाय। साधारणतया पहले ३०० आसुत में सारा फरफ्यूरल निकल जाता है। जबतक आसुत में फरफ्यूरल रहता है, इसकी एक बूंद को निःस्यन्दन पत्र पर एनिलीन प्रतिकारक से नील-लोहित रंग बनता है।

२. निःस्यन्द में अब फ्लोरोग्लुसिन का ४० सी० सी० डालो और उसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलयन डालकर ४०० सी० सी० बना लो। यह अब आहरित काला वर्ण का हो जाता है और फरफ्यूरल फ्लोरोग्लुसाइड का अवक्षेप निकल आता है। १६ घंटे तक रखकर, इसकी एक बूँद को एनिलिन से परीक्षण करो। यदि अब भी नील-लोहित रंग आ जाय, तब और फ्लोरोग्लुसिन विलयन डालो।

३. गूचमूषा में अस्बेस्टस गद्दी रखकर उसपर अवक्षेप को छान लो। आसुत जल के ठीक १५० सी० सी० से अवक्षेप को धोकर १००°-१०५° श० पर उष्ण वायु में ४ घंटे तक सुखाकर एक तोलन बोतल में तौलो; क्योंकि अवक्षेप आर्द्रताग्राही होता है।

४. एक बीकर में मूषा को रखकर ९५ प्रतिशत एथिल एल्कोहल का २० सी० सी० डालकर, बीकर को ६५° श० के जल उष्मक पर १५ मिनट गरम करो। चूषण-पम्प से एलकोहल को निकाल डालो। इस क्रिया को पाँच बार दुहराओ। अन्त में जो एलकोहल निकलेगा, उसमें रंग न होगा। मूषा को अब फिर तौलो। इससे फरफ्यूरल फ्लोरोग्लुसाइड की मात्रा निकल आयेगी।

सीठे में जाइलान निर्धारण—काठ के अल्कली से साधने से जो अंश अल्कली में विलीन होकर निकल आता है, उसे 'काष्ठगोंद' कहते हैं। वस्तुतः यह गोंद नहीं है। यह कोशा-दीवार का अवयव है। प्राकृतिक सेल्यूलोज से फरफ्यूरल एल्डीहाइड के निर्धारण से इसका निर्धारण होता है।

लिगनिन का निर्धारण—लिगनिन सेल्यूलोज के साथ संयुक्त हो लिगनो-सेल्यूलोज बनता है। लोगों का मत है कि ईथर-सदृश बन्धन लिगनिन और सेल्यूलोज के बीच उपस्थित है। कुछ लोगों का मत है कि एस्टर सदृश बन्धन लिगनिन के आम्लिक समूह और कार्बोहाइड्रेट के हाइड्रोक्सील के बीच उपस्थित है। कुछ लोगों का मत है कि कार्बोहाइड्रेट के साथ लिगनिन ऐसीटल रूप में संयुक्त है।

लिगनिन का पृथक्करण—लिगनिन के पृथक करने में दो रीतियों का उपयोग होता है। एक रीति में सेल्यूलोज और अन्य अवयवों के अलग कर लेने पर अविलेय अवशेष के रूप में लिगनिन रह जाता है। दूसरी रीति में स्वयं लिगनिन को सेल्यूलोज और अन्य पदार्थों से अलग कर लेते हैं।

पहली रीति में काठ के प्रतिग्राम के लिए ६६ से ७० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल का ५० सी० सी० इस्तेमाल कर मिश्रण को ४८ घंटे के लिए रख छोड़ते हैं। इस अम्ल में सेल्यूलोज और अन्य पदार्थ विलीन हो जाते और लिगनिन बचा रह जता है।

सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में कुछ लोगों ने सधूम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उपयोग किया है। ऐसे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में ४० से ४२ प्रतिशत अम्ल रहता है और उसकी घनता १·२१२ से १·२२३ होती है। इस अम्ल में सेल्यूलोज विलीन हो जाता है।

उरबान (Urban) ने इस रीति में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (घनता १.१८) और फास्फरिक अम्ल (घनता १·१७) के मिश्रण का उपयोग किया है।

दूसरी रीति में लिगनिन को सलफ्यूरस अम्ल और सलफाइट के साथ दबाव में ऑटोक्लेव में गरम करने से लिगनिन निकल आता है। इससे अधिक सुविधाजनक रीति

सोडियम हाइ-ड्राक्साइड के जलीय और एलकोहलीय विलयन द्वारा लिगनिन को निकाल लेना है।

सीठे को कैंची से छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर दो ग्राम लेकर उसे एलकोहल और बेंजीन (१:१ आयतन) से चार घंटा सौक्सलेट में निष्कर्ष निकालो। इसे अब २५० सी० सी० फ्लास्क में हस्तान्तरित कर ७० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल के ४० सी० सी० से ढँक दो और जोरों से हिलाओ। बीच-बीच में हिलाते हुए फ्लास्क को २१ घंटे तक रहने दो। अब फ्लास्क की वस्तु को सूखी गूच मूषा में हस्तान्तरित कर शून्य निःस्यन्दक में जोड़कर उष्ण जल से बार-बार धोकर सलफ्यूरिक अम्ल को निकालकर उष्ण वायु में सुखा लो। इस प्रकार से प्राप्त लिगनिन आकपिल पीतवर्ण का अमणिभीय चूर्ण होता है और सामान्य कार्बनिक विलायकों में अविलेय। सीठे के विभिन्न भागों से इस रीति से १५ से २२ प्रतिशत लिगनिन पाया जाता है।

सेल्यूलोज का निर्धारण—क्लोरीन रीति—यह रीति क्रौस और बीवान की रीति के नाम से प्रसिद्ध है; पर अन्य कई लोगों ने इस रीति में पर्याप्त सुधार किये हैं। इनमें रिट्टर और मिचेल का सुधार अधिक यथार्थ परिणाम देता है।

इसके लिए सीठे के दो ग्राम को मूषा में रखकर एलकोहल-बेंजीन विलयन से (बेंजीन के ६७ आयतन और ६५ प्रतिशत एलकोहल के ३३ आयतन) सौक्सलेट में छः घंटा रखकर निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इसके बाद इसे सुखा लेते हैं। मूषा की अन्तर्वस्तु को पहले एलकोहल से पीछे जल से धोकर, जल को चूषण से अलगकर २५० सी० सी० बीकर में नोकीली काँचशलाका से हस्तान्तरित कर लेते हैं। बीकर में सीठे को एक-सा फैलाकर उसे धूमन आधरण में एक द्रोणी में रखकर क्लोरीन को प्रवाहित करते हैं। द्रोणी में १५° श० जल रखते हैं। क्लोरीन का प्रवाह प्रति-सेकेण्ड में ५ से ६ बुलबुले के वेग से रहता है। केवल तीन मिनट के क्लोरीन के प्रवाह के बाद उसमें सलफर डायक्साइड का जल डालते हैं कि जिससे क्लोरीन की जारण-क्रिया रुक जाय। अब फ्लास्क की अन्तर्वस्तु को छानकर पानी से धोकर बीकर में हस्तान्तरित कर तुरन्त का तैयार सोडियम सलफाइट के २ प्रतिशत विलयन के १०० सी० सी० डालकर बीकर को ३० मिनट तक उबलते जल में रखकर—बीच-बीच में उसे हिलाते रहते हैं—उसे छान लेते हैं। उष्ण आसुत जल के २५० सी० सी० से धोते और फिर क्लोरीन को प्रवाहित करते हैं। इसके बाद फिर पूर्व की भाँति सोडियम सलफाइट के २५ सी० सी० से धोते हैं। यह क्रिया तब तक चलती है जब तक क्लोरीनवाला उत्पाद सोडियम सलफाइट से कोई रंग न दे। साधारणतया क्लोरीन से तीन बार की क्रिया से सब लिगनिन और अन्य पदार्थ पूर्णतया निकल जाते हैं। अब सेल्यूलोज को बीकर में रख आसुत जल का २०० सी० सी० डालकर बीच-बीच में हिलाते हुए दो घंटे तक वाष्पतापक में गरम करते हैं। इससे सारे अम्ल और लवण निकल जाते हैं। अब इसे उष्ण जल के १०० सी० सी० से, फिर १० प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल के ५० सी० सी० से, उष्ण आसुत जल के ५०० सी० सी० से, ६५ प्रतिशत एलकोल के ५० सी० सी० और अन्त में ईथर के ५० सी० सी० से धो लेते हैं। अब इसे १०५° श० पर वायु-तापक द्वारा सुखाकर समय-समय पर तौलते हैं; चार घंटे में इसकी तौल स्थायी हो जाती है। यह शुद्ध सेल्यूलोज है। यह कोमल और सफेद होता है। सीठे के विभिन्न भागों में ५५ से ६३ प्रति-

शत सेल्युलोज रहता है। उसके वाह्य वल्क में सबसे कम प्राय: ५५ प्रतिशत रहता है। औसत मात्रा प्राय: ६२ प्रतिशत रहती है।

क्लोरीन का प्राप्त होना सब जगह सुलभ नहीं है। यदि क्लोरीन के बेलन मिल जायँ तो यह रीति बड़ी सुविधाजनक होती है ; पर जहाँ क्लोरीन बेलन प्राप्य न हो, वहाँ नारमन और जेंकिन्स रीति अधिक सुविधाजनक है। इस रीति में क्लोरीन के स्थान में सोडियम हाइपोक्लोराइट उपयुक्त होता है। यह रीति इस प्रकार सम्पादित होती है।

सीठे के ५ ग्राम को गोलबुघ्न फ्लास्क में रखकर आध घंटे तक २० सी० सी० बेंजीन और २० सी० सी० एथिल एलकोहल के साथ पश्चवाही संघनक के साथ गरम करो। अब इसे उष्ण जल से धोकर ३ प्रतिशत सोडियम सलफाइट के विलयन के २०० सी० सी० से १० मिनट तक उबालो। इसे अब महीन कपड़े में छानो और धो डालो। अब २५० सी० सी० जल में १० मिनट रखो। इससे सीठे की वस्तुएँ अलग-अलग हो जाती और कुछ लिगनिन निकल जाता है। अब इसमें सोडियम हाइपोक्लोराइट का विलयन—जिसमें १५ प्रतिशत प्राप्य क्लोरीन हो—३० सी० सी० डालो। सोडियम हाइपोक्लोराइट का विलयन इस प्रकार तैयार करते हैं। पोटाश परमैंगनेट पर सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त क्लोरीन को सोडियम हाइड्राक्साइड के ४ प्रतिशत विलयन में प्रवाहित करते हैं। जब क्लोरीन गैस का कुछ आधिक्य हो जाय, तब बन्द कर देते हैं। फ्लास्क को काग से बन्दकर १५ मिनट हिलाते हैं। विरंजित पदार्थ को छानकर उष्णजल से धोकर फ्लास्क में स्थानान्तरित करते हैं। इस फ्लास्क में २०० सी० सी० जल और २५० सी० सी० ६ प्रतिशत सोडियम सलफाइट का विलयन डालकर ३० मिनट उबालते हैं। अब उत्पाद को धोकर फ्लास्क में स्थानान्तरित कर फिर जल (२५० सी० सी० और सोडियम हाइपोक्लोराइट विलयन (३० सी० सी०) और २० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल (१० सी० सी०) डालकर १५ मिनट तक जोरों से हिलाते हैं। इससे क्लोरीन निकलकर तन्तु को विरंजित कर देता है। विरंजित पदार्थ को छान और धोकर सोडियम हाइपोक्लोराइट (२५० सी० सी०) और जल (३०० सी० सी०) से १५ मिनट उबाल लेते हैं। हाइपोक्लोराइट और सोडियम सलफाइट का व्यवहार तबतक करते रहते जबतक सारा लिगनिन दूर न हो जाय।

अन्तिम उत्पाद को जल से धोकर और वायु-उष्मक में १००-१०५° पर २½ घंटा सुखाकर तौलते हैं।

सोडियम हाइपोक्लोराइट में प्राप्य क्लोरीन की मात्रा निर्धारित करने के लिए इसके ५ सी० सी० को लेकर ५०० सी० सी० में बनाते हैं। इस हलके विलयन के १० सी० सी० में ५ प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल का १० सी० सी० विलयन डालकर १० प्रतिशत पोटैसियम आयोडाइड का ५ सी० सी० डालते हैं। इस विलयन को अब सोडियम थायोसलफेट के बीसवाँ भाग (N/20) विलयन से विलेयमापन कर प्राप्य क्लोरीन की मात्रा निर्धारित करते हैं। इस रीति से भी प्राय: वे ही परिणाम प्राप्त होते हैं जो क्लोरीन रीति से प्राप्त होते हैं। थोड़ा अन्तर तो परिणाम में अवश्य रहता है, पर वह एक प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

ताम्र-संख्या—सेल्युलोज अणु के अवकरण से ऐसे पदार्थ बनते हैं जो ताँबे के विलयन को अवकृत करते हैं। १०० ग्राम शुष्क सेल्युलोज को क्षारीय विलयन के क्यूप्रिक लवण की जितनी मात्रा क्यूप्रस लवण में परिवर्तित करती है, उसे ताम्र-संख्या कहते हैं। सामान्य रूई के सेल्युलोज में ताम्र-संख्या ०·२ होती है। सेल्युलोज के परिवर्तन से, उष्मा द्वारा, अम्लद्वारा, क्षारद्वारा, जारणकर्त्ता द्वारा ताम्रसंख्या बढ़ जाती है। ताम्रसंख्या निकालने की अनेक रीतियाँ समय-समय पर प्रतिपादित हुई हैं। उनमें स्वाल्बे-ब्रैडी रीति अधिक विश्वसनीय प्रमाणित हुई है। इसके लिए निम्न विलयनों की आवश्यकता होती है—

१. कॉपर सलफेट विलयन। एक लिटर विलयन में मणिभीय कॉपर सलफेट का १०० ग्राम रहता है।

२. अल्कली कार्बोनेट विलयन। १ लिटर विलयन में ५० ग्राम सोडियम बाई-कार्बोनेट और ३५० ग्राम सोडियम कार्बोनेट के मणिभ जल में घुले रहते हैं।

३. एक लिटर विलयन में १०० ग्राम लौह-फिटकरी और १४० सी० सी० सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल जल में घुले रहते हैं।

४ पोटैसियम परमैंगनेट का N/25 विलयन। इसका १ सी० सी० ०·००२५ ग्राम अवकृत ताम्र के समतुल्य है।

५. दो नार्मल बल के सलफ्यूरिक अम्ल का ५०० सी० सी० विलयन।

कापर सलफेट के विलयन को बुरेट में भरते हैं। अलकली कार्बोनेटों के विलयन के ६५ सी० सी० को शुण्डाकार फ्लास्क में रखकर, ५ सी० सी० कॉपर सलफेट विलयन डालकर उबलने तक गरम कर उसमें वायु-शुष्क सेल्युलोज के २·५ ग्राम को डाल देते हैं। अब फ्लास्क को हिलाकर डॉट से बन्द कर जल-तापक में डुबाकर ३ घंटे तक उबलते पानी में गरम करते हैं। अब मिश्रण को बुकनर कीप में शून्य पम्प से छान लेते हैं। सेल्युलोज में लिप्त क्यूप्रस ऑक्साइड को पहले हलके सोडियम कार्बोनेट विलयन (१०० सी० सी०) और पीछे उष्ण जल से धो डालते हैं ताकि सारा विलेय ताम्रलवण निकल जाय।

अब सेल्युलोज से क्यूप्रस ऑक्साइड को लौह फिटकरी विलयन में घुलाकर निकाल लेते हैं। पहले २० सी० सी० विलयन और पीछे १५ सी० सी० विलयन डालते हैं। यदि आवश्यक हो तो १० सी० सी० विलयन और डाल सकते हैं। सेल्युलोज को दो नार्मल सलफ्यूरिक अम्ल के २५ सी० सी० से धोकर निःस्यन्द और धोवन को पोटाश परमैंगनेट के विलयन से विलेय-मापन करते हैं। यहाँ अन्तिम बिन्दु स्थायी और उग्र होता है। सीठे की ताम्र-संख्या आधे से एक तक पाई गई है।

अल्फा, बीटा और गामा-सेल्युलोज का निर्धारण—सीठे से प्रस्तुत सेल्युलोज के १० ग्राम को २५० सी० सी० समावेशन के बीकर में रखकर तौलो और उसमें १७·८ प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड का ६० सी० सी० डालो। ताप ठीक २०° श० रहना चाहिए। सेल्युलोज को काँच शलाका से तोड़कर ४५ मिनट तक २०° श० पर रहने दो।

बीकर में अब २०° श० का आसुत जल १०० सी० सी० डालो और उसे हिलाते रहो, ताकि सारा सेल्युलोज एकसा हो जाय। १५ मिनट के बाद अन्तर्वस्तु को महीन कपड़े

पर बुकनर कीप में छान लो। कपड़े पर अविलेय अल्फा-सेल्युलोज रह जायगा। उसे उष्ण जल से पूर्णतया धो डालो। निःस्यन्दक में बीटा-और गामा-सेल्युलोज रह जायगा।

अल्फा-सेल्युलोज पर जल (१०० सी० सी०) और हिम्य ऐसिटिक अम्ल (१५ सी० सी०) का मिश्रण डालो और उसे धीरे-धीरे बहने दो। अब अल्फा-सेल्युलोज को उबलते जल के एक लिटर से धोकर, केन्द्रापसारित कर स्थाल (tray) पर रखकर १०५° श० पर वायु-उष्मक में ३ घंटा सुखाओ। जब बिलकुल सूख जाय तब तौलो।

बीटा-सेल्युलोज—ऊपर में जो निःस्यन्द प्राप्त हुआ है, उसमें बीटा-और गामा-सेल्युलोज दोनों रहते हैं। उस विलयन में हिम्य ऐसिटिक अम्ल (३० सी० सी०) डालने से बीटा-सेल्युलोज अवक्षिप्त हो जाता है, यह जिलेटिन सा रहता है। जल-उष्मक पर गरम करने से यह स्कंधित हो जाता है। अब इसे निःस्यन्दक पत्र पर छानकर, उबलते जल से धोते हैं ताकि यह अम्ल-रहित हो जाय। अब इसे पत्र से हटाकर पहले बड़ी धीमी आँच से और फिर १०५° श० पर सुखाते हैं। सूख जाने पर इसे तौलते हैं। निःस्यन्द से गामा-सेल्युलोज निकालते हैं।

गामा-सेल्युलोज—विलयन में जो गामा-सेल्युलोज रह जाता है, उसे आयतन रीति से निकालते हैं। अम्लिक पोटैसियम डाइक्रोमेट विलयन से सेल्युलोज को आक्सीकृत कर कार्बन डायक्साइड और जल में परिवर्तित करते हैं। सेल्युलोज की एक इकाई को आक्सीकृत करने के लिए पोटैसियम डाइक्रोमेट की ४ इकाई की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में सेल्युलोज के एक अणु (जिसका अणुभार ६२·१ है) के ऑक्सीकृत करने में पोटैसियम डाइक्रोमेट के ४ अणु (जिसका अणुभार २६४·५ है) की आवश्यकता होती है। इस प्रकार १ ग्राम डाइक्रोमेट ०·१३७५ ग्राम सेल्युलोज के समतुल्य है।

आक्सीकरण के लिए पोटैसियम डाइक्रोमेट का आधिक्य उपयुक्त करते हैं। आधिक्य की मात्रा को फेरस्-सलफेट विलयन के विलेयमापन से निकाल लेते हैं।

इन सेल्युलोजों के निर्धारण में निम्न लिखित विलयनों की आवश्यकता होती हैं—

(१) पोटैसियम डाइक्रोमेट का विलयन। एक लिटर में इसका ६०·० ग्राम रहता है।

(२) सलफ्यूरिक अम्ल विलयन जिसमें आयतन से ७२ प्रतिशत अम्ल रहे।

(३) फेरस् अमोनियम सलफेट विलयन। एक लिटर में फेरस अमोनियम सलफेट के मणिभ १५६·६ ग्राम, ($FeSO_4(NH_4)_2SO_4, 6H_2O$) और ५ सी० सी० १० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल का विलयन रहता है। सलफ्यूरिक अम्ल का विलयन इस कारण डालते हैं कि फेरस-अमोनियम् सलफेट की आविलता (turbity) दूर हो जाय।

(४) पोटैसियम फेरीसायनाइड, $\{K_3Fe(CN)_6\}$ का विलयन। ५०० सी० सी० जल में इसका एक ग्राम घुला हो।

इनके अतिरिक्त लौह-फिटकरी का हलका विलयन जिसका रंग परमैंगनेट विलयन से रंगा हो। सूचक के साथ इस विलयन को कपिलवर्ण देना चाहिए, नीला अथवा हरा नहीं।

गामा-सेल्युलोज के विलयन को जल-उष्मक पर सांद्रण करना चाहिए। सान्द्र विलयन को ७२ प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल के १० सी० सी० से साधकर विलयन के आयतन को १०० सी० सी० बना लेना चाहिए। इस विलयन का १० सी० सी० पिपेट से लेकर बीकर में रखकर पोटैसियम डाइक्रोमेट का १० सी० सी० विलयन और ७२ प्रतिशत

सल्फ्यूरिक अम्ल का ६० सी० सी० विलयन डालकर सबको १५ मिनट उबालना चाहिए। उसके बाद विलयन को २०° श० पर ठंढा कर फेरस् अमोनियम सलफेट के विलयन से पोटैसियम डाइक्रोमट के आधिक्य का विलेयमापन करना चाहिए। इसके लिए पोटैसियम फेरिसायनाइड का वाह्य सूचक व्यवहार करना चाहिए। सीठे के विभिन्न भागों में शुद्ध सेल्युलोज में अल्फा-सेल्युलोज की मात्रा ७८ से ८३ प्रतिशत, बीटा-सेल्युलोज की मात्रा ४ से ८.६ प्रतिशत और गामा-सेल्युलोज की मात्रा ६ से १२ प्रतिशत पाई गई है। सीठे में अल्फा-सेल्युलोज की मात्रा ४५ से ५२ प्रतिशत पई गई है।

सीठे से पल्प तैयार करना—काठ अथवा सीठे में सेल्युलोज के अतिरिक्त लिगनिन, हेमि-सेल्युलोज, खनिज पदार्थ, रेजिन और कुछ और अवयव रहते हैं। सेल्युलोज से अन्य पदार्थों के निकालने के लिए निम्न रासायनिक द्रव्य उपयुक्त होते हैं।

(१) दाहक सोडा। इसे 'सोडा रीति' कहते हैं।

(२) सलफ्यूरस् अम्ल। अकेले अथवा विलेय बाइ-सलफाइट के साथ। इसे 'सलफाइट रीति' कहते हैं।

(३) सोडियम हाइड्राक्साइड और सोडियम सलफाइड। इसे 'सलफेट रीति' कहते हैं।

(४) क्लोरीन। इसे 'क्लोरीकरण' रीति कहते हैं।

(५) नाइट्रिक अम्ल। इसे 'नाइट्रेट रीति' कहते हैं।

सलफाइट रीति—वायु-शुष्क सीठे के १२५ ग्राम को आधे इंच टुकड़ों में काटकर आधे घंटे तक भाप में रखो। इससे सीठा प्राय: २० प्रतिशत जल सोख लेता है। अब इसे चौड़े मुँह की बोतल में रखो और रात भर रहने दो। दूसरे दिन बोतल को औटोक्लैव में रखकर मलमल से ढँक दो और कांच शलाका से दबाकर कैलसियम सलफाइट का विलयन डालो। इस विलयन के १०० सी० सी० में प्राय: १ से १.४ ग्राम संयुक्त सलफर डायक्साइड रहना चाहिए। प्रति १०० सी० सी० में ४.५ से ७.० ग्राम समस्त सलफर डायक्साइड (संयुक्त और असंयुक्त) रहना चाहिए। सीठे के तौल पर २२.५ से ३५.० प्रतिशत रहना चाहिए। १२५ ग्राम सीठे के लिए पाचक द्रव का प्राय: ३ लिटर विलयन औटोक्लेव के पाचित्र (digester) में आवश्यक है। पाचक द्रव निम्नलिखित विवरण का होना चाहिए।

समस्त सलफर डायक्साइड	३.८० प्रतिशत
मुक्त सलफर डायक्साइड	२.४० प्रतिशत
संयुक्त सलफर डायक्साइड	१.४० प्रतिशत

औटोक्लेव में पहले धीरे-धीरे तपाते हैं ताकि प्राय: ३ घंटे में ताप १००° श० पहुँच जाय, और १० घंटे में १८०° श० पर पहुँच जाय। औटोक्लेव के अन्दर का दबाव प्राय: ६ वायुमण्डल रहता है। तीन घंटे तक इसी दबाव और ताप पर रखते हैं।

पाचन हो जाने पर पल्प को औटोक्लेव से निकाल लेते और केन्द्रापसारक में द्रव को बहा लेते हैं। पल्प अब जल से ऐसे धोते हैं कि धोवन पूर्णतया उदासीन हो जाय। पल्प को अब सोडियम हाइपोक्लोराइट के ३ प्रतिशत विलयन से विरंजितकर, फिर जल से धोकर प्राय: तीन घंटे तक १०५° श० पर वायु-उष्मक पर सुखाते हैं। इस रीति से सीठे से कोमल और सफेद तन्तु प्राप्त होते हैं।

१२५ ग्राम सीठे से प्राय. ६० ग्राम, ४८ से ४६ प्रतिशत वायु-शुष्क-पल्प प्राप्त होता है। इस पल्प का विश्लेषण निम्नलिखित है—

क्रम संख्या	पदार्थ	वायु शुष्क पल्प का प्रतिशत
१	राख	० ४०
२	क्षारीयता	३ १०
३	लिगनिन	१·६०
४	पेन्टोजन	३·८०
५	क्रौस-बीवान सेल्युलोज	६५·००
६	अल्फा-सेल्युलोज	८०·७०
७	बीटा-सेल्युलोज	८·५०
८	गामा सेल्युलोज	१०·६०
६	पल्प की ताम्र संख्या	३·१०

सोडा रीति—१०० ग्राम वायु-शुष्क सीठे को एक औटोक्लेव में रखकर २५ ग्राम सोडियम हाइड्राक्साइड को ५०० सी० सी० जल के साथ मिलाकर गरम करते हैं। पहले बहुत धीरे-धीरे और बाद में प्राय: एक घंटे में १७०° श० पर ताप पहुँचाकर प्राय: ५ घंटा इसी ताप पर रखते हैं। केवल ३ घंटे के पाचन से सारा लिगनिन पूर्णतया निकल जाता है। औटोक्लेव का दबाव प्रति इंच ७ वायु-मण्डल रखना चाहिए।

पाचन क्रिया के बाद पल्प को निकालकर केन्द्रापसारी पम्प से अल्कली को निकाल लेते हैं। पल्प को जल से पूर्णतया धो लेते हैं। जब धोवन स्वच्छ और उदासीन रहे तब धोना बन्द कर देते हैं। अब पूर्व की भाँति पल्प को विरंजित कर लेते हैं। विरंजित पल्प को पूर्णतया धोकर, केन्द्रापसारित कर वायु-उष्मक में १०५° श० पर सुखाकर तौलते हैं। इस रीति से १०० ग्राम सीठे से प्राय: ४५ से ४६ ग्राम पल्प प्राप्त होता है। ऐसे पल्प का विश्लेषण निम्नलिखित है।

संख्या	पदार्थ	प्रतिशत मात्रा
१	राख	०·५
२	क्षारीयता	४·०
३	ईथर निष्कर्ष	०·३
४	लिगनिन	१·३
५	पेन्टोजन	८·५
६	क्रौस और बिवान सेल्युलोज	६६·१
७	अल्फा सेल्युलोज	८१·०
८	बीटा-सेल्युलोज	७·१
६	गामा सेल्युलोज	६·७
१०	क्षार-विलेय	१०·२
११	ताम्र-संख्या	०·६

इस रीति से प्राप्त सेल्युलोज उच्च कोटि का होता है; पर पल्प की मात्रा कुछ कम प्राप्त होती है।

नाइट्रेट रीति—यहाँ नाइट्रिक अम्ल से लिगनिन आक्रान्त हो विलेय उत्पाद बनकर निकल जाता है। यदि नाइट्रिक अम्ल बहुत हलका हो तो सेल्युलोज आक्रान्त नहीं होता पर सान्द्र होने से सेल्युलोज आक्रान्त हो नष्ट हो जाता है। इससे बहुत हलका नाइट्रिक अम्ल, २ से ७ प्रतिशत ही अम्ल, उपयुक्त करना चाहिए।

सीठे को किसी काँच-पात्र में रखकर उसमें हलका नाइट्रिक अम्ल विलयन—५, ६, ७ प्रतिशत—डालकर लीबिग संघनक जोड़ देना चाहिए। सीठे को प्रायः ३ घंटे तक हलके अम्ल में डुबाए रखना चाहिए। बीच-बीच में हिलाते रहना चाहिए। जितना सीठे लें उसका १५ गुना हलका अम्ल इस्तेमाल करना चाहिए। अब पात्र को विलयन के क्वथनांक तक गरम करके उसी ताप पर प्राय: ६ घंटा रखना चाहिए और बीच-बीच में हिलाते रहना चाहिए। अब पल्प को निकालकर अम्ल को केन्द्रापसारी पम्प से बहा लेना चाहिए। फिर बहते पानी की धारा में धोकर सारा अम्ल निकाल देना चाहिए। हेमि-सेल्युलोज और अन्य क्षारविलेय उत्पादों को निकाल डालने के लिए सीठे के १० गुना ७ प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड का विलयन (घनत्व १·०८१) डालकर १ घंटा क्वथनांक तक तपाना चाहिए। इस क्रिया के बाद पल्प को धोकर क्षार से मुक्त कर लेना चाहिए और तब १०५° श० पर सुखाकर तौलना चाहिए। इस पल्प में कुछ रंग रहता है; पर सोडियम हाइपोक्लोराइट के ३ प्रतिशत विलयन से विरंजित करने पर कोमल और सफेद हो जाता है। इससे पल्प उच्चकोटि का प्राप्त होता है; पर मात्रा कम प्राप्त होती है। ३३ से ३७ प्रतिशत पल्प प्राप्त होता है। उसमें प्राय ९९ प्रतिशत सेल्युलोज रहता है जिसमें अल्फा-सेल्युलोज ९१ से ९३ प्रतिशत रहता है।

जलीय नाइट्रिक अम्ल के स्थान में यदि नाइट्रिक अम्ल के साथ-साथ १ प्रतिशत सोडियम बाइसलफाइट अथवा सोडियम सलफाइट का विलयन उपयुक्त हो तो पल्प की कुछ अधिक मात्रा ३५ से ३९ प्रतिशत प्राप्त हो सकती है। सीठे के लिए नाइट्रिक अम्ल रीति अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

पल्प का परिष्कार—सामान्य पल्प में कुछ लिगनिन, कुछ हेमिसेल्युलोज, कुछ राख, कुछ अपचित सेल्युलोज और कुछ अन्य अपद्रव्य रहते हैं। ऐसे पल्प से बना कागज मजबूत नहीं होता। सेल्युलोज से और भी अनेक पदार्थ बनते हैं। ऐसे पदार्थों में एक सूत बनता है, जो रेशम सा सुन्दर और टिकाऊ होता है। इसे कृत्रिम रेशम कहते हैं। आज कृत्रिम रेशम का व्यवसाय बहुत उन्नत है। अनेक देशों में कृत्रिम रेशम बनता और वस्त्रों के बनाने में उपयुक्त होता है। कृत्रिम रेशम के वस्त्र कोमल, सुन्दर और टिकाऊ होते हैं। कृतिम रेशम से बने वस्त्र बड़े सस्ते पड़ते हैं। इनपर रंग भी बहुत जल्दी चढ़ता है और रंग पक्का होता है। ये बड़े हल्के होते हैं और विशेष उपचार से पानी में भींगते भी नहीं। इन कारणों से प्रत्येक देश में कृत्रिम रेशम के कारखाने खुल रहे हैं। एक विशेषता इसमें यह है कि इसके लिए पल्प की आवश्यकता होती है। पल्प काठ से भी प्राप्त होता है जो हर देश में ऊपज सकता है। रूई प्रत्येक देश में नहीं ऊपज सकती। अच्छी रूई तो कुछ चुने हुए देशों में ही उपजती है। कृत्रिम रेशम बनाने के लिए पल्प परिष्कृत

होना चाहिए। सामान्य पल्प से अच्छा रेशम-सूत नहीं बन सकता। इस कारण इस काम के लिए पल्प को इस रीति से तैयार करते हैं कि परिष्कृत पल्प प्राप्य हो अथवा सामान्य पल्प को परिष्कृत कर इस योग्य बनाया जाता है। बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के औद्योगिक विभाग में प्रस्तुत लेखक की देखरेख में सीठे के पल्प से कृत्रिम रेशम के सूत तैयार हुए हैं। ऐसा सूत प्रदर्शनी में ही बनाकर लखनऊ की एक प्रदर्शनी में दिखलाया गया था। कृत्रिम रेशम के लिए अल्फा-सेल्युलोज ही उपयुक्त होता है। इसी के बने सूत अधिक टिकाऊ होते हैं। अल्फा-सेल्युलोज की अणुक शृंखला पर्याप्त लम्बी होनी चाहिए। हेमि-सेल्युलोज और बीटा-और गामा-सेल्युलोज की शृंखलाएँ इतनी लम्बी नहीं होतीं। अल्फा सेल्युलोज के विलयन की स्निग्धता (viscosity) ऊँची होती है।

अल्फा-सेल्युलोज की मात्रा बढ़ाने के लिए पल्प को अल्कली के साथ पकाते हैं। उच्च ताप पर बहुत हल्के अल्कली के विलयन से पकाते हैं और निम्न ताप पर सान्द्र विलयन से। यदि पल्प को अल्कली से पाचन के पूर्व क्लोरीन के साथ साध लें तो पल्प और भी अच्छा होता है। क्रिया का समय, ताप और सोडियम हाइड्रॉक्साइड के सान्द्रण का अल्फा-सेल्युलोज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इससे पल्प में अल्फा-सेल्युलोज की मात्रा ८८ प्रतिशत से ९६ और ९७ प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

निम्न ताप पर अधिक सान्द्र दाहक सोडा से ९८ प्रतिशत अल्फा-सेल्युलोजवाला पल्प प्राप्त हो सकता है। निम्न ताप पर स्निग्धता ऊँची और प्राप्ति अधिक होती है। इसके लिए विरंजित पल्प ही उपयुक्त करना अच्छा होता है; क्योंकि परिष्कृत पल्प के विरंजित करने में कठिनता होती है। पर इस उपचार में सोडियम हाइड्रॉक्साइड की मात्रा अधिक लगती है। एक पाउन्ड पल्प में प्रायः एक ही पाउन्ड दाहक सोडा लग जाता है। यदि इस विधि को बड़ी मात्रा में उपयोग करें तो अल्कली के प्रत्यादान (recovery) का प्रयत्न होना चाहिए। ५५° श० वह ताप पाया गया है, जिसपर अल्फा-सेल्युलोज की मात्रा महत्तम पाई गई है।

सीठे से प्राप्त पल्प कृत्रिम रेशम के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं, इसके लिए निम्न लिखित परीक्षणों की आवश्यकता होती है।

१. पल्प के तैयार करने की रीति और पल्प की प्रकृति।

२. समस्त सेल्युलोज और अल्फा-बीटा-और गामा-सेल्युलोज की मात्रा का निर्धारण।

३. पल्प के पाचन की डिगरी और विरंजित होने की क्षमता।

४. पल्प में क्लोरीन की मात्रा।

५. क्लोरीन जल से क्लोरिन अवशोषण

६. रेजिन की मात्रा।

७. अल्कली और जल में विलेयता।

८. लिगनिन की मात्रा।

९. ताम्र-संख्या।

१०. पल्प की अम्लता।

११. मैथोक्सिल की मात्रा।

१२. राख की मात्रा।

१३. स्निग्धता।

सीठे के पल्प में उपर्युक्त सब निर्धारण हुए हैं और उनसे जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं, वे यहाँ दिये जा रहे हैं। प्रमाप अल्फा-पल्प के अंक भी तुलना के लिए यहाँ दिये जा रहे हैं।

संख्या	पदार्थ	वायु-शुष्क पल्प में प्रतिशत	
		सीठा पल्प	अल्फा पल्प
१	जल	६·३०	७·८०
	आल्फा-सेल्युलोज	६२·२०	६१·४०
	बीटा-सेल्युलोज	२·१०	३·४०
	गामा सेल्युलोज	३·७०	५·२०
	राख	०·२०	०·०७
	ताम्र-संख्या	१·२०	१·७४
	रेजिन (ऐसीटोन निष्कर्ष)	०·१०	०·१७
	फैलाव	५·००	५·२०
	स्निग्धता	१·३०	१·४४
	घनता	०·७०	०·६६
	अविलेय पदार्थ	०·२०	०·०७

सीठे की राख में निम्नलिखित लवण पाये गये हैं—

	वायुशुष्क पल्प में प्रतिशत
कैलसियम ऑक्साइड	०·०४६
सोडियम ऑक्साइड	०·०४२
पोटैसियम ऑक्साइड	०·०१०
मैगनिसियम ऑक्साइड	०·०३०
अलुमिना	०·००५
फेरिक ऑक्साइड	०·००२
सिलिका	०·०२०
कार्बन डायक्साइड	०·०२५
क्लोरीन	०·००६
सलफेट	०·००७
समस्त	०·१९३

इन आँकड़ों से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि सीठे का पल्प उतना ही उच्चकोटि का होता है, जितना अल्फा-पल्प होता है। सीठे के पल्प में एक लाभ यह देखा गया है कि

इसके विस्कोज विलयन बनाने में केवल ६० प्रतिशत कार्बन डाइ-सलफाइड लगता है जबकि अल्फा-पल्प में प्रायः ८० प्रतिशत लगता है। सीठे से प्राप्त पल्प के विलयन की स्निग्धता कम पाई गई है। सीठा पल्प ६ से ६ दिनों में परिपक्व हो जाता है और १३ से १७ दिनों में जेली बनता है जब कि अल्फा-पल्प १० दिनों में परिपक्व होता है और १६ दिनों में जेली बनता है।

सीठे का पल्प सूत बनाने के लिए उपयुक्त प्रमाणित हुआ है। इसका सूत बनाकर देखा गया है कि सूत पर्याप्त मजबूत, चमकीला और वैसा ही स्थितिस्थापक होता है जैसा अल्फा-पल्प का बना सूत। सेल्युलोज के पारदर्शी चादर भी उत्तम कोटि के बने हैं।

कागज का निर्माण—सीठे के पल्प से कागज बन सकता है, यह सिद्ध हो गया है। बिहार के डालमियानगर में सीठे से पल्प तैयार करने की मशीन लगी है और वहाँ पल्प तैयार होकर बाँस के पल्प के साथ मिलाकर कागज तैयार हो रहा है।

अमेरिका में भी सीठे के पल्प से कागज तयार करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं; पर पहले के प्रयत्न सफल नहीं रहे। हवाई में निम्नकोटि के कागज इस पल्प से बने हैं। डच ईस्ट इण्डीज की सरकार ने हैविक (Havik) को सीठे से कागज तैयार करने के अन्वेषण के लिए नियुक्त किया था। उन्होंने सीठे से ३२ प्रतिशत पल्प तैयार किया था जो कागज बनाने में उपयुक्त हो सकता था। ऐसे अन्वेषकों का मत है कि सीठे से कागज तैयार करने के जितने प्रयत्न हुए, सब असफल रहे; क्योंकि अच्छे कागज़ के लिए लम्बी तन्तुएँ आवश्यक हैं; पर सीठे में लम्बी तन्तुएँ कम होती हैं।

अभी न्यूयार्क से समाचार मिला है कि 'जर्नल ऑव कामर्स' नामक पत्रिका सीठे से बने कागज़ पर छपी है। न्यूयार्क के एक दैनिक पत्र की २६ हजार कापियाँ सीठे से बने कागज पर छपी थीं। जौर्जिया के सावाना नाम के स्थान की प्रयोगशाला में यह कागज बना था। इस स्थान के बने कागज की लोगों ने प्रशंसा की है।

सीठे के पल्प से दीवार के लिए तख्तियाँ और पृथग्न्यासक तख्ते भी सफलता से बने हैं और सेलोटेक्स के नाम से बिकते हैं।

सीठे का जलावन—जलावन के लिए काठ का उपयोग बहुत प्राचीन है। जिस ताप पर काठ में आग लग जाती है, उस ताप को काठ का 'ज्वलनांक' कहते हैं। काठ का ज्वलनांक महत्त्व का है। यदि काठ के ज्वलनांक को हम ऊपर उठा सकें तो हम कह सकते हैं कि वह काठ काठ-जलजित हो गया है। सीठे के ज्वलनांक का भी निर्धारण हुआ है; पर वे सन्तोषजनक नहीं है। काठ का जलना तीन बातों पर निर्भर करता है। काठ के टुकड़ों के विस्तार, वायु-प्रदाय की रीति और गति तथा रीति, जिससे दहन का ताप बढ़ता है। ये तीनों बातें एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। जब काठ गरम किया जाता है तब उसका विच्छेदन होना शुरू होता है। यह विच्छेदन प्रायः २७५° श० पर शुरू होता है और उससे उष्मा का निष्कासन होता है। विच्छेदन के समय दाह्य और अदाह्य गैसें और वाष्प निकलते हैं और कोयला रह जाता है। दहन-वायु के प्रदाय की रीति और वेग का काम बड़े महत्त्व का है। कोमल काठ का उष्माजनक मूल्य बहुत-कुछ रेज़िन की उपस्थिति पर निर्भर करता है। रेज़िन का उष्माजनक मूल्य १७,४०० ब्रिटिश-उष्मा इकाई प्रति पाउण्ड है। चीनी का ७११६ ब्रि० उ० इ० प्रति-पाउण्ड है।

शुष्क सीठे का उष्माजनक मूल्य ८३०० ब्रि० उ० इ० प्रति पाउण्ड है। यदि उसमें ४२·८ प्रतिशत जल है तो उसका मूल्य ४८०० ब्रि० उ० इ० और ५६·७ प्रतिशत जल है तो ३६२० ब्रि० उ० इ० प्रति पाउण्ड हैं।

उष्माजनक मूल्य का निर्धारण बम्ब कलारीमान में होता है। सीठे के विभिन्न नमूनों के उष्माजनक मूल्य निम्नलिखित पाये गये हैं।

क्रम संख्या	नमूने की जल-मात्रा	मूल्य ब्रि० उ० इ० में प्रति-पाउंड
१	० (बिल्कुल शुष्क)	८२६०
२	० (बिल्कुल शुष्क)	८२६०
३	७ (धूप शुष्क)	७५२०
४	८ ,,	७४५०
५	८ ,,	७४६०
६	२० —	६२५०
७	४० (बिल्कुल ताजा)	४७५०
८	५३ (,,)	३७५०

धूप में सूखे भारत के सीठे में प्राय: ६५ प्रतिशत तन्तु-सेल्युलोज, ४ प्रतिशत शर्करा और ८ प्रतिशत जल रहते हैं। ऐसे सीठे का जलावन मूल्य ५७६३ ब्रि० उ० इ० होता है। यदि अवयवों की मात्रा विभिन्न हैं तो उनकी गणना निम्नलिखित समीकरण से की जा सकती है।

कलारी मूल्य = ८५५० × त + ७११६ × श + ६७५० द्रा − ९७२ 'ज', जहाँ 'त' तन्तु प्रतिशतता, 'श' शर्करा प्रतिशतता, 'द्रा' विपर्यस्त शर्करा प्रतिशतता, 'ज' जल प्रतिशतता है; पर इसके अनुसार जो मूल्य प्राप्त होता है, वह प्रयोग से प्राप्त वास्तविक मूल्य से कुछ विभिन्न होता है।

सीठे का भंजक आसवन—काठ के भंजक आसवन से ऐसिटिक अम्ल, मेथिल एलकोहल, अलकतरा, काठ-कोयला और जलावन गैसें प्राप्त होती हैं; सीठे से भी यदि ये पदार्थ प्राप्त हो सकें तो सीठे की उपयोगिता बढ़ जायगी। इसी दृष्टि से सीठे का भंजक आसवन किया गया है और उससे उसकी उपयोगिता बढ़ी मालूम होती है।

सीठे के ३०० ग्राम को ताँबे के भभके (retort) में रखकर बिजली से धीरे-धीरे गरम करते हैं। ताप का ज्ञान थर्मोकप्ल से मालूम करते हैं आसवन से प्राप्त उत्पाद को लोहे के नल द्वारा ले जाकर सामान्य और बर्फ जल से ठंढाकर संघनित करते हैं।

जो सीठा प्रयोगों के लिए उपयुक्त हुआ था, वह धूप का सूखा हुआ था और उसमें प्राय: ७ प्रतिशत जल था। इससे जो कोयला प्राप्त हुआ था, उसमें राख की मात्रा ८·८ प्रतिशत थी। सूखे सीठे में राख की मात्रा ३·३ प्रतिशत थी। इन प्रयोगों से जो फल प्राप्त हुए, वे निम्नलिखित आँकड़ों से मालूम होते हैं—

सीठे के भंजक आसवन से प्राप्त उत्पाद—

प्रयोग की परिस्थिति और उत्पाद की मात्रा	प्रयोग १	प्रयोग २	प्रयोग ३	प्रयोग ४
ताप सेंन्टीग्रेड में	४००	४५०	५००	५५०
गरम करने का समय मिनट में	१२०	१५०	१८०	२१०
सीठे की मात्रा	२१४	२६७·५	२१४·८	२३०
बिलकुल सूखे सीठे की मात्रा	२००	२५०	२०१	२१४
कोयले की मात्रा	६६·७	१००·५	७०·३	६५·८
सूखे सीठे में कोयले की मात्रा	४३·४	४०·४	३५·०	३०·८
गैस की मात्रा क्यूबिक फुट में	०·४	०·६	०·५	०·६
सूखे सीठे में अ-संघनीय गैसें	६४·६	१२१·५	११२·४	१३६·७
समस्त आसुत (सी० सी० में)	४४·८	४०·७	२७·४	२१·०
समस्त आसुत (भार में)	५२·३	४५·५	३२·१	२७·५
सूखे सीठे में समस्त आसुत प्रतिशत में	२६·१	१८·२	१६·०	१२·६
अलकतरा निकाल लेने पर समस्त आसुत (ग्राम में)	४०·३	३२·८	२३·३	१६·६
अलकतरा (ग्राम में)	११·६८	११·७०	८·८	७·६
सूखे सीठे में ऐसिटिक अम्ल (प्रतिशत)	७·४८	८·३	८·५	१०·६
मेथिल एलकोहल प्रतिशत	२·४	२·०	१·६	१·७
गैस में कार्बन मनौक्साइड प्रतिशत	३७	४०·२	४३·१	४८·२
,, कार्बन डायक्साइड प्रतिशत	५४	५०	४३·३	३६·६
,, हाइड्रोजन प्रतिशत	२·८	३·६	४·२	५·०
,, हाइड्रोकार्बन प्रतिशत	४·१	५·८	६·०	८·५

इन आँकड़ों से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि सीठे के भंजक आसवन में विभिन्न उत्पादों की मात्रा में विभिन्न परिस्थितियों से पर्याप्त विभिन्नता आती है।

उच्च ताप से कोयले की मात्रा में कमी होती है। विभिन्न तापों पर प्राप्त कोयला फुज्जीदार (fluffy) और हलका होता है। उसमें यांत्रिक पुष्टता नहीं होती। पर इस कोयले से जलावन ईंटें सरलता से बन जाती हैं।

उच्च ताप पर ऐसिटिक अम्ल की मात्रा अधिक प्राप्त होती है; पर मेथिल एलकोहल और कोलतार की मात्रा कम हो जाती है। अ-संघनीय गैसों की मात्रा उच्च ताप पर अधिक होती है; पर उनमें दाह्य पदार्थों की मात्रा अधिक और कार्बन डायक्साइड की मात्रा कम होती है। इन गैसों का तापन मूल्य (heating value) भी उच्च ताप पर बढ़ा हुआ होता है। इस सम्बंध में जो प्रयोग अब तक हुए हैं, उनसे मालूम होता है कि काठ के भंजक आसवन से जैसे उत्पाद प्राप्त होते हैं, वैसे ही उत्पाद सीठे के भंजक आसवन से भी प्राप्त हो सकते हैं। पर औद्योगिक दृष्टि से इस सम्बन्ध में कुछ और प्रयोग करने की आवश्यकता है।

सीठे के कोयले से ईंट बनाना—ऐसी ईंटें बनाने के लिए कोयले को पीसते हैं और तब उसमें कोई बाँधनेवाली वस्तु-जैसे कोलतार, पिच, छोआ, आटा इत्यादि मिलाकर तब ईंट बनाते हैं। सीठे से प्राप्त कोयला ऐसा फुज्जीदार और हलका होता है कि उसे पीसने की आवश्यकता ही नहीं होती। छोआ और स्टार्च दोनों बाँधनेवाले पदार्थों के उपयोग से ईंटें बनाई गई हैं। छोए का उपयोग अधिक सुविधा जनक है; क्योंकि यह बहुत सस्ता होता और हर चीनी के कारखानों में प्राप्त होता है। भिन्न भिन्न मात्रा में छोआ मिलाकर ईंटें तैयार हुई है। अच्छी ईंटों के लिए पाँच प्रतिशत छोआ आवश्यक है। पाँच प्रतिशत से कुछ कम स्टार्च जल के साथ मिलाकर भी ईंटें तैयार हुई हैं; पर ये ईंटें छोए से बनी ईंटों से निकृष्ट होती हैं। छोए से बनी ईंटें अधिक मजबूत होती हैं। ये ईंटें रम्भाकार उसी प्रकार बनाई गई हैं जैसे टार्च की सूखी बैटरी बनती है। इन्हें वायु-उष्मक में ८५°-९०° श० पर सुखाते हैं। ऐसी बनी ईंटों का आकार स्थायी होता है और वे सामान्य दबाव को सहन कर सकती हैं। ऐसी बनी ईटें घर में जलावन के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। क्रियाशील कार्बन के रूप में रंगों के दूर करने में भी सीठे का कोयला उपयुक्त हो सकता है।

ऐसिटिक अम्ल और मेथिल एलकोहल बहुमूल्य वस्तुएँ हैं। लेपों और प्लास्टिक के निर्माण में उपयुक्त होती हैं। इन पदार्थों के लिए इनकी माँगें आज बढ़ रही हैं।

सीठे से बनी गैसों का चीनी के कारखानों में जलावन के लिए उपयुक्त हो सकता है।

औक्जैलिक अम्ल—औक्जैलिक अम्ल एक बहुमूल्य रसायन द्रव्य है। रसायन-शाला में प्रतिकारक के रूप में अधिकता से उपयुक्त होता है। अनेक उद्योगों में इसके उपयोग हैं। कागज की छींट छपाई में रंगबंधक के रूप में, रंगों, डेक्स्ट्रीन, स्याही के निर्माण में यह उपयुक्त होता है। पुआल के विरंजन में यह लगता है। दुर्लभ-मृत्तिकाओं के पृथक्करण में काम आता है। इसके एलुमिनियम और अन्टिमनी के लवण भी कपड़े की रंगाई में उपयुक्त होते हैं।

अनेक पदार्थों से औक्जैलिक अम्ल बनता है। सबसे पुरानी और सस्ती रीति लकड़ी के बुरादे से है। अल्प मात्रा में रसायनशाला में चीनी से भी छात्र इसे तैयार करते हैं। लकड़ी के बुरादे से तैयार करने की विधि में अनेक सुधार हुए हैं, जिससे कम मूल्य में और अधिक मात्रा में यह प्राप्त हो सके। प्रस्तुत लेखक ने लकड़ी के बुरादे से औक्जैलिक अम्ल तैयार करने में अनेक सुधार किये हैं। उनके अधीन एक छात्र ने इस विषय पर अनुसन्धान कर थीसिस लिखी है। इन्हीं सुधारों के उपयोग से सीठे से भी औक्जैलिक अम्ल तैयार हुआ है।

सूखे चूर्ण किये सीठे के ५ ग्राम को सोडियम हाइड्राक्साइड के ३० सी० सी० विलयन से मिलाओ। सोडियम हाइड्राक्साइड के इस विलयन में ५० प्रतिशत क्षारक सोडा और केवल ०·५ ग्राम सोडियम पेरॉक्साइड रहना चाहिए। ऐसे विलयन की घनता १·५४, १०८ ट्वेडेल या ५०·६° बौमे होती है। इसके लिए सोडियम पेराक्साइड को पहले सोडियम हाइड्रौक्साइड में घुलाते हैं और तब विलयन में सीठा डालकर सानते

हैं। तब इसे लोहे के एक छिछले कड़ाह में एक-सा पतली तह पर फैलाकर धीरे-धीरे २१५°-२२५° श० तक गरम कर प्राय: तीन घंटे तक इसी ताप पर रखते हैं। गरम करने के समय ढेर को समय समय पर चलाते रहते और ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर करते रहते हैं। इस ताप पर गरम करने से सोडा पिघल जाता है। इस द्रवण के बाद द्रवित ढेर को पानी से चुआकर (उद्विलयितकर), विलयन को उद्वाष्पित कर ठंढा होने को रख देते हैं। अब विलयन से सोडियम औक्जेलेट के मणिभ निकल आते हैं। इन मणिभों को पानी में फिर घुलाकर चूने के साथ उबालते हैं। इससे कैलसियम औक्जेलेट के मणिभ निकल आते हैं। इन मणिभों को पानी में रखकर तनु सलफ्युरिक अम्ल से साधने से औक्जैलिक अम्ल मुक्त होता है। इसके विलयन के उद्वाष्पन से मणिभ प्राप्त होते हैं। औक्जैलिक अम्ल के साथ-साथ अल्पमात्रा में ऐसिटिक अम्ल भी बनता है। औक्जैलिक अम्ल की मात्रा निम्नलिखित सारिणी से मालूम होती है। यदि सोडियम हाइड्रौक्साइड और क्षार का अनुपात ४:१ है तो औक्जैलिक अम्ल की प्राप्ति अधिक होती है। ताप और द्रवण-काल की वृद्धि से भी प्राप्ति कुछ अधिक होती है।

सीठे से औक्जैलिक अम्ल

प्रयोग-संख्या	ताप ° श०	तपाने का समय घंटा में	वायु सूखा सीठे की मात्रा ग्राम में	५० प्रतिशत क्षार के विलयन की मात्रा सी० सी० में	औक्जैलिक अम्ल प्राप्ति ग्राम में	प्रतिशतता शुद्ध औक्जैलिक अम्ल की
१	२१०	३·५	५·०	४०·०	१·६५	८२·५
२	२१५	३·२५	५·०	३५·०	१·६	८०·०
३	२२०	३·०	५·०	३०·०	१·५६	७८·०
४	२२५	३·०	५·०	३०·०	१·५६	७७·८
५	२३०	३·०	१०·०	६१·०	१·५३	७६·५
६	२३५	२·७५	१०·०	६२·०	३·१७	७९·२
७	२४०	२·७५	१०·०	६५·०	३·२	८०·०
८	२४५	२·५०	१०·०	७०·०	३·२	८१·०

यदि क्षार का प्रत्यादान किया जा सके तो यह विधि औद्योगिक दृष्टि से सफल समझी जा सकती है।

सीठे का आम्लिक जलांशन - काठ के बुरादे के जलांशन से द्राक्षशर्करा प्राप्त हुई है। सीठे के जलांशन से भी द्राक्ष-शर्करा प्राप्त हो सकती है। सीठे का जलांशन अम्लों के द्वारा किया गया है। इसके लिए सलफ्युरिक अम्ल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उपयोग हुए है। इससे द्राक्ष-शर्करा की प्राप्ति हुई है।

वायु में सूखे सीठे को फ्लास्क में रखकर लीबिग संघनक लगाकर ऊपर से अम्ल डालकर पूर्णरूप से मिलाकर फ्लास्क को जल अथवा तैल उष्मक पर गरम किया गया है।

फ्लास्क में तापमापक लगा दिया जाता है ताकि उसका ताप पढ़ा जा सके। जलांशन के बाद फ्लास्क को ठंढा कर अम्ल के आधिक्य को सोडियम बाइ-कार्बोनेट द्वारा उदासीन बनाकर आसुत को नियत आयतन में बनाकर फेलिंग विलयन द्वारा उसमें शर्करा की मात्रा निर्धारित की गई है। इससे जो परिणाम निकले हैं, वे निम्नलिखित सारिणी में दिये गये हैं।

वायुशुष्क सीठे के जलांशन से द्राक्ष-शर्करा की प्राप्ति

प्रयोग संख्या	सीठा ग्राम में	अम्ल की सान्द्रता प्रतिशत	अम्ल का आयतन सी.सी में	पश्चवहन का ताप ° श०	पश्चवहन का समय घंटे में	द्राक्षशर्करा की मात्रा ग्राम में	द्राक्ष-शर्करा की प्रतिशतता
१	२·०	४०	१०	२००	२४	१·१६२	५८·१
२	२·०	३५	१०	२००	२४	१·१६८	५८·४
३	२·५	३०	१२	२००	२४	१·५१०	६०·४
४	२·५	३०	१२	१५०	२०	१·४५०	५८·००
५	३·०	३०	१५	१००	२०	१·६८५	५६·१६
६	३·०	२५	१५	१००	२०	१·६८०	५६·०
७	३·०	२५	१५	१००	२०	१·६००	५३·३३
८	३·०	२५	१५	१००	२०	१·६०५	५३·५०
९	३·०	२०	१५	२००	२०	१·५१६	५०·५३
१०	३·०	२०	१५	२००	२०	१·५०८	५०·३०

वायु-शुष्क सीठे का सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा जलांशन और द्राक्ष-शर्करा प्राप्ति

प्रत्येक प्रयोग में २ ग्राम सीठे का उपयोग हुआ है।

प्रयोग-संख्या	सलफ्यूरिक अम्ल की सान्द्रता प्रतिशत	अम्ल की मात्रा सी.सी. में	पश्चवाहन का ताप ° श०	पश्चवाहन का समय घंटा में	द्राक्षशर्करा की प्राप्ति ग्राम में	द्राक्षशर्करा की प्रतिशतता
१	८०·०	१०·०	१००	८	१·१६०	५८·०
२	८०·०	१०·०	१००	६	१·१५४	५७·७
३	७२·०	१०·०	१००	८	१·२०४	६०·२
४	७२·०	१०·०	१००	६	१·२००	६०·०
५	७२·०	१०·०	१००	५	१·२१०	६०·५
६	७२·०	१०·०	१००	४	१·१५२	५७·६
७	७०·०	१०·०	१००	६	१·२८०	६४·०
८	७०·०	१०·०	१००	६	१·२७८	६३·९
९	६०·०	१०·०	१००	६	१·३६०	६८·०
१०	६०·०	१०·०	१००	६	१·३६४	६८·२

प्रयोग संख्या	सलफ्यूरिक अम्ल की सान्द्रता प्रतिशत	अम्ल की मात्रा सी. सी. में	पश्चवाहन का ताप °श०	पश्चवाहन का समय घंटा में	द्राक्षशर्करा की प्राप्ति ग्राम में	द्राक्षशर्करा की प्रतिशतता
११	५०·०	१०·०	१००	६	१·१०२	५५·१
१२	५०·०	१०·०	१००	६	१·१००	५५·०
१३	४०·०	१०·०	१००	६	१·०००	५०·०
१४	४०·०	१०·०	१००	६	०·९८६	४९·३
१५	३०·०	१०·०	१००	६	०·८१८	४०·९
१६	३०·०	१०·०	१००	६	०·८१८	४०·९
१७	२०·०	१०·०	१००	६	०·७२०	३६·०
१८	२०·०	१०·०	१००	६	०·७००	३५·०
१९	२०·०	१०·०	१००	६	०·७१६	३५·८
२०	१०·०	१०·०	१००	६	०·७२०	३६·०
२१	१·०	१०·०	१००	८	०·६६०	३३·०
२२	१·०	१०·०	१००	६	०·६४०	३२·०
२३	१·०	१०·०	१२५	५	०·७२०	३६·०
२४	१·०	१०·०	१५०	५	०·७३०	३६·५
२५	१·०	१०·०	१७५	५	०·७८०	३९·०
२६	१·०	१०·०	२००	४	०·७७२	३८·६
२७	१·०	१०·०	२२५	४	०·७८४	३९·२
२८	१·०	१०·०	२००	४	०·७७२	३८·६
२९	१·०	१०·०	२००	४	०·७७८	३९·९
३०	१·०	१०·०	२००	४	०·७८०	३९·०

उपर्युक्त आँकड़ों से पता लगता है कि जिस सीठे में ५५ प्रतिशत सेल्युलोज है, उसे ३० प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के अम्लिक जलांशन से २४ घंटे में २००° श० पर ६०·४ प्रतिशत द्राक्ष-शर्करा प्राप्त होती है। ६० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल से २४ घंटे में २००° श० पर ६८·२ प्रतिशत द्राक्ष-शर्करा प्राप्त होती है। यदि तनु १ प्रतिशत सलफ्युरिक अम्ल का २००° श० पर उपयोग हो तो ४ घंटे में ३९·० प्रतिशत द्राक्ष-शर्करा प्राप्त होती है। सीठे में उपस्थित सेल्युलोज का यह प्राप्ति प्रायः ७१ प्रतिशत होती है। तनु अम्ल के उपयोग का भविष्य व्यापार की दृष्टि से आशाजनक प्रतीत होता है।

ऐसी प्राप्त द्राक्ष-शर्करा का किण्वन हो रहा है। उससे एलकोहल प्राप्त हुआ है; पर एलकोहल की प्राप्ति अभी सन्तोषजनक नहीं है। आशा है कि विधि के सुधार से सीठे से प्राप्त द्राक्ष-शर्करा के किण्वन से एलकोहल सन्तोषजनक मात्रा में प्राप्त होगी और तब छोए के स्थान में इसी के किण्वन से अनेक किण्वन उत्पाद प्राप्त किये जा सकेंगे।

सेल्युलोज एस्टर—सेल्युलोज के अनेक एस्टर बनते हैं। ये एस्टर बड़े महत्व के हैं और उनसे आज अनेक उपयोगी पदार्थों का निर्माण हो रहा है। भिन्न-भिन्न एस्टरों के भिन्न-भिन्न उपयोग हैं। इन उपयोगों का वर्णन प्रत्येक एस्टर के साथ अलग-अलग होगा।

सेल्युलोज में तीन हाइड्रॉक्सिल मूलक मुक्त रहते हैं। इन तीनों के साथ अम्ल मूलक संयुक्त हो भिन्न-भिन्न एस्टर बन सकते हैं। इन एस्टरों के गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ एस्टर तरल होते हैं और कुछ ठोस। वे जल में प्राय: अविलेय होते हैं; पर कार्बनिक विलायकों में घुल जाते हैं। कुछ एस्टर एक प्रकार के विलायकों में और कुछ दूसरे प्रकार के विलायकों में घुलते हैं। इन विलायकों की स्निग्धता भी एक नहीं होती। स्निग्धता बहुत कुछ सेल्युलोज़ के अणु के अवकरण पर निर्भर करता है। ये एस्टर बहुत शीघ्रता से जलांशित हो जाते हैं। ये एस्टर साधारणतया कपास के सेल्युलोज़ से प्राप्त होते हैं, पर यदि विशिष्ट रीति से प्राप्त अल्फ़ा-सेल्युलोज़ प्राप्त हो सके तो उससे भी तैयार हो सकते हैं। सीठे के सेल्युलोज़ से ये सभी एस्टर तैयार हुए हैं और वे उन सभी कामों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं, जिनके लिए अभी तक कपास-सेल्युलोज़ का उपयोग हुआ है। इनसे विस्फोटक, कृत्रिम रेशम, प्लास्टिक, सेल्युलायड, कोलोडियन इत्यादि सभी पदार्थ बन सकते हैं।

सेल्युलोज़ नाइट्रेट—अग्नेय तूल सेल्युलोज़ नाइट्रेट है। विस्फोटक के रूप में इसका उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। यदि सेल्युलोज़ नाइट्रेट में नाइट्रोजन की मात्रा १२·५ से १३·५ प्रतिशत है, तो ऐसा नाइट्रेट विस्फोटक के लिए उपयुक्त होता है। यदि इसमें नाइट्रोजन की मात्रा ११·१ से १२·२ प्रतिशत है, तो ऐसा नाइट्रेट फ़िल्म, प्रलाक्ष (lacquers), कृत्रिम रेशम और वस्त्रों पर लेपन के लिए उपयुक्त होता है। यदि नाइट्रेट में नाइट्रोजन की मात्रा १०·५ से ११·१ प्रतिशत है तो ऐसा नाइट्रेट प्लास्टिक और प्रलाक्ष के लिए उपयुक्त होता है।

इन नाइट्रेटों की प्राप्ति में नाइट्रिक और सलफ्यूरिक अम्ल की सान्द्रता, क्रिया का ताप, क्रिया काल, सेल्युलोज़ और अम्ल मिश्रण का अनुपात और सेल्युलोज़ की भौतिक दशा का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। सलफ्यूरिक अम्ल जल का शोषण कर नाइट्रिक अम्ल की सान्द्रता को स्थिर रखता है। कुछ लोगों ने सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में फ़ास्फ़रिक अम्ल के उपयोग का सुझाव रखा है।

ताप की वृद्धि से नाइट्रीकरण का वेग बढ़ जाता है; पर कम समय के नाइट्रीकरण से जो लाभ होता है वह लाभ उतना नहीं है जितनी हानि सेल्युलोज़ के अवकरण से होती है। इस अवकरण के कारण सेल्युलोज़ नाइट्रेट के विलयन की स्निग्धता और उत्पादन की प्राप्ति कम हो जाती है। कपास-सेल्युलोज़ के साथ ३०° से ३५° श० पर ३० मिनट में नाइट्रीकरण हो जाता है।

सीठे के सेल्युलोज का नाइट्रीकरण—सान्द्र नाइट्रिक अम्ल की घनता १·५०० और सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल की घनता १·८३५ है।

प्रयोग	नाइट्रेशन मिश्रण सी० सी० में			समय घंटे में	ताप °श०	सेल्युलोज़ ग्राम में	नाइट्रोसेल्यु-लोज़ ग्राम में	नाइट्रोजन प्रतिशत
	सलफ्यू-रिक अम्ल	नाइट्रिक अम्ल	जल					
१	४३·०	५६·०	१·०	६	५	३·०	३·४६०	८·५९
२	४३·०	५६·०	१·०	३·५	२०	३·०	३·४०७	७·९५
३	४३·०	५६·०	१·०	३·०	२८	३·०	३·८६३	८·८१
४	४५·०	५४ ५	०·५	५·०	५	२·५	३·११५	८·६०
५	४५·०	५४·५	०·५	२·५	२·०	२ ५	३·११५	८·३६
६	४५·०	५४·५	०·५	२·५	२८	२ ५	३·४९२	८·९९
७	४७·०	५३·०	०·०	४·०	५	२ ५	३·०९०	९·६६
८	४७·०	५३·०	०·०	२·०	२०	२ ५	३·४११	८·९९
९	४७·०	५३·०	०·०	२·०	२८	२ ५	३ ६७९	९·१४
१०	५५·५	४४·०	०·५	४·०	५	३·०	३ ५९३	७·९३
११	५५ ५	४४·०	०·५	१ ५	२०	३ ०	३·५०९	९·१३
१२	५५·५	४४ ०	०·५	१·५	२८	३ ०	४ १०९	९ ८७
१३	५५·६	४४·४	०·०	४·५	५	२ ५	३ ११७	८·२१
१४	५५ ६	४४·४	०·०	१·५	२०	२·५	३ ६१६	९·८१
१५	५५·६	४४·४	०·०	१·५	२८	२·५	३ ८७४	१०·२२

इन नाइट्रो-सेल्युलोजों का उत्तापन-ताप १८७° से १८९° था। इसके एक ग्राम को ११ सी० सी० एलकोहल और १० सी० सी० ईथर में घुलाने से वह शीघ्र घुल जाता है और विलयन स्वच्छ और बहुत स्निग्ध होता है। औषधों और संमुद्रण के लिए यह अच्छा प्रमाणित हुआ है। एथिल ऐसिटेट में शीघ्र घुलता नहीं है। गरम करने पर ही धीरे-धीरे घुलता है। शुद्ध एलकोहल में भी ठंढे में नहीं घुलता। गरम करने पर ही घुल जाता है।

२८° श० पर डेढ़ घंटे में ऐसा उत्पाद प्राप्त होता है, जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा ९.८७ से १०.२२ प्रतिशत है। यह उत्पाद प्लास्टिक और कृत्रिम रेशम के लिए उपयुक्त है। इससे कपूर के साथ मिलाकर सेल्युलायड भी बना सकते है। इसके अन्य प्लॉस्टिक भी अच्छे बनते हैं। प्लॉस्टिक उद्योग-धन्धों के लिए भारत में बहुत विस्तृत क्षेत्र है।

सेल्युलोज़ ऐसिटेट—सीठे के सेल्युलोज़ से सेल्युलोज़ ऐसिटेट भी बना है। यह उसी विधि से तैयार हुआ है, जिस विधि से कपास सेल्युलोज़ से तैयार होता है। इस ऐसीटेट के गुण भी ठीक कपास-सेल्युलोज़ के ऐसे ही होते हैं।

सेल्युलोज ऐसिटेट के बनाने में भिन्न भिन्न संघनन प्रतिकारक उपयुक्त होते हैं। सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल, जिंक क्लोराइड और पिरिडीन के उपयोग से ऐसिटेट प्राप्त हुए हैं। कुछ प्रयोगों में क्लोरीन और सलफर डायक्साइड भी उपयुक्त हुए हैं। ऐसिलितीकरण के लिए हिम्य ऐसिटिक अम्ल और ऐसिटिक एनहाइड्राइड ४० से ६० अनुपात में उपयुक्त हुए हैं। जितना सेल्युलोज उपयुक्त होता है, उसका १'३५ गुना ऐसिटेट प्राप्त होता है। संघनन प्रतिकारकों में सलफ्यूरिक अम्ल सर्वोत्कृष्ट पाया गया है।

सेल्युलोज़ के ऐसिलितीकरण से पहले सेल्युलोज़ ट्राइ-ऐसिटेट बनता है। इसमें ऐसिटिल मूलक की मात्रा ६२.५ प्रतिशत रहती है। कृत्रिम रेशम के लिए ट्राइ-ऐसिटेट ठीक नहीं है। डाइ-ऐसिटेट में ऐसिटिल मूलक की मात्रा प्राय: ५२ प्रतिशत रहती है। कृत्रिम रेशम के लिए सेल्युलोज़ ऐसिटेट में ऐसिटिक अम्ल की मात्रा ५.२ से ५४ प्रतिशत रहनी चाहिए। कुछ कामों के लिए — विशेषत: फिल्म-निर्माण के लिए — ५५ से ५८ प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल अच्छा होता है। साधारणतया सेल्युलोज को पहले ट्राइ-ऐसिटेट में परिणत कर लेते हैं। तब ट्राइ-ऐसिटेट को एक विशिष्ट उपचार द्वारा जिसे 'परिपाक' (ageing) कहते हैं, ऐसे ऐसिटेट में परिणत करते हैं, जिसमें ऐसिटिक अम्ल की मात्रा डाइ-ऐसिटेट से थोड़ा अधिक होती है। यह परिपाक ५० प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल के साथ उबालने से होता है। इस परिपाक से ऐसिटेट के भौतिक गुणों में भी बहुत-कुछ सुधार हो जाता है।

२०° श० पर ५० प्रतिशत हिम्य ऐसिटिक अम्ल विलयन द्वारा सेल्युलोज ट्राइ-ऐसिटेट का जलांशन।

परिपाक का समय	सीठे से प्राप्त सेल्युलोज़ के ट्राइ-ऐसिटेट में संयुक्त ऐसिटिक अम्ल की प्रतिशत मात्रा	कपास से प्राप्त सेल्युलोज़ के ट्राइ-ऐसिटेट में संयुक्त ऐसिटिक अम्ल की प्रतिशत मात्रा
०	५७'२७	५९'००
१२	५७'१३	५८'८८
१८	५७'०८	५८'७२
२४	५५'७०	५६'४६
४८	५४'११	५५'२१
७२	५२'७०	५२'०६

इस प्रकार से प्राप्त सेल्युलोज़ ऐसिटेट ८०° से ८५° श० के बीच एथिल ऐसिटेट में सरलता से घुल जाता है।

५५° से ६०° श० के बीच यह ऐसिटोन में भी घुल जाता है। ३२° से ३५° श० के बीच यह क्लोरोफार्म में भी घुल जाता है। इसके लिए कपूर और डाइ-ऐथिल थैलेट अच्छा अभिघटक (Plasticiser) प्रमाणित हुआ है।

सेल्युलोज़ फार्मेट—सेल्युलोज़ ऐसिटेट की भाँति सेल्युलोज फार्मेट भी तैयार होता है। प्लॉस्टिक उद्योग में इसके भी विस्तृत उपयोग होते हैं। इसके निर्माण के लिए सान्द्र

फार्मिक अम्ल की आवश्यकता होती है। यहाँ भी संघनन-कारक की आवश्यकता होती है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और जिंक क्लोराइड के मिश्रण अच्छे संघननकारक प्रमाणित हुए हैं। ३०° श० पर ६ घंटे में सब से उत्तम उत्पाद प्राप्त हुए हैं।

सेल्युलोज़ प्रोपियोनेट—ऐसिटेट की भाँति प्रोपियोनेट भी प्रोपियोनिक अम्ल और प्रोपियोनिक एनहाइड्राइड के योग से सलफ्यूरिक अम्ल अथवा जिंक क्लोराइड की उपस्थिति में प्राप्त होता है। इसके भी उपयोग अब उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं।

सेल्युलोज़ बेंज़ोयेट—पिरिडिन की उपस्थिति में बेंज़ोयेल क्लोराइड से ११०°-१३०° श० ताप पर सेल्युलोज़ बेंजोयेट बनता है। यह क्लोरोफार्म और नाइट्रो-बेंज़ीन में विलेय होता है।

यहाँ एक ग्राम सेल्युलोज डेढ़ ग्राम सेल्युलोज बेंजोयेट में परिणत होता है और एक भाग सेल्युलोज़ के लिए प्रायः ३० भाग बेंजोयलतीकरण मिश्रण की आवश्यकता होती है।

कृत्रिम रेशम - कृत्रिम रेशम को 'रेयन' भी कहते हैं। चूँकि यह सेल्युलोज़ से बनता है और सेल्युलोज़ का नाम हिन्दी में कोशाधु दिया गया है, इस कारण रेयन को कोशाधव भी नाम दिया है। रेयन के सूत और वस्त्र बड़ी मात्रा में भारत में आते हैं। बंबई, अहमदाबाद, सूरत, अमृतसर और लुधियाना में अनेक कारखाने हैं, जो रेयन के सूत से वस्त्र और अन्य सामान, साड़ी, कमीज़, गंजी, मोज़ा, गद्दी के सामान, किनारी, पाराशूट इत्यादि तैयार करते हैं। इन कारखानों में प्रायः ३ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। इन कारखानों के अतिरिक्त हाथ के करघों में भी कृत्रिम रेशम के सामान बनते हैं। ये सभी करघे और कारखाने बाहर से आये सूत का ही उपयोग करते हैं।

रेयन प्रधानतया दो रीतियों से बनते हैं। एक रीति को विसकोज रीति और दूसरी को सेल्युलोज रीति कहते हैं। कुछ देशों में क्यूप्रेमोनियम रीति का भी व्यवहार होता था; पर अब केवल थोड़ी मात्रा में बहुत महीन सूत की प्राप्ति के लिए ही इसका उपयोग होता है। संसार में जितना रेयन बनता है, उसका तीन-चतुर्थांश विसकोज रीति से बनता है। इसमें एक बड़ा लाभ यह है कि यह केवल सेल्युलोज का बना होता है, वही जो कपास-सूत में होता है। इस कारण यह सूत उन्हीं रंगों से और वैसा ही रंगा जा सकता है, जो कपास-सूत के रंगने में काम आते हैं। इसके विपरीत ऐसिटेट सूत के रँगने में विशेष रंग और विशेष उपचार की आवश्यकता पड़ती है। आजकल विसकोज और ऐसिटेट रीति से बने मिश्र सूत की माँग अमेरिका में बढ़ रही है। इससे ऐसिटेट सूत के निर्माण में आज पर्याप्त वृद्धि हुई है और हो रही है। ऐसिटेट के निर्माण की वृद्धि का एक और कारण है। सूत के सिवा इससे प्रलाक्ष, प्लास्टिक इत्यादि अनेक औद्योगिक महत्त्व के पदार्थ बनते हैं। भारत सरकार ने रेयन उद्योग-धंधे के संबंध में एक कमीशन बनाया था, जिसने सिफारिश की है कि रेयन के सात कारखानों में छः कारखाने विसकोज के रहना चाहिए और केवल एक ऐसिटेट के। ऐसिटेट रेयन के लिए कपास सेल्युलोज और छोए से ऐसिटिक अम्ल और ऐसिटिक एनहाइड्राइड पर्याप्त मात्रा में भारत में प्राप्त हो सकते हैं।

भारत में कपास, कपास-क्षेप्य, कपास-रेशों, काठ-पल्प (आम, चीड़, सरो, देवदार, बाँस, जूट, सनई, सीठा, सरकंडा, सवई, नरकट इत्यादि पेड़ों और घासों से प्राप्त)

उपयुक्त हो सकते हैं। इनमें रेयन के लिए रूई सर्वोत्कृष्ट है। रासायनिक रीति से साधित रूई में ९९ प्रतिशत अल्फासेल्युलोज होता है। अल्फासेल्युलोज से ही रेयन बनते हैं। इस सम्बन्ध में भारत-सरकार के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें लिखी हैं—

"रासायनिक रूई का सबसे सस्ता उद्गम कपासरेशा है। कपास के बीज के ऊपर के भाग से सूत बनाने योग्य रूई के निकाल लेने पर जो छोटे-छोटे रेशे बीज पर चिपके रह जाते हैं, उसे 'कपासरेशा' कहते हैं। ये रेशे सूत-निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। साधारणतया ये छोटे-छोटे रेशे कपास-बीज के साथ नष्ट हो जाते हैं। विशेष यंत्रों से रेशे बीज से निकाले जाते हैं। ऐसिटेट रेयन कारखाने के लिए जितना कपास-रेशा चाहिए (प्रतिदिन पाँच टन सूत उत्पादन के लिए), उससे अधिक रेशा भारत में कपास-बीज से प्राप्त हो सकता है। सरकार को रेशा निकालने के यंत्र बैठाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि बीज से तेल निकालने अथवा बीज के निर्यात होने से पहले ये रेशे निकाले जा सकें। ऐसिटेट रेयन के निर्माण में एकमात्र कपास-सेल्युलोज ही उपयुक्त होते हैं, जब कि विसकोज रेयन में काठ-पल्प से प्राप्त सेल्युलोज ३० प्रतिशत तक व्यवहृत हो सकता है।

"विसकोज रेयन के निर्माण में प्रधान कच्चा-माल काठ-पल्प है। काठ-पल्प में प्राय: ६० प्रतिशत सेल्युलोज का अंश है। यह पल्प चीड़ के काठ से प्राप्त होता है, जो कठोर और उत्कृष्ट कोटि का होता है। कोमल काठों से भी कुछ देशों में पल्प तैयार होता है। इटली में एक प्रकार के नरकट से पल्प बनता है। यह नरकट आसाम में प्रचुरता से पाया जाता है। चीड़ और देवदार के पेड़ भी कश्मीर और गढ़वाल के जंगलों में होते हैं।

"रेयन के लिए पल्प बाँस से भी तैयार हो सकता है। कुछ बाँसों से, जो कोचीन, त्रिवांकुर और छोटानागपुर में होते हैं, अच्छा पल्प प्राप्त हो सकता है। बाँस से एक लाभ यह भी है कि दो से पांच वर्षों के बीच इसके पेड़ तैयार हो जाते हैं, जब कि बड़े पत्ते वाले पेड़ों के तैयार होनेमें चालीस से साठ साल लग जाते हैं। बाँस का सल्युलोज प्राय: उसी कोटि का होता है, जैसा काठ का। पर बाँस के सेल्युलोज में राख की मात्रा कुछ अधिक रहती है।"

सीठा एक दूसरा कच्चा माल है, जिससे पल्प तैयार हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सीठे के पल्प का उपयोग भी रेयन के लिए सफलता से हो सकता है। इस कारण रेयन के निर्माण के लिए भारत में कच्चे-माल की प्रचुरता है। बनारस हिन्दू-युनिवर्सिटी की प्रयोगशाला में प्रस्तुत लेखक के अधीन इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि सीठे के पल्प से भी उच्चकोटि के रेयन सूत बन सकते हैं।

विस्कोज रीति में सेल्युलोज को क्षारक सोडा की उपस्थिति में, कार्बन डायसलफाइड में, घुलाते हैं। इससे सेल्युलोज का सोडियम जैन्थेट बनता है। यह सोडियम जैन्थेट क्षारक सोडा में विलेय है। इसके विलयन की स्निग्धता बहुत ऊँची होती है। इस विलयन को किसी अम्ल में डालने से जैन्थेट का विभंजन हो सेल्युलोज पृथक् हो जाता है। सेल्युलोज जैन्थेट का वास्तविक संगठन क्या है, इसमें निश्चित मत नहीं है। इसका जो सूत्र कुछ लोगों ने दिया है, वह निम्नलिखित है। पर इस सूत्र में जितना सोडियम हाइड्राक्साइड है,

$$CS < {OC_6H_9O_4 \atop S\ Na}$$

उससे दुगुना क्षार वास्तव में लगता है। ऐसा समझा जाता है कि जैन्थेट के विलयन के रखने से यह इस सूत्र $\left[CS < {OC_6H_9O_4 \atop S\ Na} \right]_4$ में और २४ घंटे के बाद इस सूत्र $\left[CS < {CC_6H_9O_4 \atop S\ Na} \right]_{12}$ में परिणत हो जाता है।

इससे एक ने इसका सूत्र यह दिया है—

$$CS < {(C_6H_9O_5)_n \atop S\ Na}$$

विस्कोज़ के गुण—विस्कोज नारंगी-पीतवर्ण का जिलेटिन-सा पदार्थ है, जो तनु सोडियम हाइड्रॉक्साइड में घुलकर स्निग्ध विलयन बनता है। ताजे विलयन की स्निग्धता न्यूनतम होकर फिर बढ़ती है। न्यूनतम मूल्य तक पहुँचने का समय क्षार की सान्द्रता पर निर्भर करता है। स्वयं विस्कोज का रंग नारंगी नहीं होता। यह गौण उत्पादों के बनने के कारण होता है। ऐसा समझा जाता है कि यह रंग सोडियम थायो-कार्बोनेट के बनने के कारण होता है। सोडियम हाइड्रॉक्साइड पर कार्बन डायसल्फाइड की क्रिया से निम्न लिखित समीकरण के अनुसार यह बनता है—

$$3\,CS_2 + 6NaOH = 2Na_2CS_3 + Na_2CO_3 + 3H_2O$$

सोडियम थायो-कार्बोनेट

तुरन्त के बने विस्कोज विलयन पर नमक अथवा अमोनियम क्लोराइड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता; पर कुछ समय तक रखे रहने से इनसे अवक्षेप आ जाता है। जितना ही अधिक दिन विलयन रखा रहता है, उतना ही कम नमक की अवक्षेप के लिए आवश्यकता होती है। इसीसे विलयन के परिपाक की डिग्री मालूम की जाती है।

विस्कोज रीति से रेयन के निर्माण में निम्नलिखित प्रमुख कर्म आवश्यक हैं—

(१) कच्चे माल का शोधन।
(२) क्षार सेल्युलोज की प्राप्ति और उसका परिपाक।
(३) सोडियम सेल्युलोज जैन्थेट का प्रस्तुतकरण।
(४) विस्कोज विलयन का प्रस्तुतकरण, परिपाक, निःस्यन्दन और निष्वायु-करण।
(५) विस्कोज विलयन की कताई।
(६) सूत का निर्गंधीकरण और विरंजन।
(७) सूत का शुष्ककरण, मृदुकरण इत्यादि।

जिस मशीन पर विस्कोज रेयन बनाया गया है, वह मशीन जापान की शिमाड्जु और शीशाकुशो कम्पनी की बनाई हुई है। उस मशीन के प्ररचयिता (designer) डा० हागिहारा है। इस कारण इस मशीन को हम 'हागिहारा' मशीन कहते हैं। इस मशीन का चित्र (चित्र ३८) यहाँ दिया हुआ है। इस मशीन के निम्नलिखित भाग हैं—

(क) इस भाग को निमज्जन पीडक (sleeping press) कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं—एक पेंच-पीडक और दूसरा टंकी। टंकी को पेंच-पीडक से अलग कर सकते हैं।

पहली टंकी में क्षारक सोडा डालते हैं। फिर छोटा-छोटा किया हुआ पल्प। क्षारक सोडा में डुबाकर टंकी में रखते हैं। पेंच-पीडक के दबाने से पल्प पर दबाव पड़ता है। उससे सोडे का विलयन पेंदे की शिखी से निकल जाता है। अब टंकी को पीडक से हटा लेने पर पल्प का पिण्ड प्राप्त होता है। पीडक से दबाना तब तक कायम रहता है, जबतक पल्प का इच्छित भार प्राप्त नहीं हो जाता।

(ख) यह दलित्र मशीन है। पल्प के पिण्ड को तोड़कर छोटा-छोटा बनाकर पीसने के लिए दलित्र में रखते हैं। मशीन में दो क्षोभक (agitator) होते हैं। ये दोनों विपरीत दिशा में घूमते हैं। पहला वाह्य क्षोभक पल्प-पिंड को मध्य में ले जाकर उन्हें पीसता है। दूसरा अभ्यन्तर क्षोभक में तेज धारें होती हैं, जिनसे पल्प-पिण्ड को यह छोटे-छोटे टुकड़ों में काटता है। प्राय: पन्द्रह मिनटों में सारा काम समाप्त हो जाता है। पल्प उपयुक्त ताप पर स्थिर रहे, इसके लिए उसे ठंडे जल से ठंढा करने का प्रबंध रहता है। कभी-कभी इसके लिए बर्फ का पानी भी उपयुक्त होता है।

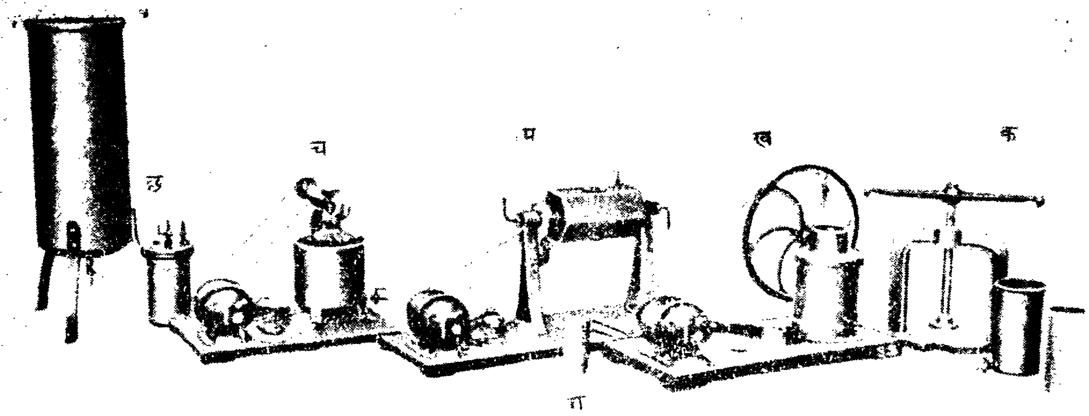
(ग) यंत्र का यह वह पात्र है, जिसमें अलकली सेल्युलोज रखा जाता है। दलित्र से यह लोहे के रम्भाकार पात्र में जिसके वाह्य और अभ्यन्तर—दोनो भागों में इनमेल किया होता है। इसी इनेमल पात्र में सेल्युलोज़ का परिपाक अथवा मर्सरीकरण होता है। मर्सरीकरण स्थायी ताप पर होना चाहिए। इस कारण यह पात्र जल-उष्मक या तापस्थाप (thermostat) में रखा होता है।

(घ) गंधकीकरण उपकरण। यह एक मथनेवाला डिंडिम (drum) होता है, जो एक क्षैतिज अक्ष पर परिभ्रमण करता है और जिसमें ठंढा करने का शीतक निचोल लगा रहता है। इसमें दो प्रवेश-मार्ग होते हैं। उनपर काँच-द्वारी लगी रहती है। इन द्वारियों से प्रतिक्रिया की गति का ज्ञान होता है।

(च) विस्कोज़ टंकी। यह लोहे का रम्भाकार पात्र होता है, जिसमें अन्दर क्षोभक लगा रहता है। विद्युत् मोटर द्वारा यह तीव्र गति से परिभ्रमण करता है। इसके वाह्य निचोल में बर्फ का पानी अथवा ठंढा पानी बहता है, ताकि वह ठंढा रखा जा सके। इसके ढक्कन में एक सूराख होता है, जिसके द्वारा पदार्थ डालते हैं और संपीड़ित वायु प्रवाहित करते हैं।

सोडियम सेल्युलोज जेन्थेट, जल और क्षारक सोडा की उपयुक्त मात्रा को रखकर सूराख और ढक्कन को दृढता से बन्द कर देते हैं और विचालक को खोल देते हैं। जब मिश्रण समाप्त हो जाता है तब विस्कोज विलयन को पेन्दे की शिखी से निकालकर विस्कोज टंकी में परिपाक होने के लिए रख देते हैं। विस्कोज विलयन बहुत स्निग्ध होता है और सरलता से स्वयं बहकर निकलता नहीं। इस कारण ऊपर के सूराख से, संपीड़ित वायु के प्रवाह से, विस्कोज विलयन को बहाकर निकाल लेते है।

(छ) विस्कोज टंकी। यह भी रम्भाकार बाहर और भीतर इनेमल किया हुआ पात्र होता है। इसके ढक्कन पर दो शिखियाँ होती हैं। एक केन्द्र में होती है, जिसमें

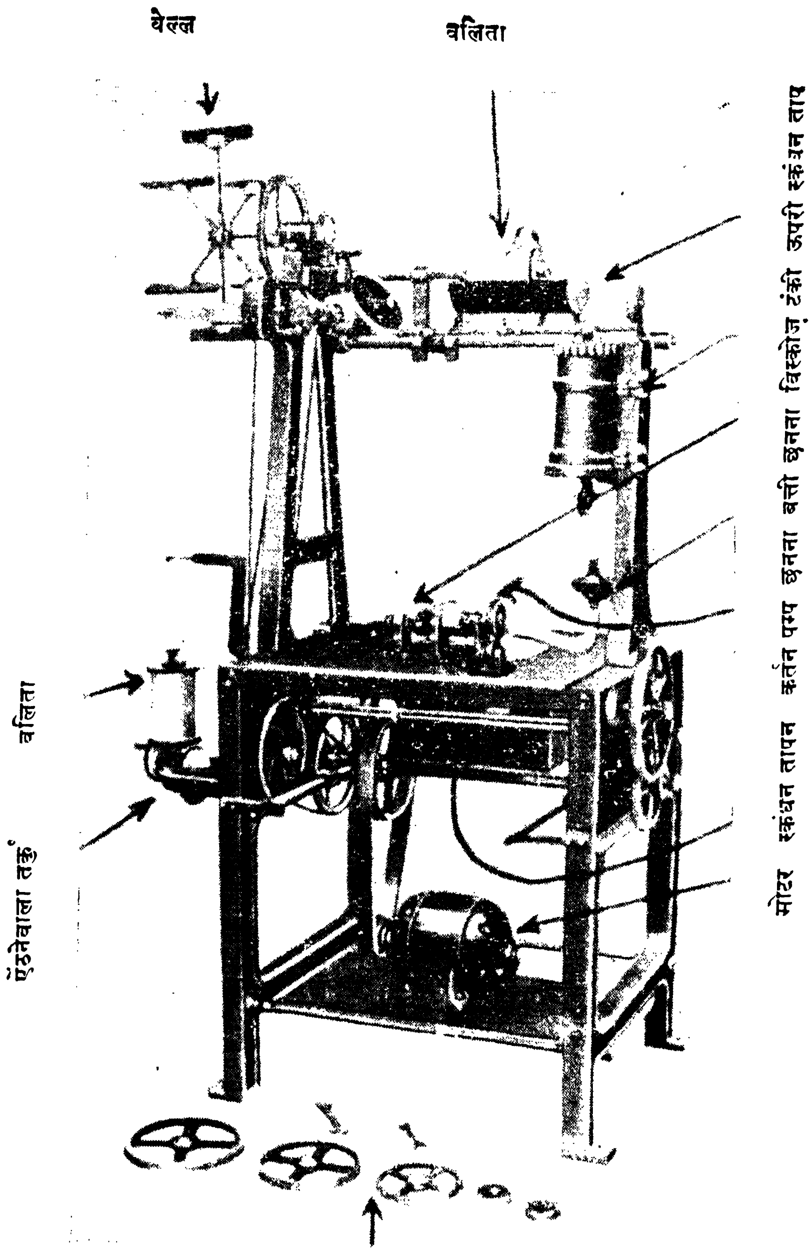


चित्र २९ ग—रेयन बनाने के लिए हाणिहारा मशीन

क—निमज्जक प्रेस या पीडक ख—पल्प करने की मशीन ग—अलकली सेल्युलोज़ मशीन

घ—गन्धकीकरण मशीन च—विस्कोज़ मिश्रक मशीन या विस्कोज़ टंकी

छ—विस्कोज़ टंकी ज—वलिता-धोवन टंकी



अतिरिक्त दन्त-चक्र (gears)

चित्र ३६ (घ)—विस्कोज़ कताई मशीन

छोटी नली लगी रहती है। दूसरी एक किनारे होती है, जिसमें लम्बी नली लगी रहती है। इस किनारे की नलीवाली शिखी को मिश्रण मशीन से जोड़कर विस्कोज को निकालकर परिपाक होने के लिए टंकी में रख देते हैं।

जब कताई करनी होती है तब टंकी को उलटकर कताई मशीन में जोड़ देते हैं। शिखी के साथ ढक्कन नीचे रहता है। वाह्य शिखी को संपीड़ित वायु-नल से जोड़ते और केन्द्रशिखी को कताई पम्प से जोड़ते हैं।

(ज) वलिता (Bobbin) धावन टंकी। यह टंकी वलिता के धोने के लिए रहती है। इसके पेंदे में पानी बहाने के लिए शिखी रहती है। पेंदे की शिखी से पानी प्रविष्ट करता है और वलिता द्वारा बहते हुए साइफन रीति से ऊपर से निकल जाता है।

विस्कोज कताई मशीन – विस्कोज रेयन के सूत बनाने के लिए जो मशीन उपयुक्त होती है, उसका चित्र (चित्र ३६) यहाँ दिया हुआ है। इस मशीन के अनेक भाग होते हैं। एक भाग में विस्कोज विलयन से सूत बनता है। यह सूत एक वलिता पर लपेटा जाता है। इसे फिर निर्गंधीकरण कर विरजित करते, सुखाते और तब इसे ऐंठकर घिरनी पर लपेटते हैं। पहले काम को जहाँ सूत बनता है, कताई भाग और दूसरे भाग को पूर्णक (finishing) भाग कहते हैं, मशीन के कताई भाग पर विस्कोज टंकी स्थित रहती है और विस्कोज विलयन रबर-नली द्वारा एक पम्प से जुड़ा होता है। कताई प्रोथ (nozzle) द्वारा छनने से छनकर विस्कोज विलयन स्कंधन पात्र में गिरता है।

कताई पम्प द्वारा विस्कोज विलयन दबाया जाता है। इन पम्पों में दाँतवाले चक्र होते हैं, जो एक दूसरे की विपरीत दिशा में घूमते हैं। इन दोनों के बीच से विस्कोज विलयन निकलता है। विस्कोज विलयन का निकलना मोटर के वेग पर निर्भर करता है, जो मोटर वलिता को भी घूमाता है।

प्रोथ ऐसी विशिष्ट धातु का बना होता है कि जिनपर विलयन की कोई क्षारक क्रिया नहीं होती। इसके छेद बड़े बारीक होते हैं। इनका व्यास प्रायः ०·०८ मिलिमीटर का होता है। पम्प और प्रोथ के बीच में छानने के लिए एक निःस्यन्दन लगा रहता है।

स्कन्धन पात्र का समावेशन प्रायः १० लिटर का होता है। यदि स्कन्धन विलयन को उच्च ताप पर रखना होता है तो स्कन्धन पात्र में गरम जलवाला बीकर रखकर उच्च ताप पर रखते हैं। स्कन्धन पात्र के निकट एक लम्बी द्रोणी रहती है, जिसमें पानी बहता रहता है। प्रोथ से गिरा विस्कोज विलयन इसमें बह जाता है और उसमें चालक हाथ भी धोता है।

स्कन्धन मात्र से सूत वलिता में जाकर लपेटा जाता है। यह वलिता एक दूसरे स्कन्धन पात्र में दूसरी बार स्कन्धित होने के लिए डूबी रहती है। इस कार्य का दिग्दर्शन चित्र में हो जाता है। यहाँ विलयन 'क' नली से आकर कताई प्रोथ 'ख' में प्रविष्ट करता और स्कन्धित सूत 'ग' ऊपर की ओर जाता हुआ वलिता में लपेटा जाता है।

अब वलिता को ऐंठनेवाले तर्कु (Spindle) में ले जाकर फिर वेल्ल (reel) में लपेटा जाता है। वेल्ल में लपेटने से धोने, विरंजित करने और मृदुकरण में सुविधा होती है।

सीठे से प्रस्तुत सेल्युलोज से इस मशीन में विस्कोजरेयन का सूत तैयार हुआ है। उस सूत के रासायनिक और भौतिक गुणों का अध्ययन हुआ है। उसकी वितानक्षमता (tensile strength), स्थितिस्थापकता (elasticity) और चमक की परीक्षा हुई है। इसके सूत सफेद और चमकदार होते हैं। वे सेल्युलोज-विलायकों में शीघ्र घुल जाते हैं। सूखी दशा में सूत की वितानक्षमता अधिक होती है। क्षार के विलयनों की क्रिया से सूत पहले फैल जाता है और पीछे सिकुड़न होती है। कपास-सेल्युलोज से प्राप्त सूत से यह किसी प्रकार न्यून नहीं पाया गया है।

सीठे से प्राप्त सेल्युलोज से क्यूप्रेमोनियम रेशम भी तैयार हुआ है। इसके लिए यंत्र का अभाव होने से सुन्दर रेशम नहीं प्राप्त हो सका। साधारण साधनों से सूत तैयार किया गया था। यदि इसके लिए यंत्र प्राप्य हो तो सम्भव है कि इससे भी उच्च कोटि के सूत प्राप्त हो सके।

सेल्युलोज से सेल्युलोज ऐसिटेट भी तैयार हुआ है। यह ऐसिटोन में घुलकर अलग विलयन बनता है। इससे भी सामान्य साधनों से सूत तैयार हुआ है। इसके सूत मोटे और भगुर पाये गये हैं। उनमें कोमलता और रेशम-सी चमक नहीं। इसके चादर पारदर्शक और पर्याप्त चीमड़ थे।

सीठे के सेल्युलोज से सेलोफेन भी तैयार हुआ है। सेलोफेन वह महीन कागज है, जो बोतलों, फलों, खाद्य और अन्य पदार्थों के लपेटने में उपयुक्त होता है। इससे प्राप्त सेलोफेन उच्चकोटि के होते हैं। सेलेफेन की चादर भी अच्छी होती है। इसके कैपसूल भी बने हैं। इसके सेल्युलायड, कोलोडियन और फोटो के फिल्म भी तैयार हुए हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन से ज्ञात होता है कि सीठे से सेल्युलोज उच्च कोटि के प्राप्त हो सकते हैं और उनसे अनेक उपयोगी पदार्थ प्रतिदिन व्यवहार के बन सकते हैं।

सत्रहवाँ प्रकरण

रस का विमलीकरण

ईख का रस गँदला होता है। इस रस की अशुद्धियों को यथासम्भव निकाल डालना आवश्यक है, नहीं तो चीनी के मणिभ पर्याप्त मात्रा में नहीं निकलते। रस के इस शोधन को 'विमलीकरण' (clarification) अथवा 'मलहरण' (defecation) कहते हैं। विमलीकरण का प्रभाव आगामी सब क्रियाओं पर बहुत अधिक पड़ता है। छनने और मणिभ बनने की गति बहुत-कुछ इस क्रिया पर निर्भर करती है। विमलीकरण के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्वेषण हुए हैं और अनेक पत्र इसपर प्रकाशित हुए हैं।

विमलीकरण के लिए आज चूना डालने और गरम करने का उपयोग होता है। कभी-कभी चूने के साथ कुछ अन्य लवण भी डाले जाते हैं।

इस सम्बन्ध में जो प्रश्न विचारणीय हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

१. कितना चूना डालना चाहिए ?

२. कैसे चूना डालना चाहिए ?

३. कितने समय में चूना डालना चाहिए ?

४. ताप क्या होना चाहिए ?

५. रस का परीक्षण कैसे करना चाहिए ?

६. रस को स्थिर होने के लिए क्या करना चाहिए ?

७. जो झाग अलग हो जाय, उसे कैसे निकालना चाहिए ?

८. क्या चूने के अतिरिक्त और कुछ डालना चाहिए ?

चूने की मात्रा—कितना चूना डालना चाहिए, इस सम्बन्ध में एक निश्चित मात्रा निर्धारित करना कठिन है; क्योंकि चूने की मात्रा बहुत-कुछ ईख की प्रकृति पर निर्भर करती है। फिर भी साधारणतया कहा जा सकता है कि औसत एक टन ईख के रस में १·२५ पाउंड चूना (CaO) आवश्यक है। कहीं-कहीं तो एक टन ईख के रस में केवल एक पाउंड और कहीं-कहीं १·६ पाउंड चूना तक इस्तेमाल हुआ है।

अच्छे विमलीकरण के लिए उपयुक्त मात्रा में चूना डालना आवश्यक है। यदि चूने की मात्रा आवश्यकता से कम है तो झाग जल्दी अलग नहीं होता और विपर्यय से शर्करा का विनाश भी होता है। यदि चूने की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो तो रस का रंग धुंधला हो जाता है और गोंद-पदार्थों की तथा छोए की मात्रा भी बढ़ जाती है।

कैसे मालूम हो कि चूने की उपयुक्त मात्रा डाली गई है अथवा नहीं ? पहले तो लोग यह जानने के लिए कि चूने की मात्रा उपयुक्त है कि नहीं, उसके लिए चूना डालने

और गरम करने पर रस की परीक्षा करते थे। देखने में यदि रस स्वच्छ हो तो समझते थे कि चूने की पर्याप्त मात्रा डाली गई है। रस के आसस्त कण परखनली में तल की ओर जाते हुए नली के केन्द्र में बैठ जाते हैं। आज अन्य परीक्षण भी उपयुक्त होते हैं; पर इस परीक्षण के साथ ही-साथ। क्योंकि यदि चूने की मात्रा पर्याप्त है तो अवक्षेप जल्दी और तीव्रता से अलग हो जाता है और रस शीघ्र स्वच्छ हो जाता है।

एक ने सुझाव रखा है कि परखनली के रस में यदि कैलसियम सुक्रेट का विलयन डाला जाय और यदि चूने की मात्रा कम है तो उससे लोप्टकर (floccuttent) अवक्षेप बनता है। कुछ लोगों ने लिटमस कागज, हल्दी कागज, और कैलसियम सुक्रेट विलयन द्वारा अनुमापन के उपयोग का सुझाव रखा है। लिटमस कागज का उपयोग दिन में ही हो सकता है अथवा उस कृत्रिम प्रकाश में—जो सूर्य-प्रकाश के समान ही प्रचण्ड हो। कुछ लोगों का मत है कि रस अल्प क्षारीय रहना चाहिए जो लिटमस कागज से जाँचा जा सकता है। कुछ लोगों का मत है कि रस अल्प अम्लिक रहना चाहिए। यदि १० सी. सी. रस के लिए शून्य से आध सी. सी. दशांश नार्मल क्षारक सोडा का विलयन लगे तो ऐसा रस ठीक समझा जाता है। ऐसे रस का पी एच. ७.५ से ८.५ रहता है।

कैसे चूना डालना चाहिए—रस ज्योंही तौलने की टंकी से निकलकर गरम होने के लिए उष्मक में जाने लगे उसी समय चूने को दूध रूप में बनाकर ठंढे रस में डालना चाहिये। चूने का दूध पहले से आवश्यक घनता का तैयार कर रखना चाहिए और तब रस के साथ मिलाकर उष्मक में जाने देना चाहिए। हवाई द्वीप में कोल्हू में ही चूना-दूध डालकर विपर्यय रोकने की चेष्टा हुई थी; पर इससे परिणाम अच्छा नहीं निकला। सीठे के अवयवों पर चूने की क्रिया से रस में इससे अशुद्धियों की मात्रा बढ़ी हुई पाई गई है।

कुछ लोगों का मत है कि रस के गरम करने के बाद चूना डालना चाहिए। रस का ताप क्वथनांक के ऊपर रहना चाहिए। गोंदवाले पदार्थों के गरम करने से अम्लिक विलयन में वे शीघ्रता से पृथक् हो जाते हैं। यदि ऐसे पदार्थों के अलग हो जाने पर चूना डाला जाय तो रस अधिक स्वच्छ हो जाता है।

चूना लगातार (अविराम धारा में) डालना चाहिए अथवा पारी-पारी से डालना चाहिए, यह विषय भी विचारणीय है। पहले तो जिस खुली टंकी में रस इकट्ठा होता था, उसी में चूना डाला जाता था। पीछे बंद टंकी का उपयोग हुआ जैसा कि आजकल साधारणतया होता है। यहाँ बड़ी-बड़ी टंकियों में ठंढे रस में चूना डाला जाता है। कम-से-कम तीन ऐसी टंकियों की श्रेणियाँ होती हैं। चूने डालने से जो अवक्षेप बनता है, उसे भ्राम्यत् क्षेपणी (paddle) द्वारा अथवा वायु के प्रवाह-द्वारा बैठने नहीं देते। इसमें लाभ यह है कि प्रत्येक टंकी के रस की अलग-अलग परीक्षा कर जान सकते हैं कि पर्याप्त मात्रा में चूना डाला गया है अथवा नहीं। इस रीति में आवश्यकतानुसार समय-समय पर चूना डाल सकते हैं। कुछ ऐसे साधन भी बने हैं जिनमें चूना लगातार धारा में बहता रहता है और रस को टंकी से बाहर निकालकर जाँच करना पड़ता है। पर आजकल ऐसे उपकरण भी बने हैं जिनसे चूना ऐसे डाला जाता है कि उसकी मात्रा जब आवश्यक मात्रा में पहुँच जाती है तब आप-से-आप चूने का बहना बन्द हो जाता है। इस आत्मग (automatic) प्रबन्ध का वर्णन आगे होगा।

कितने समय में चूना डालना चाहिए—चूना इस तरह डालना चाहिए कि वह रस से मिलता जाय। अशुद्धियों का अवक्षेप चूने के ठीक प्रकार मिलने पर ही निर्भर करता है। साधारणतः चूना एक ही बार में डाल दिया जाता है; पर कुछ लोगों का सुझाव है कि दो बार में चूना डालने से अच्छा होता है। कुछ चूना ठंडे में डालना और कुछ चूना गरम करने पर डालना, अच्छा समझा जाता है। इस प्रश्न का विचार ताप पर विचार करने के समय विशेष रूप से होगा।

ताप क्या होना चाहिए—विमलीकरण के लिए रस को किस ताप पर गरम कर रखना चाहिए? इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है। साधारणतया ताप ६०° श० से ११५° श० तक रहता है। रस को उसके क्वथनांक तक या क्वथनांक के कुछ ऊपर तक गरम किया जाता है। यदि क्वथनांक के ऊपर गरम किया जाय तो उससे अशुद्धियाँ ठोस रूप में शीघ्रता से बैठ जाती हैं; पर रस का रंग अधिक धुँधला हो जाता है। १००° श० के स्थान में ११०° श० पर गरम करने से रस गँदला होता है, ऐसा देखा गया है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि रस को क्वथनांक के अधिक ऊपर तक नहीं गरम करना चाहिए। थोड़ा ऊपर तक गरम करने से कोई हानि नहीं।

ऊपर कहा गया है कि रस के गरम करने से पहले चूना मिला देना चाहिए; पर कुछ लोगों के मत से गरम रस में चूना डालना श्रेयस्कर है। ऐसे लोगों का मत है कि रस के केवल गरम करने से अल्बुमिन और सिलिका कोलायड अवक्षिप्त होकर निकल जाते हैं। उस दशा में कम चूना के डालने से भी रस स्वच्छ हो जाता है।

होनिग (Honig) का मत है कि क्षारीयता की न्यूनता से सिलिका और सलफेट का निकल जाना सरलता से और अधिक मात्रा में होता है; पर कुछ लोगों का मत है कि कच्चे रस के गरम करने से विपर्यय बहुत अधिकता से होकर शर्करा विनष्ट हो जाती है। चूने के स्थान में कैलसियम सैकेरेट के उपयोग से रस स्वच्छ प्राप्त होता है। गरम रस में चूना डालने से लाभ अवश्य होता है; पर शर्करा के विपर्यय और विच्छेदन से हानि भी हो सकती है। इन हानियों से बचने के लिए अनेक सुधार किये गये हैं। कुछ लोगों ने पारी-पारी से चूना डालना अच्छा बतलाया है। एक रीति में ठंडे में चूना डालकर पी एच. ६.१ से ६.४ रखकर तब रस ६०°-६५° श० तक गरम करते हैं। तब उसमें चूना डालकर पी एच. ७.४-७.८ बनाते हैं। इस रीति में उत्कृष्ट विमलीकरण का दावा है। ठंडे अथवा केवल गरम रस में चूना डालने से इतना स्वच्छ रस नहीं प्राप्त होता, जितना इस रीति में प्राप्त होता है। एक दूसरे का सुझाव है और इस सुझाव का आज जावा में उपयोग होता है कि रस के ४० प्रतिशत भाग में चूना डालकर पी एच. ६.५ बना लें और शेष ६० प्रतिशत भाग में चूना डालकर पी एच. ६.०-६.६ बना लें तब इसे ६५° श० तक गरमकर ६.५ पी एच. वाले रस को डालकर मिश्रण का पी एच. ७.६-७.८ बना लें।

कुछ लोगों ने दो बार में चूना डालकर दो बार रस के गरम करने की रीति को अच्छा बतलाया है।

इस रीति में पहले चूना डालकर ६.४ पी एच. प्राप्त करते हैं। अब इसे गरम कर उबालते हैं। उबलने पर फिर उसमें चूना डाल कर पी एच. ७.६ रखते हैं। अब फिर उबालकर स्थिर होने के लिए छोड़ देते हैं। इससे लाभ निम्नलिखित हैं :—

अशुद्धियाँ बड़ी शीघ्र बैठ जाती हैं।
चूने की मात्रा कम प्राय: ३५ प्रतिशत ही लगती है।
अ-शर्कराएँ अधिक मात्रा में निकल जाती हैं।
अशुद्धियों का आयतन कम होता है।
रस अधिक स्वच्छ रहता है।

इसके लिए किसी विशिष्ट साधन की आवश्यकता नहीं होती। केवल ताप को ६०° से ६५° श० उठाना पड़ता है जिसमें उष्मक के समावेशन में १० प्रतिशत की वृद्धि होती है।

पी एच. नियंत्रण—पी एच. नियंत्रण से रस के विमलीकरण में बड़ी यथार्थता आ गई है। पकी ईख के रस का पी एच. ५·१ से ५·४ तक रहता है। अधिकतम विमलीकरण के लिए चूना इतना डालना चाहिए कि ठंढे रस का पीएच. ८ से ६ रहे। ७·६ से ८ पीएच. से भी अच्छा विमलीकरण होता है; पर ७·५ से कम पीएच. से विमलीकरण अच्छा नहीं होता। रस के केवल क्वथन विन्दु तक गरम करने से ०·२ से ०·३ पीएच. गिर जाता है। यदि रस को ६ घंटे तक क्वथन-विन्दु पर रखें तो पीएच. के मान में पर्याप्त पतन होता है। ३ घंटे में ८·० से ७·० पीएच. गिरता हुआ देखा गया है।

पीएच. का मान वास्तव में क्या होना चाहिए कि उससे पूर्ण स्वच्छ रस प्राप्त हो सके, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है। कम-से-कम चूना जो स्वच्छ रस दे सके, इतना होना चाहिए कि उसका पीएच. ७·० के निकट में हो। अधिक चूना का देना ठीक नहीं है। यदि इतने चूने से रस स्वच्छ न प्राप्त हो सके तो चूने के साथ फ़ास्फ़ेट देकर रस को स्वच्छ करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि चूने की मात्रा की वृद्धि से।

आजकल ऐसे यंत्र बने हैं, जिनसे पीएच. नियंत्रण आप-से-आप हो जाता है। एक ऐसे यंत्र को 'माइक्रोमैक्स ऑटोमेटिक पीएच-कन्ट्रोल' कहते हैं। इस यंत्र से तीन काम होते हैं। यह पीएच. को नापता, चूने की मात्रा को सूचित करता और उस के विलयन के बहाव की गति को नियंत्रित करता है। यह यंत्र बिजली से संचालित होता है। ज्योंही पीएच. एक निश्चित मान पर पहुँचता है, आप-से-आप चूने का बहाव रुक जाता है। चालक को यंत्र को केवल इच्छित नियंत्रण विन्दु पर रख देना पड़ता है। उसके बाद सब काम आप-से-आप होता रहता है। यदि पीएच. मान किसी कारण से कम हो जाय, तो फिर चूने का बहाव खुल जाता है और चूने का पानी बहने लगता है। इसके लिए २° बौमे का चूना-पानी इस्तेमाल होता है।

हवाई द्वीप में कुछ मिलों में चूना डालने और गरम करने में दस से पन्द्रह मिनट तक का समय लेते हैं। एक टंकी में रस में चूना डालकर खूब मिलाते हैं और उसे टंकी में १५ मिनट के लिए छोड़ देते हैं। मिलाने के लिए यांत्रिक साधनों का उपयोग करते हैं। ठंढे रस में चूना डालकर खूब मिलाने से बहुत लाभ पाया गया है। इससे रस अधिक शुद्ध प्राप्त होता, राख की मात्रा कम रहती है। कैलसियम की मात्रा में कम वृद्धि होती, गदलापन कम होता, अशुद्धियाँ जल्दी बैठ जातीं और मल का आयतन कम होता है।

विमलीकरण का सिद्धान्त—रस के विमलीकरण के लिए फ़ास्फ़ेट का रहना बहुत आवश्यक है। जिस रस में पर्याप्त फ़ास्फ़ेट नहीं रहता, उस रस का विमलीकरण

ठीक तरह से नहीं होता। कुछ लोगों ने अन्वेषण से पता लगाया है कि रस के एक लाख भाग में यदि फ़ास्फ़ेट की मात्रा ३० भाग से कम है तो ऐसे रस का विमलीकरण ठीक नहीं होता। विमलीकरण के लिए प्रत्येक एक लाख भाग में ३० से ३५ भाग P_2O_5 अवश्य रहना चाहिए। यदि रस में फ़ास्फ़ेट की कमी हो तो ऊपर से फ़ास्फ़ेट डालकर इस कमी की पूर्ति की जा सकती है। आजकल अनेक मिलों में रस में किसी विलेय फ़ास्फ़ेट के डालने की प्रथा चल निकली है। क्यूबा में एक बड़े मिल में प्रति-टन ईख के रस में प्राय: ०·४४ पाउंड सुपर-फ़ास्फेट डाला जाता है। फ़ास्फ़ेट को एक छोटे पेंदुवाँ लोहे की टंकी में घुलाकर प्रति-१ लाख भाग रस में प्राय: १० भाग P_2O_5 की मात्रा डाली जाती है। चूँकि रस में प्रति लाख भाग में १८ से २० भाग P_2O_5 पहले से रहता है, इससे P_2O_5 की औसत मात्रा प्रति-लाख में प्राय: ३० भाग हो जाती है। प्रति १०० पाउंड चीनी में फ़ास्फ़ेट का खर्च प्राय: एक पैसा बढ़ता है। फ़ास्फ़ेट के डालने से केवल विमलीकरण ही उत्कृष्ट कोटि का नहीं होता, वरन् इससे चीनी की शुद्धता बढ़ जाती है और रखने से चीनी का रंग मैला नहीं होता।

चूने से केवल फ़ास्फ़ेट ही अवक्षिप्त नहीं होते। इससे अलुमिना, सिलिका और लोहे भी अवक्षिप्त हो जाते हैं। ये जिलेटिन-सा अवक्षेप बनते हैं, जिनके साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में अन्य कार्बनिक पदार्थ भी अधिधारित हो निकल जाते हैं।

मल की प्रकृति—चूना डालने और गरम करने से जो अवक्षेप प्राप्त होता है, उसकी प्रकृति ईख की जाति, विमलीकरण - क्रिया इत्यादि पर निर्भर करती है। यदि रस का पीएच. ८·० हो तो केवल ३५ प्रतिशत और १०·० हो तो प्राय: ७० प्रतिशत सिलिका निकल जाता है। सिलिका जितना अधिक निकल जाय, उतना ही अच्छा होता है।

यदि पीएच. ८·० हो तो लोहा और अलुमिना प्राय: पूर्णरूप से निकल जाते हैं। साधारणतया सलफेट नहीं निकलते; पर यदि उनकी मात्रा बहुत अधिक हो तो कुछ निकल जाता है। ऊपर कहा गया है कि रस में चूने का आधिक्य नहीं रहना चाहिए।

पतले छनने से छानने से अनेक अशर्करा-कार्बनिक पदार्थ छनकर निकल जाते हैं। अनेक कोलायड कार्बनिक पदार्थ भी चूने और गरम करने से निकल जाते हैं। कोलायड पदार्थों में राख की मात्रा ऊँची रहती है। अल्बुमिन भी रस में रहता है और विमलीकरण में सहायता करता है। प्राय: ८० प्रतिशत तक अल्बुमिन चूने से अवक्षिप्त हो जाता है। कोलायडल अशुद्धियाँ प्राय: २० से ४० प्रतिशत निकल जाती हैं। गोंदवाले पदार्थ भी २० से ६० प्रतिशत दूर होते हैं। मोम का तो सबसे अधिक अंश अवक्षेप में निकल आता है।

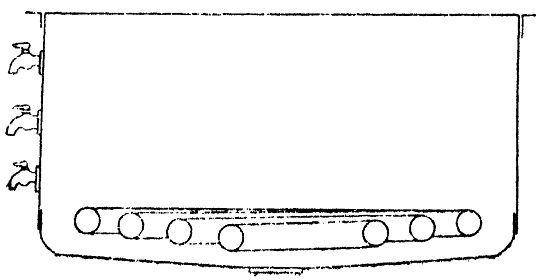
अशुद्धियों (मल) का निष्कासन—अशुद्धियाँ जब अवक्षिप्त हो जाती हैं तब विलयन को थिराने के लिए निथारकों में छोड़ देते हैं। कुछ समय में मैल तल में बैठ जाता है। स्वच्छ रस को ऊपर से निकाल लेते हैं। रस को कदाचित् ही छानते हैं।

कोल्हू से प्राप्त रस को सीधे 'विमलीकारक' (defecator) में ले आते हैं। विमलीकारक का पेंदा दो तलों का होता है। नीचे का पेंदा तांबे का होता है और ऊपर का लोहे के पत्तर का। ज्योंही विमलीकारक का पेंदा रस से भर जाता है, उसमें चूने का दूधिया डालकर अम्लों को उदासीन कर दोनों पेंदों के बीच में भाप को प्रविष्ट कराते हैं। भाप का

प्रवेश इस गति से होता है कि जबतक विमलीकारक रस से भरता है, तबतक रस का ताप क्थन विन्दु तक पहुँच जाता है। ज्योंही तल के मोटे झाग की तह टूटनी शुरू होती है, भाप का आना बन्द कर देते हैं और रस को थिराने के लिए छोड़ देते हैं। इस रीति से कुछ अशुद्धियाँ नीचे तल पर बैठ जाती हैं और कुछ उपर तल पर झाग के रूप में इकट्ठी हो जाती हैं।

ऐसे अनेक विमलीकारक पंक्तियों में रखे और रस से भरे होते हैं। जब मल थिराकर पेंदे में इकट्ठा हो जाता है, तब मल को पेंदे से निकालकर निस्यन्द प्रेस में भेज दिया जाता है और रस उद्वाष्पक टंकी में भेज दिया जाता है।

आजकल रस का गरम करना बन्द टंकी में होता है; पर खुली टंकियों का उपयोग अभी बन्द नहीं हुआ है। ये टंकियाँ बड़े आकार की होती हैं। इनका समावेशन ६ हजार गैलन से ऊपर होता है। गहरे चौकोर टंकियों में मल के बैठने में अधिक समय लगता है; पर मल का आयतन इसमें कम होता है। इन टंकियों की गहराई ६ फुट से अधिक नहीं होनी चाहिए। इनका पेंदा ढालवा होता है। ढालवा होने से अवक्षेप के हटाने में सुविधा होती है। तांबे का कुण्डल यदि ४ इंच व्यास का रहे, तो उससे २५ वर्गफुट का गरम करनेवाला तल प्राप्त होता है। जिस मिल में प्रतिदिन १४०० से १५०० टन ईख की पेराई होती है, उस मिल के लिए ५०० गैलन समावेशन के ८ टंकियों की आवश्यकता होगी। एक ऐसी टंकी का चित्र (चित्र ४०) यहाँ दिया हुआ है। पात्र वृत्ताकार है और पेंदे में



चित्र ४० —विमलीकारक, थिराने की टंकी

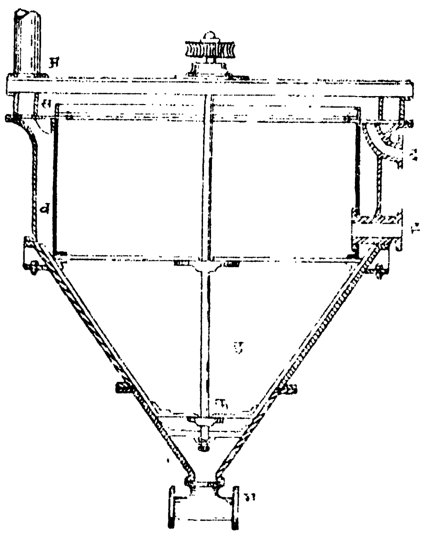
कुण्डली रहती है। रस निकाल लेने के लिए भिन्न भिन्न ऊँचाई पर टोंटियाँ लगी रहती हैं। ऐसी टंकी में प्रत्येक तीन घन फुट समावेशन के लिए एक वर्ग फुट तपाने का तल रहता है।

कुछ लोगों ने गोल टंकियों को जिनका पेंदा शंक्वाकार हो, अच्छा बतलाया है।

रस-विमलीकारक शीघ्र ही मैले हो जाते हैं। उन्हें समय समय पर साफ करने की आवश्यकता होती है। पहले गरम क्षारक सोडा के विलयन के बहाव से और फिर जल के बहाव और अन्त में गरम बहुत हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के बहाव से वे साफ हो जाते हैं। क्षारक सोडा के विलयन को बार-बार इस्तेमाल कर सकते हैं। आठ गैलन जल में एक पाउंड सोडा के घुलाने से आवश्यक विलयन प्राप्त होता है।

कभी-कभी नली में ऐसी कड़ी परतें पड़ जाती हैं कि उन्हें खुरेचकर निकालने की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ विमलीकारक अनवरत सिद्धान्त पर बने हैं। इनसे श्रम, ईंधन और स्थान की बचत होती है। मल भी आयतन में कम बनता है। प्रेस पिंड में कमी कम होती है और विमलीकरण में शर्करा का विनाश भी कम होता है। यहाँ मल पेंदे से निकाल लिया जाता है। अन्तिम पात्र में कपड़े से छानने का प्रबन्ध रहता है। एक ऐसी टंकी का चित्र (चित्र ४१) यहाँ दिया हुआ है। इस टंकी के आविष्कर्ता पिकरिंग और मैकग्रेगर (Pickering and mocgregor) साहब है।



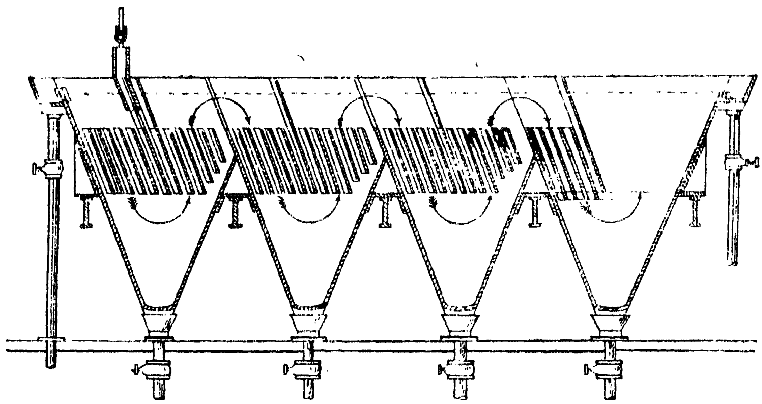
चित्र ४१

'अ' से रस प्रविष्ट करता, 'ब' स्थान में भरता, बड़ी मन्दगति से बहकर 'स' मार्ग द्वारा होकर 'द' मार्ग से निकल जाता है। मल 'ह' शंकु में बैठता और 'फ' अपोद्घर्षक (scraper) द्वारा 'ग' मार्ग से निकाल दिया जाता है

यहाँ ठंढे में डाले चूनेवाले रस को प्राय: १००° श० पर गरम करके उसे ऐसे पात्र में डालते हैं जिसे मुक्तक (eliminator) कहते हैं। यहाँ रस की गैस निकल जाती, रस कुछ सान्द्रित हो जाता और तापक में आता हुआ रस गरम हो जाता है। यह मुक्तक लोहे का बेलनाकार बन्द पात्र होता है जिसके पेंदे शंक्वाकार होते हैं और इसमें ताँबे की नलियाँ गरम करने के लिए बहुत अधिक खुली रहती हैं। इन नलियों के द्वारा रस प्रविष्ट करता है और भाप को संघनित करता है जिससे आंशिक शून्य पैदा होता है और तब गरम रस से गैसें खींच ली जाती हैं। मुक्तक के ऊपर का अंश पम्प अथवा शून्य पम्प से जोड़ा रहता है।

मुक्तक में उष्ण रस का ताप गिरकर ६०° पर आ जाता है। यहाँ से पम्प कर यह वाष्प कक्ष में भेज दिया जाता है। मल नीचे पेंदे से अनवरत निकाल लिया जाता है और स्वच्छ रस मध्य के शंकु (Cone) से निकलता रहता है। कुछ मिलों में रस को केवल ६५° श० तक गरम करते हैं।

आज अनेक प्रकार के विमलीकारक बने हैं और उपयुक्त होते हैं। कोर्न और वरग्वरे विमलीकारक एक हैं जिसके उपयोग में अनेक लाभ बतलाये जाते हैं। इसका चित्र (चित्र ४२) यहाँ दिया हुआ है। एक विमलीकारक जिसका चित्र यहाँ दिया हुआ है, मल नत तल



चित्र ४२

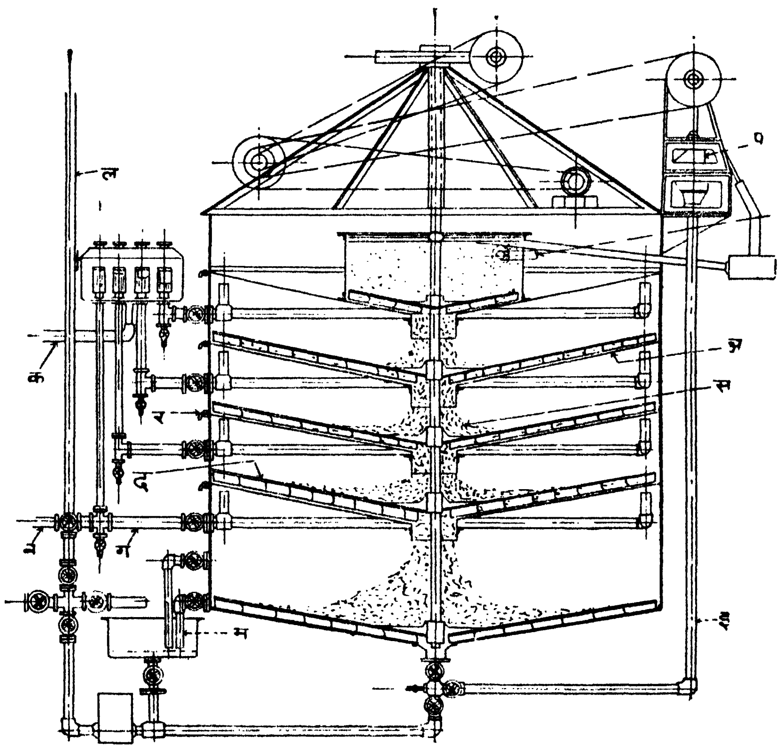
कोर्न और वरग्वरे (Corne and Burguires) का विमलीकारक जिसमें रस के प्रवाह का मार्ग तीर से बताया गया है। टंकी के पेंदे से मल निकाल लिया जाता है

पर इकट्ठा होकर धीरे-धीरे नीचे गिरकर टंकी के पेंदे में इकट्ठा होता है। अन्तिम टंकी में रस कपड़े से छान लिया जाता है।

डोर (Dorr) अनवरत विमलीकारक (चित्र ४३) का उपयोग क्यूबा में शुरू हुआ और आज बहुत बढ़ गया है। इसमें प्रतिदिन २,५०० टन ईख से प्राप्त रस गरम किया जा सकता है। इसमें २० फुट व्यास की एक टंकी होती है और न तथा ल से ४ कक्षों में बँटी रहती है। रस में चूना डालकर प्रायः ९५° श० तक गरम कर नल से प्रविष्ट करता और मध्य मार्ग से टंकी को भर देता है। जो मल पेंदे में नहीं बैठता, वह प्रत्येक कक्ष के स्थाल में बैठ जाता है। जहाँ से अपोद्घर्षक द्वारा धीरे-धीरे चलाकर मध्यमार्ग से लाकर नल से पम्प द्वारा निकालकर मल टंकी में भेज दिया जाता है। प्रत्येक कक्ष के ऊपरी भाग से स्वच्छ जल निकलकर नल द्वारा परीक्षण बक्स में आकर उद्वाष्पक में भेज दिया जाता है। रस की गैसें टोंटी-द्वार से निकाल ली जाती हैं।

डेमिंगविमलीकारका का चित्र (चित्र ४४) आगे दिया हुआ है। इसका प्रचार बहुत अधिक है और उसमें इधर बहुत सुधार हुए हैं। चूना मिला हुआ रस यहाँ लगभग २३५° फ० तक गरमकर विमलीकारक के कक्ष '१' में प्रविष्ट करता है। मल पेंदे '३' से निकाल लिया जाता है। मध्यशंकु २ से स्वच्छ रस निकाल लिया जाता है। पहले देखा गया था कि पेंदे की कुछ दुर्गंध मल में रहती थी। पर मल के इकट्ठा होने से रोकने के लिए धीरे-धीरे चलता हुआ अपोद्घर्षक के उपयोग से यह दोष दूर हो गया।

ग्रेवरविमलीकारक (चित्र ४५) का डोरविमलीकारक से श्रेष्ठ होने का दावा किया जाता है। इसमें कुछ ऐसे सुधार हुए हैं, जिनसे यह श्रेष्ठ समझा जाता है। यहाँ थाल के मध्य से नहीं; बल्कि परिणाह (periphery) से होकर रस और मल बहता है और स्वच्छ रस ऊपर उठकर मध्य में इकट्ठा होता है।

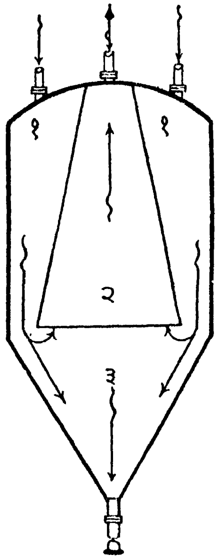


चित्र ४३

डोर रस 'अ' विरत विमलीकारक, जिसमें टंकी २० फुट व्यास की होती है। यह न तथा ल 'अ' से चार कक्षों में बँटा रहता है। उष्ण रस चूने के साथ २१२° फ० पर 'व' नल से प्रविष्ट कर 'स' मध्य मार्ग से टंकी को भर देता है। जो मल पेंदे में नहीं बैठता, वह थाल पर निःक्षिप्त होता है। 'द' अपोद्घर्षक के धीरे-धीरे घुमाने से थाल का मल खुरचकर 'इ' नल के प्रवेशमार्ग पर गिरता है और 'प' पम्प से निकालकर मल टंकी में भेज दिया जाता है। 'ग' नल द्वारा प्रत्येक कक्ष से स्वच्छ रस निकाल लिया जाता है। 'ल' नल से रस घुमता है और 'न' और 'म' नलों से विमलीकारक खाली कर लिया जाता है। 'र' मार्ग से वायु का निकास होता है। शिखर से झाग और तैरते पदार्थों के निकल जाने का प्रबन्ध रहता है।

रस का गरम करना—रस के गरम करने के अनेक साधन हैं। जल-भाप से रस को गरम करते हैं। एक रीति में रस नलियों के द्वारा ऊपर-नीचे प्रवाहित होता रहता है और ये नलियाँ पट्टों में रखी होती हैं। नलियों के बाहर पट्टों के बीच में भाप चक्कर

लगाता है। नलियों की लम्बाई दस से तीस फुट तक होती है और भिन्न-भिन्न आकार की होती है। इन नलियों में रस का वेग प्रति-मिनट ३०० से ४०० फुट होता है। यदि इसका वेग कम हो तो ताप का प्रेषण कम होता है और उष्मक-तल भी शीघ्रता से मलिन हो जाता है।

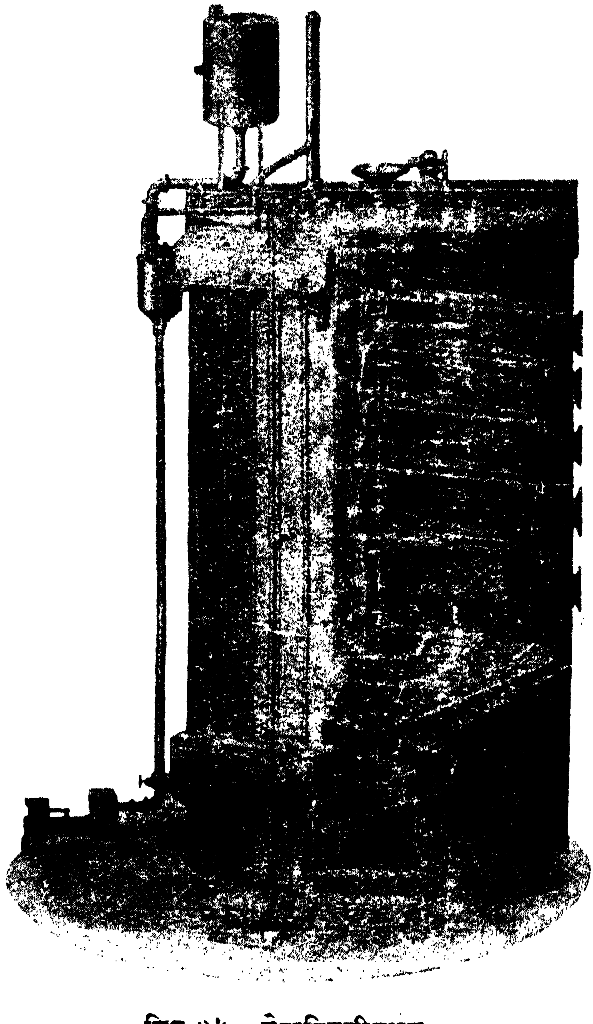


चित्र ४४—डेमिंग-विमलीकारक

१. वाह्यकक्ष है जिसमें रस जाता है।

२. मध्यशंकु है जहाँ से स्वच्छ रस निकलता है।

३. शंक्वाकार टंकी है जहाँ से मल निकाल लिया जाता है।

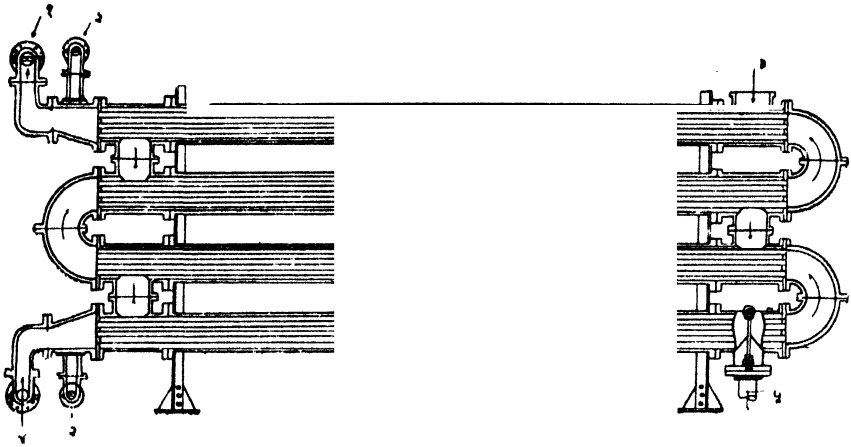


चित्र ४५—ग्रेवरविमलीकारक

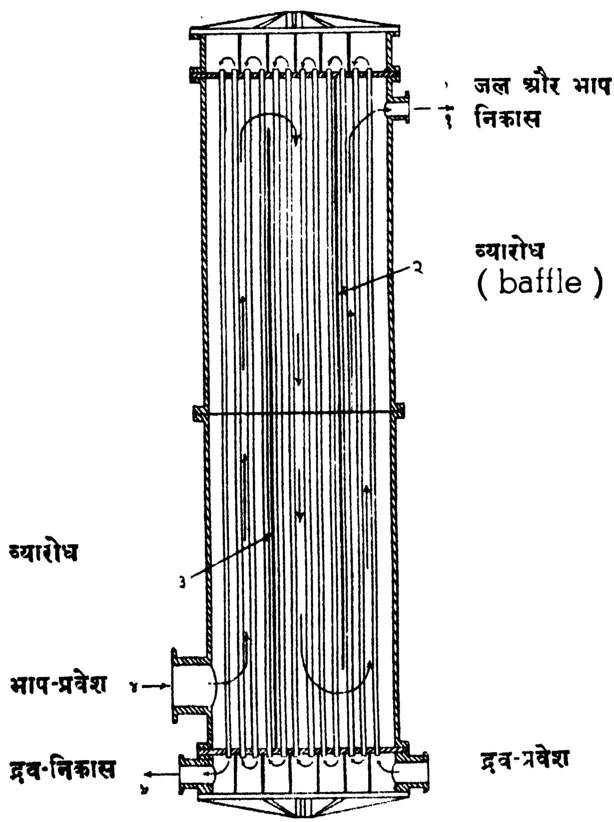
कुछ तापक (heater) उर्ध्वाधार होते हैं और कुछ क्षैतिज। एक उर्ध्वाधार तापक का चित्र यहाँ दिया हुआ है। ये तापक बेलनाकार होते हैं। नलियों से रस जाता हुआ ऊपर-नीचे भ्रमण करता हुआ अन्त में बाहर निकल जाता है। उर्ध्वाधार तापक का चित्र (चित्र ४६) यहाँ दिया हुआ है। इसमें भाप के लिए व्यारोध (baffles) लगे होते हैं ताकि भाप का ठीक-ठीक दिशा में निर्देशन हो सके। नलियाँ तांबे की बनी होती हैं।

जब तापकों की दक्षता कम हो जाती है, तब रस-नलियों में क्षारक सोडा का विलयन बहाकर और गरम कर समय-समय पर उसे साफ कर लेते हैं। हर मिलों में कुछ अधिक तापक रहते हैं, जो साफ करने के समय काम में आते हैं और काम कभी रुकता नहीं है।

क्षैतिज तापक भी उसी सिद्धान्त पर बने होते हैं, जिस सिद्धान्त पर उर्ध्वाधार तापक।



चित्र ४६—उर्ध्वाधार तापक। यह एक सरल तापक है। इसमें चार समानान्तर में एक प्रमुख नल है, जिसके प्रत्येक नल में छोटी-छोटी नलियाँ लगी हुई हैं। इसमें बहाव बड़ा सरल होता है और घर्षण बहुत अल्प। '४' से रस और '३' से भाप प्रविष्ट करता है। '५' से संघनित जल निकल जाता है और '२' और '२' से रस निकलता है।



चित्र ४७—क्षैतिजतापक प्रतिवाह द्रवतापक। द्रव के बहने की दिशा तीर से मालूम होती है। एक के बाद दूसरी अनेक नलियों में रस बहता हुआ गाढ़ा होता है। जब तापक की दक्षता कम हो जाती है, तब उसे कास्टिक सोडा के विलयन से धो लेते हैं।

एक क्षैतिज तापक का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

अठारहवाँ प्रकरण

कार्बनीकरण विधि

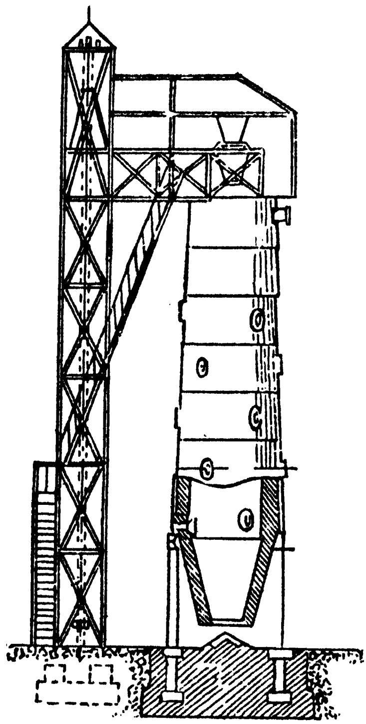
रस के विमलीकरण में चूना इस्तेमाल होता है। कुछ चूना रस में रह जाता है। इस चूने को निकाल देने के लिए कार्बन डायक्साइड गैस को रस में ले जाते हैं। पहले-पहल इसका उपयोग चुकन्दर से चीनी तैयार करने में हुआ था। पर पीछे ईख से चीनी तैयार करने में प्राय: १८७८ ई० में जावा में शुरू हुआ। अब तो यह रीति प्राय: सभी कारखानों में बरती जाती है। कार्बनीकरण विधि प्राय: वहीं उपयोग में आती है जहाँ सफेद चीनी प्राप्त करना होता है। कार्बनीकरण के साथ आजकल गंधकीकरण भी होता है, जिसका वर्णन आगे होगा।

कार्बनीकरण कहीं केवल एक बार होता है और कहीं दो बार।

चूनाभट्ठा—कार्बनीकरण के लिए कार्बन डायक्साइड चाहिए। यह कार्बन डायक्साड चूने के भट्ठे में चूना पत्थर के गरम करने से प्राप्त होता है। भट्ठे दो प्रकार के होते हैं—एक सविराम (intermittent) और दूसरे अविराम (continuous)। चीनी के कारखाने में अविराम भट्ठे ही उपयुक्त होते हैं। अविराम भट्ठे के चूल्हे में ईंधन जलाते और दहन के उत्पाद को चूना पत्थर में ले जाते हैं; इससे कार्बन डायक्साइड भट्ठे से निकाल कर पम्प द्वारा रस में ले जाया जाता है। सविराम भट्ठे में चूना-पत्थर और कोक को १०:१ से १५:१ अनुपात में मिलाकर भट्ठे में गरम करते हैं। आयतन की दृष्टि से प्रत्येक ३ से ४.५ आयतन चूना-पत्थर के लिए कोक का एक आयतन आवश्यक है। कोक के जलने से और चूना पत्थर के विघटन से कार्बन डायक्साइड बनता और पम्प द्वारा खींचकर जल से धोआ जाता है ताकि यदि उसमें सलफर डायक्साइड हो तो वह निकल जाय। अब शुद्ध कार्बन डायक्साइड को रस में प्रवाहित करते हैं। भट्ठे से जो गैसें निकलती हैं, उनमें ३२ से ३६ प्रतिशत कार्बन डायक्साइड रहता है। शेष में नाइट्रोजन और एक से दो प्रतिशत ऑक्सिजन रहते हैं। चूने को पानी से बुझाकर बुझा चूना तैयार कर फिर उसमें १५° से २०° बौमे का विलयन बनाकर इस्तेमाल करते हैं।

भट्ठे विभिन्न समावेशन के होते है। कुछ भट्ठे ऐसे होते हैं, जिनमें प्रतिदिन ५ से ६ मन चूना प्राप्त हो सकता है। ये भट्ठे वैसे ही होते हैं जैसे सीमेंट के निर्माण में उपयुक्त होते हैं। भट्ठों की ऊँचाई ३० से ७० फुट तक होती है। इसका व्यास कितना होना चाहिए, उसकी कोई सीमा नहीं है। भट्ठों में ऊपर से चूना-पत्थर और कोक डाला जाता है। भट्ठे में चार मण्डल होते हैं। ऊपर से पहले मण्डल में केवल उत्पादक गैसें रहती हैं। इसके नीचे सुखानेवाला मण्डल रहता है। यहाँ पत्थर और कोक के जल का अंश निकल जाता

है और उसका ताप भंजन विन्दु तक पहुँच जाता है। यहाँ का ताप प्राय: १०००° श० होता है। जब पदार्थ का ताप इस विन्दु तक पहुँच जाता है तब पदार्थ का विच्छेदन शुरू होता है। भंजन-ताप प्राय: १०००° से १३००° श० होता है। तीसरे मण्डल का ताप प्राय: यहीं रहता है। इसके बाद चतुर्थ मण्डल में ताप धीरे-धीरे कम होना शुरू होता है और नीचे पहुँचते-पहुँचते पर्याप्त ठंढा हो जाता है। सारे भट्ठे का प्राय: आधा भाग चतुर्थ मण्डल होता है। भंजन भाग प्राय: चतुर्थांश रहता है और ऊपरवाला मण्डल चतुर्थांश होता है। चूना तैयार करने के भट्ठे का एक चित्र (चित्र ४८) यहाँ दिया जाता है।



चित्र ४८—चूने का बड़ा भट्ठा।

कैलसियम कार्बोनेट का भंजन प्राय: ४००° श० पर शुरू होता है; पर इस ताप पर कैलसियम कार्बोनेट और कैलसियम ऑक्साइड और कार्बन डायक्साइड के बीच साम्य स्थापित हो जाता है। भंजन के लिए इस कारण ताप पर्याप्त ऊँचा—प्राय: १०००°- १२००° श०—होना चाहिए। इससे उच्च ताप भी नहीं होना चाहिए; क्योंकि इससे ऊँचे ताप पर कार्बन डायक्साइड विच्छेदित हो कार्बन मनॉक्साइड और ऑक्सिजन में परिणत हो जाता है। उच्च ताप पर चूना भी ऐसा बनता है जो जल्दी बुझता नहीं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि चूने के ऊपर सिलिका की तह बन जाती है। सम्भवत: उच्च ताप पर चूने का कोई और रूप बन जाता है जिसक नार्मल रूप में परिवर्तन बहुत शनैः-शनैः होता है।

चूना-पत्थर—भट्ठे में उपयुक्त होनेवाला चूना-पत्थर उच्चकोटि का होना चाहिए। साधारणतया चूने में सिलिका, अलुमिना, मैगनीशिया और चूने के सलफेट रहते हैं। सिलिका और अलुमिना की मात्रा अधिक हो तो उनसे पिघलनेवाले चूने के सिलिकेट और अलुमिनेट बनते हैं जिससे चूने-पत्थर का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इनकी उपस्थिति से चूने के बुझने में भी कठिनता होती है। चूने और मैगनिशियम के सलफेट से रस के उद्वाष्पन में परतें पड़ जाती हैं। इस काम के लिए श्रेष्ठ पत्थर कैसा होना चाहिए, वह निम्नांकित विश्लेषण के आँकड़ों से विदित होता है—

	बुरा पत्थर	कामचलाऊ पत्थर	श्रेष्ठ पत्थर
जल	४·१०	६·२५	१·२१
रेत, मिट्टी और अविलेय	४·५०	३·१७	०·५५
कार्बनिक पदार्थ	१·२०	१·१२	०·४१

	बुरा पत्थर	कामचलाऊ पत्थर	श्रेष्ठ पत्थर
विलेय सिलिका	२'१०	०'६४	०'२०
लोहे के ऑक्साइड और अल्युमिना	०'३७	०'१५	०'२३
कैलसियम कार्बोनेट	८५'८६	८७'६३	६६'५८
मैगनिशियम कार्बोनेट	०'६५	०'५३	०'५०
सोडा और पोटाश	०'०५	—	—
अनिश्चित	०'८७	०'२४	०'३२

भट्ठे में जो कार्बन डायक्साइड बनता है, उसे पम्प द्वारा खींचकर रस में ले जाते हैं।

कार्बनीकरण में क्रियाएँ—रस में कुछ चूना रह जाता है। कार्बन डायक्साइड के प्रवाह से चूना कैलसियम कार्बोनेट के रूप में अवक्षिप्त हो जाता है। इस अवक्षेप के साथ-साथ रस से कुछ रंगीन पदार्थ और गोंद भी निकल जाते हैं। एक दूसरा लाभ इससे यह होता है कि कैलसियम कार्बोनेट के दानेदार अवक्षेप से छानने की क्रिया सरल हो जाती है।

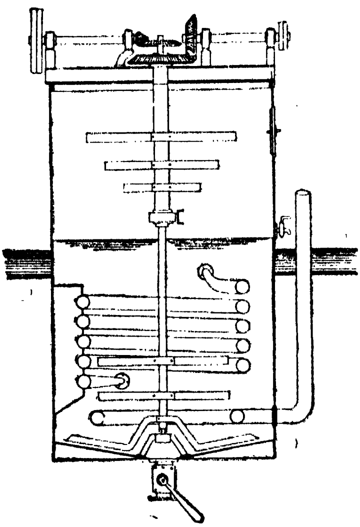
रस में अवकरण (reducing) शर्कराएँ भी रहती हैं। उनपर चूने का प्रभाव पड़ता है। ५०° श० से ऊपर ये शर्कराएँ लैक्टिक अम्ल में परिणत हो कैलसियम लैक्टेट बनती है। उच्च ताप पर अन्य अम्ल भी बनते हैं। ये सब अम्ल अस्थायी होते हैं और ऐसे धुँधले लवण बनते हैं जो क्षारीय विलयन में अविलेय होते हैं। इससे और ऊँचे ताप पर ये धुँधले अम्ल भी विच्छेदित हो सरलतम अम्ल, रंगहीन ऐसिटिक, फार्मिक कार्बोनिक इत्यादि बनते हैं।

एक-कार्बनीकरण—इस क्रिया में रस को टंकी में ले जाकर चूने का दूध ७ से १० प्रतिशत डालते हैं। दूध २०° बौमे का होता है। रस का ताप प्राय: ५०° श० पर—४५° से ५५° के बीच—रहता है। इस ताप पर शर्कराओं का भंजन प्राय: होता नहीं और इससे रस में रंग नहीं आता। चूना डाल देने के बाद कार्बन डायक्साइड को प्रवाहित करते हैं। इससे रस पर्याप्त स्निग्ध हो जाता है। इसका कारण यह है कि इक्षु-शर्करा चूने के साथ कैलसियम हाइड्रोसुक्रेट बनती है। इस समय रस से फेन भी बहुत निकलता है; क्योंकि गैस का शोषण बहुत कम होता है। पर शीघ्र ही कार्बन डायक्साइड की क्रिया से सुक्रेट विच्छेदित हो जाता है और रस की क्षारीयता बढ़ जाती है। ऐसे रस के प्रति लिटर में प्राय: ६० मिलिग्राम चूना रहता है। ऐसा विलयन फिनोल्फ्थ-लीन से हलका गुलाबी रंग देता है।

द्वि-कार्बनीकरण—यहाँ पहले कार्बनीकरण में ज्योंही सुक्रेट का अवक्षेप बनना समाप्त हो जाता है, कार्बन डायक्साइड का प्रवाह रोक देते हैं और रस को छान लेते हैं। स्वच्छ छने रस में कार्बन डायक्साइड को दुबारा प्रवाहित कर संतृप्त कर लेते हैं। अब रस को कुछ मिनटों तक उबालकर बाइकार्बोनेटों को तोड़कर फिर छान लेते हैं।

हानकी कार्बनीकरण रीति—पहले चूना देकर फिर कार्बन डायक्साइड डालने से रस में फेन बहुत पैदा होता है। इसलिए हान ने नई खोज के अनुसार चूना और कार्बन डायक्साइड साथ-साथ डालने का सुझाव रखा। इससे एक बड़ा लाभ यह है कि कैलसियम कार्बोनेट का अवक्षेप दानेदार होता है, जिससे छानने में बड़ी सहूलियत होती है। दूसरा लाभ यह है कि चूने की मात्रा बहुत कम—रस के भार का केवल एक प्रतिशत—लगती है। इससे चूने की बचत के साथ-साथ कोक की भी बचत होती है। रस भी बहुत पतला नहीं होता और छानने की क्रिया शीघ्रता से सम्पादित हो जाती है। यहाँ सुक्रेट भी नहीं बनता जिससे फेन बहुत कम पैदा होता है।

कार्बनीकरण के पात्र—कार्बनीकरण टंकियों में होता है। टंकियां चौकोन होती हैं अथवा वर्तुलाकार। ये इस्पात की चादर की बनी होती है। इनकी ऊँचाई २० फुट तक होती है। इनका व्यास समावेशन पर निर्भर करता है। इनके पेंदे में छेदवाला कुण्डल होता है जिसके द्वारा गैस प्रविष्ट करती है। टंकी को गरम करने के लिए वाष्प-कुण्डल भी रहता है। रस को क्षुभित करने के लिए क्षोभक भी लगा रहता है। यदि टंकी के पेंदे में कुछ बैठ जाय तो उसे खुरेचकर निकाल डालने के लिए अपोद् घर्षक (scraper) लगा रहता है। क्षोभक में फलक (blade) भी लगे रहते हैं जो झाग के तोड़ने का काम देते हैं। टंकियों में चिमनी भी लगी रहती है जो गैसों को निकलने के लिए बनी है। ऐसे एक टंकी का चित्र (चित्र ४६) यहाँ दिया है।



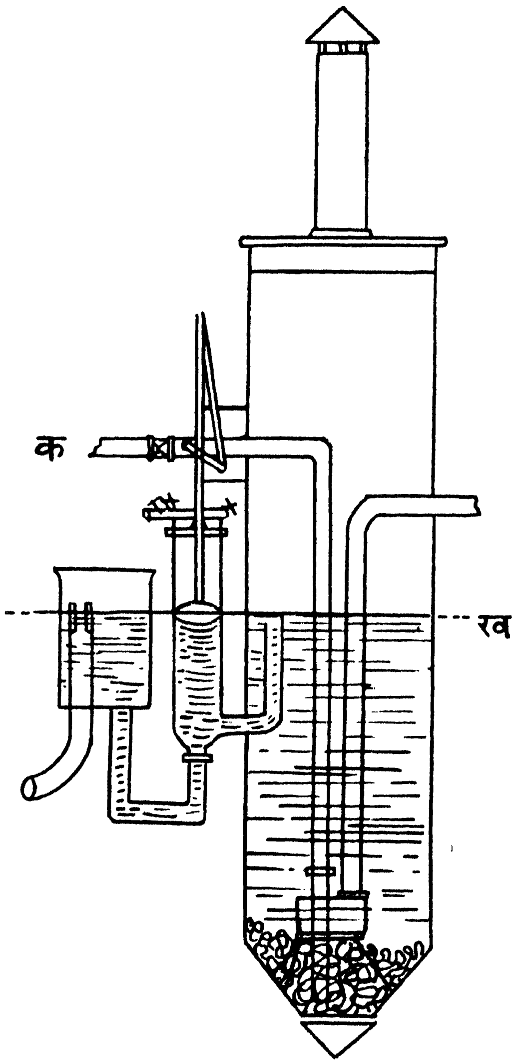
चित्र ४६—एक कार्बनीकरण टंकी

अविराम टंकियाँ भी आज बनी हैं। इनमें रस आता और साइफन सिद्धान्त के अनुसार निकलता रहता है। ऐसी एक टंकी का चित्र (चित्र ५०) आगे दिया हुआ है।

ये टंकियाँ रस से पूर्णत: भरी नहीं जातीं। केवल आधा ही भरी जाती हैं, ताकि रसमें उफान आने पर बाहर न निकल जाय। पहले कार्बनीकरण में १० से १५ मिनट लगता है। दूसरे कार्बनीकरण में केवल तीन से पाँच मिनट लगता है।

कार्बनीकरण से पूर्णत: स्वच्छ चीनी प्राप्त होती है। ऐसी चीनी जो स्वच्छता में चुकन्दर की चीनी से बराबरी कर सके। चीनी की प्राप्ति भी डेढ़ से अढ़ाई प्रतिशत बढ़ जाती है। कार्बनीकरण से प्राप्त पतला रस पर्याप्त शुद्ध होता है। एक लिटर रस में चूने की मात्रा (CaO) ७० मिलिग्राम से कम, फ़ास्फ़ेट (P_2O_5) १० मिलिग्राम से कम, मैगनिशिया (MgO), २० मिलिग्राम से कम, सिलिका (SiO_2) २० मिलिग्राम से कम और सल्फेट (SO_4) ३०० मिलिग्राम से कम रहती है।

रस छानने के लिए फिल्टर प्रेस का उपयोग होता है। इस का वर्णन आगे होगा।



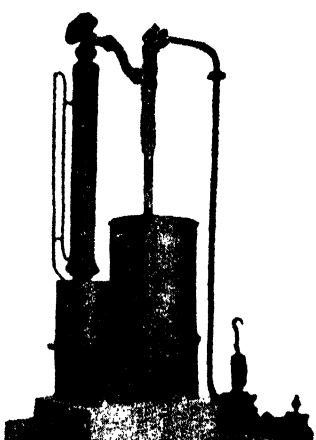
चित्र ५०—एक अविराम कार्बनीकरण टंकी। इसमें 'क' से रस प्रविष्ट करता है और 'ख' तल तक भरा रहता है। तल के उठने पर साइफन द्वारा अधिक रस निकल जाता है।

उन्नीसवाँ प्रकरण

गंधकीकरण विधि

रस के विमलीकरण में सलफर डायक्साइड का व्यवहार होता है। सलफर डायक्साइड का उपयोग बहुत पुराना है; पर चीनी के विमलीकरण में पहले-पहल १८६० ई० में इसका व्यवहार हुआ और तब से इसका व्यवहार बढ़ता ही गया है। इसके लिए गंधक अकेला अथवा अन्य प्रतिकारकों के साथ-साथ उपयुक्त होता है। गन्धक सलफर डायक्साइड के रूप में उपयुक्त होता है।

गन्धक चूल्हा—गंधक की भट्ठी में जलाकर सलफर डायक्साइड बनाते हैं। यह भट्ठी बन्द होती है (चित्र ५१)। इंजिन द्वारा इन भट्ठियों में हवा पहुँचाई जाती है। इसीके जोर से गन्धक जलता है। भट्ठी को ठंढा रखने के लिए जल-निचोलित बकस बना रहता है। एक लम्बा नल, जिसका व्यास ६ से ८ इंच होता है और जिस पर निचोल बना होता है, गैस को बकस से निकालकर गस नल में ले जाता है। बक्स में उद्धनित गंधक भी संघनित हो बाहर जाने से रुक जाता है। एक शुष्ककारक बक्स द्वारा इंजन से हवा प्रविष्ट करती है। शुष्ककारक बक्स ढालवाँ लोहे का बना होता है और उसके स्थाल में सजीव चूने के स्तर रखे रहते हैं। पेंदे से वायु प्रविष्ट कर चूने पर से निकलकर संपीड़क (Compressor) में जाती है।



चित्र ५१—गंधक-भट्ठी

एक दूसरे प्रकार की भी गंधक जलाने की भट्ठी होती है। यह घूमनेवाली होती है। इसमें गन्धक डालने का यांत्रिक साधन होता है। दहन की उष्मा से गंधक पिघल जाता है और घूमते हुए बेलन पर दहन का पर्याप्त तल होने के कारण वायु को खींचकर जलता और सलफर डायक्साइड बनता है। यहाँ से निकली हुई गैसों में ५ से १६ प्रतिशत सलफर डायक्साइड रहता है।

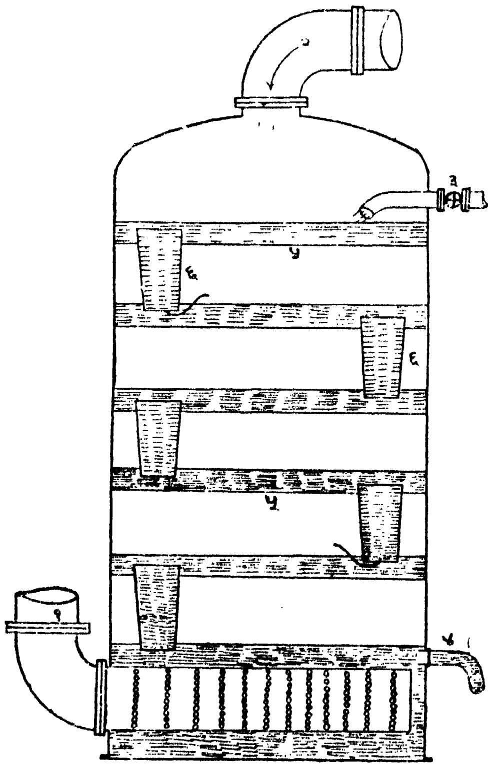
गंधकीकरण टंकी—गंधकीकरण टंकियों में होता है। टंकियाँ भिन्न-भिन्न आकार की होती हैं। साधारणतया ये लोहा या इस्पात की बनी होती हैं। उनमें ढक्कन और चिमनियाँ लगी रहती है। उनमें शिखियाँ, कपाट और गैसों के लिए छेदवाले नल भी होते हैं। नल और टंकियाँ ऐसी बनी होती हैं कि उन्हें समय-समय पर सफाई करने में सहूलियत हो। ये टंकियाँ प्रायः १५ फुट ऊँची और प्रायः ४ फुट व्यास की होती है।

रस ऊपर से प्रविष्ट कर छेदवाले इस्पात पट्ट पर गिरता और तब झरने के रूप में गिरता है। नीचे से सलफर डायक्साइड की धारा जाती हुई रस से मिलती है।

गैस का शोषण एक बकस या मीनार में हो सकता है। यह बकस या मीनार लकड़ी का बना होता है। बीच-बीच में इस्पात के पट्ट रखे रहते हैं। ऊपर से नल द्वारा रस प्रविष्ट करता है और नीचे के नल से आता हुआ सलफर डायक्साइड के संसर्ग में आकर प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

वायु उन्नायक (ejector) से गैसें बहतीं और एक छोटी धौंकनी से आती हैं।

गंधक की मात्रा—गंधक की मात्रा चूने की मात्रा और आवश्यक अम्लता पर निर्भर करती है। यदि किसी रस की अम्लता १ सी० सी० है (अर्थात् १०० सी० सी० रस के लिए एक सी० सी० नार्मल क्षार की उदासीकरण के लिए आवश्यकता होती है) तो



चित्र ४२—इस टंकी में गैस धोने के लिए भी प्रबन्ध रहता है। यह टंकी स्तम्भाकर होती है, जिसमें क्षैतिज व्यवधान '५' लगे रहते हैं। प्रत्येक व्यवधान में एक कीप '६' लगा रहता है। '३' टोटी से पानी पम्प द्वारा प्रविष्ट करता हुआ व्यवधान और कीप द्वारा बहते हुए मार्ग '४' से निकल जाता है। भट्ठे से आकर गैस '१' मार्ग से सछिद्र पट्ट द्वारा ऊपर बहती है। इससे गैस का ताप भी घटकर ४०° श० हो जाता है।

ऐसे एक लिटर विलयन के लिए ०·१६ ग्राम गन्धक की जरूरत पड़ेगी। यदि विमलीकरण में केवल गन्धक का उपयोग होता है तो गन्धक की मात्रा ०·२ से ०·४ ग्राम तक लग

सकती है। किसी-किसी दशा में यह १ ग्राम तक पहुँच सकती है। गन्धक जलकर सलफर डायक्साइड बनता है। एक पाउण्ड गन्धक के जलने के लिए प्राय: ४·५ पाउण्ड वायु की आवश्यकता होती है; पर जलना बहुत अच्छा नहीं होता। इससे साधारणतया एक पाउण्ड गन्धक के जलाने के लिए प्राय: ६ पाउण्ड वायु का प्रबन्ध होना चाहिए। इस कारण एक पाउण्ड गन्धक के लिए नार्मल ताप पर १२५ घन फुट वायु पम्प होना चाहिए। वायु में आक्सिजन का अधिक-से-अधिक आयतन २०·८ प्रतिशत रहता है। जितनी वायु आवश्यक है उससे दुगुनी वायु के कारण इसकी मात्रा प्राय: १०·४ प्रतिशत हो जाती है।

चूना देने के बाद गंधकीकरण—रसको उदासीन करने के लिए जितने चूने की आवश्यकता होती है उससे बहुत अधिक चूना डालते हैं। १०० गैलन रस के लिए २६ ५° ब्रिक्स चूने के दूध का प्राय: ८ गैलन उपयोग में लाते हैं। इसमें सलफर डायक्साइड के प्रवाह से पर्याप्त मात्रा में भारी अवक्षेप बनता है। सलफर डायक्साइड तबतक प्रवाहित करते हैं, जबतक विलयन फिनोल्फथलीन से उदासीन न हो जाय। अब अवक्षेप को छान लेते अथवा स्वच्छ रसको निथारकर निकाल लेते हैं। इसे अब गाढ़ाकर ठंढा करते और तब थोड़ा सलफर डायक्साइड देकर अम्लिक बना लेते हैं। अम्लता ऐसी होनी चाहिए कि १० सी० सी० गाढ़े रस के लिए दशमांश नार्मल-क्षार के प्राय: ३ सी० सी० विलयन लगे।

हारलौफ रीति—इस रीति में रस को पहले ७५° श० तक गरम कर साथ-ही-साथ चूना और सलफर डायक्साइड डालते हैं कि विलयन फिनोल्फथलीन के लिए अम्लिक रहे; पर लिटमस के लिए क्षारीय हो जाय। अन्त में चूना का दूध डालकर विलयन को प्रबल क्षारीय बनाकर फिर सलफर डायक्साइड प्रवाहित कर लिटमस के लिए उदासीन बना देते हैं। ऐसे रसको क्वथन विन्दु तक गरम कर निथरने के लिए छोड़ देते हैं।

इस रीति में एक सुधार हुआ है, जिसके अनुसार रस को ६०° श० तक गरमकर चूने का ६० प्रतिशत उसमें डाल देते हैं। उसके बाद उसमें सलफर डायक्साइड डालते हैं। प्रतिलिटर में सलफर डायक्साइड की मात्रा कम-से-कम ३ मिलिग्राम रहनी चाहिए। अब इसे क्षोभकवाले टंकी में रखकर शेष चूना डालकर पीएच० ८·७ बनाकर फिर फास्फरिक अम्ल डालकर पीएच० ७·४ से ७·६ कर लेते हैं। इसके बाद रस को तापक में १००° श० तक गरमकर निथरने के लिए छोड़ देते हैं। मलको छानकर निकाल लेते और रस को गाढ़ा होने के लिए भेज देते हैं। यहाँ प्रति टन चीनी के लिए ७३ ५ पाउण्ड चूना, ४ ५ पाउण्ड P_2O_5 और २८·५ पाउण्ड गन्धक लगता है। फास्फेट के कारण रस का विमलीकरण बहुत उच्च कोटि का होता है। इस रीति में गोंदों की प्राय: ६५·८ प्रतिशत मात्रा निकल जाती है, जब कि सामान्य विमलीकरण में केवल ३६ प्रतिशत मात्रा निकलती है। यहाँ गंधकीकरण के पहले चूना डालने से परिणाम सदा उत्तमतर होता है।

नेविले की सविराम गंधकीकरण रीति—नेविले ने इस रीति का वर्णन निम्न-लिखित रूप में किया है। यह रीति मिश्र में उपयुक्त होती है।

१५° बौमे के चूने का दूध ७५° श० तक गरम किये रस में गंधकीकरण टंकी में पहुँचने के कुछ फुट पहले नल में डालते हैं। इस नल में रस के और चूने के मिल जाने का प्रबन्ध रहता है। चूना इतना डालते हैं कि रस का पीएच० ८·६ हो जाय। रस और चूना प्राय: ८ सेकंड ही संसर्ग में रहते हैं। वर्तुलाकार लोहे के चादर की टंकी में जिसका व्यास प्राय: ८ फुट होता है गंधकीकरण होता है। टंकी के पेंदें में छेदवाला पट्ट होता है जिसके ऊपर रस प्रविष्ट करता और जिस के नीचे से गैस प्रविष्ट करती है।

यह आवश्यक है कि गंधक की दो भट्टियाँ रहें, ताकि गंधक डालने के समय सल्फ़र डायक्साइड का बनना बन्द न रहे। काम बराबर चलता रहे।

गंधकीकरण टंकी से निकलने पर रस का पीएच० ७·० से ७·४ रहता है। यह तब क्वथन विन्दु तक गरम कर निथरने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस सविराम गंधकीकरण से पूरा सन्तोष हुआ है। चूने की मात्रा कम लगती और गंधक की मात्रा कम होकर ४५ प्रतिशत हो जाती है। इससे रस एकसा और बहुत स्वच्छ प्राप्त होता है। निथरना बहुत अच्छा होता और छानना सरल हो जाता है। मल का आयतन कम हो जाता और वह सघन होता है।

बाक की गंधकीकरण रीति—इस रीति में गंधकीकरण दो क्रमों में होता है। पहले क्रम में १००० गैलन ठंढे रस में २६·५° ब्रिक्स के चूने का दूध ५ से ७ गैलन डाल कर तब सलफ़र डायक्साइड प्रवाहित किया जाता है, ताकि विलयन फिनोल्फ़थलीन से उदासीन हो जाय। अब रस को क्वथन विन्दु तक गरम करके निथरने के लिए छोड़ देते हैं। जब मल नीचे बैठ जाता है तब रस को निकाल लेते हैं। अब स्वच्छ रस को प्राय: ५५° ब्रिक्स घनता तक उद्वाष्पन से गाढ़ा करते हैं। दूसरे क्रम में गाढ़े रस के १००० गैलन में १६ से १७ गैलन चूने का दूध डालकर फिर सलफ़र डायक्साइड प्रवाहित कर रस को फिनोल्फ़थलीन के प्रति उदासीन करते हैं। ऐसे रस को प्राय: ६०° श० तक गरम कर प्रेस में छान लेते हैं। ऐसे छाने हुए सीरे में कैलसियम बाई-सलफ़ाइट रहता है। इसको प्राय: ६०° श० तक गरम करके टंकी में निथरने के लिए छोड़ देते हैं। अब स्वच्छ रस को निकाल कर फिर सलफ़र डायक्साइड प्रवाहित कर फिनोल्फ़लीन के प्रति आम्लिक बना लेते हैं।

बाक रीति में तीन टंकियों की आवश्यकता होती है। इसमें चूने की मात्रा भी अधिक लगती है।

गंधकीकरण में दो-तीन बातें स्मरण रखने की हैं। गंधक जब वायु में जलता है तब उससे सलफ़र डायक्साइड बनता है, जो जल में घुलकर सलफ्यूरस अम्ल बनता है।

$$S + O_2 = SO_2$$
$$SO_2 + H_2O = H_2SO_3$$

यदि वायु में जल का अंश हो तो सलफ़रडायक्साइड के साथ-साथ सलफ़र-ट्रायक्साइड भी कुछ बनता है। यह सलफ़रडायक्साइड जल में घुलकर सलफ्यूरिक अम्ल बनता

$$SO_3 + H_2O = H_2SO_4$$

है। सलफ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति हानिकारक है। अतः इसका बनना रोकना बहुत

आवश्यक है। इसके रोकने के लिए वायु को भट्ठी में प्रविष्ट होने के पहले पूर्णतः सुखा लेते हैं। ऐसा करने के लिए वायु को एक ऐसे बक्स के द्वारा प्रवाहित करते हैं, जिसके स्थाल में चूना रखा होता है। यह चूना जल को सोख लेता है।

रस से जो पानी उद्वाष्पन द्वारा निकलता है, उसमें कुछ सलफ़र डायक्स इड अवश्य रहता है। थोड़ी मात्रा में सलफ्युरिक अम्ल का रहना भी असम्भव नहीं है। यदि इस जल को वाष्पित्र में उपयोग करना हो तो सोडा द्वारा अम्लों को दूर कर लेना बहुत आवश्यक है। प्रति १०० टन ईख के लिए सोडियम कार्बोनेट की मात्रा १ पाउण्ड से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

केवल सलफ़र डायक्साइड से रस का विमलीकरण ठीक नहीं होता। केवल गंधकीकरण से रस से केवल ०·३ से ०·४ प्रतिशत अवक्षेप के रूप में निकलता है। इस अवक्षेप का संगठन निम्नलिखित रूप में पाया गया है—

जल	४·०७	४·४६
चर्बी और मोम	३२·५७	१६·७१
प्रोटीन	२३·६३	२१·७५
राख और खनिज	६·४८	२०·४५
तन्तु	८·०५	१०·३७
गोंद इत्यादि	२०·२०	२३·२३

चूने के साथ गंधकीकरण होने से अवक्षेप अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। यदि कार्बनीकरण के साथ-साथ गंधकीकरण हो तो और भी अच्छा होता है। दोनों के उपयोग से रस की स्वच्छता उच्च कोटि की होती है और उससे बड़ी सफ़ेद चीनी प्राप्त होती है।

अन्य प्रतिकारक—रस के रंग को दूर करने और अशुद्धियों को निकाल बाहर करने के लिए अन्य कुछ प्रतिकारकों का भी उपयोग हुआ और होता है। उनमें निम्नलिखित प्रतिकारक उल्लेखनीय हैं—

हाइड्रो-सलफ़ाइट—कैलसियम और सोडियम के हाइड्रो-सलफ़ाइट रस के रंग को दूर करने के लिए उपयुक्त हुए हैं। सफ़ेद चीनी के तैयार करने में ही इसका उपयोग होता है। शून्य कड़ाह में मणिभ बनने के ठीक थोड़ा पहले इसे इस्तेमाल करते हैं; क्योंकि इससे विरंजित पदार्थों के वायु में खुला रखने से फिर रंग आ जाता है। कितना इस्तेमाल करना चाहिए—यह रस पर निर्भर करता है। एक टन चीनी में एक पाउण्ड सोडियम हाइड्रो-सलफ़ाइट उपयुक्त होता है; पर इससे कम में भी काम चल सकता है।

फास्फ़ेट—फास्फ़रिक अम्ल अथवा विलेय फ़ास्फ़ेट भी रस के विमलीकरण में उपयुक्त होता है। रस के १०० गैलन के लिए आधा पाउण्ड पर्याप्त समझा जाता है। फास्फ़रिक अम्ल एक दुर्बल अम्ल होने के कारण रस के अम्लिक बनने के लिए भी इसका उपयोग होता है। शीरे से लोहे के लवणों को दूर करने के लिए भी डाइ-सोडियम फ़ास्फ़ेट उपयुक्त हुआ है। इस काम के लिए दाना बनने के ठीक पूर्व में इसे डालते हैं।

सक्रिय कार्बन—रस के रंग को दूर करने के लिए १६१० ई० में पहले-पहल महीन कार्बन का उपयोग हुआ था। आजकल सक्रिय कार्बन तैयार होता है, जिसमें रंग दूर करने की प्रबल शक्ति है। सक्रिय कार्बन इस प्रकार तैयार होता है—

सामान्य कोयले को प्राय: ४००° श० पर वायु में गरम करने से वह सक्रिय हो जाता है। पर अच्छा उत्पाद ८००-१०००° श० पर अतितप्त वाष्प की उपस्थिति में गरम करने से प्राप्त होता है। यदि काठ को जिंक क्लोराइड, कैलसियम क्लोराइड अथवा सलफ्यूरिक अम्ल के विलयन में भिंगाकर निम्न ताप पर भी गरम किया जाय तो सक्रिय कार्बन प्राप्त होता है। कोयला बनने पर उसे धो डालने से ये सब पदार्थ निकल जाते हैं। धान की भूसी से भी सक्रिय कार्बन प्राप्त होता है। भूसी में अधिक सिलिका रहता है। इस सिलिका को क्षारक सोडा से उबालकर निकाल देते हैं। ईख के सीठे से भी प्रस्तुत लेखक ने पर्याप्त सक्रिय कोयला तैयार किया है, जो रस के रंग दूर करने में उपयुक्त हो सकता है। छोए पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से किसेलगुहर पर कार्बन प्राप्त होता है, जो रंग दूर करने में उपयुक्त हुआ है।

ऐसा समझा जाता है कि अमणिभ कार्बन के दो रूप होते हैं। एक रूप निम्न तापक्रम पर बनता है, जो सक्रिय बनाया जा सकता है। दूसरा रूप उच्च ताप पर बनता है और ग्रेफ़ाइट-सा होता है और सक्रिय नहीं बनाया जा सकता। जब काठ का कोयला बनता है तब कोयले के बनने के समय कुछ हाइड्रोकार्बन उसमें शोषित हो जाता है, जो कोयले को निष्क्रिय बना देता है। यदि इन हाइड्रोकार्बनों को निकाल डालें तो वह कोयला सक्रिय बन जाता है। यह हटाना कोयले के गरम करने से, आसवन से अथवा ऑक्सीकरण से सम्पादित हो जाता है। इसके गरम करने में सावधानी रखनी चाहिए। न इतना कम गरम होना चाहिए कि हाइड्रोकार्बन निकले ही नहीं और न इतना अधिक गरम होना चाहिए कि वह ग्रेफाइट रूप का बन जाय। बहुत उच्च तापक्रम पर हाइड्रोकार्बन के विच्छेदन से भी निष्क्रिय कार्बन बन सकता है। सक्रिय कार्बन बनाने के लिए जिन पदार्थों से काठ भिंगोया जाता है, वे सभी ऐसे हैं जो जल को खींच लेते और काठ के समस्त कार्बन को कोयले में परिणत कर देते हैं। इस कारण हाइड्रोकार्बन नही बनते और कोयला सक्रिय हो जाता है।

सक्रिय कार्बन बार-बार इस्तेमाल हो सकता है। इस कारण आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपयोग करने से कोई हानि नही होती। यदि यह निष्क्रिय हो जाय तो उसे पुनर्जीवित कर सक्रिय बना सकते हैं। सूखे पदार्थ का ५ प्रतिशत इस्तेमाल होता है और १० बार तक एक के बाद दूसरे इस्तेमाल हो सकता है। कुछ सीमा तक केवल सोडियम कार्बोनेट के धोने से आंशिक पुनर्जीवन हो जाता है; पर अन्त में गरम करने से ही पूर्ण पुनर्जीवन होता है।

सक्रिय कार्बन अभी रस के रंग दूर करने में नहीं उपयुक्त होता है। यह कच्चे चीनी के साफ करने में ही उपयुक्त होता है।

अन्य प्रतिकारक—इन पदार्थों के अतिरिक्त, क्षारों की उपस्थिति में एल्युमिनियम के लवण, टैनिन, बेराइटा, पोटैसियम फेरोसायनाइड इत्यादि उपयुक्त हुए हैं।

क्षारों की उपस्थिति में एल्युमिनियम लवण एल्युमिनियम हाइड्रॉक्साइड का अवक्षेप देता है; जिस अवक्षेप के साथ-साथ कोलायड और रंगीन पदार्थ निकल जाते हैं। टैनिन से भी अनेक पदार्थ निकल जाते हैं। भारत में इसका उपयोग बहुत दिनों से घरेलू चीनी के बनाने में होता आ रहा है। एक टन सीरे में एक आउंस पोटैसियम फेरोसायनाइड से लोहा प्रायः पूर्ण रूप से निकल जाता है।

इधर विद्युत् प्रवाह से भी रस के विमलीकरण का दावा किया गया है; पर इस विधि का उपयोग किसी कारखाने में अभी तक नहीं हुआ है। बड़ी मात्रा में यह उपयुक्त हो सकता है कि नहीं, यह प्रश्न अभी बहुत संदिग्ध है।

बीसवाँ प्रकरण

निःस्यन्दन

यदि हमें ऐसी शर्करा बनानी है, जिसकी शुद्धता ९६° हो तो सारे रस के छानने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शुद्ध रस को निथारकर ऊपर से निकाल लेने और केवल मल और मलफेन को छानने से काम चल जाता है। पर यदि हमें बिलकुल शुद्ध सफेद चीनी प्राप्त करनी है तो सारे रस का छानना बहुत आवश्यक होता है। कार्बनीकरण और गंधकीकरण के बाद तो छानना अनिवार्य हो जाता है।

स्वच्छ रस को निथारकर निकाल लेने पर मल में प्राय: १० से १५ प्रतिशत रस रह जाता है। इस रस को छानकर प्राप्त करना बहुत जरूरी है, नहीं तो चीनी का पर्याप्त अंश इसमें नष्ट हो जायगा।

तल में बैठे मल को सीधे निस्यन्द प्रेस में ले जाते हैं, जहाँ मल को पानी से धोते अथवा बिना धोए ही छोड़ देते हैं। यदि प्रेस में पानी डालकर मल को धोते हैं तो ऐसे हलके रसवाले पानी को फिर ताजे मल के धोने में उपयोग कर सकते हैं अथवा उसे सीधे उद्वाष्पक में भेज देते हैं।

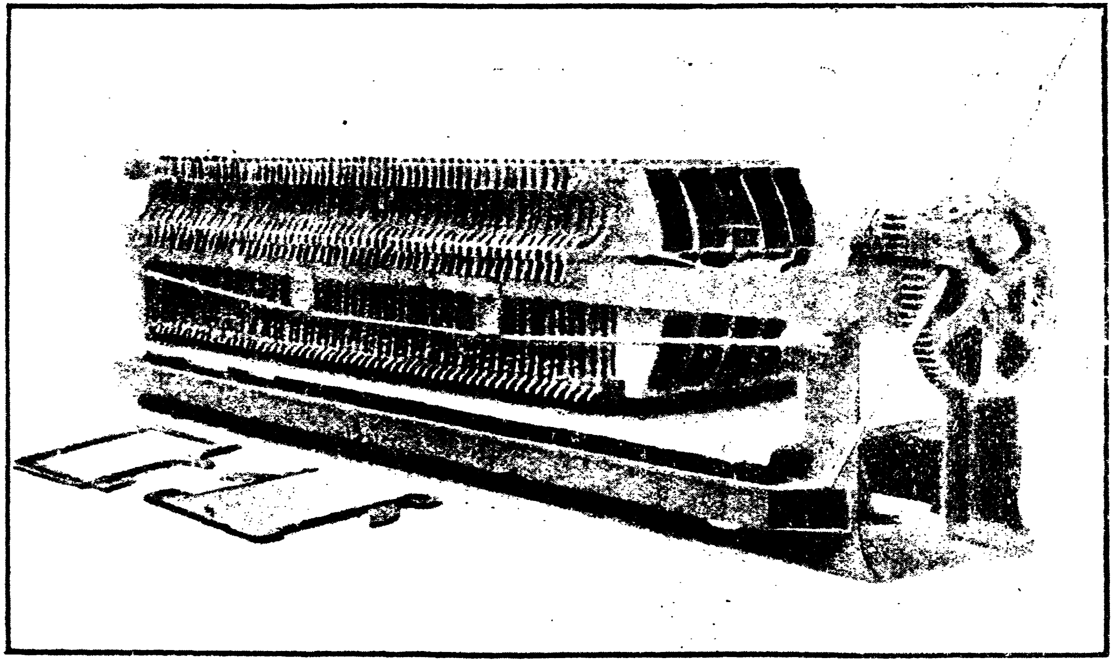
यदि मल को धोते नहीं तो उसे निथारक टंकी में रखकर, पानी मिलाकर उसमें भाप द्वारा गरम कर के तब फिर प्रेस में छानते हैं। इस प्रकार से प्राप्त रस को ताजे मल के धोने में उपयोग करते हैं।

निथरे रस को भिन्न-भिन्न प्रकार के निस्यन्दक में—जैसे रेत-निस्यन्दक, पत्र-निस्यन्दक, सीठा निस्यन्दक या अन्य निस्यन्दकों में छानते हैं अथवा मल और समस्त रस को एक साथ ही पट्ट और चौखट प्रेस में छान लेते हैं।

साधारणतया जो रीति बरती जाती है, वह है स्वच्छ रस को निथारकर निकाल लेना और मल और मलफेन को धोकर प्रेस में छान लेना तथा हलके धोवन को ताजे मल के धोवन में उपयोग करना। कुछ रसों में मल के धोने का काम बड़ा धीरे धीरे होता है।

निस्यन्द प्रेस—रस के छानने के लिए अनेक साधन उपयुक्त होते हैं। इनमें सबसे सरल और पुरानी रीति फिल्टर प्रेस—निस्यन्द प्रेस—का उपयोग है। अधिकांश मिलों में छानने के लिए आज निस्यन्द प्रेस ही उपयुक्त होते हैं। निस्यन्द प्रेस का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

निस्यन्द प्रेस में वर्गाकार पट्ट होते हैं।

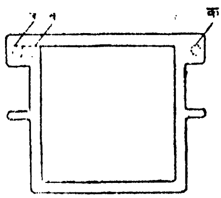


चित्र ४३—फिल्टर प्रेस (निस्यन्द प्रेस)

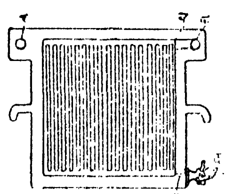
पट्ट दो प्रकार के होते हैं। एक को रस-पट्ट कहते और दूसरे को जल-पट्ट कहते हैं। ये दोनों पट्ट प्रायः एक से ही होते हैं। केवल जलपट्ट में रस प्रविष्ट होने के लिए नली लगी रहती है। ये पट्ट प्रायः डेढ़ इंच तक मोटे होते हैं। ऐसे अनेक पट्ट प्रेस में रहते हैं। इन पट्टों पर छाननेवाला वस्त्र रखा जाता है। ये पट्ट एक मजबूत ढाँचे में प्रबल भ्रमि-उत्थाप (Jack Screw) से जकड़े होते हैं (चित्र ५१)। दोनों पट्टों के बीच में छानने के लिए कपड़ा तानकर रखा जाता है। प्लेट के दोनों ओर नलियाँ होती हैं। एक ओर की नली से रस प्रविष्ट करता है और दूसरे ओर की नली से छना हुआ स्वच्छ रस निकलता है। रस के आने-जाने के लिए शिखी लगी रहती है।

प्रेस को ठीक करते हैं। कपड़े को पट्टों के बीच में रख देते, रस-पट्ट और जल-पट्ट को यथास्थान पर रख देते हैं। भ्रमि-उत्थाप से सब को कस देते हैं।

एक मार्ग 'क' से दबाव द्वारा मैले रस को प्रविष्ट कराते हैं। 'ब' नली द्वारा रस प्रविष्ट करता है। कपड़े से अशुद्धियाँ रुक जाती हैं और स्वच्छ रस निकल कर 'स' नली द्वारा और 'द' शिखी द्वारा निकलकर पेंदे की नाली में इकट्ठा होता है। जब कपड़े पर



चित्र ५४—फिल्टर-प्रेस का रस-पट्ट (प्लेट) यह वर्गीय आकार का होता है। इसकी मोटाई $1\frac{1}{2}$ इंच होती है, जितनी मोटाई होती है उतनी ही मोटा पिंड बनती है और यह अवक्षेप की प्रकृति पर निर्भर करता है।



चित्र ५५—फिल्टर-प्रेस का जल-पट्ट

पर्याप्त अशुद्धियाँ जम कर वह भर जाती है तब उसका धोना प्रारम्भ होता है। अनुप्रस्थ (Transverse) मार्ग से जल प्रविष्ट कराया जाता है और जल-पट्टों की शिखियाँ बन्द कर दी जाती हैं। शिखियों के बन्द हो जाने से जल पिंड-दीवार से प्रवाहित हो, उसे धोकर रस को निकाल लेता है। रस प्रविष्ट कराने की दो रीतियाँ हैं। एक रीति में रस प्रेस के मध्य से प्रविष्ट करता है और दूसरी रीति में पार्श्व से। मध्य से प्रविष्ट होनेवाला प्रेस ही अधिकांश मिलों में उपयुक्त होता है।

अच्छे प्रेस के लिए प्रति-वर्ग इञ्च में ४० पाउण्ड का दबाव पर्याप्त है। इससे अधिक दबाव से प्रेस के टूट जाने की सम्भावना रहती है और कपड़े पर जो पिंड बनेगा वह इतना पिंड बनेगा कि उसमें जल प्रविष्ट करने में असमर्थ होगा।

अशुद्धियों के पिंड को धोने के लिए जल का उपयोग होता है। कार्बनीकरण और गंधकीकरण रीतियों में तो जल से धोना अत्यावश्यक होता है। धोवन-जल कम

लगे और उसके गाढ़ा करने में कम खर्च पड़े, इस कारण धोवन-जल को ताजे पिंड के धोने में उपयोग करते हैं, ताकि उससे गाढ़ा रस प्राप्त हो। छोटे-छोटे मिलों में तो पिंड में पानी डालकर निथारक में निथारने के लिए छोड़ देते हैं और हलके रस को निकालकर बिना छाने ही पिंड को फेंक देते हैं।

कुछ मिलों में प्रेसपिंड से अधिकतम चीनी निकाल लेने के उद्देश्य से उसे दोबारा छानते हैं। पहली बार जैसे ऊपर वर्णन किया गया है, छान लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त प्रेस-पिंड को निकालकर यंत्रों से तोड़ते हैं और तब उसमें पानी डालकर लेई-सा बनाते हैं। इस लेई को तब क्वथन विन्दु तक गरम करके, तब पम्प करके, फिर निस्यन्द प्रेस में छानते हैं। इस प्रकार से प्राप्त निस्यन्दक मल को हलका करने में उपयोग करते हैं। इस रीति से मल में बिना अधिक जल डाले आधे प्रतिशत से कम मात्रा चीनी की रह जाती है। इस प्रथा के व्यवहार की उपयोगिता संदिग्ध है। किसी-किसी ईख के रस के लिए यह लाभदायक हो सकती है; पर सब प्रकार की ईखों के रस के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता।

निस्यन्दक का समावेशन—निस्यन्दक का समावेशन कितना रहना चाहिए, यह बताना सरल नहीं है। इस सम्बन्ध में कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। विमलीकरण में रस के आयतन का १० प्रतिशत मल प्राप्त होता है अथवा ईख पर ०·३ से ०·४ प्रतिशत मल प्राप्त होता है। इसके लिए छानने का क्षेत्रफल कम-से-कम यदि ६५ वर्गफुट प्रतिटन-ईख-घंटा रहे, तो वह पर्याप्त होगा। पर यदि १०० से १२० वर्गफुट प्रतिटन ईख-घंटा का प्रबन्ध रहे तो उत्तम है। दोबारा छानने के लिए भी यही आँकड़े पर्याप्त है।

कार्बनीकरण में पहले निस्यन्दन के लिए १०० से १२० वर्गफुट प्रतिटन ईख घंटा और दूसरे निस्यन्दन के लिए ४० से ५० वर्गफुट पर्याप्त है।

पत्र-निस्यन्दक में केवल ३० से ४० वर्गफुट पतिटन-ईख-घंटा, शिरा निस्यन्दक में ३० से ४० वर्गफुट और सीटा-निस्यन्दक में १० घनफुट प्रतिटन ईख-घंटा पर्याप्त है।

ओलिवर-कैम्पबेल फिल्टर—इधर कुछ वर्षों से एक नये प्रकार का फिल्टर निकला है, जिसका उपयोग दिन-दिन बढ़ रहा है। यह फिल्टर घुमनेवाला शून्य किसिम का है। इसमें घुमनेवाला एक डिंडिम होता है, जिस पर ताँबे का सछिद्र पट्ट मढ़ा होता है। जिस रस को छानना होता है, उसमें इस डिंडिम को डूबा देते हैं। जैसे डिंडिम परिभ्रमण करता है उसके तलपर पतला पिंड जम जाता है, जिसे समय-समय पर धो और सुखाकर अपोद्घर्षक (scrapers) से छीलकर निकाल लेते हैं। शून्य पम्प द्वारा ग्राहक में शून्य रखते हैं। दो ग्राहक होते हैं। एक में गदला निस्यन्द और दूसरे में स्वच्छ निस्यन्द रखते हैं। ये दोनों रस गरम रहते हैं और शून्य के कारण काफी उछलते और वाष्प बनते हैं। वाष्पों को संघनित कर रोक रखने के लिए पात्र और जल-पाश (moisture trap) होते हैं।

पहला निस्यन्द गदला होता है; पर ज्यों ही पट्ट पर पिंड बन जाता है तथा ठोस पदार्थ का प्रवेश रुक जाता है त्योंही निस्यन्द स्वच्छ होता है। अब दूसरे ग्राहक में निस्यन्द इकट्ठा होता है। गदले रस को फिर लौटा देते हैं और स्वच्छ रस को उद्वाष्पन के लिए ले जाते हैं। यहाँ ०·४ से ०·६ प्रतिशत मल प्राप्त होता है।

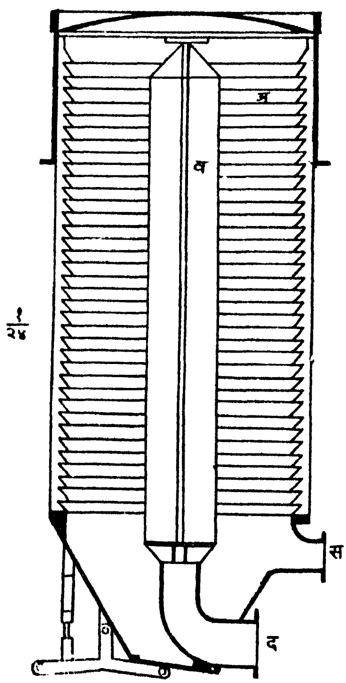
पत्र-फिल्टर—ये फिल्टर अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें फिलिप-फिल्टर, कैली-फिल्टर और स्वीटलैण्डफिल्टर महत्त्व के हैं।

फिलिप-फिल्टर—यह आयत बक्स-सा होता है, जिसके नत पेंदे दोहरे होते हैं। इस बक्स के शिखर पर एक क्षैतिज ढाँचा होता है, जिसमें बीस से तीस टोकरियाँ लगी रहती हैं। ढाँचे को कपड़े से आच्छादित कर (ढँक) देते हैं। कपड़ा तना हुआ होता है। बक्स को ढक्कन से ढक देते हैं। ढक्कन में शिखियाँ लगी रहती हैं। नल के द्वारा टोकरियों में गदला रस प्रविष्ट करता है। मल कपड़े से छन जाता है। जब छनना समाप्त हो जाता है तब बक्स में जो गदला रस रहता है उसे शिखी द्वारा निकाल लेते हैं। यह फिल्टर अनेक आकार का होता है। आयताकार के स्थान में बेलनाकार भी होता है।

केली-फिल्टर—यह बेलनाकार होता है और नत ढाँचे पर स्थित रहता है। इसमें तार-जाली पर कपड़ा तना होता है और इसी कपड़े में रस छनता है। तारजालियाँ प्राय: ४ इञ्च की दूरी में रहती हैं। यह चक्रों पर मढ़ा होता है, जो आगे-पीछे घूम सकता है। इसमें टोटियाँ लगी रहती हैं। समय-समय पर पानी के प्रवाह से कपड़े को धोकर मल-पिंड को हटाते हैं।

स्वीटलैण्ड-फिल्टर— यह भी केली फिल्टर के सिद्धान्त पर ही बना है; पर भिन्न आकार का होता है।

रेत-फिल्टर इस फिल्टर में लोहे के वलय होते हैं, जिनके बीच का स्थान रेत से भरा रहता है। नीचे से एक मार्ग 'स' से रस प्रविष्ट कर रेत पर ऊपर जाता हुआ दूसरे 'द' मार्ग से निकल जाता है। लोहे के वलय शंक्वाकार 'अ' होते हैं और उर्ध्वाधार बेलन 'व' के समकेन्द्रित होते हैं। रेत जब मल से भर जाता है तब उसे एक द्वार से निकालकर बहते पानी से धो देते हैं। यह पानी मल को निकाल लेता है।



चित्र ४७—'स' मार्ग से रस प्रविष्ट करता। 'अ' रेत के शंक्वाकार वलय द्वारा प्रवाहित हो छनजाता और 'द' मार्ग से निकल जाता है।

सीठा-फिल्टर - इस फिल्टर में सीठा भरा रहता है। यह उर्ध्वाधार बेलन के आकार का होता है। इसी सीठा होकर नीचे से ऊपर की ओर रस बहता है। सीठा जब मल से भर जाता है तब उसे निकाल कर फेंक देते हैं।

तारजाली फिल्टर—तारजाली के द्वारा रस को छानते हैं। यह बेलनाकार होता है और घूमता रहता है। ऊपर से रस इसमें गिरता है और तार-जाली के छेदों द्वारा बहकर निकल जाता और मल तार-जाली पर ही रुक जाता है। तारजाली के प्रत्येक वर्ग इञ्च में प्राय: दस हजार छेद होते हैं। छेद का व्यास प्राय: ०·००५ इञ्च का होता है।

रस को जहाँ तक हो सके, शीघ्र ही उद्वाष्पक में जाना चाहिए। नहीं तो अन्य कई क्रियाएँ आरम्भ होकर चीनी की मात्रा कम हो जाती है। इस कारण ऐसे फिल्टर की

आवश्यकता होती है, जो रस को जल्दी-से-जल्दी छान सके। इस दृष्टि से तार-जाली, कपड़े, रेत और सीठे के फिल्टर अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि इनमें रस का छानना शीघ्र-से-शीघ्र हो जाता है। कुछ स्थलों में एलकोहल डालकर अशुद्धियों को अवक्षिप्त कर तब प्रेस में छान लेते हैं। आसवन से एलकोहल को फिर प्राप्त कर लेते हैं। कुछ स्थानों में केन्द्रापसारी पृथक्कारकों से भी मल को दूर कर लेते हैं। रस को यंत्र में रख कर जोरों से घुमाते हैं, जिससे मल-पात्र की दीवारों में फेंका जाता है और स्वच्छ रस ऊपर किनारे से निकल जाता है; पर इससे खर्च अधिक पड़ता है। यंत्र कीमती होता है। इससे इसका उपयोग कारखानों में नहीं हो रहा है। इससे रस अवश्य ही बहुत स्वच्छ प्राप्त होता है। अधिकांश कोलायड, मोम और खनिज लवण इससे निकल जाते हैं।

मल-पिण्ड – मल-पिण्ड की मात्रा अनेक बातों पर निर्भर करती है। स्थान, पेराई की दक्षता, रस का निस्यन्दन, चूने की मात्रा और समय का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। धोने से पिंड की मात्रा कम हो जाती है। इससे केवल चीनी ही नहीं निकलती, वरन् अन्य विलेय पदार्थ भी निकल जाते हैं। दुबारा छानने से पिंड की मात्रा और कम हो जाती है। यदि पिंड को अधिक समय तक फिल्टर में रखें तो उससे भी पिंड की मात्रा कम हो जाती है। साधारणतया एक टन ईख से ३५ से ४० पाउण्ड पिंड प्राप्त होता है। अधिक दक्ष मिल में पिंड की मात्रा १५ पाउण्ड तक कम हो सकती है।

पिण्ड में चीनी निकलकर नष्ट हो जाती है। साधारणतया रस की १ से १·५ प्रतिशत चीनी इस प्रकार निकल जाती है। यदि धोना और दुबारा छानना ठीक प्रकार से हो तो इसकी मात्रा ०·२५ प्रतिशत से कम की जा सकती है। पर साधारणतया मिलों में इससे बहुत अधिक चीनी नष्ट हो जाती है। कार्बनीकरण विधि से तो पिंड की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। चीनी के नष्ट होने से बचने के लिए यहाँ पिंड का धोना बहुत आवश्यक हो जाता है।

मलपिण्ड का संगठन—मल-पिंड में ईख के तन्तु, रेत, मिट्टी, स्कंधित कोलायड, रंगीन पदार्थ, मोम, एलब्युमिन, गोंद और चूने के फ़ास्फ़ेट इत्यादि रहते हैं। इनका संगठन एक-सा नहीं रहता। स्थान-स्थान, समय-समय, मिल-मिल में बदलता रहता है। छानने की क्रिया, ईख की प्रकृति और ईख की पेराई से भी इसके संगठन में परिवर्तन होता रहता है। साधारणतया हम कह सकते हैं कि सूखे पिंड में

तन्तु	३० से ४०	प्रतिशत
मिट्टी	१० से १५	,,
मोम	२० से ३०	,,
एलब्युमिन	१० से १५	,,
कैलसियम फ़ास्फेट	१० से १५	,, रहते हैं।

अच्छा दबाया हुआ, दृढ़ और छूने में सूखा पिंड में भी ६० से ७० प्रतिशत जल और १ से १·२ प्रतिशत चीनी रहती है।

पिंड का उपयोग—आजकल भारत में पिंड का उपयोग केवल खाद के लिए होता है। इसमें फ़ास्फेट और एलब्युमिन होने के कारण यह अच्छा खाद बनता है। इससे मोम निकालने की कोशिश होनी चाहिए। अमेरिका में मोम निकाला जाता है। एक कारखाने

में इस मल-मिट्टी को सीमेंट बनाने में उपयोग करते हैं। डिस्टेंपर के लिए यह अधिक उपयोगी हो सकती है।

पिंड का धोवन—पिंड के धोवन के तीन ही उपयोग हो सकते हैं—

१. इस धोवन को साफकर स्वच्छ रसके साथ मिलाकर उसकी चीनी निकाल लें।

२ इस धोवन को विमलीकारक में ले जाकर गदले रस के साथ फिर विमलीकृत कर लें अथवा

३. इस धोवन को सीधे उद्वाष्पक में ले जाकर उसकी चीनी निकाल लें।

साधारणतया पहली रीति नहीं बरती जाती। तीसरी रीति में दोष यह है कि पिण्ड में चूने की मात्रा अधिक रहती है। इससे धोवन में भी चूने की मात्रा पर्याप्त आ जाती है और उससे उद्वाष्पक में जल्दी पपड़ी पड़ जाने की सम्भावना रहती है। इन कारणों से दूसरी रीति ही साधारणतया बरती जाती है।

इक्कीसवाँ प्रकरण

उद्वाष्पन

स्वच्छ रस में पानी रहता है। यह पानी कुछ तो ईख से आता है और कुछ ईख के मृदुकरण से। इस पानी का अधिक भाग उड़ जाना चाहिए, तभी ठोस चीनी प्राप्त हो सकती है। पानी उड़ाने के लिए रस को गरम करते हैं। यह गरम करना भाप से होता है। एक भाप से एक रस को गरम करके गाढ़ा करते हैं। उस रस से जो भाप निकलती है, उससे दूसरा रस गाढ़ा करते हैं। इसी प्रकार दूसरे पात्र के रस के भाप से तीसरे पात्र का रस गाढ़ा होता है। इस प्रकार के भाप बनाकर रस के गाढ़ा करने को बहु-प्रभाव उद्वाष्पन कहते हैं और जिस पात्र में यह होता है उसे बहु-प्रभाव उद्वाष्पक (multi-effect evaporator) कहते हैं।

उद्वाष्पन वस्तुत: विलयन से उष्मा द्वारा जल को उड़ा देने की क्रिया है। उष्मा ऐसी शक्ति है जिसे हम नाप सकते हैं। उष्मा नापने के लिए या तो ब्रिटिश-ताप ईकाई (B. T. U.) उपयुक्त होती है अथवा मेट्रिक-ताप ईकाई। अंग्रेजी ग्रन्थों में ब्रिटिश-ताप ईकाई ही उपयुक्त होती है। यह ईकाई उष्मा की वह मात्रा है, जो एक पाउण्ड जल के ताप को एक डिगरी फहरेनहाइट (F) बढ़ाती है। इस इकाई में जल के ताप को ३२°F से २१२°F उठाने में १८० B.T.U. लगता है। मेट्रिक सिद्धान्त में इकाई-कलारी की वह उष्मा है जो एक किलोग्राम जल के ताप को एक डिगरी शतांश उठाता है। यह इकाई ब्रिटिश थर्मल-यूनिट से ३.९६७ गुना बड़ा है। पानी को भाप में परिणत करने के लिए ९६६.७ B. T. U. की आवश्यकता होती है। इस अंक को २१२° F. पर भाप का गुप्तउष्मा कहते हैं। जल को ३२°F से २१२°F पर भाप में परिणत करने में जो उष्मा लगती है, वह भाप की समस्त उष्मा है। भाप की गुप्तउष्मा स्थायी नहीं होती। ताप की वृद्धि से घटती है; पर भाप की समस्त उष्मा ताप की वृद्धि से बढ़ती है।

भिन्न-भिन्न पदार्थों के समभार की उष्मा मात्रा एक ताप पर एक नहीं होती। किसी पदार्थ के ताप को एक डिगरी बढ़ाने के लिए जितनी उष्मा की आवश्यकता होती है यदि उस उष्मा को उतने ही जल की उष्मा को एक डिगरी बढ़ाने के लिए जितनी उष्मा की आवश्यकता होती उससे तुलना करें तो इन दोनों की निष्पत्ति जो होगी वह उस पदार्थ की 'विशिष्ट उष्मा' होगी। भाप की विशिष्ट उष्मा ०·३०१ है। इस कारण १० प्रतिशत चीनी के विलयन की विशिष्ट उष्मा होगी ०·९ × १ + ०·१ × ०.३०१ = ०·९३०१।

उष्मा उष्ण पदार्थ से शीतल पदार्थ में हस्तान्तरित होती है। यह हस्तान्तरण

चालन, वाहन या विकिरण द्वारा होता है। कुछ पदार्थ उष्मा के चालक होते हैं और कुछ अचालक, कुछ पदार्थ कुचालक भी होते हैं।

बहु-प्रभाव उद्वाष्पन—उष्ण पदार्थ से उष्मा शीतल पदार्थ में जाती है। यदि ८०°F पर एक पाउण्ड जल में ६०° F पर एक पाउण्ड जल को मिलावें तो दो पाउण्ड जल का ताप ७०° F होगा। यदि जल में भाप को ले जायँ तो भाप का संघनन होगा और जल का ताप धीरे-धीरे ऊँचा उठेगा और अन्त में जल उबलने लगेगा। उस दशा में भाप बिना संघनित हुए जल से निकल जायगा। यदि भाप को सीधे पानी में न ले जाकर पात्र के वाह्य तल पर छोड़ें और वह तल चालक है तो भाप की गुप्तउष्मा उस पात्र के चालक दीवार द्वारा जल में पहुँच जायगी। यदि भाप अधिक दबाव में है तो पानी उबलने लगेगा।

बहु-प्रभाव उद्वाष्पन का सिद्धान्त—जब वाष्प को जल में ले जाकर उस जल को वाष्प से गरम किया जाता है तब उसे अन्तःक्षेप संघनक कहते हैं। पर जब वाष्प को पात्र के तलपर ले जाकर जल को गरम किया जाता है तब इसे तल-संघनक कहते हैं। वाष्प के संघनित होने से वाष्प की गुप्तउष्मा जल के गरम करने के लिए प्राप्य होती है।

यदि वायु-मण्डल के दबाव के वाष्प को तल-संघनक पर ले जायँ तो उसके संघनित होने से उसकी गुप्तउष्मा पानी के उबालने में समर्थ होगी। अब यदि जल के इसी वाष्प को वायु-मण्डल से कम दबाव पर एक दूसरे तल संघनक पर ले जायँ तो कम दबाव के कारण वह वाष्प यहाँ भी संघनित होगा और यहाँ के जल को उबालेगा। फिर यहाँ से भी वाष्प को उससे भी कम दबाव के तल-संघनक में ले जायँ तो वही कार्य होगा। यह क्रिया बार-बार दुहराई जा सकती है और इससे जल की अपरिमित मात्रा का उद्वाष्पन किया जा सकता है। बहु-प्रभाव उद्वाष्पन का यही सिद्धान्त है। यहाँ पारी-पारी से वाष्प का संघनन और वाष्प का उत्पादन होता है और वह होता है दबाव के क्रमशः न्यूनता के कारण।

शून्य अथवा वायुमण्डल से न्यून दबाव का इस सिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सिद्धान्त तो सब ताप और सब दबाव पर लागू होता है। चूँकि चीनी के निर्माण में यदि विलयन का ताप पानी के क्वथनांक २१२°F से ऊँचा हो तो चीनी का विच्छेदन हो जाता है। इस कारण रस का उद्वाष्पन शून्य अथवा न्यून दबाव में ही होता है।

उष्मा—रस के गाढ़ा करने की सबसे पुरानी रीति है रस को पात्र में रखकर सीधे आग पर गरम करना। प्रायः उन्नीसवीं सदी तक यही रीति बरती जाती थी। भारत में इसी रीति से रस को गाढ़ाकर चीनी तैयार होती थी और आज भी गुड़ और कुछ चीनी भी तैयार होती है। कुछ लोगों ने सीधे आग पर गरम कर रस के गाढ़ा करने का पेटेंट भी लिया था। ऐसे पेटेंट में रस पतले धार में टेढ़े-मेढ़े मार्ग से तप्ततल द्वारा चलता हुआ गाढ़ा होता था। अन्त में एक भ्रामत् बेलन पर यह प्रायः पूर्णतः सुख जाता था और ऐसी ही चीनी, बिना छोआ निकाले, एक समय बनती और बिकती थी।

गरम करने के लिए भाप के उपयोग का पेटेंट पहले-पहल वूड (Wood) ने लिया था। ऐसे पात्र के पेंदे दोहरे होते थे और उनके बीच में भाप प्रविष्ट कर तल को गरम करता था। टेलर (Taylor) ने पीछे नलवाले तल को गरम करने के लिए उपयोग किया। नल के स्थान में पीछे कुण्डल (Coil) का उपयोग फ्रांसीसी इंजिनियरों

ने किया था। इस प्रकार अनेक परिवर्तन होते हुए तथा अनेक पेटेंट होते हुए आज हमें आधुनिक साधन प्राप्त हैं, जिनमें नलों द्वारा भाप गमन करता हुआ रस को गाढ़ा करता है। यह तापक बेलनाकार होता है। उसमें क्षैतिक अथवा उर्ध्वाधार नियमित संख्या में नलियाँ होती हैं, जिनके द्वारा रस प्रविष्ट कर ऊपर नीचे अनेक बार आते जाते हुए फिर निकल जाता है। इन नलियों के बीच से भाप प्रविष्ट करती है और नलियों को गरम कर पानी को भाप बनाकर उड़ा देती है। क्षैतिज तापकों में व्यारोध (baffles) होते हैं, जिनसे भाप के मार्ग का निर्देशन होता है। तापक की नलियाँ ताँबे की होती हैं; क्योंकि ताँबा उष्मा का सुचालक है।

यदि तापक की दक्षता कम हो जाय तो नलियों को साफ कर लेते हैं। उन्हें साफ करने के लिए रस के स्थान में उनमें पहले कास्टिक सोडा का विलयन डालकर और फिर पानी डालकर के गरमकर धो लेते हैं। ऐसे समय के लिए कुछ अधिक तापक रखते हैं, जिनको रस गाढ़ा करने में इस्तेमाल करते और उससे रस गाढ़ा करने का काम बन्द नहीं रहता।

उष्मा-प्रेषण (Transmission) बहुत-कुछ नलियों की स्वच्छता और रस-सञ्चालन की गति पर निर्भर करता है। यह २५० से ३०० B. T. U. प्रतिवर्गफुट प्रति-घंटा प्रति-डिगरी अन्तर रहता है।

उष्मा-प्रेषण—उष्मा का प्रेषण एक बहुत ही पेचीला प्रश्न है।

उद्वाष्पक, तापक अथवा कड़ाह में उष्मा के प्रेषण के प्रतिरोध में तीन प्रधान अंग हैं। एक वाष्प-पटल प्रतिरोध, दूसरा धातु प्रतिरोध और तीसरा जल-पटल प्रतिरोध। इन प्रतिरोधों की कमी से उष्मा-प्रेषण उत्तमतर होता है।

वाष्प-पटल प्रतिरोध में धातुओं की नलियों में भाप के प्रवेश में रुकावटें होती हैं। भाप में संघनित जलकण रहते हैं। यही रुकावटें डालते हैं। यदि नलियों में मुरचा लग जाय अथवा उनपर कुछ तहें पड़ जायँ तो यह जल का पटल और मोटा हो जाता है और उससे प्रतिरोध और बढ़ जाता है।

भाप की गैसें भी प्रतिरोध उत्पन्न करती हैं। ऐसी गैसों में वायु रहती है, जो जोड़ों से और कपाटों (valve) से प्रविष्ट कर जाती हैं। रसों से अमोनिया गैस भी बनती है। इन गैसों को, जैसे-जैसे बनती जायँ, निकालते रहने का प्रबन्ध रहना चाहिए। ये गैसें नलियों को आक्रान्त करतीं हैं और उष्मा-प्रेषण में रुकावटें डालकर दक्षता को कम करती हैं।

भाप का ताप ऊँचा हो तो उससे उष्मा प्रेषण भी बढ़ जाता है।

धातुओं की नलियों द्वारा उष्मा के बहाव से प्रतिरोध बहुत अल्प होता है; क्योंकि सभी धातुएँ उष्मा का सुवाहक होती हैं। सामान्य उद्वाष्पक की मोटाई $^1/_{16}$ इंच होती है। ऐसे मोटे उद्वाष्पकों की विभिन्न धातुओं की चालकता निम्नलिखित हैं—

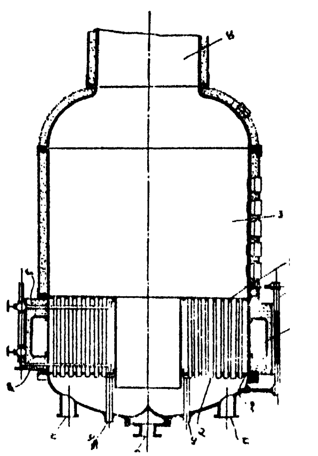
एल्युमिनियम	१६,३२०
पीतल	१०,५६०
तांबा	४५,७००
ढालवां लोहा	७,६८०
निकेल	६,१२०

साधारणतया उष्मा का प्रेषण १००० से ऊपर नहीं जाता। इससे धातुओं का प्रभाव उष्मा-प्रेषण प्रतिरोध पर बहुत अल्प होता है।

सबसे अधिक प्रतिरोध तरल के पटल का होता है। साधारणतया किसी तरल का उबलना उस तरल के तल पर होता है। यदि क्वथन तल के नीचे हो तो ऐसा समझना चाहिए कि क्वथन उच्च दबाव पर हो रहा है। अतः क्वथन का ताप भी ऊँचा है। यह प्रश्न बहुत जटिल है। इसके समझने के लिए इंजिनियरिंग का ज्ञान बहुत आवश्यक है।

उद्वाष्पक—चीनी के कारखानों में जो उद्वाष्पक उपयुक्त होते हैं वे अनेक प्रकार के होते हैं। पर वे सब दो प्रमुख सिद्धान्तों पर बने हैं। एक प्रकार के उद्वाष्पकों में निमग्न नलियाँ होती हैं और दूसरे प्रकार में पटल-उद्वाष्पक होते हैं। फिर नलियों में क्षैतिज प्रकार के होते हैं अथवा उर्ध्वाधार प्रकार के। इनमें उर्ध्वाधार निमग्न प्रकार अधिकता से उपयुक्त होते हैं।

उर्ध्वाधार निमग्ननली प्रकार उद्वाष्पक—ऐसे एक उद्वाष्पक का चित्र (चित्र ५६) यहाँ दिया हुआ है। इसका वाह्य ढाँचा ढालवाँ लोहा अथवा इस्पात का बना होता है। इसकी ऊँचाई २० फुट तक की हो सकती है। इसकी मोटाई अब तक १५ फुट व्यास तक की बनी है। ऊँचाई का मोटाई से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक दूसरे से स्वतंत्र है।



चित्र ५८

१ पट्ट २ नलियाँ ३ भापस्थान ४ नल ५ नल ६ नली ७ रसनली ८ रसप्रवेशमार्ग ९ भापप्रवेश मार्ग १० काँच प्रमापक

यह ढाँचा दो स्वतंत्र भागों में एक पट्ट से विभक्त होता है। इस '१' पट्ट और नलियों '२' के बीच एक कक्ष होता है। जिसमें वाष्पित्र से अथवा पूर्वपात्र से भाप प्रविष्ट करती है। ऊपरी पट्ट के ऊपर के स्थान '३' को भाप स्थान कहते हैं और यह स्थान निचले पट्ट के नीचे के स्थान से मिला हुआ होता है। यह स्थान मृतस्थान है। यहाँ उद्वाष्पन नहीं होता; पर इसका रहना बहुत आवश्यक है। '४' पर एक नल होता है, जिससे भाप निकलकर दूसरे ढाँचा में जाती है। '५' पर नल होता है, जिससे संघनित जल कक्ष से निकाला जा सकता है। '६' पर एक नली होती है, जिससे गैसें निकाली जाती हैं। '७' से रस निकलकर दूसरे पात्र में जाता है। '८' से रस प्रविष्ट करता है और '९' से भाप प्रविष्ट करता है। '१०' पर एक कांच का प्रमापक होता है, जिससे रस का तल मालूम होता है।

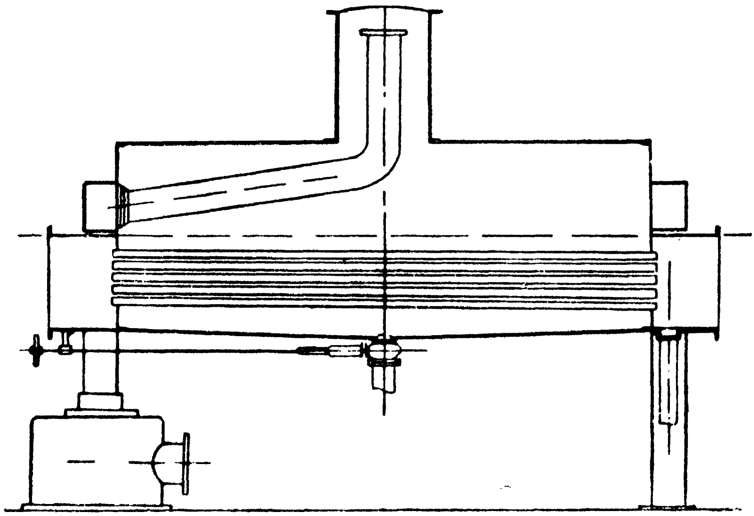
वाष्प-वितरण—उद्वाष्पक में एक पार्श्व से वाष्प प्रविष्ट करता है और दो या दो से अधिक शाखाओं में बँट जाता है। व्यावरोध (baffles) द्वारा भी वाष्प का वितरण होता है। नलों में वाष्प का वेग ५० से १०० फुट प्रति-सेकंड होता है।

नली का विस्तार—उर्ध्वाधार निमग्न नली प्रकार में नली का विस्तार ५ सेंटीमीटर अथवा दो इंच होता है। इसकी लम्बाई प्रायः ५ फुट होती है। आजकल नली के व्यास को कम रखने का झुकाव है, दो या ढ़ाई सेंटीमीटर अथवा पौने दो इंच।

नलियों के छोटे होने से गरम करनेवाला तल का क्षेत्र बढ़ जाता है और इससे उष्मा-प्रेशण की वृद्धि होती है।

रस का वितरण और संचालन—रस का प्रवेश नीचे से होना चाहिए। छेदवाले नलों के द्वारा रस प्रविष्ट करता है।

असंघनीय गैसें—उद्वाष्पन में कुछ गैसें अवश्य बनती हैं। कुछ गैसें तो रस के साथ प्रविष्ट करती हैं और कुछ सन्धियों से प्रविष्ट कर जाती हैं। इन गैसों का रहना हानिकारक है; क्योंकि ये उबलना रोकती हैं और नालियों को खा जाती हैं। अतः इन गैसों को जल्द-से-जल्द निकाल डालना आवश्यक है। इसके लिए अनेक उपायों का आविष्कार हुआ है और उनका उपयोग होता है।



चित्र २६—क्षैतिज निमग्ननल उद्वाष्पक रिलियो बहु-प्रभाव पहला कक्ष (Rillieux Multiple Effect) का यह चित्र है। कहीं-कहीं यह अभी भी इस्तेमाल होता है।

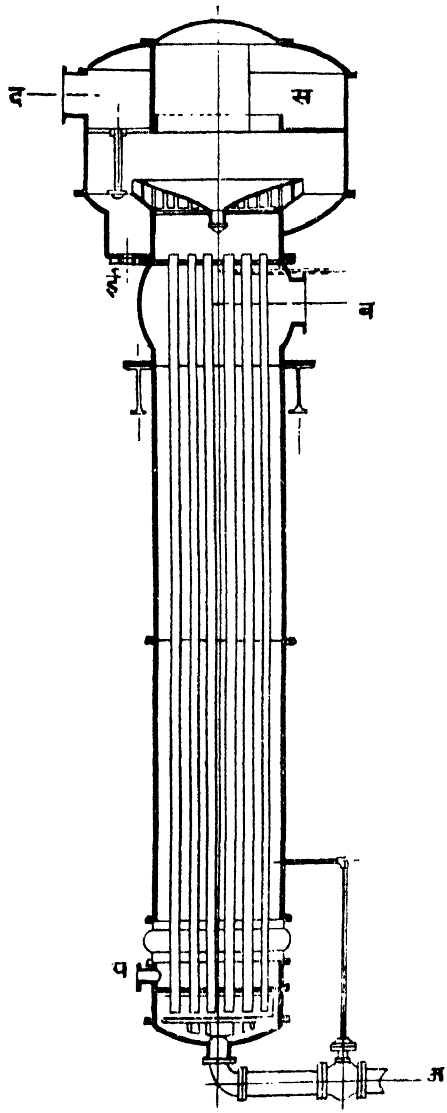
संघनितजल—पहले उद्वाष्पक में जो जल संघनित होता है वह सामान्य दबाव में रहने के कारण गुरुत्व से नीचे बहकर पेंदे में आ जाता है और वहाँ से निकाल लिया जाता है। यह जल वाष्पित्र में उपयोग के लिए अच्छा होता है। रुध (Catch) में इकट्ठा होकर सीधे वाष्पित्र में चला जाता है अथवा पम्प द्वारा भेज दिया जाता है। जिन उद्वाष्पकों में न्यून दबाव पर पानी संघनित होता है उनमें साइफन द्वारा पानी एक से दूसरे में जाता है। ऐसे दो उद्वाष्पकों का चित्र यहाँ दिया हुआ है। एक का दबाव पाँच इंच और दूसरे का १५ इंच है। इसी प्रकार का प्रबन्ध रस के एक उद्वाष्पक से दूसरे उद्वाष्पक में संचालन में भी होता है।

क्षैतिज निमग्न-नल उद्वाष्पक—ऐसे उद्वाष्पक भी बने हैं। इनके सिद्धान्त भी वैसे ही हैं जैसे उर्ध्वाधार उद्वाष्पक के। इनकी नलियाँ प्रायः १२ फुट लम्बी और तीन-चतुर्थांश से सवा इंच व्यास की होती हैं। एक ओर से भाप प्रविष्ट करती है और दूसरे ओर

से निकल जाती है। अनेक प्रकार के उद्वाष्पकों का पेटेंट हुआ है और भिन्न-भिन्न मशीन बनानेवाली कम्पनियों द्वारा बनते हैं। ऐसे उद्वाष्पकों में निम्नलिखित महत्त्व के हैं।

यारयान-उद्वाष्पक (Yaryan Evaporator) इसका उपयोग अब बहुत कम हो गया है।

लिली-उद्वाष्पक (Lillie Evaporator)—यह उर्ध्वाधार और क्षैतिज दोनों प्रकार का होता है। इसका उपयोग आज अधिक होता है।



चित्र ६०—केस्टनर मशीन। इसमें उर्ध्वाधार नली होती है, जो बाहर से गरम की जाती है। इसकी नलियाँ लगभग २४ फुट लम्बी होती हैं। 'अ' नल द्वारा रस प्रविष्ट करता है और 'ब' द्वारा गरम करनेवाली भाप। उबलने के कारण रस उठकर 'ई' मार्ग से प्रविष्ट करता है। 'प' मार्ग से संघनित जल निकल जाता है। 'द' मार्ग से भाप निकल जाती है।

केस्टनर उद्वाष्पक (Kestner Apparatus)—इसमें नलियाँ बहुत लम्बी-लम्बी प्राय: २४ फुट लम्बी उर्ध्वाधार होती हैं। नीचे पेंदे से रस प्रविष्ट करता है और ऊपर नली से भाप प्रविष्ट करती है। रस एक मार्ग से निकलकर दूसरे में चला जाता है। जो वाष्प संघनित होता है, वह दूसरे मार्ग से निकाल लिया जाता है। ऊपर से वाष्प निकल जाता है।

स्टिलमैन-उद्वाष्पक (Stillman Evaporator)—विट्कोविट्ज उद्वाष्पक (Witcowitz Evaporator), सैण्डबोर्न (Sandborn), डिर (Deer), उद्वाष्पक इत्यादि अन्य प्रकार के उद्वाष्पक हैं, जो उपयुक्त हुए हैं।

उद्वाष्पक-शल्क (Scale)—उद्वाष्पकों की नलियों में जो शल्क बनते हैं वे उष्मा के कुचालक होते हैं। शल्क का संगठन ईख की प्रकृति और स्थान की विभिन्नता पर निर्भर करता है। पहले उद्वाष्पकों की नलियों में पतला रस रहता है। इस कारण शल्क बहुत कम बनता है। अन्तिम उद्वाष्पक में सबसे मोटा शल्क बनता है।

शल्क का संगठन निम्नलिखित है—

	पहला उद्वाष्पक	दूसरा उद्वाष्पक	तीसरा उद्वाष्पक	चौथा उद्वाष्पक
कैलसियम फ़ास्फेट	५७'८५	५६'६८	१५'०२	७'४६
,, सल्फेट	२'०२	१'६२	०'५४	१'६५
,, कार्बोनेट	३'२५	४'६८	१६'५५	६'६३
,, सिलिकेट	७'८६	१३'३१	०'७१	७'०२
,, औक्ज़लेट	—	—	११'३२	११'२७
लोहे का आक्साइड	२'०३	१'५३	२'३१	२'५८
सिलिका	७'७६	७'४३	३६'२६	५४'३४
दाह्य पदार्थ	२०'३७	१३'४१	११'०४	५'०८

पहले उद्वाष्पक में कैलसियम फ़ास्फेट की मात्रा सबसे अधिक और अन्तिम उद्वाष्पक में सिलिका की मात्रा सबसे अधिक रहती है।

शून्य पम्प—उद्वाष्पकों में न्यून दबाव अथवा शून्य उत्पन्न करने में पम्पों का उपयोग होता है। ये पम्प दो प्रकार के हो सकते हैं। एक प्रकार के पम्प जल और वायु को साथ-साथ निकाल लेते हैं। दूसरे प्रकार के पम्प केवल वायु को निकालते हैं। पहले प्रकार के पम्प को आर्द्र-वायु पम्प कहते हैं और दूसरे प्रकार के पम्प को वायु-पम्प। एक दूसरे प्रकार से भी पम्पों का वर्गीकरण करते हैं। एक प्रकार के पम्प को पश्चाग्र पम्प (Reciprocating pump) और दूसरे प्रकार के पम्प को परिभ्रामी पम्प (Rotary pump) कहते हैं। पश्चाग्र पम्प सीधे काम कर सकते हैं अथवा कूर्पर (crank) और प्रचक्र (fly wheel) द्वारा काम करते हैं।

पश्चाग्र टोरपेडो आर्द्र पम्प (Reciprocating Torpedo Wet Pump)—इस पम्प में पश्चाग्र के लिए एक मूषली (piston) अथवा नौघ्नी (torpedo) होती है और कपाटें कब्जे पर लगे रहते हैं। वायु और जल एक मार्ग से प्रविष्ट करते और दूसरे मार्ग से खातक (ditch) में जाते हैं। यह पम्प छोटे-छोटे मिलों के लिए ही उपयुक्त है।

एडवर्ड पम्प (Edward pump)—स्लप कपाट पश्चाग्र पम्प (Slide Valve Reciprocating Pump), उदवाही कपाट पश्चाग्र शुष्क वायु पम्प, (Lift Valve Reciprocating Dry Air Pump), परिभ्रमण कपाट पश्चाग्र पम्प (Rotating Valve Reciprocating Pump), परिभ्रामी शून्य पम्प (Rotary Vacuum Pump) अन्य प्रकार के पम्प हैं, जो चीनी के कारखानों में उपयुक्त होते हैं।

पम्प द्वारा वायु का निष्कासन—पम्प द्वारा संघनक से कितनी वायु निकलती है इसकी गणना सरल नहीं है। जल में वायु घुली रहती है और न्युन दबाव पर निकल जाती है। जल में कितनी वायु घुलती है, इसका तो ज्ञान हमें है पर जल वायु से संतृप्त है अथवा नहीं, इसका ज्ञान निश्चित रूप से नहीं होता। जिस रस का उद्वाष्पन करना है, उसमें भी वायु रहती है और कुछ असंघनीय गैसें इसके गाढ़ा करने में निकलती भी हैं। संन्धियों से च्यवन द्वारा भी अनिश्चित मात्रा में वायु प्रविष्ट करती हैं।

संघनक में दबाव दो कारणों से होता है। एक दबाव तो जल के ताप के कारण जलवाष्प का दबाव होता है और दूसरा दबाव उन असंघनीय गैसों के कारण होता है, जिन्हें हम 'वायु' कहते हैं। यदि दबाव २४ इंच है तो प्रतिवर्ग इंच में दबाव ०·६२ पाउन्ड होता है। यदि संघनक में पानी का ताप १००° फ० हो तो इस दबाव पर जल-वाष्प का दबाव प्रति-वर्ग इंच पर ०·६५ पाउण्ड होगा। अतः वायु का दबाव १·६७ (२·६२ – ०·६५) पाउण्ड प्रति-वर्ग इंच हुआ। ताप की वृद्धि से जल-वाष्प का दबाव बढ़ता है; अतः वायु का दबाव कम होगा।

निम्न सारिणी में २४ इंच शून्य में ६०° फ० पर ठंढे जल के लिए, ताप-जल के घनफुट, वायु के घनफुट और जल और वायु के सम्मिलित आयतन का प्रति-पाउण्ड संघनित भाप के लिए जो सम्बन्ध है, वह सूचित होता है।

मोचन जल का ताप फ०	ठंढे जल का घनफुट	वायु का घनफुट	जल और वायु का सम्मिलित घनफुट
८०	०·८१६२	०·११२६	०·६३२१
६०	०·५८८८	०·०८२५	०·६७१३
१००	०·४११२	०·०७०३	०·४८१५
११०	०·२६६६	०·०६८३	०·३६४६
१२०	०·२७३६	०·०७४७	०·३४८३
१३०	०·२५५४	०·११५५	०·३७०६
१४०	०·२०४६	१·७७१२	१·६७६१

इन आँकड़ों से मालूम होता है कि वायु का आयतन, जैसे-जैसे पानी की मात्रा घटती है, पहले घटता है, फिर न्यूनतम हो जाता है और तब शीघ्रता से बढ़ता है। इन सब बातों के विचार से हम निम्नलिखित परिणाम पर पहुँचते हैं—

यदि प्रारम्भिक ताप ६०, ७०, ८० और ६०° फ० हो तो जितनी भाप संघनित हो हो उसका १०, २५, ३५ और ५० गुना पानी प्रविष्ट होना चाहिए। यदि न्यून दबाव २४, २५, २६, २७ इंच हो तो वायु के आयतन का निष्कासन ६, ६, १५, ३५ होना

चाहिए। अर्थात् २७ इंच न्यून दबाव के लिए पम्प $\frac{२५}{६}$ गुना उस पम्प से बड़ा होना चाहिए, जो २४ इंच न्यून दबाव के लिए आवश्यक है। यदि उसमें 'क' मात्रा वायु प्रविष्ट करती है तो यह निष्पत्ति होगी $\frac{२५ + क}{६ + क}$ और यदि 'क' धन है तो पम्प समावेशन का वेग अधिक नहीं बढ़ेगा।

सीरा का निथरना—बहु-प्रभाव उद्वाष्पकों में रस को गाढ़ा कर निथरने के लिए संग्रह टंकियों में रख देते हैं। पर्याप्त अशुद्धियाँ जो पतले रस में विलेय होती हैं वे गाढ़े सीरे में अविलेय होकर निकल आती हैं। इनमें कुछ अशुद्धियाँ तो उद्वाष्पकों के तल पर ही निकलकर कठोर शल्क बनती हैं। जो अशुद्धियाँ वहाँ नही निकलतीं, उनमें बहुत कुछ संग्रह-टंकियों में निथर कर बैठ जाती हैं। अनेक कारखानों में सीरे को निथरने के लिए संग्रह-टंकियाँ नहीं होतीं। पर इन टंकियों के रहने से और सीरे को निथार कर निकाल लेने से चीनी और छोआ दोनो अच्छे बनते हैं।

रस और सीरे का संरक्षण—कभी-कभी मशीनों में खराबी आ जाने के कारण अनेक घंटों अथवा कुछ दिनों तक रस और सीरे को रख देना पड़ता है। उष्ण देशों में बिना किसी परिरक्ष (Preservative) के ३६ से ४८ घंटे तक सीरा रखा जा सकता है। ऐसे सीरे का घनत्व कम-से-कम ५४·३ ब्रिक्स अथवा ३०° बौमे होना चाहिए और वह स्वच्छ टंकियों में रखा हो और उसके आसपास किंचित शर्करा-विलयन न हो और उसका पीएच ६.८ अथवा इसके ऊपर हो। यदि ऐसा सीरा और भी गाढ़ा हो - उसका ब्रिक्स ६०° से ७०° हो, तो वह और भी सरलता से सुरक्षित रखा जा सकता है। कच्चे रस बड़ी जल्दी खराब होते हैं। यदि ऐसे रस को रखना हो तो उसमें चूना डालकर, गरम करके विमलीकारक में रखना चाहिए।

बिना कोई परिरक्ष डाले कितना समय तक रस रखा जा सकता है, वह रस की प्रतिक्रिया और जिस ताप पर रखा जाता है उस पर निर्भर करता है। यदि रस का पीएच ७·६ और ८·३ के बीच हो और ताप १८०° फ० से ऊँचा हो तो २४ घंटे तक बिना अम्लता बढ़े रखा जा सकता है। यदि ताप १६०° फ० से नीचा हो तो बैक्टीरिया (शाकाणुओं) की क्रिया उत्पन्न हो जाती है। पतले रस के परिरक्षण के लिए परिरक्ष का उपयोग होता है।

परिरक्ष—फार्मेलिन एक बहुमूल्य परिरक्ष है। इसका ४० प्रतिशत विलयन बाजारों में बिकता है। रस और सीरे के परिरक्षण के लिए यह सस्ता और प्रभावकारी परिरक्ष है। फार्मेलिन के ४० प्रतिशत विलयन का ३ सी०सी० एक घनफुट रस के लिए पर्याप्त है। यह १० हजार भाग रस में प्रायः एक भाग होता है। सामान्य रीति से साफ किये रस में ४००० भाग में १ भाग पर्याप्त हो सकता है। विमलीकारक में बिना मल या झाग निकाले २४ घंटे तक फार्मेलिन से परिरक्षित रखा जा सकता है। यदि इससे कम मात्रा में फार्मेलिन का व्यवहार हो तो उससे रस के परिरक्षण के स्थान में रस अधिक दूषित हो जाता है।

अन्य परिरक्ष जो इस काम में उपयुक्त हो सकते हैं वे चूने के हाइपोक्लोराइट और क्लोरीन है। ये कोल्हुओं, नालियों इत्यादि की सफाई में भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन परिरक्षों के स्थान में रस की सान्द्रता, ताप, प्रक्रियाएँ इत्यादि पर ध्यान रखा जाय तो भी परिरक्षण हो सकता है। कोल्हुओं, नालियों इत्यादि को समय-समय पर नल द्वारा उष्ण जल से धोने से और पर्याप्त सफाई रखने और उपयुक्त ताप के नियन्त्रण से भी परिरक्ष के बिना दूषित होना रोका जा सकता है।

बाईसवाँ प्रकरण

चीनी का उबाल और मणिभीकरण

उद्वाष्पक से जो रस गाढ़ा होकर निकलता है, वह पर्याप्त गाढ़ा नहीं होता। उसे सीरा (syrup) कहते हैं। सीरे में ५० से ७० प्रतिशत ठोस पदार्थ रहता है। इस सीरे की घनता अनेक बातों पर निर्भर करती है। यदि सीरे की घनता ६०° ब्रिक्स हो तो कोई हानि नहीं। पर इससे अधिक घनता के सीरे से चीनी बड़ी शीघ्रता से अलग हो जाती है। यदि रस अधिक शुद्ध हो तो ७०° ब्रिक्स तक का सीरा उद्वाष्पक से प्राप्त हो सकता है।

यदि सीरे से और पानी निकाल लें और पानी की मात्रा इतनी कम हो जाय कि विलयन में चीनी को घोलकर रखने की शक्ति न रहे तो उससे ठोस चीनी का निकलना शुरू हो जाता है। यदि सीरे में चीनी और पानी के सिवा और कुछ न हो तो सारा पानी के निकल जाने पर केवल शुद्ध और सुखी चीनी रह जायगी। किन्तु यदि सीरे में चीनी के सिवा और पदार्थ भी रहें तो उन अशर्करा पदार्थों को रोक रखने के लिए कुछ पानी का रह जाना जरूरी है। यही कारण है कि चीनी बनाने में सारा पानी को उद्वाष्पन द्वारा नहीं निकाल देते। जब सीरा इतना गाढ़ा हो जाय कि उससे अशर्करा पदार्थों के निकल आने का भय हो, तब उसे गाढ़ा करना बन्द कर देना चाहिए। ऐसे सीरे के रख देने से चीनी के मणिभ अलग हो जाते हैं और अशर्करा पदार्थ छोआ में रह जाते हैं।

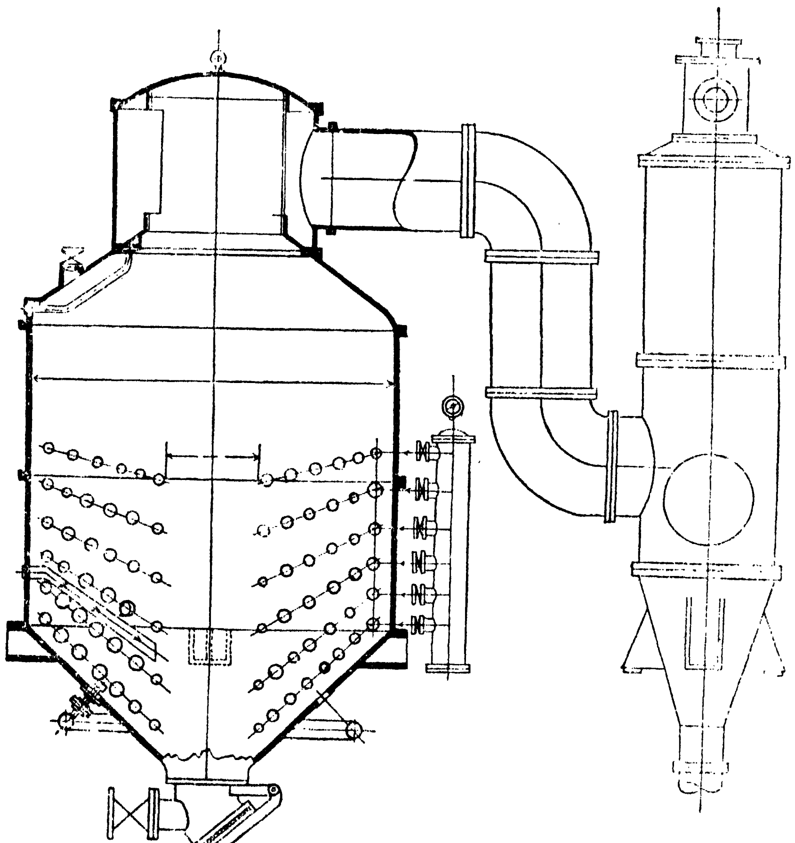
अनुभव से पता लगता है कि एक भाग अशर्करा पदार्थों को विलयन में रखने के लिए ५/११वाँ भाग जल का रहना चाहिए। प्रत्येक भाग जल में प्रायः १·८ भाग चीनी घुली रहती है। इससे चीनी के निकल लाने पर जो छोआ प्राप्त होता है, उसमें पर्याप्त चीनी रहती है।

सीरे को शून्य कड़ाह में उबालकर गाढ़ा करते हैं। ये कड़ाह साधारणतया दो प्रकार के होते हैं। एक वेष्ठन (coil) कड़ाह और दूसरा कैलेण्ड्रिया (calandria) कड़ाह।

वेष्ठन कड़ाह—ये कड़ाह दो गोल टोपियों के जोड़ने से बनते हैं। ये वस्तुतः उर्ध्वाधार एक-प्रभाव-उद्वाष्पक हैं, जो शून्य में काम करते हैं। इनका पेंदा दोहरा होता है। दोनो के बीच के भाग में भाप प्रविष्ट करता है। इसमें ६ या ७ तांबे के वेष्ठन होते हैं, जिनमें ५० से ६० पाउण्ड के दबाव में भाप प्रविष्ट करता है। ये वेष्ठन एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। तांबे की नलियाँ ३ से ५ इंच मोटी और शंकु आकार की होती है। ऊपर में मोटी और नीचे में पतली होती है। भाप के संचालन की सुविधा के लिए वेष्ठन और कड़ाह

की दीवारों के बीच पर्याप्त स्थान रहता है। कड़ाह ऐसा होना चाहिए कि प्रति घनफुट समावेशन के लिए कम-से-कम एक वर्गफुट तापन सतह रहे। शोधन में प्रति-घनफुट के लिए १·५ वर्गफुट स्थान आवश्यक होता है।

अच्छे वेष्ठन-कड़ाह में वेष्ठन ऐसे रहते हैं कि भाप का संचालन अच्छे प्रकार से हो सके। वेष्ठन के एक घुमाव से दूसरे घुमाव की दूरी पेंदे में कम-से-कम ३ इंच की और शिखर में ५ इंच की होनी चाहिए। कड़ाह के व्यास का कम-से-कम १/४ स्थान मध्य में खाली रहना चाहिए, जिसके द्वारा राब नीचे जा सके।



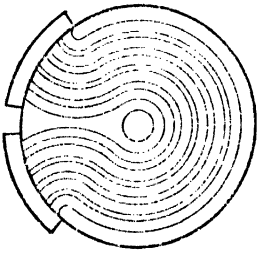
चित्र ६१—वेष्ठन-शून्य कड़ाह

राब के ऊपर भाप के लिए पर्याप्त स्थान रहना चाहिए। कड़ाह के पेंदे में नल-मार्ग में एक प्रवेश-कपाट (feed valve) रहना चाहिए। पेंदे में राब को निकाल लेने के लिए एक नल रहना चाहिए, जिसका व्यास कड़ाह के व्यास का $\frac{1}{८}$ से $\frac{1}{९}$ वाँ भाग रहता है। कड़ाह के शीर्षभाग—छाद—में एक Catchall होता है। कड़ाह से भाप निकल कर संघनक में आता है, जहाँ ठंढे पानी के द्वारा भाप संघनित होकर शून्य कायम रखता है।

संघनक अनेक प्रकार के होते हैं। एक संघनक का [चित्र ६१] यहाँ दिया हुआ है। इसी संघनक से शून्य पम्प ६ इंच अथवा ८ इंच नल द्वारा जुड़ा रहता है। प्रारम्भ में

पम्प द्वारा कड़ाह में न्यून दबाव पैदा करते हैं और पीछे उबलने के समय असंघनीय भापों को पम्प से निकालते रहते हैं। सीरे को देखने के लिए एक कांच का गवाक्ष रहता है। एक पात्र द्वारा सीरे को निकालकर समय-समय पर देखते हैं। न्यून दबाव नापने के लिए शून्य-मापक रहता है। ताप के ज्ञान के लिए तापमापक लगा रहता है और भाप आमान (gauge) होता है। शून्य को भंग करने के लिए भी प्रबन्ध रहता है। जब उबालना समाप्त हो जाता है, तब शून्य को भंग करके सीरा निकाल लेते हैं।

ऊपर जिस वेष्ठन-कड़ाह का वर्णन किया गया है, वह कुछ बड़े आकार का होता है। छोटे आकार के वेष्ठन-कड़ाह भी उपयुक्त होते हैं। बड़े आकार के वेष्ठन-कड़ाह में असुविधा यह होती है कि वेष्ठन के बड़े होने के कारण कड़ाह का विस्तार बढ़ जाता है। इससे तापन-सतह की दक्षता कम हो जाती है; पर छोटे वेष्ठन-कड़ाह में सर्पिल नहीं होता। इसमें जो प्रबन्ध होता है, उसका एक चित्र यहाँ दिया हुआ है। यहाँ वेष्ठन एक छोर पर भाप-कक्ष में स्थित रहता है और दूसरे छोर पर संघनित जल के इकट्ठा होने का संग्रह-बक्स रहता है। यहाँ अपेक्षाकृत बहुत कम स्थान में भाप को चलना पड़ता है।



चित्र ६२—कड़ाह का वेष्ठन। इसका व्यास १ से ५ इञ्चों का होता है। इस कड़ाह में इच्छानुसार भाप प्रविष्ट कराई जाती है। वेष्ठन के बीच में पर्याप्त स्थान रहता है, जिससे भाप प्रवाहित होती रहती है। बीच में एक कूप होता है, जिससे नल प्रविष्टकर पेंदे में पहुँचाता है।

कैलेण्ड्रिया कड़ाह (Calandria Pan)—कैलेण्ड्रिया कड़ाह में तापन-सतह उर्ध्वाधार उद्वाष्पक नलियों के बने होते हैं। (चित्र ६२) इन नलियों का व्यास प्रायः ४ इंच और ऊँचाई ४० से ६० इंच होती है। मध्य में एक बड़ा परिभ्रामी नल रहता है। इस नल का व्यास कड़ाह के व्यास से आधा रहना चाहिए नहीं तो उबाल ठीक नहीं होता। वाष्पित्र से भाप सीधे वेष्ठन में आता है और वहाँ से कड़ाह में जाता है। नलियों का प्रबन्ध चित्र से स्पष्ट हो जाता है। किसी-किसी कड़ाह में उसका तल नत रहता है। इस कड़ाह में प्रतिघन फ़ुट के लिए तापन-सतह दो वर्गफ़ुट रहता है।

कुछ कड़ाहों में नलियाँ क्षैतिज भी होती हैं, जैसा उद्वाष्पकों में होता है; पर इनका पेंदा नत रहता है, ताकि सीरे के निकाल लेने में सरलता हो।

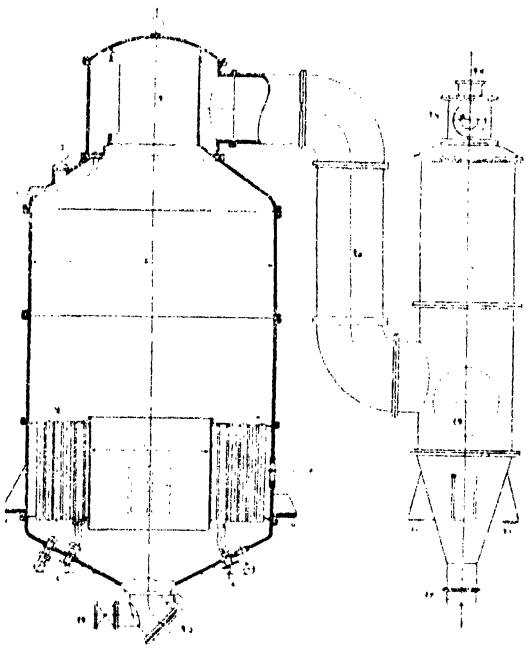
कुछ कड़ाहों में सीरे को मथने के लिए मथनी भी लगी रहती है; पर मथनी का उपयोग ईख से चीनी बनाने में कहीं नहीं होता। चुकन्दर से चीनी बनाने में ही होता है।

वेष्ठन और कैलेण्ड्रिया कड़ाहों की तुलना—वेष्ठन-कड़ाह में कलेण्ड्रिया कड़ाह की अपेक्षा सीरे का संचालन अच्छा होता है। विशेषतः उस दशा में, जब उसका ताप ऊँचा है। सीरे का रंग ताप और समय पर निर्भर करता है। अतः सीरा निम्न ताप पर और अल्प समय के लिए ही कड़ाह में रहे, तो उसका रंग अवश्य ही उन्नत होगा।

कलेण्ड्रिया कड़ाह की अपेक्षा वेष्ठन-कड़ाह में सीरे की अतितृप्ति अधिक होती

है। अतः मणिभ का बनना शीघ्रतर होता है और अतृप्ति से जो हानियाँ होती हैं, वे कम हो जाती हैं।

कलेण्ड्रिया कड़ाह में एक लाभ यह है कि यह न्यूनतर दबाव-भाप अथवा उद्वाष्पकों के रस-वाष्प से भी काम करता है। इससे काफी बचत होती है। इसके समारक्षण (upkeep) नलों, आश्रयों (supports) आदि में कम खर्च पड़ता है। इसमें दोष यह है कि इसका पेंदा शंकु के आकार का होता है, जहाँ सीरे को इकट्ठा होकर पूर्णतया मिश्रित होने की सम्भावना नहीं रहती है। इस दोष को दूर करने के लिए पेंदा अब तश्तरी के आकार का बनने लगा है। अन्य आकार के पेंदे भी कलेण्ड्रिया के बने



चित्र ६३—कलेण्ड्रिया शून्य कड़ाह।

हैं; पर उनका व्यवहार साधारणतया नहीं होता। चिपटे पेंदेवाले कलेण्ड्रिया कड़ाह हीं साधारणतया उपयुक्त होते हैं।

चीनी किस किस्म की बनती है, यह बात बहुत कुछ शून्य-कड़ाह के नियन्त्रण पर निर्भर करती है। इस नियन्त्रण में कड़ाह का ताप और सीरे के कड़ाह के रहने का समय देखा जाता है। ताप बहुत ऊँचा न होना चाहिए और सीरा कड़ाह में बहुत देर तक नहीं रहना चाहिए। इन दोनों कारणों से ही चीनी और छोए के रंग में बहुत अन्तर आ जाता है। कड़ाह के सब भागों का और सब समय ताप एक-सा नहीं रहता। ४० से ३०° तक अन्तर देखा गया है। ताप वाष्प की शून्यता अथवा दबाव की न्यूनता पर निर्भर करता है। सीरे के संचालन का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। सीरे का संचालन घनता की विभिन्नता और वाष्प के बनने के कारण होता है।

सीरे के संचालन के लिए यांत्रिक साधनों का भी उपयोग हुआ है। ऐसे यंत्र

में एक भारी मध्य ईषा (shaft) होती है, जो शिखर से लटकती और चलती है। विभिन्न ऊँचाइयों पर भ्रमि (screw) होती है और वे सबसे नीचले पेंदे में भी होती है, जिसमें अनेक फल (vanes) लगे रहते हैं। यह मोटर से संचालित होता है। संचालन की गति ऐसी होती है कि कड़ाह का सीरा प्रतिमिनट कम-से-कम दो बार उलट जाय। ऐसी दशा में स्थानीय अति-तापन की संभावना बहुत कम हो जाती है।

यांत्रिक संचालन के निम्नलिखित लाभ हैं—

१. जो सीरा कड़ाह में प्रविष्ठ करता है, उसका पूरी तरह और एकसा वितरण होता है जिससे किसी एक स्थान पर सीरे की तनुता नहीं घटती है।

२. सारे सीरे की घनता एक-सी रहती है।

३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर ताप में कम-से-कम अन्तर रहता है।

४. इसका परिणाम यह होता है कि गाढ़े सीरे से—

(क) चीनी के अच्छे रवे बनते हैं।

(ख) कड़ाह का कार्य सुचारु रूप से होता है। भाप का दबाव कम रहता है, कड़ाह का समावेशन बढ़ जाता है और नियंत्रण सरल होता है।

(ग) उद्वाष्पन की गति पहले तो अधिक नहीं रहती; पर पीछे बहुत अधिक हो जाती है जिससे कम समय में सान्द्रता बहुत बढ़ जाती है।

(घ) सीरे का रंग अधिक गाढ़ा नहीं होता और उससे चीनी का रंग उन्नत होता है।

यदि विलयन १०० प्रतिशत संतृप्त है तो ऐसे बिलयन से चीनी के मणिभ न तो बनते हैं, न बढ़ते हैं। इसके लिए विलयन को अतितृप्त होना बहुत आवश्यक है।

ऐसे अतितृप्त विलयन की तीन कलाएँ होती हैं। प्रथम कला मितस्थायी कला (Metastable phase) होती है, जिसमें सान्द्रता ऐसी रहती है कि उसमें उपस्थित मणिभ केवल बढ़ते हैं। नये नहीं बनते। दूसरी कला मित-स्थायी के कला ठीक ऊपर मध्य की कला (Intermediate phase) होती है, जिसमें उपस्थित मणिभ बढ़ने के साथ-साथ नये भी बनते हैं।

तीसरी कला मध्यकला के ऊपर अस्थायी कला (labile phase) होती है, जिसमें मणिभ स्वयं बनते हैं। इसके लिए अन्य मणिभों की आवश्यकता नहीं होती।

संतृप्ति विन्दु—संतृप्ति विन्दु के निर्धारण के लिए सीरे में चीनी के स्वच्छ मणिभ को डालते हैं। यदि सीरा संतृप्त नहीं है तो मणिभ के किनारे घिस जाते हैं। जब मणिभ के किनारों का घिसना बन्द हो जाय, तब समझना चाहिए कि सीरा संतृप्त हो गया है। संतृप्ति के मापन के लिए यन्त्र भी बना है जिसको 'संतृप्तिमापक' (Saturascope)कहते हैं।

नित स्थायी कला के लिए सीरे को तबतक सान्द्र करते हैं जबतक उसमें से दाने न निकल आवें। मित-स्थायी मण्डल का यह ऊपरी सीमा है। मित-स्थायी विन्दु के पास कला आती है और उसके बाद अस्थायी कला। अस्थायी कला में दाने आप-से-आप शीघ्रता से निकल आते हैं। मित-स्थायो मण्डल में बाहर से रवा डालने पर ही दाने निकलते हैं। आजकल सीरे से चीनी के मणिभ प्राप्त करने के लिए विलयन का अतितृप्त होना बहुत आवश्यक है। विलयन के विना अतितृप्त हुए मणिभ निकलते नहीं।

मामूली तरह से कड़ाहवाला व्यक्ति देखने से बता देता है कि विलयन अतितृप्त है या नहीं। पर आजकल यंत्र बने हैं जिसकी सहायता से विलयन की अतितृप्ति का ज्ञान सरलता से हो जाता है। ऐसा एक यंत्र होलवेन (Holven) द्वारा निर्मित हुआ है और उसका उपयोग चीनी-निर्माण में स्वच्छन्दता से हो रहा है। इसी सिद्धान्त पर अन्य यंत्र भी बने हैं।

क्थन विन्दु उन्नयन और अति-तृप्ति में घना सम्बन्ध है। उबलते विलयन के ताप और विलयन से निकले वाष्प की संतृप्ति (Saturation) ताप के अन्तर को क्थन विन्दु उन्नयन कहते हैं। इस सम्बन्ध में तीन बातें स्मरण रखने की हैं—

१. ताप के कम होने से क्थन विन्दु उन्नयन कम होता है। (२) शुद्धता की कमी से क्थन विन्दु उन्नयन बढ़ता है। (३) किसी निश्चित शुद्धता और ताप पर क्थन विन्दु उन्नयन १०० भाग जल में विलीन ठोस पदार्थ के ठीक अनुपात में होता है।

राब का ताप मालूम करने के लिए सामान्य काँच के तापमापक ठीक नहीं है, यद्यपि ऐसे तापमापक से भी ताप का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। शून्य कड़ाहों में ऐसे छेद होते हैं, जिनमें कोण-तापमापक रखा जा सकता है। पर हमें तो उबलते तल के ताप का ज्ञान प्राप्त करना होता है। इसके लिए थर्मोकपल अथवा पारद-चालित अंकानिक (dial) तापमापक अधिक सुविधाजनक है। अंकानिक का विस्तार १२ इंच होना चाहिए और उसमें १२०° से १८०° फ० सूचित करने के अंक होने चाहिए। तापमापक में कोई नुकसान न हो, इसके लिए २२५° फ० तक पारद फैलने का प्रबन्ध रहना चाहिए।

अतितृप्ति—ऊपर कहा गया है कि चीनी के अधिक-से-अधिक मणिभ प्राप्त करने के लिए सीरे का अति-तृप्त होना बहुत आवश्यक है। ऐसे अतितृप्त विलयन में संतृप्त विलयन से ५० प्रतिशत तक अधिक ठोस पदार्थ रह सकता है। यदि चीनी के संतृप्त विलयन की विलेयता 'व' है और अतितृत विलेयन में चीनी की विलेयता व१ है तो $\frac{व१}{व}$ निष्पत्ति को अति तृप्ति का गुणक कहते हैं। जो मनुष्य इस कड़ाह के देखरेख में रहता है, उसे पर्याप्त अनुभव हो जाता है कि अति-तृप्ति किस सीमा पर पहुँची है। पर इसे नापने के लिए यंत्र भी बने हैं। ऐसे यंत्र को ब्रैस्मोस्कोप अथवा ब्रिक्सो-मापक कहते हैं। यह एक विशेष प्रकार का गुरुत्वमापक यंत्र है जो सीरे के गुरुत्व को नापने के लिए उपयुक्त होता है। इससे केवल देख कर और स्पर्श कर जो ज्ञान प्राप्त किया जाता था, वह यंत्र द्वारा सरलता से प्राप्त हो जाता है।

क्सेन का मत है कि यदि सीरा शुद्धतर है तो अति-तृप्ति का गुणक १·२ रहना चाहिए। ऐसी दशा में चीनी के मणिभ शीघ्र बनते हैं। एक बार जब मणिभ बन जाते हैं तब उनके प्रभाव से और भी मणिभ निकलने लगते हैं। ऐसे दाने बनने के समय अतितृप्ति का गुणक १·० से १·२ के बीच रहना चाहिए। यदि यह १·२ से अधिक हो जाय तो और सीरा डालना चाहिए और यदि यह १·० से कम हो जाय तो सीरे का डालना बन्द कर देना चाहिए। यदि सतत सीरे के डालने का प्रबन्ध हो तो उसी दशा में गुणक १·१ रहना चाहिए। जिस समय उबलना बन्द करना है, उस समय गुणक १·३ तक रह सकता है।

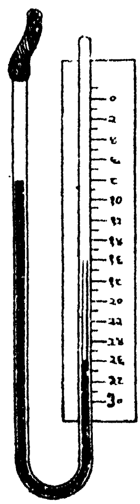
अति-तृप्ति का निर्धारण इस सिद्धान्त पर होता है कि क्वथन विन्दु का उन्नयन जिस ताप पर उबाल होता है, उसका स्वतंत्र होता है। ७५ प्रतिशत चीनी के विलयन का क्वथन विन्दु वायुमण्डल के दबाव पर २३१·२° फ० है। २५ इंच शून्य में जल १३२° फ० पर उबलता है। इसी शून्य में चीनी का ७५ प्रतिशत विलयन १३२ + १३·२ = १४५·२° फ० पर उबलता है। अत: यदि किसी उबलते विलयन का ताप ज्ञात हो तो उससे प्रकाशित सारिणी से विलयन की सान्द्रता सरलता से मालूम हो जाती है। यदि सान्द्रता उस ताप की संतृप्ति से अधिक है तो उससे अति-तृप्ति निकाली जा सकती है। इस प्रकार यदि २५ इंच शून्य में किसी उबलते सीरे का ताप १६५·२° फ० है, उन्नयन ३३·२ फ० है जो चीनी के ८७·५ प्रतिशत विलयन का है, तो अति-तृप्ति का गुणक बराबर $\frac{८७·५}{७५·०}$ = १·०७५

क्लैसेन द्वारा प्रस्तुत चीनी के विलयन के क्वथन-विन्दु के उन्नयन की सारिणी—

चीनी प्रतिशत	उन्नयन °फ०	चीनी प्रतिशत	उन्नयन °फ०	चीनी प्रतिशत	उन्नयन °फ०
७५	१३·२	८२·५	२२·०	८८·५	३६·०
७५·५	१३·७	८३	२२·७	८८·७५	३६·७
७६	१४·२	८३·५	२३·६	८९	३७·५
७६·५	१४·८	८४	२४·७	८९·२८	३८·३
७७	१५·३	८४·५	२५·७	८९·५	३९·१
७७·६	१५·८	८५	२६·८	८९·७५	३९·८
७८	१६·४	८५·५	२७·८	९०	४०·७
७८·५	१६·९	८६	२९·२	९०·२५	४१·५
७९	१७·५	८६·२५	२९·८	९०·५	४२·४
७९·५	१८·०	८६·५	३०·४	९०·७५	४३·२
८०	१८·६	८६·७५	३१·२	९१	४४·१
८०·५	१९·३	८७	३१·८	९१·२५	४५·१
८१	१९·९	८७·२५	३२·५	९१·५०	४६·३
८१·५	२०·५	८७·५	३३·२	९१·७५	४७·७
८२	२१·२	८७·७५	३३·९	९२	५०·२
		८८	३४·६		
		८८·२५	३५·३		

ब्रैस्मोस्कोप—ब्रैस्मोस्कोप यंत्र क्वथन-विन्दु-उन्नयन के सिद्धान्त पर बना है। इसमें एक कोणीय तापमापक होता है और एक भारमापक। तापमापक ऐसा होता है कि उससे यथार्थ ताप जाना जा सके। यह कड़ाह के उबलते सीरे में इस प्रकार डूबा रहता है

कि अन्य कारणों से जैसे वाष्प वेष्ठन की निकटता से उसपर कोई असर न पड़े। इसमें जो भारमापक होता है, वह भी अधिक यथार्थ होता है। सामान्य ऐनिरायड भारमापक से पर्याप्त यथार्थ फल नहीं प्राप्त होता। तापमापक और भारमापक दोनों साथ साथ रखे रहते हैं। भारमापक निनाल (साइफन) प्रकार का होता है। इसमें यू-नली होती है जो एक ओर बन्द और एक ओर खुली रहती है (चित्र ६४)। नली में पारा भरा रहता है। यदि नली को उर्ध्वाधार रखें तो उससे दोनों भुजाओं में पारा के स्तंभ की उँचाई का अन्तर वायुमंडल का दबाव इञ्च में सूचित करता है। यह यू-नली एक लकड़ी के तख्ते पर मढ़ी होती है। खुले छोर को कड़ाह से जोड़ देते हैं। यदि कड़ाह का दबाव कम है तो उसका पारा गिरकर नीचे की तह पर चला आयगा। अब दोनों भुजाओं के पारद तल के अन्तर से कड़ाह के दबाव का ज्ञान हो जाता है। इस यंत्र में कुछ असुविधाएँ हैं। यदि कड़ाह का दबाव एक इञ्च कम हो जाय तो पारा का स्तंभ आधही इञ्च गिरता है और दूसरी भुजा में आधा इञ्च उठ जाता है। इस असुविधा के दूर करने के लिए डियर ने एक विशेष प्रकार का भारमापक बनाया है।



चित्र ६४—भारमापक

यह यू-नली होता है, इसका एक छोर बन्द और दूसरा खुला होता है। यह पारा से भरा रहता है। स्तम्भों में पारे के तल से पारे के इंच में वायु मण्डल का दबाव सूचित होता है।

इस रीति से अति-तृप्ति निकालने के लिए सारिणी की आवश्यकता होती है, जिसमें सीरे की शुद्धता, उबलते सीरे की गहराई इत्यादि दी हुई हो।

इस यंत्र का उपयोग आजकल नहीं होता; क्योंकि इससे अधिक सरल यंत्र का आविष्कार हुआ है जो बिजली की सहायता से कार्य करता है।

इस यंत्र को विद्युत्-चालक (Electric conductivity Instrument) यंत्र कहते हैं। इसके आविष्कारक जावा के डा० पीटर होनिग हैं। इसमें अतितृप्ति अंकित हो जाती है और मालूम भी हो जाती है। इस यंत्र का सिद्धान्त यह है कि चीनी के विलयन की चालकता उसमें उपस्थित जल की मात्रा के अनुपात में होती है; अर्थात् चालकता विलयन की सान्द्रता पर अतः अतितृप्ति पर निर्भर करती है। एलेक्ट्रोड ऐसा रखना चाहिए कि सीरे के यथार्थ क्थन पर रहे। इसमें एकांतरिक (alternate) धारा उपयुक्त होती है और विभवत्व (voltage) कमबेश किया जा सकता है। दोनों एलेक्ट्रोडों के बीच प्रवाहित धारा मिली-एम्पीयर में पढ़ी जा सकती है। भिन्न-भिन्न शुद्धताओं के लिए भिन्न-भिन्न विभवत्व उपयुक्त होते हैं। ऐसे एक यंत्र का नाम क्विटोमीटर (Cuitometer) है।

एक आत्म-चालित यंत्र भी बना है जिसको होलवेन ने (Holven) पेटेंट कराया है। इसमें शून्य-स्थायी, भाप-दबाव स्थायी, सीराघनत्व-स्थायी और ताप

सब स्थायी रहते हैं। जहाँ किसी में कोई अन्तर हो तो, आप-से-आप स्थिति ऐसी हो जाती है कि वे फिर शीघ्र ही स्थायी अंक पर आ जाते हैं।

अतितृप्ति का ज्ञान भुजायमापक से भी होता है। भुजायमापक के वाचन विलयन में उपस्थित ठोस के अनुपात में होता हैं। अतः भुजायमापक के वाचन और अतितृप्ति में सरल सीधा सम्बन्ध रहता है। इसमें कठिनता यही है कि कड़ाह के किस स्थान से नमूना निकालकर उसकी परीक्षा करें ताकि उससे यथार्थ फल प्राप्त हो।

चीनी विलयन के उबाल की विधि—कड़ाह का नियंत्रण आदमियों से हो अथवा यंत्रों से उबाल की विधि एक ही है। कड़ाह भी वेष्ठन-कड़ाह हो अथवा कैलेण्ड्रिया हो, विधि एक सी है। अन्तर केवल यही है कि एक में तापन-सतह एक होता है और दूसरे में अनेक।

साधारणतया जो विधि उपयुक्त होती है, वह यह है। कड़ाह को बन्द कर शून्य उत्पन्न करते हैं। जब आवश्यक शून्य, २५ इंच पारद का पहुँच जाता है, तब सीरा-प्रवेश-मार्ग खोल देते हैं और इतना सीरा ले लेते हैं कि कैलेण्ड्रिया अथवा वेष्ठन कड़ाह भर जाय। अब भाप आने देते हैं। उद्वाष्पन बड़ी शीघ्रता से होता है। दाना बनने के समय सीरा-तल जितना रहना चाहिए, उतना ही रखते हैं। यदि आयतन कम हो जाय तब और सीरा डालकर कमी को पूरा कर लेते हैं। प्रायः १५०°-१६०° फ० के बीच २५ इंच पारद दबाव पर दाने बनने शुरू हो जाते हैं। यदि प्रारम्भ में ही इतना सीरा ले लिया जाय कि उद्वाष्पन पर आवश्यक आयतन बच रहे तो उसके लिए सीरे के ब्रिक्स का ठीक-ठीक ज्ञान होना आवश्यक है। उस ज्ञान से ही हम जान सकते हैं कि कितना सीरा लेने से दाने बनने के विन्दु पर कितना आयतन रह जायगा।

दाने बनने के विन्दु का ज्ञान कड़ाह के आदमी को अनुभव से हो जाता है। सीरे के नमूने को अंगूठे और तरजनी के बीच रखकर उसे ऊपर नीचे खोलने से सीरे की लकीर कितनी दूर पर टूटती है, उससे ज्ञात होता है। यदि यह लकीर अंगूठे और तरजनी को पूरा खोल देने पर भी न टूटे, तब ही दाने आयेंगे। यदि ८३° शुद्धता का सीरा हो तो अति-तृप्ति १·७५ होने पर ही दाने निकलेगें अथवा क्वथन विन्दु उन्नयन प्रायः २७ डिगरी हो।

अब दाने निकलना शुरू होंगे; पर कब दाने की मात्रा पर्याप्त होगी, यह आदमी के अनुभव से ही पता लगता है। यदि सूक्ष्मदर्शक की सहायता लें तो उससे बड़ी सरलता होगी। जब पर्याप्त दाने बन गये हों तब और दानों का बनना सीरा डालकर अथवा दबाव ३ या ४ इंच कम करके रोका जा सकता है। हाथ से नियंत्रण में स्पर्श और दृष्टि से ही दाने बनने का पता लगता है; पर यंत्रों की सहायता से यह नियन्त्रण अधिक यथार्थ होता है। क्वथन विन्दु उन्नयन १६ करने से यह सिद्ध हो जाता है।

दाना बनने का काम अधिक सरल हो गया है। सीरे में चीनी के कुछ चूर्णों के डालने से ज्योंही सीरा संतृप्त दशा में पहुँचे, यानी वह मितस्थायी (metastable) कला में हो, उसमें चूर्ण डालने से नियमित आकार के दाने बनने शुरू हो जाते हैं। दाने जब पूर्ण रूप से बढ़ जायँ तब ही सीरे की अतितृप्ति बढ़ानी चाहिए।

अन्तिम सान्द्रीकरण—जब कड़ाह राब के आयतन से भर जाता है, तब सीरे के प्रवेश को रोककर उद्वाष्पन होने देते हैं। जब राब उपयुक्त ब्रिक्स पर पहुँच जाता है

तभी उसे बन्द करते हैं। यह कड़ाहवाला आदमी नमूने को देखकर ही बता देता है। इसके लिए उसे अनेक वर्षों तक अनुभव प्राप्त करना पड़ता है। नियंत्रण यन्त्रों से भी क्वथन विन्दु उन्नयन अथवा अति-तृप्ति से इसका ज्ञान हो सकता है।

राब के कड़ाह से निकाल लेने पर कड़ाहों को पूर्ण रूप से साफ कर लेना चाहिए। पहले उसे भाप से ही साफ करते थे; पर अब जल से ही धोकर साफ कर लेने की परिपाटी चल निकली है। जल दबाव से कड़ाह पर गिरना चाहिए। इससे सफाई जल्दी होती है। सारे तापन तल और अन्य सब भागों को एक सा साफकर देना चाहिए।

शून्य कड़ाहों में किस ताप पर गरम करना चाहिए, इसमें एक मत नहीं है। साधारणत: निम्न ताप पर विपर्यय (inversion) कम होता और रंग भी हलका होता है। सफेद चीनी के लिए प्राय: १८०° फ० अच्छा समझा जाता है; पर कई शोधक महत्तम ताप १४५°-१५०° फ० ही पसन्द करते हैं। जो सीरा कड़ाह में आता है, उसका ब्रिक्स ७०° रहना अच्छा है और ऐसा साधारणत: रहता ही है। उद्वाष्पन पर यह ६०-०,६२,०,६३·५ और ६६·० हो जाता है। सीरे के अधिक ऊँचा ब्रिक्स होने से उद्वाष्पकों में ठोस स्तर पड़ जाने की संभावना रहती है। कुछ लोग सिरे को ५५° ब्रिक्स पसन्द करते हैं; पर इसमें कोई विशेष लाभ नहीं है।

सीरे को उबालने के लिए कैसा प्रबन्ध होना चाहिए, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है। इनमें निम्नलिखित बातें महत्त्व की हैं :—

(१) किस विधि से सबसे अधिक चीनी प्राप्त होती है? (२) चीनी की शुद्धता कैसी रहती है? (३) चीनी के परिरक्षित रहने का गुण कैसा होता है? (४) अन्तिम छोआ की शुद्धता कैसी रहती है? (५) प्रति १०० पाउंड चीनी के लिए राब कितना घनफुट रहता है? (६) कारखाने की कार्यवाही के लिए किस विधि में सरलता और अनाम्यता (flexibility) अधिक रहती है?

उबाल की विधि के चुनाव में सीरे की शुद्धता महत्त्व की बात है। ऐसे ग्रीष्म देशों में जहाँ सीरे की शुद्धता ८५° से ऊपर है, अधिक उबाल की आवश्यकता होती है।

द्वि-उबाल-पद्धति (Two-Boiling System)—इस पद्धति में जिसमें व्यापार की कच्ची चीनी प्राप्त होती है, राब को ७०° से ७४° की शुद्धता पर ला कर उसे उपयुक्त करते हैं। ऐसा करने के लिए इसमें कुछ छोआ मिला देते हैं। इससे जो छोआ प्राप्त होता है, वह ५२° या इस से न्यून शुद्धता का होता है। इस छोए को ५८° राब में उबालकर परिणत करते हैं। इस राब को मणिभीकरण पात्र में ठंढा होने के लिए छोड़ देते हैं। अब केन्द्रापसारक (सेन्ट्रीफ्यूगल) में चीनी और छोए को अलग-अलग कर लेते हैं।

यह विधि सरलतर है; पर इससे चीनी उत्कृष्ट कोटि की नहीं प्राप्त होती। शोधन से भी बहुत उत्कृष्ट कोटि की चीनी नहीं बनती। इसमें अपेक्षाकृत अधिक छोए को उबालना पड़ता है, जिससे कड़ाह, मणिभीकरण-पात्र, केन्द्रापसारक का काम बढ़ जाता है और अधिक ईंधन भी खर्च होता है। इन कारणों से इस विधि का उपयोग आज बहुत कम हो गया है और बहुत थोड़े पुराने कारखानों में ही इसका उपयोग होता है।

तीन-उबाल-पद्धति (Three-Boiling System)—इस पद्धति में सीरे और प्रथम छोए को ८०°-८३° शुद्धता तक उबालते हैं। एक दूसरे मासकट को ७०°-७२°

शुद्धता तक उबालते हैं। एक तीसरे मासकट को जिसे मणिभीकरण-पात्र राब कहते हैं, केवल प्राय: ५८° शुद्धता तक उबालते हैं।

पहले और दूसरे राब से प्राय: एक ही कोटि की चीनी प्राप्त होती है। तीसरे राब से मणिभीकरण-पात्र में एक से चार दिन तक रहने के बाद चीनी को छोए से अलग कर लेते हैं। ऐसी चीनी को फिर छोए के साथ मिलाकर, अलग कर, धोकर ऐसे रूप में प्राप्त करते हैं जो प्रथम चीनी के समान ही उत्कृष्ट कोटि की होती है और सीरे में डालकर चीनी के दाने प्राप्त करने में उपयुक्त हो सकती है।

चार-उबाल-पद्धति (Four-Boiling System)—इस पद्धति का उपयोग भी कहीं-कहीं हो रहा है। यह पद्धति वस्तुतः चुकन्दर से चीनी प्राप्त करने की विधि से ही ईख से चीनी बनाने की विधि में आई है।

सीरे को उबाल कर उसमें चीनी की धूल डालकर मणिभीकरण के लिए छोड़ देते हैं। जब पर्याप्त मात्रा में चीनी निकल आती है, तब केन्द्रापसारक में चीनी को छोए से अलग कर लेते हैं। फिर चीनी को थोड़े पानी से धोकर निकाल लेते हैं और सूखने देते हैं।

चीनी को छोए से अलग करने की विधि का सारांश निम्नलिखित शब्दों में दिया जा सकता है—

सीरे को एक विशिष्ट विन्दु तक सान्द्रित कर कड़ाह से निकाल मणिभीकरण पात्र में मणिभ और छोए में अलग-अलग होने के लिए छोड़ देते हैं। चीनी को छोए से अलग कर सुखा लेते हैं। इससे प्रथम चीनी और प्रथम छोआ प्राप्त होता है।

प्रथम छोए को फिर दाने बनने की विन्दु तक उबाल कर रख देते हैं, चीनी को अलग कर द्वितीय चीनी और द्वितीय छोआ प्राप्त करते हैं। ऐसी चीनी की शुद्धता ९६ या इससे कुछ कम होती है। यदि प्रथम चीनी के साथ मिला दें तो इसकी शुद्धता ९६ से ऊपर हो जाती है।

द्वितीय छोए को फिर उबालकर ५०० पाउन्ड के पात्रों में इसे ४ दिनों तक चीनी अलग होने के लिए छोड़ देते हैं। इससे जो चीनी और छोआ प्राप्त होता है, उसे तृतीय चीनी और तृतीय छोआ कहते हैं। ऐसी चीनी की शुद्धता ८८ से ९० तक रहती है। इसे बाजारों में नहीं रखते। इससे पिघलाकर सीरे में डाल देते हैं अथवा बीज-दाने के रूप में उपयुक्त करते हैं। ऐसी दशा में यह प्रथम चीनी में चली आती है।

तृतीय छोए को अलग उबाल कर बड़े-बड़े ग्राहकों (receptacles) में जो लकड़ी अथवा लोहे की टंकियाँ होती हैं, दो से तीन महीनों तक रख देते हैं। इससे बहुत निम्न कोटि की चीनी और चतुर्थ-छोआ प्राप्त होता है। इस चीनी को तृतीय उबाल से प्राप्त चीनी के सदृश उपयुक्त करते है। चतुर्थ-छोआ को अब ऐसे ही बेच देते हैं।

कहीं-कहीं पाँचवी बार भी छोए से चीनी प्राप्त की जा सकती है जिससे अधिकतम मात्रा में चीनी निकल आवे। पर ऐसे छोए को बहुत समय तक रखने की आवश्यकता पड़ती है।

अब जैसे ऊपर कहा गया है, छोए को अलग-अलग न उबाल कर एक दूसरे के साथ मिलाकर उससे महत्तम चीनी प्राप्त करते हैं। इसमें अनेक लाभ पाये गये हैं। छोए को अलग-अलग रखने के लिए अधिक स्थान और पात्र की आवश्यकता नहीं होती। श्रम कम लगता है और चीनी के लिए बहुत समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है।

तेईसवाँ प्रकरण

गति में मणिभीकरण

बहुत दिनों से देखा गया था कि राब के समय-समय पर हिलाने-डुलाने से चीनी के मणिभ अच्छी मात्रा में और शीघ्रता से बनते थे। यह हिलाना-डुलाना हाथों से प्रदोलकों(Oscillators) द्वारा होता था। यंत्रों से यह काम पहले-पहल १८६६ ई० में बेलजियम में शुरू हुआ। मणिभीकरण पात्रों का उपयोग १८८० में रूस में शुरू हुआ। निम्नकोटि के राब के लिए इसका उपयोग शुरू हुआ। अतितृप्त राब में चीनी के मणिभ डालकर गति में ठंढा होने के लिए छोड़ देने पर उससे उत्कृष्ट कोटि के चीनी के मणिभ प्राप्त हुए।

राब की शुद्धता की कमी और उच्च स्निग्धता के कारण चीनो के मणिभ के बनाने और वृद्धि करने में रुकावटें होती हैं। छोए से अधिक-से-अधिक चीनी निकल जाने के लिए आवश्यक है कि राब का ताप धीरे-धीरे नीचे उतरे।

कड़ाह से निकलकर राब के मणिभीकरण के लिए गति में रखने की क्रिया को गति में मणिभीकरण कहते हैं। राब को ठंढा होकर वायु के ताप पर धीरे-धीरे लाने के समय उसे धीरे-धीरे हिलाते रहते हैं। जैसे जैसे राब का ताप कम होता जाता है, चीनी की विलेयता कम होती जाती है, उससे चीनी विलयन से निकलती जाती है और चीनी-प्राप्ति की मात्रा बढ़ती जाती है।

मणिभ के नये केन्द्र न बने और जो मणिभ बन गये हैं, वे ही बढ़ते जायँ, इसके लिए आवश्यक है कि राब को बराबर गति में रखा जाय। पहले यह विधि केवल निम्नकोटि के राब में उपयुक्त होती थी; पर अब उच्चकोटि के राब के लिए भी यह उपयोगी प्रमाणित हुई है और इससे उबाल की संख्या अवश्य ही कम की जा सकती है।

शुद्ध और अशुद्ध विलयनों में चीनी की विलेयता—चीनी जल में विलेय है। यह विलेयता निम्न सारिणी से ज्ञात होती है।

जल में चीनी की विलेयता

ताप ०°श०	प्रतिशत चीनी ब्रिक्स डीगरी	१०० अंश जल में चीनी का अंश	१०० अंश चीनी में जल का अंश
०	६३·४	१७४	५७·६
५	६४·२	१८०	५५·७
१०	६५·१	१८६	५३·७
१५	६५·६	१९३	५१·८
२०	६६·७	२०१	४६·८
२५	६७·६	२०६	४७·८
३०	६८·५	२१८	४५·६
३५	६६·५	२२८	४३·६
४०	७०·४	२३८	४२·०
४५	७१·४	२५०	४०·०
५०	७२·४	२६३	३८·०
५५	७३·५	२७७	३६·१
६०	७४·५	२९३	३४·१
६५	७५·६	३११	३२·१
७०	७६·८	३३१	३०·४
७५	७८·०	३५४	२८·२
८०	७६·२	३८१	२६·२
८५	८०·४	४११	२४·३
९०	८१·५	४४७	२२·४
९५	८३	४९१	२०·४
१००	८४	५४३	१८·४

ऐसे विलयन में चीनी की विलेयता, जिसमें ईख के रस की अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, केवल ताप पर ही निर्भर नहीं रहती; पर मातृ-तरल की शुद्धता और अशुद्धियों की प्रकृति पर भी निर्भर करती है। अशुद्ध विलयनों में चीनी की विलेयता जब निष्पत्ति के द्वारा सूचित की जाती है तब उसे संतृप्ति-गुणक (Saturation coefficient) कहते हैं।

एक ही शुद्धता के विलयन में ताप की कमी से संतृप्ति-गुणक कम होता है।

मणिभ के बनने का सिद्धान्त—राब से मणिभ बनने का काम दो क्रमों में होता है। पहले क्रम में चीनी मणिभ के मुख की ओर मातृ-तरल के गतिहीन स्तर में प्रसारित (diffused) होती है। यह चीनी मणिभ-तरल पर शोषित हो जाती है। प्रसारण की

गति सान्द्रीकरण के अन्तर के अनुपात में होती है। दूसरे क्रम में चीनी मणिभ दशा में परिवर्तित होती है और यहाँ गति सान्द्रीकरण के अन्तर के वर्ग के अनुपात में होती है।

चीनी के मणिभीकरण का वेग—यदि विलयन की शुद्धता ९५° है तो ऐसे विलयन से जो मणिभ निकलेगा, उसका वेग शुद्ध विलयन के वेग से प्राय: आधा होगा। यदि विलयन की शुद्धता ८०° है तो मणिभ निकलने का वेग प्राय: नौवाँ भाग होगा। सिलिन का मत है, चुकन्दर के छोए के ५५° शुद्धता से मणिभ निकलने का वेग शुद्ध विलयन से मणिभ निकलने का ६४७ गुना कम हो जाता है।

स्निग्धता (Viscosity) से मणिभीकरण रुकता नहीं है; पर मणिभीकरण का वेग अवश्य कम हो जाता है। अनेक लोगों ने राब की स्निग्धता, ताप, सान्द्रता, अतितृप्ति और शुद्धता के सम्बन्ध का अध्ययन किया है। सान्द्रता की वृद्धि, ताप की कमी और शुद्धता की कमी से स्निग्धता की वृद्धि होती है।

राब को जब ठंढा करते हैं, तब उसमें चीनी की विलेयता कम होने के कारण चीनी को ठोस रूप में अलग होना पड़ता है। यह तीन बातों पर निर्भर करता है—

१. ताप की कमी।

२. विलयन की शुद्धता की कमी।

३. ताप और शुद्धता की कमी से संतृप्ति गुणक की कमी।

कड़ाह से निकाल लेने पर राब को मणिभीकरण पात्र में रखते हैं। मणिभीकरण पात्र कई प्रकार के होते हैं।

पहले-पहल जो मणिभीकारक बने थे, वे वायु से ठंढे होते थे। ये यू आकार के खुले और क्षैतिज होते थे। पीछे बन्द बेलनाकार बने। इनमें एक ईषा (Shaft) होती थी जो धीरे-धीरे, २ या ३ मिनट पर एक बार घूमती थी। विकिरण द्वारा वायु से ये ठढ़े होते थे; पर आज इन वायु से ठंढे किये मणिभीकारकों का उपयोग बन्द हो गया है। इनके स्थान में आज जल से ठंढे किये मणिभीकारकों का उपयोग होता है।

ऐसे मणिभीकारक निम्नलिखित चार वर्गों के होते हैं—

१ जल से ठंढे किये मणिभीकारक। इन पात्रों में जल के प्रवाह के लिए दोहरे स्तर होते हैं, जिनके बीच से जल प्रवाहित हो सकता है। पात्र के वाह्य भाग में ही ठंढा करने के तल होते हैं।

२. मणिभीकारक जिसमें परिवहन (Circulating) वेष्ठन स्थिर होते हैं।

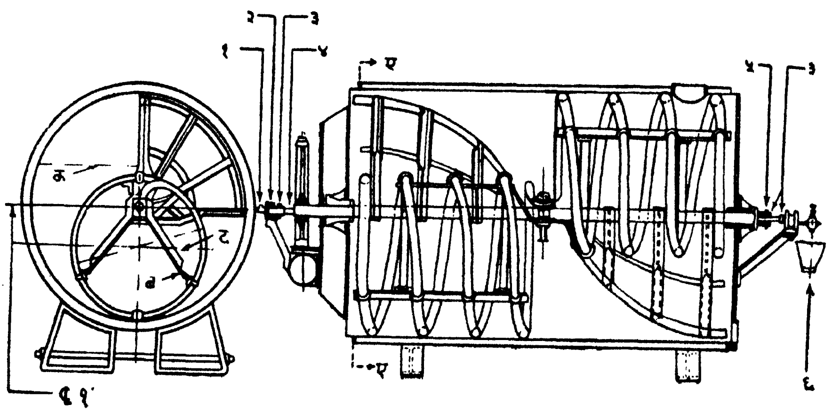
३. मणिभीकारक जिसमें परिवहन-वेष्ठन-परिभ्रामक (Rotating) होते हैं। इनमें प्रक्षुब्ध करने के उपकरण का भाग ही ठंढा करने का तल होता है।

४. परिभ्रामक मणिभीकारक जिनमें ठंढा करनेवाले वेष्ठन स्थिर रहते हैं।

१ जल-वेष्ठित (Water-jacketed) मणिभीकारक—यह मणिभीकारक बेलनाकार होता है। इसके वाह्य भाग में एक खोल होती है, जिसमें पानी बह सकता है। ऐसे मणीभीकारक आज इस्तेमाल नहीं होते हैं। पर पुराने कारखानों में अब भी मौजूद हैं और काम देते हैं। इनकी वाह्य खोल बनाने का खर्च मणिभीकारक के खर्च से अधिक पड़ता है।

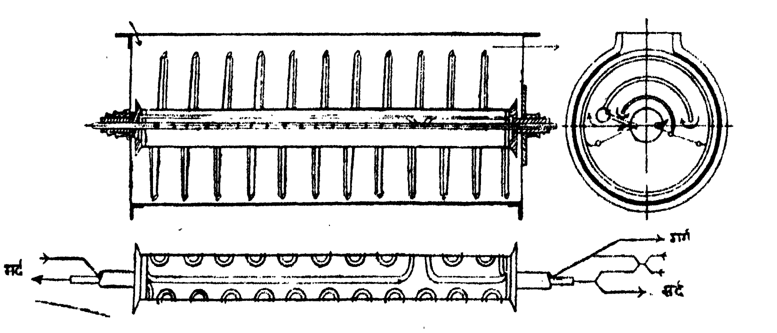
स्थावर (Stationary) शीतकारक वेष्ठन—अनेक प्रकार के ऐसे वेष्ठन उपयोग में हैं। इनमें कोपके (Kopke) प्रकार का अधिक प्रचलित है। इस वेष्ठन में ईषा (Shaft) होती है, जिसके समकोण में वेष्ठन होते हैं। वेष्ठन प्राय: १८ इंच की दूरी पर होते हैं। स्थिर वेष्ठन के बीचों में क्षेपणी (paddle) होती है। यहाँ राब को ६०°-६५° फ० तक शीतलकर केन्द्रापसारक में ले जाते हैं। कोपके वेष्ठन के सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त हुआ है, वह सन्तोषजनक नहीं है।

परिभ्रामक वेष्ठन (revolving coil) के साथ मणिभीकारक—इसमें घुमनेवाली ईषा खोखली होती है। इसी ईषा में भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवहन (circulating) वेष्ठन जुटे रहते हैं। उपयुक्त ताप पर इन्हीं में जल बहता है। इसमें शीतक तल राब के सीधे सम्पर्क में आता है। इनमें किल्वी मणिभीकारक महत्त्व का है। इसका वेष्ठन बेलनाकार होता है। यह दो भागों में कटा होता है [चित्र ६५]।



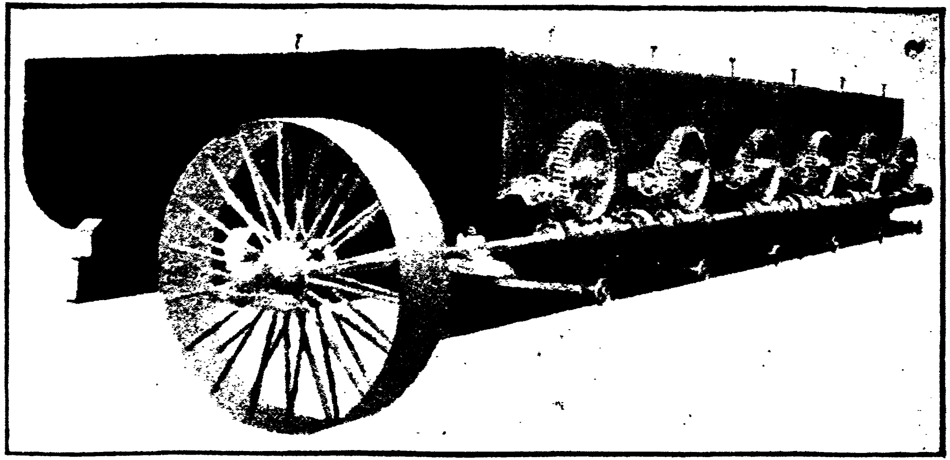
चित्र ६५—किल्वी मणिभीकारक १ से जल प्रविष्ट करना और ६ से निकल जाता है।

वर्क्सपूर (Workspoor) सतत मणिभीकारक–इस मणिभीकारक [चित्र ६४] में एक ओर से राब प्रविष्ट करता है और दूसरी ओर से निकल जाता है। यह या तो खुला होता है अथवा यू आकार का अथवा बोतल-आकार का होता है शीतकतल घुमता रहता



चित्र ६६—वर्क्सपूर सतत मणिभीकारक

है। राब एक छोर से दूसरे छोर पर पेंच के द्वारा परिभ्रमण करता है। शीतकतल राब की प्रतिकूल दिशा में चलता है। ताप की कमी नियमित रूप से होती है। इसके सम्बन्ध में



६६ (क)—एक दूसरा मणिभीकारक (क्रिस्टेलाइज़र)

कारखानों से जो रिपोर्टें आई हैं, वे सन्तोषजनक हैं। सफेद चीनी की प्राप्ति में भी इसका उपयोग हो सकता है।

लाफायल परिभ्रामक मणिभीकारक (La Feuille Rotary Crystalliser)—इसमें एक घुमता हुआ पात्र होता है जिसमें शीतक नलियाँ लगी रहती हैं। शीतकतल २ इंच मोटी नली की बनी होती है जो मणिभीकारक के एक छोर से दूसरे छोर को जाती है। जब मणिभीकारक को भरते अथवा खाली करते हैं, तब घुमना बन्द कर देते हैं। इसमें ५ से ६ घन्टे में राब ठंढा हो जाता है। इसका शीतकतल वस्तुत: बहुत दक्ष होता है। इसमें अधिक मणिभ और कम शुद्ध छोआ प्राप्त होता है। पर इस यंत्र का मूल्य अधिक होने से इसका उपयोग सीमित है।

मणिभीकारक इतना बड़ा होना चाहिए कि एक कड़ाह का सारा राब उसमें अंट जाय, नहीं तो गरम राब को ठंढे राब में रखने की आवश्यकता पड़ सकती है। यह परिस्थिति ठीक नहीं है। इससे कई कठिनाइयाँ खड़ी हो सकती हैं।

राब धीरे धीरे ठंढा होता है। यदि वह सतत गति में रहे तो चीनी के मणिभ बनने की गति ठंढे होने की गति की वृद्धि से बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार ठंढे होने की गति वायु द्वारा ठंढे होने के यंत्रों में नहीं बढ़ाई जा सकती है। यह वहाँ ही हो सकता है, जहाँ ठंढे होने के लिए पंखे लगे हों अथवा वायु से ठंढा होनेवाला मणिभीकारक कारखाने के ठंढे भाग में लगा हो।

यदि जल-वेष्ठन के द्वारा ठंढा करना है तो ठंढे करने की गति बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है और पानी के बहाव से नियंत्रित की जा सकती है। कुछ लोगों का मत है कि ताप के शीघ्र पतन से अतितृप्ति बढ़ जाती है और मणिभ बनने की गति बढ़ जाती है।

मणिभ से छोआ अलग करने में स्निग्धता एक महत्त्व की बात है। यदि किसी यत्न से स्निग्धता कम कर सकें तो छोए से मणिभ निकालने की गति बढ़ जायगी। राब को मणिभीकारक में ठंढा कर लेने के बाद भी मातृ-तरल चीनी से संतृप्त रहता है। दो रीतियों से इसकी स्निग्धता कम की जा सकती है—उसके तनु करने से अथवा गरम करने से। राब में पानी डालकर स्निग्धता कम करने की परिपाटी थी। आज राब को गरमकर स्निग्धता कम करने का व्यवहार चल पड़ा है। पानी डालकर स्निग्धता कम करना उतना सरल नहीं है। पानी का नियंत्रण कठिन होता है। गरम करने में दो बातों का ध्यान रखना बहुत जरूरी है—(१) स्थानीय तापन नहीं होना चाहिए और (२) राब के ताप में कमी नहीं होनी चाहिए।

चौबीसवाँ प्रकरण

चीनी के मणिभ का पृथक्करण

चीनी के मणिभ का पृथक्करण—कड़ाह से गाढ़े सीरे को जब निकालते हैं तब उसमें चीनी के रवे के साथ-साथ छोआ रहता है। इसे मासकट कहते हैं। हमने इसका नाम राब दिया है। मणिभीकारक से उसे मिश्रक में ले जाते हैं, जहाँ रवा बैठ न जाय, इसके रोकने का प्रबन्ध रहता है। राब से रवे के निकालने के लिए उसे छेदवाली टोकरियों में रखकर बड़ी तीव्र गति से घुमाते हैं। इससे छोआ रवे से निकलकर टोकरियों के छेदों से बाहर निकल जाता है। जिस उपकरण में यह कार्य सम्पादित होता है, उसे सेन्ट्रीफ्यूगल (केन्द्रापसारक) अथवा हाइड्रो-एक्सट्रैक्टर (जल निस्सारक) कहते हैं। वस्तुत: यह छानने की ही क्रिया है।

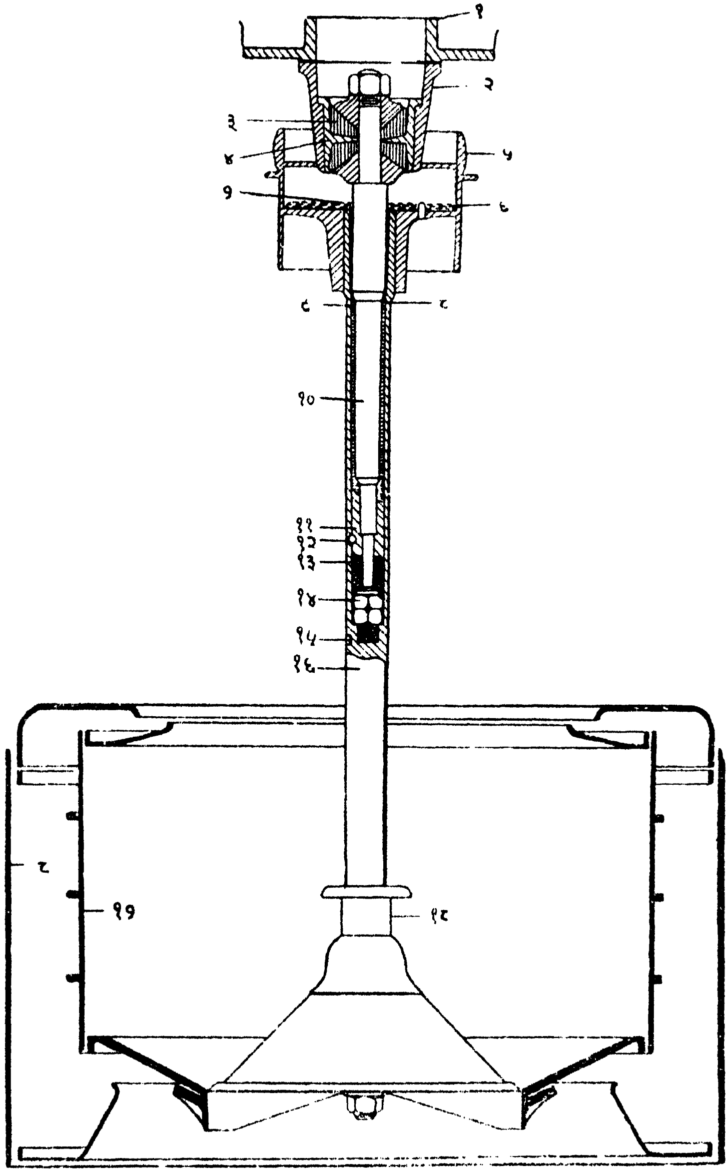
राब (मासकट)—कड़ाह से निकालकर राब को पहले मिश्रक में रखा जाता, फिर बड़े-बड़े पात्रों में रखते हैं। ये पात्र इतने बड़े होते हैं कि एक बार का उबाला राब एकही में अँट जाता है। ये बेलनाकार अथवा यू-आकार की टंकियाँ होती हैं। इनको एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने का प्रबन्ध रहता है। केन्द्रापसारक के निकट अथवा कड़ाह के निकट ये रखे जाते हैं। एक छोटे ग्राहक (receiver) द्वारा राब को केन्द्रापसारक में ले जाते हैं।

ये ऐसे रखे होते हैं कि गुरुत्व के द्वारा ही केन्द्रापसारक में लाये जा सकें। यदि ऐसा न हो सके तो पम्प द्वारा संपीड़ित वायु से केन्द्रापसारक में ले जाये जाते हैं। कहीं-कहीं राब को रखने के लिए प्राय: ५०० पाउन्ड समावेशन के कनस्टर होते हैं, जिन्हें ट्रक पर ट्राम द्वारा लाकर केन्द्रापसारक में खाली कर देते हैं।

मणिभ के पृथक् करने की सबसे पुरानी रीति खारी (hogs-head) द्वारा है जिसके पेंदे में छेद होते थे। पीछे कपड़े के थैले का उपयोग आया। फिर शून्य में पृथक् करने का पेटेंट लिया गया। थैले मोटे बीने कपड़े के बनते थे। चीनी के मणिभ उसमें रह जाते थे और छोआ बहकर निकल जाता था। फिर शून्य में छानने की चाल निकली और इसके अनेक पेटेंट लिये गये। आज मणिभ का पृथक्करण केन्द्रापसारक में होता है।

केन्द्रापसारक—केन्द्रापसारक पुरानी मशीन है। सबसे पहले एक फ्रांसीसी ने इसका पेटेंट सन् १८३७ में लिया था। फिर हार्डमैन नामक अँगरेज ने १८४३ ई० में इसका पेटेंट लिया। पहले-पहल हार्डमैन का केन्द्रापसारक ही चीनी के पृथक्करण में उपयुक्त हुआ था। इसके बाद तो अनेक लोगों ने फ्रांस, इंगलैंड, अमेरिका, डेनमार्क इत्यादि देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के केन्द्रापसारकों को बनाकर उनका पेटेंट लिया।

केन्द्रापसारकों में अनेक सुधार हुए हैं। इससे केन्द्रापसारकों की उपयोगिता आज बहुत अधिक बढ़ गई है। आज के केन्द्रापसारक जो चीनी के कारखानों में उपयुक्त होते है, प्रधानतया वेस्टन (Weston) के पेटेंट के आधार पर बने हैं। वेस्टन ने अपने



चित्र ६५—(१) मेखला (२) उलूखल (३) रबर (१०) स्थिरतकुं (१३) वलयक (१४) अग्निनह (५) घर्घरी (८) सुभित्ति (१८) कपाट

केन्द्रापसारक का पेटेंट १८६७ ई० में अमेरिका में लिया था। इस केन्द्रापसारक में एक ठोस स्थिर लटका हुआ तकुं (spindle) होता है। यह तकुं एक दूसरे सुषिर (खोखले)

परिभ्रामक तकुॅ का आधार होता है। इसी तकुॅ के साथ छेदवाला एक पिटक (basket) जुड़ा हुआ अर्थात् आसक्त रहता है। इस पेटेंट में उन्होंने निलम्बन (suspension) का दावा नहीं किया था, पर एक विशेष प्रकार के निलम्बन का उपयोग अवश्य किया था। निलम्बन के सिद्धान्त को तो एक दूसरे व्यक्ति बेसेमर (Bessemer) ने निकाला था।

वेस्टन के केन्द्रापसारक का सिद्धान्त यहाँ दिये चित्र (चित्र ६७) पूर्वक सरलता से समझाया जा सकता है। केन्द्रापसारक एक मेखल (girder) '१' से लटका होता है। यह मेखला एक उलूखल '२' द्वारा लटकी होती है। इस उलूखल में रबर '३' लगा रहता है। यही ठोस स्थिर तकुॅ '१०' को पकड़े रहता है। तकुॅ के निचले भागों में कई वलयक '१३' लगे रहते हैं। ये वलयक भ्रमिनह '१४' पर आधारित होते हैं। वाह्य खोखले (सुषिर) परिभ्रामक तकुॅ में चालक (driving) घर्घरी '५' और पिटकाठ लगी रहती है। यह वलयक (washers) पर अंश (shoulder) द्वारा आधारित रहता है। वाह्य सुभित्ति में छोआ इकट्ठा होता है जो ओष्ठ (Spout) द्वारा बहा लिया जाता है। केन्द्र का कपाट '१८' तकुॅ पर घूमता है।

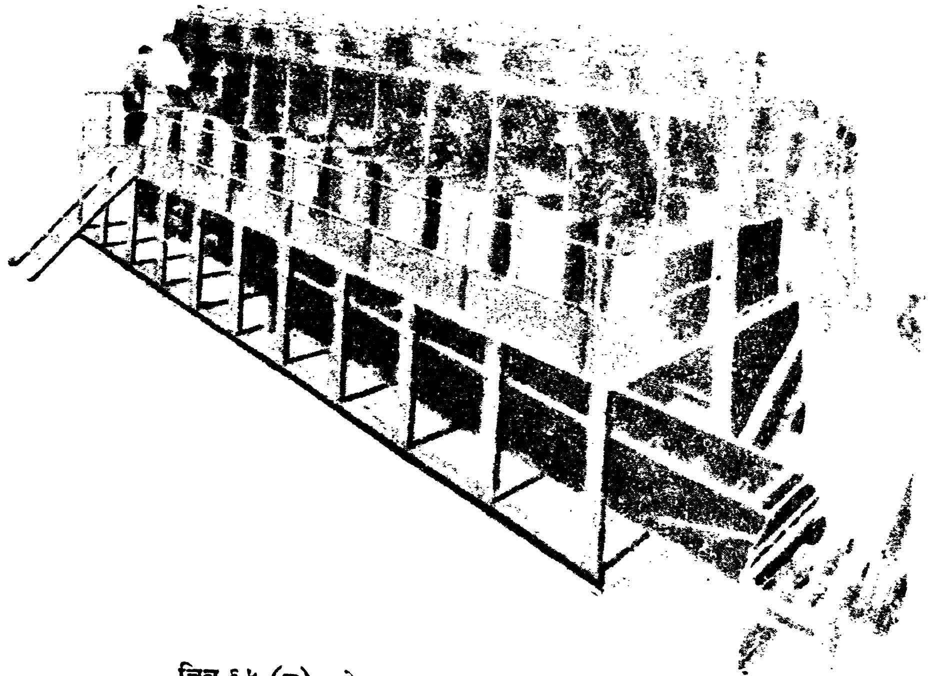
हेपवर्थ मशीन का पेटेंट १८७१ ई० में कराया गया था। गुटी-उलूखल-सन्धि (Ball and Socket joint) पर सारी मशीन लटकी रहती है। तकुॅ जिसमें ठोस पिटक लगा रहता है, स्थिरभारू (bearings) पर घूमता है। यह सुभित्ति से जुटा होता है। इससे पिटक और सुभित्ति सदा संकेन्द्र (Concentric) रहते हैं। परिभ्रामक पिटक का दोलन वाह्य सुभित्ति पर पहुँच जाता है। सारी मशीन दोलन के लिए मुक्त रहती है।

इसी प्रकार के और भी अनेक मशीनों का पेटेंट लोगों ने लिया है।

पिटक और जाली—केन्द्रापसारक का मुख्य अंग पिटक है। पिटक भिन्न-भिन्न विस्तार के होते हैं। चीनी के कारखानों में जो पिटक उपयुक्त होते हैं, वे ३० इञ्च × १८ इञ्च, ३६ इञ्च × १८ इञ्च, ४० इञ्च × २० इञ्च, ४० इञ्च × २४ इञ्च, ४२ इञ्च × २० इञ्च, ४२ इञ्च × २४ इञ्च और ४८ इञ्च × २४ इञ्च के होते हैं। पिटक की मोटाई साधारणतया ३/१६ इञ्च × १/४ इञ्च होती हैं। पिटक में छोटे-छोटे छेद होते हैं, जिनसे छोआ निकल जाता है। छेद का अन्तराल ३/४ इञ्च से १ इञ्च होता है। छेद का व्यास लगभग ३/१६ इञ्च होता है। भिन्न-भिन्न निर्माणकर्त्ता भिन्न भिन्न विस्तार के छेद बनाते हैं। पिटक की मजबूती के लिए पिटक पर एक दूसरा इस्पात का पट्टा (hoop) चढ़ा रहता है। ४२ इञ्च मशीन में प्रायः आठ पट्टे होते हैं। ये एक इञ्च गहरे और चौथाई इञ्च चौड़े होते हैं।

पिटक का पेंदा क्षैतिज या कुछ थोड़ा नत होता है। बीच में चीनी निकालने के लिए विवर (Opening) होता है। जब निकालना नहीं होता तब कपाट से इसे बन्द रखते हैं।

पिटक का ओष्ठ क्षैतिज अथवा कुछ नत होता है। केन्द्रापसारक बल से छोए के ऊपर उठने से बचाने का काम करता है। ओष्ठ की चौड़ाई प्रायः ६ इञ्च या इसी के लगभग होती है। जब गति में रहे तब ही राब को पिटक में डालते हैं जिससे छोआ निकलता रहता है और अधिक राब पिटक में अँटता है।



चित्र ६९ (क)—केन्द्रापसारक (सेन्ट्रीफ्यूगल मशीन)

जिस जाली में चीनी के मणिभ रह जाते हैं, वह पीतल अथवा तांबे की बनी और बुनी हुई रहती है। इसके छेद वृत्ताकार या शुंडाकार होते हैं। बहुत महीन चीनी के लिए बुना हुआ पिटक अच्छा समझा जाता है। मोटे दानेवाली चीनी के लिए छेदवाला पिटक उपयुक्त हो सकता है। इसके छेद एक इञ्च के ४०वें भाग के होते हैं। एक इंच में प्राय: २० होते हैं। पिटक की दीवार और जाली के बीच एक मोटा बुना हुआ परदा लगा रहता है, जिसके छेद चतुर्थांश इंच के होते हैं। इसी पर जाली रहती है।

पुरानी मशीनों में करछुल से उठाकर ऊपर से चीनी निकाली जाती थी। वेस्टन-पेटेंट में पहले-पहल पेदे से चीनी निकालने की चाल चल पड़ी। चीनी को खुरेचकर पिटक की दीवारों से अलग करते थे और इसमें समय और परिश्रम बहुत लगता था। अब चीनी को खुरेचकर निकालने के लिए यंत्र खुरचनेवाले औजार—अपोद्घर्षक (scrapers)—बने हैं, जो दीवार से सटी चीनी को तुरन्त खुरेचकर निकाल लेते हैं। खुरचनेवाले औजार लकड़ी के इसलिए बनते हैं कि पिटक अथवा जाली को खुरेच कर क्षति न पहुँचाये।

केन्द्रापसारक तर्कु—वेस्टन-पेटेंट का तर्कु बहुत दिनों तक प्रमाप-नमूना रहा, पीछे इसमें सुधार हुए। इस सुधार के कारण द्वि-स्फानवत् बफ़र (buffer) का उपयोग आया जिसमें पिटक के विभिन्न भागों में दबाव एक-सा फैल जाता था। पीछे बफ़र का आकार शंक्वाकार हो गया। केन्द्रापसारक में बहुत पीछे गुटी-भारु (ball-bearings) का उपयोग आया। सन् १९०२ ई० के पेटेंट में पहले-पहल गुटि-भारु आये। इन पेटेंटों में तर्कु स्थिर ठोस होता है। वह सुषिर (hollow) होता है जिसमें स्तम्भ निचले भाग में स्थित होता है। उसी तर्कु में पिटक लगा रहता है। एक केन्द्रापसारक का चित्र (चित्र ६८) यहाँ दिया हुआ है।

केन्द्रापसारक में राब डालते हैं। फिर घूर्णन की गति को धीरे-धीरे बढ़ाकर पूर्ण गति से चलाकर बन्द कर देते हैं और तब उससे निकाल लेते हैं। राब डालने और गति को धीरे-धीरे बढ़ाने में प्राय: एक से दो मिनट लगते हैं। पूर्णगति से २ से ३ मिनट चलाते हैं, फिर आधे मिनट ठहरकर आधे मिनट में चीनी को निकाल लेते हैं। एक चक्र में प्राय: पाँच मिनट से कम ही लगता है और एक घंटे में प्राय: १२ प्रभार (Charge) होते हैं। यदि मासकट ठीक से उबाला न हो या छोआ बहुत स्निग्ध हो तो घन्टे में कम ही प्रभार हो सकते हैं। पर यदि मासकट अच्छा हो तो घन्टे में २० प्रभार तक हो सकते हैं। ४० इंच × २० इंच मशीन में ५,००० से ६,००० पाउन्ड तक चीनी निकाली जा सकती है।

केन्द्रापसारक को पट्टक (belt) से चलाते हैं। यदि वाष्प-इंजन से शक्ति आती है, तो प्राय: प्रति-घन्टा ६० से ९० घूर्णन होता है। इससे इंजन और मशीन के बीच दन्तिचक्र (gearing) की निष्पत्ति १ से २० होती है। कभी-कभी तीव्रगति के इंजन में प्रतिमिनट २०० घूर्णन भी होते हैं। पीछे विद्युत्-शक्ति का उपयोग हुआ। इससे ऐसे केन्द्रापसारक बने हैं जिनमें प्रतिमिनट ११०० से १२०० घूर्णन सरलता से हो सकते हैं। पर ऐसी मशीनें भी बनी हैं जिनमें १६००, १८०० और २००० घूर्णन भी प्रतिमिनट हो सकते हैं। इन तीव्र गतिवाले केन्द्रापसारक के बनने का कारण उनके भारु (bearing) में सुधार और उच्च-आतन्य (high tensile) इस्पात की प्राप्ति है।

केन्द्रापसारक की गति—साधारणतया जो केन्द्रापसारक बनते हैं, उनकी गति तीव्र नहीं की जा सकती है। निर्माण-कर्त्ताओं ने जो गति निश्चित कर दी है, उससे अधिक तीव्र उन्हें नहीं बनाया जा सकता, पर उच्च गतिवाली मशीनें अब बनी हैं और उनमें गति की तीव्रता बहुत-कुछ बढ़ाई जा सकती है।

यहाँ समगति और समकेन्द्रापसारक बल के अन्तर को समझ लेना चाहिए। यदि पिटक का व्यास 'व' हो और प्रतिमिनट घूर्णन की संख्या 'स' हो तो समपरिणाह-गति व × स स्थायी होती है। पर सम समकेन्द्रापसारक बल व × स² स्थायी होता है। यदि पिटक का व्यास बढ़े और यदि केन्द्रापसारकबल को स्थायी रखना हो तो परिणाह-गति भी बढ़ जानी चाहिए।

वेस्टन-केन्द्रापसारक में ३० इंच की मशीन में घूर्णन १४४० प्रतिमिनट रहता था, पर पीछे घूर्णन की संख्या १२०० प्रति मिनट कर दिया गया और इस व्यास और इस गति के अनुकूल बल आजकल प्रमाप रहा है। अन्य विस्तार की मशीनों में घूर्णन क्या रहना चाहिए, यह निम्नलिखित सारिणी से ज्ञात होता है—

व्यास इंच में	सम-परिणाहगति घूर्णन प्रतिमिनट	समकेन्द्रापसारक बल घूर्णन प्रतिमिनट
३०	१२,००	१२,००
३६	१०००	१०६५
४०	९००	१०३९
४२	८५७	१०१३
४८	७५०	९४८
५४	६६७	८९४

इससे ज्ञात होता है कि बड़ी मशीनों में, समकेन्द्रापसारक बल से चलते हुए पिटक पर प्रत्यावल (stress) अधिक पड़ता है। इससे उच्च आतन्य बल के पदार्थों के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है।

केन्द्रापसारक का समावेशन—एक केन्द्रापशारक में कितने राब से चीनी निकाली जा सकती है, वह निम्नलिखित आँकड़ों से मालूम होती है।

केन्द्रापसारक इंच	समावेशन घनफुट	प्रभार घनफुट	प्रति घन्टा ७५ शुद्धी का राब घनफुट
४४ × २४	८	७	८०
४२ × २०	६·७५	५·७५	६७
४० × २४	७·५	६·५	७५
४० × २०	६·२५	५.२५	६२
३६ × १८	४·५	३·७५	४५
३० × १८	३·७५	३	३४

यदि राब की शुद्धता ७० हो तो मात्रा १० प्रतिशत कम और ८० हो तो १० प्रतिशत बढ़ जाती है।

पचीसवाँ प्रकरण

कच्ची चीनी

मासकट (राब) से जो चीनी निकलती है, उसे कच्ची चीनी कहते हैं। यद्यपि इस रीति से उच्चकोटि की बिलकुल सफेद चीनी भी प्राप्त हो, तो उसे कच्ची ही चीनी कहते हैं, यद्यपि परिष्कार से प्राप्त इससे मैली रंगवाली चीनी को 'परिष्कृत चीनी' कहते हैं। परिष्कृत चीनी की परिभाषा अब रसायनत: शुद्ध चीनी दी जाती है। इस परिभाषा के अनुसार ईख से प्राप्त सफेद चीनी को परिष्कृत चीनी कहेंगे और परिष्कार से प्राप्त मृदु और रंगीन चीनी को कच्ची चीनी कहेंगे। पहले यूरोप और अमेरिका के बाजारों में जो चीनी बिकती थी, उसे मासकैवैडो (muscavado) और क्लेड शुगर (clayed sugar) कहते थे। मासकैवैडो उस चीनी को कहते थे, जिससे चिपके छोत्रा बहाकर निकाल दिये जाते थे। मिट्टीवाले सुगर उस चीनी को कहते थे जो मिट्टी होकर छनती थी। पीछे शून्य कड़ाह की चीनी, केन्द्रापसारक की चीनी इत्यादि शब्द उपयुक्त होने लगे।

डच लोगों ने चीनी को कई श्रेणियों में विभाजित किया था। प्राय: सफेद चीनी को वे २५ डच स्टैन्डर्ड चीनी और बिलकुल मैली रंगीन चीनी को ६ डच स्टैंडर्ड चीनी कहते थे। १२ डच स्टैन्डर्ड चीनी को वे परिष्कृत समझते थे और उसपर कर अधिक लगता था।

९६° शुद्धता की चीनी को केन्द्रापसारक चीनी कहते हैं। ऐसी चीनी के ९६° जाँच क्रिस्टल, धुंधला क्रिस्टल, परिष्कार क्रिस्टल इत्यादि भी नाम देते हैं।

जावा के कारखानों में जो चीनी बनती है, उसे वे १६ डचस्टैन्डर्ड चीनी कहते हैं। इसका ध्रुवीयण प्राय: ९८ होता है। इसमें प्राय: ०.५ प्रतिशत विपर्यस्त चीनी, ०.२५ प्रतिशत राख, ०.५ प्रतिशत जल और ०.७५ प्रतिशत अशर्कराएँ रहती हैं। दूसरी श्रेणी की चीनी १२ से १६ डच स्टैन्डर्ड की होती है और इसका ध्रुवीयण ९६ रहता है। कच्ची चीनी को नम्बर १, नम्बर २, नम्बर ३ इत्यादि नामों से भी पुकारते हैं।

साधारणतया चीनी या तो सफेद होती है या पीली। पीली चीनी को डेमेरारा (demerara) क्रिस्टल भी कहते हैं। खांडसारी चीनी में जो विशिष्ट स्वाद होता है वह अवकृत शर्कराएँ और एमाइड की प्रतिक्रिया से आता है।

कच्ची चीनी का संगठन—कच्ची चीनी में इक्षुशर्करा के अतिरिक्त छोए का एक पतला स्तर होता है। कितना छोत्रा चीनी के मणिभ पर चिपका होता है, यह मणिभ के तल, छोए की स्निग्धता और केन्द्रापसारक के घूर्णन (rotation) की गति पर निर्भर करता है। साधारणतया केन्द्रापसारक से निकली चीनी ९६° शुद्धता की होती है। इसमें

चीनी ७३'६५ प्रतिशत और छोआ ६'२५ प्रतिशत रहता है। ऐसी चीनी ७५ शुद्धता के राब से प्राप्त होती है।

ऐसी चीनी के रवे रहने से कुछ पानी निकल जाता है। साधारणत: एक प्रतिशत से कुछ अधिक पानी निकलता है।

कच्ची चीनी को केन्द्रापसारक से निकलने के बाद सुखाते भी हैं। इससे चीनी का ध्रुवीयण बढ़ जाता है और पानी की मात्रा कम हो जाती है। अन्य सब अशुद्धियाँ ज्यों-की-त्यों रहती हैं।

चीनी में चिपके छोए को अंशत: अथवा पूर्णत: धोकर निकाल लेते हैं। इससे निम्नकोटि के राब से भी उच्च ध्रुवीयण की कच्ची चीनी प्राप्त होती है। ऐसी चीनी में जल की मात्रा भी कम रहती है, क्योंकि छोए की तनुता से स्निग्धता कम हो जाती हैं।

पर ऐसी चीनी में जीवाणुओं की क्रियाओं के कारण कुछ परिवर्तन भी हो सकता है। चीनी का विपर्यय हो सकता है और विपर्यस्त शर्करा का नाश भी हो सकता है।

चीनी में अशर्करा पदार्थ रस से आते हैं और चीनी के निर्माण की विधि से इनके संगठन में भी बहुत-कुछ हेरफेर होता है। इसके फास्फेट और अलबुमिनायड अवक्षिप्त हो जाते हैं। चूने, सलफ्यूरस अम्ल और फास्फरिक अम्ल से अशर्करा आ जाती हैं। चीनी कुछ जलकर कारामेल में अथवा विपर्यय से अवकृत शर्कराओं में परिणत हो जाती है। विपर्यस्त शर्कराएँ ताप और चूने से विच्छेदित हो, चूने के कार्बनिक लवणों में परिणत हो जाती हैं। इनमें खनिज लवण तो रस की सान्द्रता पर ठोस स्तर के रूप के कुछ जम जाते हैं।

७५ शुद्धता के राब से ६६° शुद्धता की चीनी में राख की मात्रा ०'४ से ०'७ प्रतिशत, अवकृत शर्कराएँ और कार्बनिक अशर्कराएँ १ से १'५ प्रतिशत रहती हैं।

कच्ची चीनी के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं—

१. अधिक खाद डाले खेत की ईख से प्रस्तुत चीनी में राख की मात्रा अधिक रहती है।

२. पूरी पकी और शुद्ध ईख से प्रस्तुत चीनी में अवकृत शर्कराओं की मात्रा कम रहती है।

३. निम्न कोटि की ईख अथवा निम्न कोटि के राब से प्रस्तुत चीनी में अवकृत शर्कराओं की मात्रा अधिक रहती है।

चीनी में जो राख रहती है, उसमें पोटाश की मात्रा सबसे अधिक रहती है। चूना और मैगनिशिया भी रहते हैं। लोहा लेश में रहता है। अम्लों में सलफ्यूरिक अम्ल, सिलिसिक अम्ल और फास्फरिक अम्ल रहते हैं। साधारणतया क्लोराइड भी रहते हैं। पोटाश ४० से ५० प्रतिशत, चूना ३ से १० प्रतिशत, मैगनिशिया १ से ५ प्रतिशत, सोडा ० से १ प्रतिशत, कार्बोनिक अम्ल ५ से १८ प्रतिशत, सलफ्यूरिक अम्ल ४ से १२ प्रतिशत सिलिसिक अम्ल १ से ४ प्रतिशत, फास्फरिक अम्ल ० से २ प्रतिशत और क्लोरीन २ से १५ प्रतिशत रहता है।

अशर्कराओं के संगठन का ज्ञान हमें बहुत कम है। इसमें कुछ गोंद, कुछ नाइट्रोजन,

एमाइड के रूप में और कुछ कार्बनिक अम्ल, ०·०५ से ०·२ प्रतिशत, कुछ कारामेल और कुछ ऐसे पदार्थ, जिनका संगटन हमें मालूम नहीं, रहते हैं।

कच्ची चीनी की भौतिक अवस्था—कच्ची चीनी में अविलेय पदार्थ कितने हैं, दाने कैसे बने हैं और दाने की कठोरता कैसी है, इनपर ऐसी चीनी का मूल्य निर्भर करता है। ऐसी चीनी में ईख के कुछ रेशे अवश्य रहते हैं। रेशे की मात्रा औसतन ०·१ प्रतिशत रहती है, कम-से-कम ०·०२ प्रतिशत और अधिक-से-अधिक ०·२ प्रतिशत।

चीनी के दाने ०·५ मिलिमीटर से २ मिलिमीटर तक के होते हैं। इन दानों को छोटे, माध्यम और बड़े दानों में वर्गीकरण करते हैं।

चीनी की कठोरता निश्चित नहीं है। सब मणिभ एक-से कठोर होते हैं; पर साधारणतया कठोरता से आशय जल्दी से बुकनी होनेवाला है। छोटे-छोटे दानेवाली चीनी छोए से बंधे रहने के कारण अंगुलियों के बीच से जल्दी टूट जाती है। अतः ऐसा मालूम होता है कि यह चीनी कोमल है। बड़े-बड़े दानेवाली चीनी इतनी सरलता से नहीं टूटती। इससे यह कठोर मालूम पड़ती है।

जब दाने सीरे से सीधे बनते हैं तब वे एक प्रकार के होते हैं और अधिक शुद्ध होते हैं; पर यदि दाने चीनी के दाने के बीज-रूप में देने पर सीरे से बनते हैं तो ऐसे दाने में अशुद्धियाँ अधिक मिली रहती हैं और यह दूसरे प्रकार की दीख पड़ती है।

चीनी का रंग बहुत कुछ छोए पर निर्भर करता है। यह रंग ईख से आता है और कुछ सीमा तक गरम करने से भी बढ़ता है। चूने और ताप से भी अवकृत शर्कराओं पर प्रतिक्रियाओं से रंग बढ़ता है। अन्तिम कारणों से जो रंग बढ़ता है, वह परिष्कार से जल्दी दूर नहीं होता। इससे परिष्कारी इन रंगों का होना पसन्द नहीं करते। परिष्कारी ऐसी चीनी चाहते हैं, जिसमें अविलेय पदार्थ न हो, दाने बड़े-बड़े और नियमित हों और छोए से वे बंधे हुए न हों, दाने बीज से न बने हों। उनमें कम-से-कम रंग हो और अवकृत शर्कराओं और अतिताप से बने रंगों का तो बिलकुल अभाव ही हो।

चीनी का शुष्कीकरण—कच्ची चीनी का साधारणतया शुष्कीकरण नहीं होता। परिष्कृत चीनी का ही केन्द्रापसारक से निकलने के बाद शुष्कीकरण होता है। इसका वर्णन अगले प्रकरण में होगा। यदि कच्ची चीनी को कुछ सुखाने की आवश्यकता हुई तो केन्द्र पसारक में ही अतितप्त भाप से सुखा लेते हैं।

चीनी की पैकिंग—कच्ची चीनी को जूट के बोरे में रखकर बाहर भेजते हैं। बड़े-बड़े बोरों में ३२५ से ३३० पाउन्ड तक चीनी अंटती है। २५० या ३१० पाउन्ड के भी बोरे होते हैं। कुछ बोरों में १२५ से १८० पाउन्ड चीनी अंटती है।

वाहक (Conveyors)—केन्द्रापसारक से चीनी वाहक द्वारा खत्ते में जाती है। केन्द्रापसारक से सीधे बोरे में नहीं भरती। चीनी ले जाने के लिए वाहक तीन प्रकार के होते हैं—

एक प्रकार की वाहकपट्टिका (ribbon) या पेच द्वारा घूमती हुई द्रोणी को चीनी के साथ आगे ले जाते हैं। द्रोणी का अनुप्रस्थ छेद (cross-section) परवलयी (parabolic) होता है।

दूसरे प्रकार के वाहक में अन्तहीनपट्टक (belt) होता है। यह रबर से अथवा वस्त्र से ढँका होता है। इसका उपयोग अब बहुत बढ़ रहा है। पट्टक में कम बिजली खर्च होती है और सफाई करने में सरलता होती है। इस्पात के भी पट्टक बनते थे; पर इनमें मुरचा लग जाता है। इसलिए ये पसन्द नहीं किये जाते हैं।

तीसरे प्रकार के वाहक पतमवल्गी (grasshopper) वाहक हैं। यह भी अच्छा वाहक है। इसकी गति पतम कीट-सी होती है, इसीसे इसका नाम पतमवल्गी पड़ा। इसमें द्रोणी ऐसी रहती है कि उसमें चीनी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है और फिर शीघ्रता से पीछे हट जाती है, जिससे चीनी वहाँ ही गिर पड़ती है। इसमें भी वाहक के प्रत्येक भाग सरलता से साफ किये जा सकते हैं।

चीनी की तौलाई—चीनी खत्ते में इकट्ठी होती है और कुछ समय के बाद ठंढी हो जाती है। कभी-कभी पंखे की वायु से भी चीनी को ठंढा करते हैं अथवा उसे बिछा देते हैं। इससे चीनी वायु में खुली रहने के कारण ठंढी हो जाती है और सूख भी जाती है। खत्ते से चीनी आत्म-चालित मशीन से बोरे में भरी जाती है और ज्योंही आवश्यक मात्रा बोरे में चली जाती है, सीकर बन्द कर दी जाती है। ऐसी मशीन का चित्र (चित्र ६६)यहाँ दिया हुआ है।

चीनी का पिंड (ढेला) बनना—चीनी कभी-कभी पिंड बन जाती है। यह उस दशा में बड़ी अधिकता से होता है, जब चीनी उच्च ताप से एक-ब-एक निम्न ताप पर आ जाती है। ऐसे पिंड बनने में विपर्यस्त शर्करा का हाथ अवश्य रहता है। यदि विपर्यस्त शर्करा और जल का अनुपात १:१ हो तो पिंड जल्दी बनता है। यदि अनुपात २:१ हो तो पिंड जल्दी नहीं बनाता। यदि दोनों का अनुपात एक ही रहे तो अधिक विपर्यस्त शर्करा से पिंड बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसकी व्याख्या यह की जाती है कि चीनी के मणिभ पर अति-तृप्त छोए का स्तर रहता है। जब ताप का ह्रास होता है अथवा स्तर के जल में कमी होती है तब छोए का मणिभीकरण शुरू होता है। इससे नये छोटे-छोटे मणिभों के बनने से पुराने मणिभ बँध जाते हैं, जिससे चीनी का पिंड बन जाता है।

पिंड बनने के कारणों में निम्नलिखित महत्त्व के हैं—

१. चीनी में अधिक जल का रहना। यदि चीनी में १ प्रतिशत या इससे अधिक जल रहे तो ऐसी चीनी में पानी के उद्वाष्पन से पिंड बन जाता है।

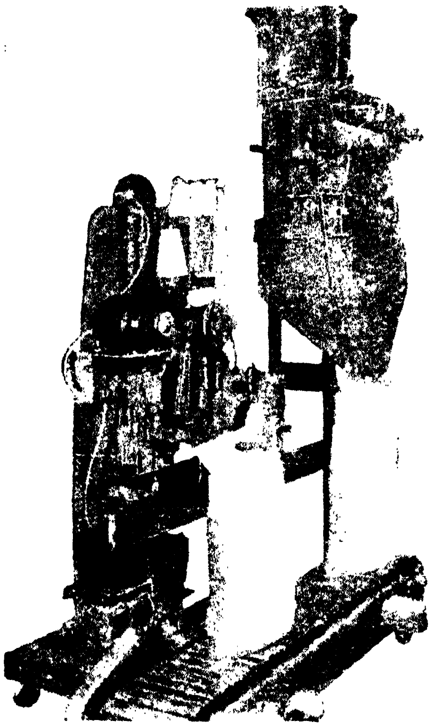
२. चीनी में कम जल के रहने से (०·३ से ०·४ प्रतिशत) पिंड नहीं बनता, जब तक ऐसी चीनी पहले आर्द्र वायु में न खुली रहे और पीछे शुष्क वायु में न जाय।

३. यदि चीनी स्निग्ध है, चिपकती है और उसमें कितना ही जल क्यों न हो ; तो पिंड अवश्य बनेगा।

४. छोटे-छोटे दानेवाली चीनी में पिंड अधिकता से बनता है और बड़े-बड़े दानेवाली चीनी में इतनी अधिकता से नहीं बनता। छोटे-छोटे दानेवाले चीनी का तल अधिक रहता है, इससे उनके पिंड बनने की सम्भावना अधिक रहती है।

५. अधिक पानीवाली चीनी को यदि गरम बोरे में ही बन्द कर दें तो पिंड बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। कम जलवाली चीनी को गरम बोरे में रखने से पिंड की सम्भावना नहीं रहती।

६. वायु की स्थिति (जलवायु का परिवर्तन) भी पिंड बनने में सहायक होती है।



चित्र ६६

बोरे में चीनी भरने, तौलने और सीने की आत्मचालित मशीन

७. यदि चीनी रखने के स्थान की वायु गरम या आर्द्र हो तो उससे भी पिंड बनने में सहायता मिलती है।

यदि चीनी के दाने एक-से हों, सूखे हों और चिपचिपे न हों तो साधारणतया पिंड नहीं बनता। अच्छी पैकिंग, ठंडे और सूखे स्थान में रखने से पिंड बनने की सम्भावना कम हो जाती है।

चीनी के रखने का स्थान सोच-विचार कर निश्चय करना चाहिए। यदि वायु की आर्द्रता ६५ प्रतिशत हो तो ऐसा स्थान उत्तम है। ऐसे स्थान में चीनी न पानी सोखता है और न निकालता है। यदि रखने का स्थान अधिक शुष्क है और वहाँ की आर्द्रता ६० से कम है तो चीनी पिंड बन जायगी। इस कारण गरम स्थान चीनी के रखने के लिए उपयुक्त नहीं है।

चीनी के रखने के लिए स्थान सूखा, बड़ा और ऐसा होना चहिए कि वायु प्रायः प्रविष्ट न कर सके। स्थान की दीवारें और गचें ऐसी होनी चाहिए कि उनमें सील न हो। टिनवाले लोहे की चादरें इसके लिए उपयुक्त नहीं हैं।

दीवारें और गचें सीमेन्ट की हों, तो अच्छा है। यदि लकड़ी की दीवारों में अलकतरा पोता हुआ हो या सीमेंट की दीवार और गचें अलकतरा से पोती हुई हों तो अच्छा है। ऐसी गच पर लकड़ी के तख्ते रखकर उनपर बोरे रखे जा सकते हैं। यदि बोरों को सटा-सटाकर पास में रखें तो जल सोखने की सम्भावना कम हो जाती है। गच से २ या ३ इंच ऊँचे तख्ते पर बोरे रखे जायँ तो अच्छा है। ३२५ पाउन्ड के बोरे के लिए लगभग खड़े ६$\frac{1}{2}$ घनफुट स्थान और पड़े प्रायः ७ वर्गफुट स्थान चाहिए।

यदि चीनी को बड़ी मात्रा में इकट्ठा रखना है, तो उसके लिए बड़े-बड़े खत्ते उपयुक्त होते हैं। ऐसे खत्ते का समावेशन २० हजार टन तक हो सकता है। ये इस्पात और लकड़ी के बने होते हैं। वाहक द्वारा चीनी इसमें आती है और बाहर जाती है। इसी प्रकार के खत्ते परिष्कृत चीनी के लिए भी उपयुक्त होते हैं। ऐसे खत्ते की ऊँचाई १०५ फुट तक और व्यास ४० फुट तक हो सकता है। ऐसे खत्ते में उष्णवायु के प्रवेश का भी प्रबन्ध रहता है। उष्णवायु इसमें प्रवाहित की जाती है।

पर ऐसे उष्ण खत्ते में मृदु चीनी को नहीं रख सकते। मृदु चीनी में प्रायः दो से पाँच प्रतिशत जल रहता है। इससे इसे ठंडे स्थान में रखने की आवश्यकता होती है, ताकि उसका जल उससे निकल न जाय। ठंडा करने से ऐसी चीनी कड़ी हो जाती है; क्योंकि उससे स्निग्धता बढ़ जाती है। मृदु चीनी यदि पिंड बन जाय, तो उससे ठीक करने में अधिक कठिनता होती है।

कच्ची चीनी का ह्रास—कच्ची चीनी के रखने से उसके ध्रुवीयण में कमी हो जाती है। इसे हम चीनी का ह्रास होना कहते हैं। चीनी के ह्रास से काफी चीनी नष्ट हो जाती है। इस ह्रास होने के कारणों का विशेष रूप से अध्ययन हुआ है। इसका अध्ययन पहले-पहल १८२७ ई० में डिक और वान बीक (Dijk and Van Beek) द्वारा हुआ था। उन लोगों के अन्वेषण का परिणाम यह था कि एक प्रकार के संचक (mold) द्वारा चीनी का रंग बदल जाता है। उस संचक का नाम उन्होंने कौनफर्वा मुकोरायडीज़ (Conferva mucoroides) दिया था। एक दूसरे अन्वेषक ने संचक का नाम

ग्लाइसिफिला इरिथरोस्पोरा और ग्लाइसिफिला इलीस्पोरा (glyciphila erythrospera and glyciphila elaespora) दिया था।

यह निर्विवाद है कि चीनी के ह्रास के कारण कुछ जीवाणु हैं। १८६६ में डुब्रुन्फा (Dubrunfaut) ने उस जीवाणु को बताया जो किण्वन से लैक्टिक अम्ल बनाता है। एक दूसरे अन्वेषक ने १८८० ई० में यीस्ट का पता लगाया और उससे इनवर्टेस निकाला। शोरे (Shorey) ने १८६८ में पेनिसिलिन निकाला। उसके बाद अनेक अन्य लोगों ने और भी अनेक प्रकार के जीवाणुओं का पता लगाया, जिनमें ऐसपिरगिलस (Aspergilus), साइट्रोमाइसीज़ (Citromyces), मोनिलिया (Monilia), टोरुली (Torulae), ओयिडियम (oidium), पेनिसिलियम क्लौकम (Penicillium glaucum) उल्लेखनीय हैं।

कुछ लोगों का मत है कि चीनी के ह्रास का कारण केवल बैक्टीरिया है। इनमें वह बैक्टीरिया जो आलू के टुकड़ों पर वायु में रखने से प्रकट होती है, जिसे पोटैटो बसिलि' (potato bacili) कहते हैं, प्रधान कारण है। यह बैक्टीरिया मिट्टी और वायु में बहुत फैली हुई रहती है और बिना नाइट्रोजन के भी जीवित रह सकती है और गोंद और इसी प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करती है।

कुछ लोगों का मत है कि चीनी के ह्रास का कारण प्रधानतः संचक हैं। ये ऐसे पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो चीनी का विपर्यय शीघ्रता से कर देते हैं। इसपर अम्लों और क्षारों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता। ये सूखी चीनी को भी आक्रान्त करते हैं।

इन जीवाणुओं की वृद्धि में ताप का प्रधान हाथ है। ये मणिभ के छोए के बाह्य स्तर पर रहते हैं। ये जीवाणु साधारणतया ३५° से ४०° श० के बीच अधिक बढ़ते हैं। २०° और इससे निम्न ताप पर इनकी कोई क्रिया नहीं होती। ये जीवाणु बहुत सान्द्र-विलयन में बढ़ते नहीं हैं।

डिर और नौरिस (Deerr and Norris) ने देखा है कि ६६ डिगरी की चीनी के रखने से उसमें ह्रास नहीं होता, यदि उसमें पानी की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक न हो। यह निर्विवाद है कि चीनी के ह्रास के कारण बैक्टीरिया, यीस्ट या संचक हैं। चीनी के ह्रास के रोकने के लिए निम्नलिखित यत्न किये जा सकते हैं—

१. कुछ बैक्टीरिया ११०° श० पर २० मिनट तक रखने से, ११५° श० पर १० मिनट तक रखने से और १२५° श० पर तत्काल मर जाते हैं। यदि रस को इस ताप पर गरम किया जाय तो उससे बनी चीनी में ये बैक्टीरिया नहीं रहेंगे।

२. केन्द्रापसारक में जल से धोकर छोए के स्तर को तनु नहीं करना चाहिए। यदि धोना आवश्यक ही हो तो आसुत जल से धोना चाहिए, जिसमें बैक्टीरिया की उपस्थिति की सम्भावना नहीं रहती।

३. चीनी को शोषित्र में ले जाकर छोए के स्तर को गाढ़ा बना देना चाहिए। इससे कुछ हानिकारक बैक्टीरिया बहुत अंश में नष्ट हो जाते हैं।

४. ऐसे पदार्थों को रस में नहीं डालना चाहिए जिससे रस को जल के सोखने की क्षमता बढ़े। ऐसे पदार्थों में चूने का आधिक्य, और अवकृत शर्कराओं की उपस्थिति है। चूने और ऐसी शर्कराओं से चूना-ग्लूकोज़ का आर्द्रताग्राही पदार्थ बनते हैं।

५. बड़े-बड़े दानों के कारण मणिभ पानी को कम सोखते और उनका वाह्यतल न्यूनतम होता है।

६. वायु-अप्रवेश्य खत्ते में चीनी को रखना चाहिए और सूखी जलवायु में ही उसके दरवाजे को खोलना चाहिए। यदि खत्ते के ताप के नियंत्रण का प्रबन्ध हो सके तो और अच्छा है।

७. सब पात्रों को साफ़ रखना चाहिए। कारखाना भी बिलकुल स्वच्छ रहना चाहिए। सप्ताह में एक बार तो सारे कारखाने को क्लोरीन जल से धो देना चाहिए। केन्द्रापसारक आदि उपकरणों को तो नित्य ही एक बार क्लोरीन जल से धो देना चाहिए।

८. यदि सम्भव हो तो चीनी रखने के स्थान का ताप २०° से कम ही रखना चाहिए ताकि जीवाणुओं की उसपर कोई क्रिया न हो सके। यदि ताप पर्याप्त ऊँचा हो तो भी जीवाणुओं की क्रिया रोकी जा सकती है।

साधारणतः चीनी के ह्रास से ध्रुवीयण कम हो जाता है, पर कुछ विशिष्ट दशाओं में ध्रुवीयण का बढ़ना भी देखा गया है। कुछ जीवाणु केवल फल-शर्करा को आक्रान्त करते है, इक्षु शर्करा ज्यों-की-त्यों रह जाती है। फल-शर्करा का ध्रुवीयण कम होने से चीनी का ध्रुवीयण बढ़ जाता है।

छबीसवाँ प्रकरण

छोआ

छोआ—चीनी बनाने में ईख के रस को गाढ़ा करने पर उससे चीनी के मणिभ निकल आते हैं। मणिभ के निकल आने पर जो अवशेष बच जाता है, उसे छोआ कहते हैं। छोआ 'प्रथम छोआ', 'द्वितीय छोआ' 'तृतीय छोआ' इत्यादि हो सकता है। चीनी के पहले मणिभ के निकल आने पर जो छोआ बच जाता है, उसे प्रथम छोआ, दूसरे मणिभ के निकल आने पर जो छोआ प्राप्त होता है, उसे द्वितीय छोआ इत्यादि कहते हैं। जिस छोए से चीनी के कोई मणिभ न निकले, उसे 'अन्तिम छोआ' अथवा केवल 'छोए' कहते हैं। ऐसे छोए को 'निश्चेषित छोए' (exhausted molasses), क्षेप्य छोआ (waste molasses), 'परिक्षिप्त छोए' (refuse molasses) इत्यादि नामों से भी पुकारते हैं। अँग्रेजी में छोए को मोलाशेज़ (molasses) कहते हैं।

चीनी के परिष्कार में भी चीनी के मणिभ निकल आने पर कुछ अवशिष्ट गाढ़ा-द्रव, मातृ द्रव, रह जाता है। उसे साधारणतया छोआ नहीं कहते। उसे 'द्रोणी सीरा' (barrel syrup) कहते हैं। लुयिसियाना में छोए को 'ब्लैकस्ट्रैप' (black strap) कहते हैं। यह अखाद्य कहा जाता है। इसका यह आशय नहीं कि मनुष्यों के द्वारा यह खाया नहीं जा सकता। विना किसी हानि के मनुष्य इसे खा सकते हैं; पर यह मनुष्यों के खाने के काम में नहीं आता है।

अमेरिका में छोए की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। ईख से चीनी के निर्माण में जो उपफल प्राप्त होता है, जिसमें विपर्यस्त (invert) शर्करा के रूप में ४८ प्रतिशत अथवा इससे अधिक समस्त शर्करा है, उसे छोआ कहते हैं। पानी के सम-आयतन में इसका जो विलयन बने, वह ३६·७५ डिगरी ब्रिक्स से कम न होना चाहिए।' यहाँ समस्त शर्करा का आशय है—इक्षु-शर्करा और द्राक्ष-शर्करा का योग। यदि समस्त शर्करा को विपर्यस्त शर्करा में प्रकट करें तो वह होगा, इक्षु-शर्करा ÷ ९५ + विपर्यस्त शर्करा।

छोआ और सीरा—छोए और सीरे के भेद को यहाँ जान लेना बहुत आवश्यक है। साधारणतया लोग इन दोनों को एक ही समझते हैं। यह भूल है। शर्करा की अन्तरराष्ट्रीय संघ ने सीरे की परिभाषा इस प्रकार दी है। 'उद्वाष्पकों से निकले ईख के गाढ़े रस को सीरा कहते हैं।' छोआ उस मातृ-द्रव को कहते हैं, जिससे चीनी के मणिभ यांत्रिक साधनों से निकाल लिये गये हैं। सीरे को अमेरिकी कारखानों में 'मेलाडुरा' (meladura) भी कहते हैं।

राब (मासकट)—अँग्रेजी में एक शब्द massecuite है। वह उस सीरे के लिए उपयुक्त होता है, जिस सीरे में चीनी के मणिभ विद्यमान हैं अथवा जिस

सीरे से चीनी के मणिभ शीघ्र ही निकलनेवाले हैं। इसे हम इस पुस्तक में मासकट या राब कहेंगे। विभिन्न मासकट-अंकों से १, २, ३, इत्यादि अथवा अक्षरों से 'क' 'ख' 'ग' इत्यादि से शुद्धता की दृष्टि से सूचित किये जाते हैं।

खाद्य सीरा—सीरा खाद्य होता है। इसमें रस की समस्त चीनी विद्यमान रहती है। प्रथम और द्वितीय छोआ भी खाद्य होता है; क्योंकि इसमें भी पर्याप्त मात्रा में चीनी विद्यमान रहती है। यह स्वयं अथवा अन्य सीरे के साथ मिलाकर खाया जा सकता है। अन्तिम छोआ साधारणतया खाया नहीं जाता, पर इसके खाने में भी कोई हानि नहीं है।

छोए की मात्रा—भारत के कारखानों से कितना छोआ गत पाँच वर्षों में बना है, उसके आँकड़े निम्नलिखित हैं—

१९४६-४७	८५,५३,११२ मन	१९४९-५०	९७,२७,४५६ मन
१९४७-४८	१,११,८९,७५० मन	१९५०-५१	१,०८,५८,७०९ मन
१९४८-४९	१,०२,६९,४१० मन		

छोए का संगठन—छोए का विश्लेषण बहुत विस्तार से हुआ है। अनेक वैज्ञानिकों ने इसका विश्लेषण किया है। प्रस्तुत लेखक ने भी छोए के प्रायः २० नमूनों का विश्लेषण किया है। छोए का संगठन एक-सा ही है। भिन्न भिन्न कारखानों, भिन्न-भिन्न ईखों, भिन्न भिन्न देशों के छोए में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य रहता है, पर साधारणतया उनमें विद्यमान पदार्थों की प्रकृति में विशेष अन्तर नहीं होता। उनमें स्थित पदार्थों की मात्रा में कुछ-न-कुछ अन्तर सदा रहता है।

जावा के छोए का गीरलिग्स (Geerligs) ने विस्तार से विश्लेषण किया है और उस विश्लेषण का परिणाम निम्नलिखित सारिणी में अंकित है—

जावा के छोए का संगठन (गीरलिग्स द्वारा)

ब्रिक्स	७९·२ से ८७·७
सूखा पदार्थ प्रतिशत	७४ से ८५·३
ध्रुवीयन	२५·६ से ३२·८
चीनी प्रतिशत	२८·१ से ३७·२
अवकृत शर्करा प्रतिशत	१५·४ से २९·४
कार्बनिक अशर्करा प्रतिशत	९·९ से १६·८
गोंद प्रतिशत	०·६ से २·५
राख प्रतिशत	७·२ से ११·४
अविलेय राख प्रतिशत	१·२ से ३·९
चूना प्रतिशत	०·२ से २·१
पोटाश प्रतिशत	२·५ से ६·०
गन्धकाम्ल प्रतिशत	०·३ से १·३
क्लोरीन प्रतिशत	०·२ से ०·८
परम शुद्धता	३६·१ से ४४·३
ध्रुवीयन × १०० / ब्रिक्स	२९·९ से ३७·५

हवाई छोए का संगठन (पेब और डोर द्वारा)

ब्रिक्स	८१·४ से ६३·६
सूख पदार्थ प्रतिशत	७६·६ से ८६·०
ध्रुवोयन	२७·५ से ३८·०
चीनी प्रतिशत	३०·४ से ३८·१
अवकृत शर्करा प्रतिशत	५·६ से २६·८
राख प्रतिशत	६·७ से ११·८
नाइट्रोजन प्रतिशत	०·८ से १·०
क्लोरीन प्रतिशत	०·८ से ३·०
परम शुद्धता	३७·५ से ४७·६
$\frac{\text{ध्रुवीयन} \times १००}{\text{ब्रिक्स}}$	२७·७ से ४१·७

लुयिसियान छोआ (ब्राउन द्वारा)

जल		२०·०० प्रतिशत
राख		८·०० प्रतिशत
शर्करा		६२·०० प्रतिशत
नाइट्रोजन पदार्थ		३·०० प्रतिशत
विलेय गोंद		२·०० प्रतिशत
मुक्त अम्ल		२·०० प्रतिशत
संयुक्त अम्ल		३·०० प्रतिशत
राख	सिलिका, SiO_2	०·५० प्रतिशत
	पोटाश, K_2O	३·५०
	चूना, CaO	१·५०
	मैगनीसिया, MgO	०·२०
	फ़ास्फ़रिक अम्ल, P_2O_5	०·२०
	सलफ्यूरिक अम्ल, SO_3	१·६०
	क्लोरीन, Cl	०·४०
	सोडा, लोहा इत्यादि Na_2O, Fe_2O_3 इत्यादि	०·२०
शर्करा	चीनी	३२·००
	डेक्ट्रोज (द्राक्ष-शर्करा)	१४·००
	लिव्यूलोज (फल-शर्करा)	१६·००
नाइट्रोजन पदार्थ	अलव्युमिनायड	०·३०
	एमिड	०·३०
	एमिडो अम्ल	१·७०
	नाइट्रिक अम्ल	०·१५

	अमोनिया	०·०२
	जैंथीन पदार्थ	०·३०
	अन्य नाइट्रोजन पदार्थ	०·२१
विलेय गोंद	जाइलान, एराबान, पेक्टीन इत्यादि	१·००
मुक्त अम्ल संयुक्त अम्ल	मेलासिनिक, ग्लुटिनिक, सैकेरिनिक अम्ल इत्यादि	५·०

भारतीय छोआ

	गंधकीकरण छोआ	कार्बनीकरण छोआ
ठोस पदार्थ प्रतिशत	७७·८ से ८१·८	७७·६ से ८२·३
जल प्रतिशत	१६·२ स २२·२	१७·७ से २२·४
ठोस पदार्थों में		
चीनी प्रतिशत	३३·६ से ३८·६	३०·३ से ३६·२
अवकृत शर्करा प्रतिशत	१५·७ से १७·६	११·३ से १८·८
अन्य कार्बनिक पदार्थ प्रतिशत	११·५ से १८·७	११·१ से २२·८
राख	६·६ से १२·८	७·० से १४·८
राख अविलेय और सिलिका SiO_2 प्रतिशत	०·३ से ०·८	०·२ से ०·५
लोहा और अलुमिना Fe_2O_3 + Al_2O_3 प्रतिशत	०·२ से ०·५	०·१६ से ०३·२
चूना, CaO, प्रतिशत	१·३ से २·५	०·८ से १·५
मैगनीसिया, MgO, प्रतिशत	०·२८ से ०·५	०.४६ से ०·६५
पोटाश, K_2O, प्रतिशत	३·७ से ४·६	२·६ से ४·६
फास्फरिक अम्ल, P_2O_5, प्रतिशत	०·२४ से ०·४८	०·१८ से ०·२८
गन्धकाम्ल, SO_3, प्रतिशत	१·८ से २·२२	१·२७ से १·६०

चीनी का प्रत्यादान—ऊपर के विश्लेषण के आँकड़ों से स्पष्ट है कि छोए में लगभग ३० प्रतिशत ऐसी चीनी रहती है, जो उससे निकाली जा सकती है। आकर्बनिक अशुद्धियों और अवकृत शर्कराओं के कारण यह छोए से निकलती नहीं है। ऐसी चीनी की पुन: प्राप्ति के लिए, प्रत्यादान के लिए, अनेक विधियों का समय-समय पर सुझाव रखा गया है। इनमें अधिकांश विधियाँ ऐसी हैं, जिनमें अवकृत शर्कराओं को या तो विनाश करने की अथवा उन्हें दूर करने की चेष्टाएँ हुई हैं। अवकृत शर्कराओं के हटा लेने पर उनसे चीनी सरलता से प्राप्त की जा सकती है; पर व्यापार की दृष्टि से ये विधियाँ सफल नहीं कही जा सकती, क्योंकि ऐसी चीनी की प्राप्ति में जो खर्च पड़ता है, वह पूरा नहीं होता है। चीनी के ऐसे प्रत्यादान की विधियों में केवल कुछ का वर्णन यहाँ संक्षिप्त में किया जा रहा है।

सैकेरेट-विधि—इक्षु-शर्करा अनेक धातुओं के ऑक्साइडों के साथ मिलकर अविलेय सैकेरेट बनता है। चूने के साथ चीनी कई सैकेरेट बनती है।

चूने और इक्षु-शर्करा के अणु-अनुपात में मिलाने से जो सैकेरेट बनता है, उसका

अणुसूत्र $CaO\,C_{12}H_{22}O_{11}H_2O$ है। यह जल में विलेय होता है। पर चीनी के तनु विलयन में चूने के दूध के आधिक्य से $3\,CaO\,2C_{12}H_{22}O_{11}$ सूत्र का सैकेरेट बनता है, जो विलयन के गरम कर सुखा देने से प्राप्त होता है। चीनी के एक अणु में चूने के दो अणुओं के अनुपात में मिलाने से $2\,CaO\,C_{12}H_{22}O_{11}$ सूत्र का भास्मिक सैकेरेट बनता है जो ठंडे जल के ३३ भाग में विलेय होता है। इसके विलयन के उबालने से अविलेय $3\,CaO\,C_{12}H_{22}O_{11}$ प्राप्त होता है।

इसी प्रकार स्ट्रौंशिया के साथ सैकेरेट बनते हैं, जो जल में कम विलेय होते हैं।

बराइटा के साथ भी सैकेरेट बनते हैं। छोए को पानी से तनु करके उसमें बेरियम हाइड्रौक्साइड के पर्याप्त विलयन के डालने से अवकृत शर्कराएँ तो नष्ट हो जाती हैं और चीनी बेरियम सैकेरेट में परिणत हो जाता है। यह जल में कम विलेय होता है। सैकेरेट को छानकर निकाल लेते हैं और फिर उसमें कार्बन डायक्साइड द्वारा बेरियम को बेरियम कार्बोनेट के रूप में अवक्षिप्त कर विलयन को उबालकर उससे चीनी प्राप्त करते हैं। बेरियम के अन्तिम लेश को सोडियम सलफेट डालकर और उबालकर निकाल लेते हैं।

बेरियम कार्बोनेट को सिलिका के साथ मिलाकर भट्ठी में जलाने से ट्राइबेरियम सिलिकेट बनता है, जो पानी से फिर बेरियम हाइड्रौक्साइड और मोनोबेरियम सिलिकेट में परिणत हो जाता है। इस बेरियम हाइड्रौक्साइड को फिर उपयुक्त करते हैं।

चूने से भी चीनी को पुनः प्राप्त करते हैं। इसके लिए पहले बहुत महीन चूना प्राप्त करते हैं। ऐसा चूना प्राप्त करने के लिए उस चूना-पत्थर को जलाते हैं, जिसमें सिलिका न हो और पत्थर को ईंधन के संसर्ग में नहीं आने देते हैं।

अब छोए को पतलाकर १०° से १२° ब्रिक्स में परिणत कर ५°-६° श० ताप पर लाते हैं। प्रति १०० भाग चीनी में प्रायः २१० भाग पीसा हुआ चूना धीरे-धीरे डालते हैं। चूना डालने के समय छोए को बराबर हिलाते रहते हैं और ताप को १३° श० से ऊपर नहीं उठने देते हैं। क्रिया के पूर्ण हो जाने पर लेईसा पिंड प्राप्त होता है। इसे छानकर ठंढे पानी से धो देते हैं। धोवन में कुछ चीनी चली जाती है। इसे उबालकर निकाल सकते हैं, पर साधारणतया ऐसा नहीं करते। कार्बन डायक्साइड के द्वारा कैलसियम को अवक्षिप्त कर विलयन का गाढ़ा करने से चीनी प्राप्त करते हैं।

ओलिवेरियस-विधि (Olivarius Process)—इस विधि में किण्वन द्वारा अवकृत शर्कराओं को नष्ट कर देते हैं। छोए को यीस्ट द्वारा किण्वन से दूर कर लेते हैं। तब एलकोहल और चूना डालकर अशुद्धियों को दूर कर लेते हैं। आसवन से एलकोहल को पुनः प्राप्त कर उपयुक्त करते हैं। फिर चीनी को चूना, बेरियम अथवा स्ट्रौंशियम से सैकेरेट में परिणत कर उससे चीनी निकालते हैं।

अभिसरण—छोए से यदि लवणों को निकाल सकें तो चीनी की विलेयता में परिवर्त्तन हो जायगा और तब छोए से कुछ और चीनी प्राप्त करने में हम समर्थ हो सकेंगे।

अभिसरण द्वारा छोए से लवणों को हम कुछ सीमा तक निकाल सकते हैं; क्योंकि लवण शीघ्रता से चर्म पत्र द्वारा अभिसारित हो जाते हैं। सैद्धान्तिक रूप से यह विधि अच्छी है, पर व्यावहारिक दृष्टि से यह सफल नहीं हुई है। यहाँ छोआ पतला हो जाता है और उसे सुखाकर चीनी प्राप्त करने में खर्च अधिक पड़ता है।

राख—राख एक-सी नहीं होती। ईख की प्रकृति, मिट्टी की प्रकृति और कई अन्य बातों पर राख की प्रकृति निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न देशों के छोए में राख की मात्रा विभिन्न होती है। निम्नसारिणी से यह स्पष्ट हो जाता है—

	लुयिसियाना	हवाई	अर्जेन्टिना	जावा	भारत
राख की मात्रा प्रतिशत	८	१२.६०	६.६८	६.२३	११.१
सिलिका, SiO_2, प्रतिशत राख	६.२५	३.५०	४.१३	१.६३	४.०५
पोटाश, K_2O	४३.७५	३७.५०	३६.६८	४३.४४	३६.६४
चूना, CaO	१८.७५	१३.८०	८.४७	६.२१	१३.६१
मैगनीशिया, MgO	१.२५	६.७०	१.६६	१.८४	४.२३
फॉस्फरिक अम्ल, P_2O_5	२.५०	२.००	१.०३	१.८०	२.६१
गन्धकाम्ल, SO_3	२०.००	१२.४०	१०.७१	१५.६०	१५.५०
क्लोरीन	५.००	१५.६०	८.०६	६.६३	—
सोडा, अलुमिना, लौह	२.५०	१.७०	६.३०	२.२१	२.७०
कार्बन डायक्साइड और अनिश्चित	—	३.५०	१६.३१	१७.३४	१६.१४
	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००

उपर्युक्त आँकड़ों से पता लगता है कि राख में पोटाश की मात्रा सबसे अधिक है। पोटाशलवणों की मात्रा संसार में सीमित है। एक समय यह जर्मनी के स्टासफर्ट निःक्षेप से ही प्राप्त होता था। गत विश्व युद्ध में जब जर्मनी से इसका आना रुक गया तब अन्य उपायों से इसे प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुईं। इसके फलस्वरूप पता लगा कि डेडसी के जल में जो लवण रहते हैं, उसमें पोटैसियम लवण की मात्रा सबसे अधिक है। कुछ ही दिनों में डेडसी के तट पर एक सुन्दर नगर बस गया और वहाँ पोटैसियम लवण का निर्माण होने लगा। आज भी वह नगर मौजूद है और पोटैसियम लवण निकाला जाता है। पोटैसियम लवण विस्फोटक पदार्थों के निर्माण में उपयुक्त होता है। चिकित्सा में भी पोटैसियम ब्रोमाइड और पोटैसियम आयोडाइड उपयुक्त होते हैं। प्रतिकारक के रूप में रसायनशाला में पोटैसियम कार्बोनेट, पोटैसियम आयोडाइड और पोटैसियम नाइट्रेट उपयुक्त होते हैं। पोटैसियम हाइड्रॉक्साइड कोमल साबुन बनाने में लगता है।

भारत में शोरे के रूप में नोनी मिट्टी से पोटैसियम नाइट्रेट निकाला जाता है। गत विश्वयुद्ध के समय प्रस्तुत लेखक ने छोआ की राख से पोटैसियम लवण प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा था और छोए से इसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में खोजें की थीं। पर युद्ध के समाप्त हो जाने के कारण यह योजना ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गई। आजकल कुछ पौधों के लिए पोटैसियम लवण अच्छा खाद प्रमाणित हुए हैं। राख को खेत में डालने से पोटाश की वृद्धि होती है और इससे कुछ पौधों की पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है।

छोए में अशर्करा पदार्थ—निश्चित रूप से यह बताना कठिन है कि अशर्करा

पदार्थों में कौन-कौन पदार्थ कितनी मात्रा में विद्यमान हैं, पर गीरलिग्स ने जावा के छोए में निम्नलिखित पदार्थों का पता लगाया है—

	१	२
गोंद	२'३६ प्रतिशत	१'५१ प्रतिशत
नाइट्रोजन पदार्थ	१'०० ,,	१'०० ,,
कार्बनिक अम्ल	३'८१ ,,	४'१६ ,,
अनिश्चित पदार्थ	५'५१ ,,	४'४६ ,,
समस्त अशर्करा कार्बनिक पदार्थ	१२'७१	११'१६

गोंद में पेक्टिन का पता लगा है। यूरोनिक अम्ल भी छोए में पाया गया है। कार्बनिक अम्लों में फार्मिक अम्ल, एसिटिक अम्ल, एकोनिटिक अम्ल और लैक्टिक अम्ल का पता लगा है। मैलिक और साइट्रिक अम्लों के लेश भी पाये गये हैं। एकोनिटिक अम्ल की मात्रा १'८० से २'५२ प्रतिशत तक पाई गई है। ग्लुसिक अम्ल भी छोए में पाया गया है। यह शीघ्र ही कार्बन डायक्साइड और फार्मिक अम्ल में विच्छेदित हो जाता है। यह वायु के ऑक्सिजन को शीघ्रता से शोषित कर लेता है और उससे ताप का क्षेपण होता है। इसी से छोआ कभी-कभी स्वयं गरम हो जाता और किण्वन सा झाग देता है।

छोए में विटामिन—कुछ लोगों ने छोए में विटामिन की उपस्थिति का उल्लेख किया है। विटामिन-बी १ के होने का उल्लेख हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि यीस्ट से अधिक मात्रा में विटामिन-बी १ इसमें रहता है, पर कुछ लोगों ने इसके विपरीत मत दिया है और उन्होंने छोए में कुछ भी विटामिन नहीं पाया है। विटामिन-एच भी ईख के छोए में पाया गया है।

छोए में अकिण्वीय शर्कराएँ—छोए में कुछ शर्कराएँ ऐसी हैं जो फेहलिंग के विलयन को तो अवकृत करती है, पर उनका किण्वन नहीं होता अथवा कठिनता से होता है। ऐसा कहा जाता है कि ऐसी शर्करा की मात्रा १० प्रतिशत तक हो सकती है। ऐसी शर्करा को किसी ने 'ग्लूटोज' (Glutose) नाम दिया है। पर आधुनिक मत है कि ये पदार्थ वास्तव में शर्करा नहीं हैं। ये अनेक कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण हैं और शर्कराओं पर चूने की क्रिया से बनते हैं।

जरबन (Zerban) का मत है कि ऐसे पदार्थों की मात्रा छोए में ३'५ से ८ प्रतिशत तक रह सकती है और यह विपर्यस्त शर्करा के विलयन पर प्रतिकारकों की क्रियाओं से बनता है।

रखने से छोए में परिवर्तन—ब्राउन (Browne) ने छोए को रख कर अनेक वर्षों तक उनका विश्लेषण किया है। इन विश्लेषणों के फलस्वरूप वे निम्नलिखित परिणाम पर पहुँचे हैं—

१. ध्रुवीयण में कमी होती है। एक नमूने में प्राय: २१ वर्षों में ध्रुवीयण + २४'८६ से + ६'४ हो गया और दूसरे नमूने में + २५'५२ से + ६'६० हो गया।

२. चीनी की मात्रा में कमी होती है। एक नमूने में चीनी की मात्रा ३१'३० प्रतिशत से १२'६१ प्रतिशत हो गई और दूसरे नमूने में ३४'७६ से ६'६१ हो गई।

३. विपर्यस्त शर्करा की मात्रा में वृद्धि होती है। एक नमूने में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा १६·१० से २३·५७ प्रतिशत और दूसरे नमूने में २५·०६ से ३४·१३ प्रतिशत बढ़ गई

४. समस्त शर्करा में कमी होती है। एक नमूने में समस्त शर्करा ५२·०४ से ३६·८४ प्रतिशत और दूसरे नमूने में ६१·७१ से ४१·०८ प्रतिशत कम हो गई।

५. कार्बनिक अशर्कराओं में वृद्धि होती है।

६. समस्त ठोस में प्रायः ३ प्रतिशत की कमी होती है।

७. रंग का गाढ़ापन बढ़ जाता है।

परिवर्तन जो होते हैं, वे रासायनिक होते हैं, सजीव-रासायनिक नहीं। छोए में कोई यीस्ट, बैक्टीरिया, ऊर्णिका (mould) और जीवाणु नहीं होते हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि छोए के विभिन्न पदार्थों के बीच धीरे-धीरे रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं। कुछ अस्थायी कार्बनिक पदार्थ जो अवकरण शर्कराओं पर चूने की प्रतिक्रिया से बनते हैं, धीरे-धीरे विच्छेदित हो ऐसे पदार्थ बनते हैं जिनमें कार्बन की मात्रा अधिक रहती है। इसी से इसका रंग बदल जाता है। छोए से कार्बन डायक्साइड का निकलना तो सामान्य घटना है। इससे छोए का आयतन बहुत कुछ बढ़ जाता है और ऐसा मालूम होता है कि इसमें किण्वन-सी कोई क्रियाएँ हो रही हैं।

स्निग्धता—छोए की स्निग्धता महत्त्व की है। स्निग्धता साधारणतया नापी जाती है कि किसी नियत विमा (dimensions) की एक छोटी नली द्वारा किसी द्रव का कितना आयतन बहने में कितना सेकंड लेता है। स्निग्धता नापने के अनेक प्रकार के उपकरण हैं। पर जो उपकरण उपयुक्त होता है, वह सेबोल्ट युनिवर्सल स्निग्धता-मापक (Saybolt universal viscosimeter) है। यह सेकंड में सूचित किया जाता है और इसका संक्षिप्त चिह्न SSU है, जिसका आशय है सेकंड सेबोल्ट युनिवर्सल।

किसी नली के द्वारा द्रव का नियत आयतन कितने समय में बहता है, यह उस द्रव बहाव की नाप है। जिस द्रव में अधिक अवरोध होता है, वह अधिक समय लेता है।

कुछ छोआ अधिक स्निग्ध होता है और कुछ कम। जिस छोए की स्निग्धता अधिक होती है, वह क्यों ऐसी होती है, यह मालूम नहीं है। यह सम्भव है कि ईख की प्रकृति, अशर्करा पदार्थों की उपस्थिति इत्यादि का स्निग्धता पर प्रभाव पड़ता हो।

ब्रिक्स और स्निग्धता—शव का कथन है कि ब्रिक्स और स्निग्धता में कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि साधारणतया देखा जाता है; कि किसी द्रव के तनु करने से ब्रिक्स बदल जाता है और स्निग्धता कम हो जाती है। पर यह निश्चित है कि ब्रिक्स और स्निग्धता में कोई सीधा सम्बन्ध नही है।

स्निग्धता पर ताप का प्रभाव—ताप का स्निग्धता पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। उच्च ताप पर स्निग्धता कम हो जाती है, निम्न ताप पर अधिक होती है।

पम्प करने में स्निग्धता का प्रभाव—छोए की स्निग्धता जितनी ही अधिक होती है, पम्प करने में उतना ही अधिक समय लगता है। स्निग्धता कम होने से पम्प जल्दी हो जाता है। पम्प करने के लिए अनेक प्रकार के पम्प बने हुए हैं। इनमें वरदिंगटन स्पाइरल गियर मोलासेज पम्प (Warthington Spiral Gear Molasses

Pump) और किने रोटरी मोलासेज पम्प (Kinney Rotary Molasses Pump) महत्त्व के हैं।

छोए का रखना—छोए को ऐसे पात्र में रखना चाहिए कि उसके फैलने के लिए पर्याप्त स्थान रहे। उससे गैसों के निकलने का मार्ग हो और ऐसे स्थान पर हो जहाँ बिजली से बचने का प्रबन्ध हो।

छोए के उपयोग

एलकोहल—छोए का प्राय: दो-तिहाई भाग एलकोहल बनाने में उपयुक्त होता है। अनेक चीनी के कारखानों के छोए के किण्वन से एलकोहल बनते हैं। छोए को पानी से हलका कर उसमें यीस्ट डालते हैं। ऐसा हलका करते हैं कि चीनी की मात्रा प्राय: १० से १४ प्रतिशत रहती है। ऐसे तनु विलयन में ही यीस्ट से किण्वन होता है। इक्षुशर्करा पहले इनवर्टेस (अपवर्तेंद) द्वारा विपर्यस्त शर्करा में परिवर्तित हो जाती है।

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

इक्षु-शर्करा द्राक्ष-शर्करा फल-शर्करा

विपर्यस्त शर्करा फिर यीस्ट द्वारा एलकोहल और कार्बन डायक्साइड में परिणत होती है।

$$C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_5OH + 2CO_2$$

एथिल एलकोहल कार्बन डायक्साइड

एक पाउण्ड विपर्यस्त शर्करा से अथवा ०.९५ पाउण्ड चीनी से ०.५१ पाउण्ड शुद्ध एलकोहल और ०.४९ पाउण्ड कार्बन डायक्साइड प्राप्त होना चाहिए। पर वास्तव में प्राय: आधी मात्रा में ही एलकोहल प्राप्त होता है। उत्कृष्ट कोटि के यीस्ट के उपयोग से ९० प्रतिशत तक एलकोहल प्राप्त हो सकता है। साधारणतया १०० पाउण्ड शर्करा से ६.५ गैलन शुद्ध एलकोहल प्राप्त हो सकता है। औद्योगिक एलकोहल के अतिरिक्त पीने के मद्य, रम, ब्रैण्डी इत्यादि भी छोए से बनते हैं।

एलकोहल के निर्माण में उपफल हैं—गाद और कार्बन डायक्साइड। गाद खाद में काम आता है। छोए के सब नाइट्रोजनवाले पदार्थ और खनिज लवण इसी में रहते हैं। छोए का सारा पोटाश, फास्फरस इसी में रहता है। अत: यह अच्छा खाद बनता है। कार्बन डायक्साइड दबाव से तरल और ठोस रूप में सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है और तब 'सूखी बर्फ' के नाम से अनेक उपयोगी कामों के लिए विशेषत: 'शीत संग्रह' में उपयुक्त होता है।

अन्य रासायनिक द्रव—छोए के किण्वन से और भी अनेक द्रव प्राप्त हो सकते हैं। आज एसिटोन और ब्युटेनोल भी किण्वन से प्राप्त होते हैं। ये दोनों ही द्रव कार्बनिक विलायक के रूप में प्रचुरता से उपयुक्त होते हैं। एसिटोन विस्फोटकों के घुलाने में उपयुक्त होता है। ब्यूटेनोल में ठोस पदार्थों को विशेषत: प्लास्टिक को घुलाकर पालिश बनाते हैं। इन दोनों द्रवों से कृत्रिम रबर भी बनते हैं। ब्यूटेनोल को पहले ब्युटाडीन में परिणत करते हैं तब सोडियम की उपस्थिति में ब्यूना-एन रबर बनाते हैं। भारत में अभी कृत्रिम रबर बनाने का व्यवसाय आरम्भ नहीं हुआ है। आशा है कि शीघ्र ही ऐसे

कारखाने खुलेंगे। एथिल एलकोहल के उपयोग सीमित है। यदि सारा छोए एथिल एलकोहल में परिवर्तित कर दिया जाय तो इतने एलकोहल का उपयोग अभी भारत में नहीं हो सकता ; क्योंकि एलकोहलवाले उद्योग-धन्धे अभी इस देश में अधिक पनपे नहीं हैं।

छोए के किण्वन से ग्लीसिरिन भी प्राप्त हो सकता है। ग्लीसिरिन एक महत्त्व का कार्बनिक पदार्थ है। इसके अनेक उपयोग हैं। सबसे अधिक महत्त्व का उपयोग विस्फोटक के निर्माण में है। ग्लीसिरिन ओषधियों में भी उपयुक्त होता है। अनेक शृङ्गार के पदार्थों, जूते की स्याही इत्यादि में ग्लीसिरिन लगता है।

लैक्टिक अम्ल एक महत्त्व की ओषधि है। व्यापार में भी यह उपयुक्त होता है। किण्वन से यह भी छोआ से प्राप्त हो सकता है।

साइट्रिक अम्ल ओषधियों और पेयों में काम आता है। यह भी छोए के एक विशिष्ट प्रकार के किण्वन से प्राप्त हो सकता है।

एथिल एलकोहल के आक्सीकरण से एसिटिक अम्ल बनता है। सिरके में एसिटिक अम्ल रहता है। एसिटिक अम्ल का सबसे महत्त्व का उपयोग सफेदा बनाने में होता है। सफेदा सीस धातु का ऑक्साइड और कार्बोनेट होता है और लेड एसिटेट से बनता है।

यीस्ट—छोए से निम्नकोटि का यीस्ट भी बनता है। यूरोप के देशों में यह यीस्ट पशुओं के खिलाने के लिए उपयुक्त होता है। इस रूप में छोए का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। यह यीस्ट मनुष्यों के खाने योग्य नहीं होता।

पशुओं का चारा—बहुत दिनों से पशुओं को छोआ खिलाना शुरू हुआ है। किण्वन से जो छोआ बच जाता है, उसका अधिकांश भाग पशुओं के खिलाने में उपयुक्त होता है। यह पानी में घोलकर पशुओं को पिलाया जाता है। पर अन्य चारों के साथ मिलाकर उन्हें स्वादिष्ट बनाने के विचार से भी इसका उपयोग हो रहा है। इस काम में छोए के सब अंश, विटामिन, खनिज लवण, प्रोटीन इत्यादि काम में आते हैं।

आजकल सीठे में मिलाकर भी छोआ खिलाया जाता है। महीन सिठा पर्याप्त छोए का शोषण कर ऐसे रूप में बनाया जा सकता है, जो बोरे में रखकर भेजा जा सके। घास में भी छोआ मिलाकर वह खिलाया जाता है।

छोआ पूर्ण आहार नहीं है। इसमें नाइट्रोजन की मात्रा कम रहने से प्रोटीन की कमी रहती है। इस कारण छोए के साथ साथ ऐसे पदार्थ भी रहना चाहिए जो प्रोटीन की कमी को पूरा करे। कुछ स्थानों में बीजों के आटे के साथ मिलाकर खिलाते हैं। भूसा के साथ मिलाकर छोआ खिलाना अच्छा है। दूध देनेवाले पशुओं को तो छोआ अवश्य खिलाना चाहिए।

ईंधन—सिठे के साथ मिलाकर छोआ जलाया भी जाता है। कई कारखानों में जहाँ किण्वन का प्रबन्ध नहीं है, ईंधन के रूप में जलाकर ही छोए का उपयोग करते हैं। इसके जलने से राख अधिक बनती है, यही इसमें दोष है। पर इस राख से पोटाश लवण बनाया जा सकता है, यह इसका गुण है। यदि इस राख को खाद के रूप में ईख के खेतों में व्यवहृत करें तो पोटाश लवण फिर खेतों में पहुँचाकर उसकी उर्वरता कायम रखी जा सकती

है। छोए को दूर भेजने से पोटाश लवण का ह्रास होता है। वह फिर निकट के खेतों में नहीं पहुँच पाता, इसे रोकना आवश्यक है।

खाद--छोआ खाद के रूप में भी उपयुक्त हो सकता है। प्रयाग विश्वविद्यालय के नीलरत्नधर ने यह प्रमाणित किया है कि खेतों में छोए डालने से खेतों के नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। ऊसर खेत भी छोए से उपजाऊ बनाये जा सकते हैं। कार्बनिक पदार्थों के मिट्टी में रहने से ऐसी बैक्टीरिया की वृद्धि सम्भवतः होती है जो वायु के नाइट्रोजन को ग्रहण कर नाइट्रोजन यौगिकों में परिणत कर खेत को उपजाऊ बना सके। खाद के रूप में इसके व्यवहार की वृद्धि होनी चाहिए। निश्चित रूप से यह प्रमाणित करना चाहिए कि छोए को खेतों में डालने से उनकी उर्बरता बढ़ जाती है। अभी तक जो प्रयोग हुए हैं, वे ऊसर खेतों में ही हुए हैं।

तम्बाकू के निर्माण में--भारत में पर्याप्त मात्रा में चिलम में चढ़ाकर तम्बाकू पिया जाता है। तम्बाकू के अभिसाधन (curing) में छोआ लगता है।

खाद्य-छोआ--कुछ छोए का रंग साफ होता है। उनकी चीनी को जलांशन द्वारा विपर्यस्त शर्करा में परिणत कर इस छोए को खाद्य के रूप में भी उपयुक्त कर सकते हैं। पर अन्य पदार्थों के रहने के कारण इसका स्वाद रुचिकर नहीं होता; इस कारण इसका उपयोग खाने में साधारणतया नहीं होता है।

सताईसवाँ प्रकरण

चीनी का परिष्कार

जिन रीतियों का ऊपर में वर्णन हुआ है, उनसे कारखानों में जो चीनी प्राप्त होती है उसे कच्ची चीनी (raw sugar) कहते हैं। यह चीनी बिल्कुल शुद्ध नहीं होती। इसकी शुद्धता प्राय: ६४ डिगरी होती है। यद्यपि आजकल ६६ डिगरी या इसके ऊपर की शुद्धता की चीनी तैयार करने की अनेक कारखानों में चेष्टाएँ सफलता के साथ हुई और हो रही हैं। पहले निम्नकोटि की चीनी प्रचुरता से बनती थी, पर अब ऐसी चीनी अधिक मात्रा में नहीं बनती। जबसे चीनी के कारखानों में केन्द्रापसारक का उपयोग अधिकाधिक होने लगा है तबसे चीनी की शुद्धता बहुत-कुछ बढ़ गई है।

निम्नलिखित सारिणी से ज्ञात होता है कि चीनी की शुद्धता अब पहले से बहुत अधिक बढ़ गई है। आँकड़े न्यूयार्क में जो चीनी परिष्कार करनेवालों के पास पहुँची थी, उनकी जाँच से प्राप्त हुए हैं। इससे स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि चीनी की शुद्धता क्रमश: बढ़ रही है—

	चीनी के नमूनों के समस्त अंकों का प्रतिशत।		
सन्	१६१४	१६२७	१६४०
६६° से ऊपर	०·६२४	०·४६७	१३·८२
६७-६८	६·४५३	१५·०८२	५४·२०
६६-६७	३८·६०२	६५·३१३	२७·४०
६५-६६	३१·०३७	१५·६०२	३·४७
६४-६५	८·०४१	२·६४३	०·५१
६३-६४	३·००५	०·२०५	०·२४
६२-६३	१·००६	०·२२६	०·३६

सन् १६१४ में नमूनों के ५० प्रतिशत से कम का ध्रुवीयण ६६° के ऊपर था, १६२७ ८१ में प्रतिशत से ऊपर का ध्रुवीयण ६६° से ऊपर था और १६३६ में प्राय: सबही नमूनों का ध्रुवीयण ६७° से ऊपर था।

परिष्करणी (refinery) में परिष्कार के लिए जो चीनी आती है, वह या तो जूट के बड़े-बड़े बोरों में अथवा छोटे-छोटे बोरों में अथवा ताड़ के पत्तों की टोकरियों में अथवा बैरेल में आती है।

ऐसी कच्ची चीनी को तौलकर नमूना निकालकर रख देते हैं। नमूने के लिए प्रत्येक बोरे से निश्रेणी के द्वारा चीनी निकालते हैं। कुछ कारखानों में बोरे या टोकरी या बैरेल

से चीनी निकालकर चीनी को खत्ते (bins) में रखते हैं। ऐसे बड़े-बड़े खत्ते अधिकांश परिष्करणी में बने होते हैं। जहाज से उतार, तौल और नमूना लेकर खत्ते में चीनी डाल दी जाती है। ये खत्ते ऐसे ही होते हैं, जैसे कच्ची चीनी रखने के लिए कारखानों में होते हैं और जिनका उल्लेख पूर्व में हो चुका है। जहाँ ऐसे खत्ते नहीं है, वहाँ कच्ची चीनी बालटी-वाहकों में रखी जाती है और वहाँ से ही मेलक (minglers) में जाती है।

खाली बोरों को झाड़कर चीनी निकाल लेते अथव गरम जल में धोकर सटी हुई चीनी को निकालकर, सुखा लेते हैं और फिर उसे काम में लाते हैं। मीठे जल या धोवन को उद्वाष्पित कर सीरा बनाकर उससे चीनी प्राप्त करते हैं।

धोवन—कच्ची चीनी के परिष्कार का पहला क्रम धोवन (washing) है। अंग्रेजी में इसे ऐफिनिटी (affinity) भी कहते हैं। इसमें कच्ची चीनी के मणिभ को छोए के वाह्य चिपके स्तर को धोकर निकाल देते हैं। यद्यपि मणिभ प्रायः शुद्ध चीनी के होते हैं, पर उसका वाह्य स्तर की शुद्धता ६५ या ६५ से कम की ही होती है। यह शुद्धता राब की प्रकृति पर निर्भर करती है। यह धोना गाढ़े सीरे—६५°-७०° ब्रिक्स—के द्वारा होता है। चीनी को सीरे से मिलाकर केन्द्रापसारक में सीरे को निकाल बाहर कर फिर पानी से धो देते हैं।

कच्ची चीनी को अब मेलक में ले जाते हैं। वहाँ इसे जल में घुलाकर गाढ़ा मैगमा बनाते हैं। मैगमा चीनी के मणिभ और सीरे के मिश्रण को कहते हैं। यह उसी अर्थ में उपयुक्त होता है, जिस अर्थ में कच्ची चीनी के निर्माण में राब उपयुक्त होता है। मैगमा के स्थान में मासकट शब्द भी कहीं-कहीं उपयुक्त होता है। इसमें छोआ घुलकर भारी सीरा बनता है। सीरे के निकाल लेने पर केन्द्रापसारक में जो चीनी रह जाती है, उसे पानी के छींटे देकर धो लेते है। इससे केन्दापसारक में जो चीनी रह जाती है, उसकी शुद्धता ६६ या इसके ऊपर होती है। इस चीनी को अब द्रावक (melter) में ले जाते हैं। जो सीरा प्राप्त होता है, उसे फिर कच्ची चीनी धोने में उपयोग करते हैं।

परिष्कार के लिए जो केन्द्रापसारक उपयुक्त होते हैं, वे उसी प्रकार के होते हैं जैसे कच्ची चीनी के निर्माण में उपयुक्त होते हैं। यहाँ केन्द्रापसारक का समावेशन तीन-मिनट चक्र में प्रायः १०,००० पाउण्ड चीनी का होता है। पुराने प्रकार के केन्द्रापसारक में प्रति मशीन प्रति-घंटा ६०००-७००० पाउण्ड चीनी निकलती थी। अब तो ऐसी मशीन भी बनी है, जिसमें प्रति-घंटा प्रायः १३,५०० पाउण्ड चीनी निकल सकती है। सीरे से मणिभ को निकालने के लिए अब उच्च वेग के केन्द्रापसारक उपयुक्त हो रहे हैं। सीरा केवल २४ घन्टे तक व्यवहृत हो सकता है। इसके बाद ताज़ा पानी ही उपयुक्त होता है। सीरे को कभी-कभी पानी डालकर हलका बना लेते, ६५° ब्रिक्स कर लेते अथवा गरमकर १२० से १२५° फ० कर लेते हैं जिससे सीरे की स्निग्धता कम हो जाय और चीनी से छोआ निकाल लेने में सुविधा हो।

कच्ची चीनी के धोवन की शुद्धता ७४° से ८०° होती है। कच्ची चीनी का १२ से १४ प्रतिशत तक इस धोवन में निकल जाता है। यदि चीनी के दाने छोटे-छोटे हों तो, अधिक चीनी निकल जाती है और यदि दाने बड़े-बड़े हों तो कम चीनी निकलती है। यदि चीनी के

ढेले बन गये हों तो उनसे कठिनता बढ़ जाती है। ऐसी चीनी को तोड़-तोड़कर भुरभुरा बनाना पड़ता है।

उष्ण मेलन (Hot mingling)—उष्ण मेलन के उपयोग से कम जल अथवा सीरा लगता है। इससे चीनी की मात्रा धोवन में कम जाती है। सीरा भी चीनी से जल्दी अलग हो जाता है। इसके लिए केन्द्रापसारक में मैगमा के ले जाने के पूर्व उसे १६५° फ० ताप तक गरम करते हैं। मिश्रक (mixer) में परिभ्रामक वेष्ठन द्वारा गरम करते हैं। वेष्ठन में २१०° फ० का पानी प्रवाहित करते हैं। इससे मैगमा का बहाव बहुत बढ़ जाता है। कम जल से सारा छोआ निकल जाता है। उच्च वेग महीन चीनी के दाने को अधिक नहीं घुलाती है।

चीनी का विलयन—ऐसी धोई चीनी को चीनी के भार के प्राय: आधे पानी में एक टंकी में घुलाते हैं। ऐसी टंकी में मिश्रित करने के लिए बाहुएँ (arms) लगी रहती हैं। इन्हें द्रावक (melter) कहते हैं। विलयन में सहायता के लिए छेदवाले वेष्ठन द्वारा भाप प्रविष्ट कराते हैं। पानी के स्थान में ६६° शुद्धता का धोवन भी उपयुक्त कर सकते हैं। यदि ऐसा शुद्ध धोवन न हो तो अशुद्ध धोवन उपयुक्त करना उचित नहीं है।

धोवन सीरे का उपचार—धोवन सीरे को या तो उद्वाष्पन द्वारा गाढ़ाकर उससे चीनी निकाल लेते हैं अथवा उसे हलका बनाकर, ५४° ब्रिक्स करके, विमलीकरण में ले जाकर दबाव में और अस्थि-कोयला में छानकर शुद्ध करते हैं।

विमलीकरण—(Defaction)—चीनी के उपर्युक्त धोवन में मिट्टी, बालू, खर-पात, गोंद, पेक्टिन, श्लेषाभ (colloids) इत्यादि पदार्थ मिले रहते हैं। यह आम्लिक भी होता है। इस धोवन को कुछ पदार्थों के साथ मिलाकर गरम करते हैं ताकि विलयन ऐसा हो जाय कि उसे छानकर सरलता से साफ कर सकें।

विलयन के साफ करने के लिए अनेक पदार्थों के उपयोग का सुझाव दिया या प्रयोग किया गया है। सबका प्रयोजन एक ही है कि विलयन के लटके, बँधे, निलम्बित, श्लेषाभ इत्यादि पदार्थ अवक्षेप बनकर छानने से निकल जायँ।

विलयन को विमलीकारक में ले जाते हैं। विमलीकारक वृत्ताकार टंकी होता है। इसका पेंदा शंकु-आकार का होता है, जिसे सरलता से धो और साफ कर सकते हैं। इसमें भाप के वेष्ठन लगे होते हैं। इसमें क्षोभक लगा होता है अथवा वायु से प्रक्षुब्ध करने का प्रबन्ध रहता है।

विलयन की अशुद्धियों को अवक्षिप्त करने के लिए एक समय रक्त अथवा रक्त एल्बुमिन का उपयोग होता था, पर आजकल इसका उपयोग नहीं होता। आजकल निम्न लिखित वस्तुओं का उपयोग होता है—

१ फास्फरिक-अम्ल-चूना शोधक—बहुत दिनों तक फास्फरिक अम्ल और चूने के दूध से विलयन का शोधन होता था और थैले में विलयन को छान लेते थे। इसके लिए विलयन में ठोस पदार्थ का ०·०२५ से ०·०५ प्रतिशत फास्फरिक अम्ल, P_2O_5, लगता था। फास्फरिक अम्ल, मोनोकैलसियम फास्फेट, फास्फरिक अम्ल की लेई अथवा स्वच्छ फास्फरिक अम्ल के रूप में रह सकता है। फास्फरिक अम्ल लेई में क्लोराइड या सलफेट का रहना ठीक नहीं है। शुद्ध फास्फरिक अम्ल का उपयोग उत्तम है। ऐसा फास्फरिक अम्ल

फास्फेट चट्टान को कोक और सिलिका के साथ वात-भट्ठी अथवा विद्युत्-भट्ठी में पिघलाने से प्राप्त होता है। इसमें आर्सेनिक, सीस, सलफेट इत्यादि अशुद्धियाँ नहीं रहतीं जो फास्फरिक अम्ल लेई में पुरानी रीति से प्रस्तुत सलफ्यूरिक अम्ल की फास्फेट पर प्रतिक्रिया से फास्फरिक अम्ल में रहती थी। ऐसे शुद्ध फास्फरिक अम्ल को चूने के साथ मिलाकर उपयुक्त करते हैं। इस काम के लिए अब बना-बनाया फास्फरिक अम्ल टंकियों में मिलता है। इसे अस्थि-कोयला के साथ मिलाकर भी उपयोग में ला सकते हैं।

चूना – इसके लिए जो चूना उपयुक्त होता है, वह ताजा चूर्ण रहना चाहिए। इसमें पानी डालकर प्राय: २०° ब्रिक्स का दूध बनाकर उपयुक्त करते हैं। चूना इतना होना चाहिए कि उससे ७·० से ७·३ पी एच० प्राप्त हो। १० लाख भाग चीनी के लिए ४०० पाउण्ड फास्फरिक अम्ल, (P_2O_5) और ८०० पाउण्ड चूने (CaO) की आवश्यकता होती है।

उपचार—विलयन को १६५° से १८०° फ० तक गरम करके उसमें फास्फरिक अम्ल और चूने का मिश्रण डालते हैं। इससे अशुद्धियाँ अधिकांश गोंद, एलब्युमिन, पेक्टिन इत्यादि स्कंधित और अवक्षिप्त हो जाती है और वे अपने साथ अन्य अशुद्धियों को खींच लेती हैं। रंग भी इससे निकल जाता है। चीनी का प्राय: २० से ४० प्रतिशत रंग फास्फरिक अम्ल से निकल जाता है। इससे अस्थि कोयले से रंग निकालने के लिए कम रंग बच जाता है। फास्फरिक अम्ल के उपचार से प्राप्त सीरा अधिक स्वच्छ भी होता है।

किसेलगुहर से विमलीकरण— किसेलगुहर एक प्रकार का पत्थर है जो अनेक स्थलों में पाया जाता है। वस्तुत: यह एक प्राय: शुद्ध सिलिका है जो बहुत ही सछिद्र रूप में पाया जाता है। खान से निकलने पर आग में जलाकर इसे बेचते हैं। इसमें होकर सीरे के छानने से सीरे की अशुद्धियाँ निकल जाती हैं और साफ चीनी प्राप्त होती है। इस काम के लिए सीरे में पतले चूने का दूध डालकर उसका पी० एच ७·० से ७·३ कर लेते हैं और तब किसेलगुहर डालकर प्राय: १८०° फ० तक गरम करते हैं। १० लाख पाउण्ड चीनी के लिए लगभग ३०० पाउण्ड चूना इस्तेमाल करते हैं। किसेलगुहर को पानी के साथ मिलाकर मलाई-सा बना लेते हैं। किसेलगुहर की क्रिया शुद्ध यांत्रिक होती है। चूने और ताप से कुछ श्लेषाभ स्कंधित हो जाते हैं और किसेलगुहर उन्हें छनने वस्त्र पर पकड़ रखता है। इससे अशुद्धियाँ तो बहुत-कुछ शोषित हो जाती हैं; पर रंग दूर नहीं होता। एक टन चीनी के लिए प्राय: ४० से ५० पाउण्ड किसेलगुहर आवश्यक है।

किसेलगुहर मूल्यवान होता है। एकबार उपयुक्त कर उसे फेंक दें तो खर्च अधिक पड़ेगा। अत: किसेलगुहर को बार-बार जलाकर शोषण के गुण को पुनर्जीवित रखते हैं। यद्यपि बार-बार जलाने से उसके आपेक्षिक भार में वृद्धि होती है और उससे छानकर शुद्ध करने की क्षमता में कमी होती है।

कुछ लोगों ने सेलाइट ५०३ ऐसे उच्च सछिद्र पदार्थ के साथ फॉस्फ़रिक अम्ल का उपयोग उत्तम बतलाया है। इसके लिए ०·०१ प्रतिशत फ़ास्फ़रिक अम्ल, P_2O_5 पर्याप्त समझा जाता है।

कार्बनीकरण से विमलीकरण—कच्ची चीनी तैयार करने में जैसे कार्बनीकरण किया जाता है, वैसे ही चीनी के परिष्कार में भी कार्बनीकरण हो सकता है। कार्बनीकरण से उत्तम कोटि की चीनी प्राप्त होती है।

कागज़-पल्प—पल्प को पानी के साथ पीटकर बना लेते तब उससे छानने के तल को प्रति-वर्गफुट में प्राय: ०·१ पाउण्ड ढक देते हैं। फिर प्रति ७५ गैलन विलयन में प्राय: एक पाउण्ड पल्प इस्तेमाल करते हैं। पल्प के उपयोग में लाभ यह है कि इसको धोकर बार बार इस्तेमाल कर सकते हैं। चीनी के १० लाख भाग में प्राय: १५० पाउण्ड पल्प को प्रतिदिन प्रतिस्थापित (replaced) करना पड़ता है। इससे फ़ास्फ़रिक-चूना विमलीकरण का प्राय: दशमांश खर्च पड़ता है। किसेलगुहर से भी इसमें कम खर्च पड़ता है। दोष इसमें केवल यह है कि इसके साथ क्रिया केवल यांत्रिक होती है। दो-दो तीन-तीन बार छानने से तब कहीं महीन अशुद्धियाँ दूर होती हैं। कुछ परिष्कारियों ने पल्प के साथ बहुत अल्प मात्रा में फ़ास्फ़रिक अम्ल और चूने का उपयोग किया है। उपयोग के बाद पल्प को धो लेते हैं, जैसे कागज़ बनाने में पल्प को धोते हैं। वहाँ पल्प को धोकर बेलन पर ले जाकर पानी को खींच लेते हैं।

वस्त्र से निःस्यन्दन—पहले कपड़े की थैली में विलयन को छानते थे, पर अब ऐसा नहीं करते। अब दबाव में छानने के प्रेस-निःस्यन्दन प्रेस में विलयन को छानते हैं।

जब थैली इस्तेमाल करते थे तब बाहर की थैली मोटी डोरी की बनी होती थी। ऐसी थैली की लम्बाई प्राय: ६½ फुट और व्यास ६ इंच का होता था। अन्दर की थैली रूई-टिवल (Cotton twill) वस्त्र की होती थी जिसकी लम्बाई ६ फुट होती थी। इस थैली में खर्च अधिक पड़ता था, शर्करा की हानि होती थी और स्थान अस्वास्थ्यकर और मैला दीख पड़ता था।

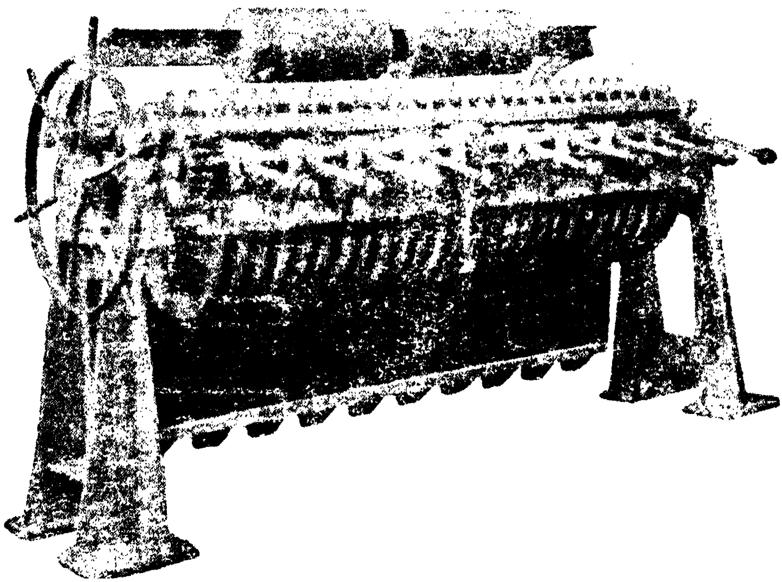
ऐसी थैली में ऊपर से सीरा डालते थे और नीचे से वह निकल जाता था। अशुद्धियाँ थैली में रह जाती थीं। इस प्रकार से छाना हुआ तरल कुछ हलका कपिल वर्ण का होता था; लेकिन इसमें कोई निलम्बित अशुद्धियाँ नहीं रहती थीं। वह स्वच्छ होता था। १५ से २० घण्टे के उपयोग के बाद थैली के छेद मिट्टी से भर जाते थे और छानने की क्रिया बड़ी मन्द हो जाती थी। अब विलयन का डालना बन्दकर सारे तरल को पम्प द्वारा निकाल लेते थे। थैली की मिट्टी को अब निकालकर, मीठे जल से धोकर फिर इस्तेमाल करते थे।

दबाव निःस्यन्दन—फिल्टर प्रेस में अब विलयन को छानते हैं। ये प्रेस ऐसे ही होते हैं, जिनका वर्णन पहले हो चुका है। प्रेस में प्रति-इंच में ३० से ४० पाउण्ड दबाव रहता है। प्रेस में किसेलगुहर अथवा पल्प का उपयोग करते हैं। कई प्रकार के प्रेस आजकल उपयोग में है। इन में स्वीटलैण्ड स्टेशनरी लीफ फिल्टर (Sweetland Stationary leaf Filter Press) और वालेज़ रोटरी फिल्टर (Vallez.Rotary Filter) चित्र ६६ पहले उपयुक्त होते थे। पर आजकल फिल्टर और फ्रेम प्रेस ही उपयुक्त होते हैं।

विलियेमसन विमलीकरण विधि (Williamson clarification Method)—इस विधि में चीनी के विलयन के छानने की आवश्यकता नहीं होती। यह विधि बिना किसी रुकावट के कार्य करती रहती है। इसमें भी फ़ास्फ़रिक अम्ल और चूने का उपयोग होता है। इस विधि में विलयन में वायु प्रवाहितकर प्राय: चिपटे पात्र में २१०° फ० तक गरम करते हैं। वायु के बुलबुले उठकर मैल को शिखर पर झाग के रूप में इकट्ठा करते हैं, जहाँ से उपयुक्त साधनों से वे निकाल लिये जाते हैं।

विलयन प्राय: १६०° फ० पर पात्र में प्रविष्ट करता है, यद्यपि कुछ लोगों के मत से निम्न ताप भी इसके लिए उपयुक्त है।

वायु के प्रविष्ट करने के अनेक तरीके हैं। पहले-पहल जब यह विधि निकली तब छोटी-छोटी टंकियों में, छिप प्रोथ (jet rozzle) के द्वारा संपीड़ित वायु (Compressed air) प्रविष्ट करती थी। एक दूसरी विधि में १२० पाउण्ड के दबाव में विलयन को छोटे-छोटे प्रोथों द्वारा बाहर निकलते हैं और यह विलयन तब वायुमण्डल की वायु के साथ मिलता है। तीसरी विधि में विलयन के लिए केन्द्रापसारी पम्प में ही वायु का प्रवेश कराते हैं। चौथी विधि में बड़ी तेजी से घूमते हुए बिम्ब (disc)



चित्र ६६—स्वीटलैण्ड स्टेशनरी लीफ प्रेस

पर विलयन को गिराते हैं। वायु-मिश्रित विलयन में वायु के कारण उसका रूप सफेद दूध सा हो जाता है।

विलियमसन ने जो पात्र उपयुक्त किया था, वह एक छिछली टंकी थी, १२ फुट लम्बी ६ फुट चौड़ी और २ फुट गहरी। उसके पेंदे में अनुप्रस्थ (transverse) ताँबे की भाप-नली थी जिसमें १०० वर्गफुट का तापन-तल था। एक ओर से विलयन प्रविष्ट करता था और धीरे-धीरे बहता हुआ दूसरी ओर से बाहर निकलने तक उसका ताप २१०° फ० हो जाता था। इतने समय में वायु के बुलबुले से मैल उठकर सतह पर मोटी तह में जम जाता है। मैल की यह तह धीरे-धीरे घूमते हुए वेल्लन (roller) द्वारा निकालकर मल-पात्र में रख दी जाती है। ऊपर की तह से ६ इंच नीचे स्थित नल द्वारा स्वच्छ तरल निकाल लिया जाता है। प्रत्येक ऐसे पात्र का समावेशन प्रति-घन्टा ८०० से १००० गैलन का होता है। १० लाख पाउण्ड के लिए प्राय: आठ ऐसे पात्रों की आवश्यकता होती है। विलयन में अब भी कुछ मैल रह जाता है जो धातु के तार के बने कपड़े में छानने से निकल जाता है। पात्र में जितनी चीनी प्रविष्ट करती है, उसका ४ से ६ प्रतिशत मैल में

निकल जाता है। इसमें चीनी भी रहती है। चीनी को निकाल लेते और तब बचे पिंड का भार प्रायः ०·८ प्रतिशत रहता है। इस पात्र के निर्माण में भी अनेक सुधार हुए हैं। इनमें जैकोब्स (Jacobs) और एडसन (Edson) के सुधार कुछ महत्त्व के हैं। जैकोब्स के सुधार में पात्र को छः यू आकार के कक्ष में विभाजित किया गया है। पहला कक्ष ३० इंच गहरा और अन्तिम कक्ष १० इंच गहरा होता है। भाप पेंदे के खोल में प्रविष्ट करती है। मैल को हटाने के लिए धीरे-धीरे चलता हुआ वायुरोध (drag) रहता है। वेलन की अपेक्षा वायुरोध से मैल अधिक पूर्णता से निकलता है। एडसन के सुधार में तापन-तल नलियों का बना होता है। जैकोब्स के सुधार के समान इसमें भी वेलन के स्थान में वायुरोध रहता है।

विलियमसन विधि का लाभ यह है कि इसमें फॉस्फरिक अम्ल और चूने का उपयोग होता है जिससे श्लेषाभ और रंग सब दूर हो जाते हैं। विलियमसन का उपकरण सरल होता है और उसके संचालित करने और बनाने में कम खर्च पड़ता है। विमलीकरण का खर्च इस विधि में बहुत कम होता है। अन्य विधियों में जो खर्च पड़ता है, उससे आधे खर्च में ही यहाँ काम चल जाता है।

विलियमसन विधि का दोष यह कहा जाता है कि इसमे चीनी के विपर्यय में उच्च ताप के कारण सहायता मिलती है और उसमे चीनी का कुछ विनाश होता है। पर सूक्ष्म विश्लेषण से और पीएच के नियंत्रण से देखा गया है कि चीनी का यह विनाश ०·०५ प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

ऐसा भी कहा जाता है कि न छानने के कारण विलयन पूर्णतया स्वच्छ नहीं होता; पर इससे कोई विशेष क्षति नहीं होती। इस दोष को दूर करने के लिए बालू निःस्यन्दन का भी सुझाव रखा गया है और उपयोग होता है। इसमें खर्च बहुत कम पड़ता और विलयन अवश्य ही बहुत स्वच्छ हो जाता है। ऐसा कहा जाता है कि शुद्ध चीनी के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है। ९४ से ९६° शुद्धता की चीनी से भी बहुत स्वच्छ विलयन नहीं प्राप्त होता। ऐसी दशा में यदि विलियमसन विधि के साथ साथ निःस्यन्दन का भी प्रबन्ध हो तो यह दोष अवश्य ही दूर किया जा सकता है।

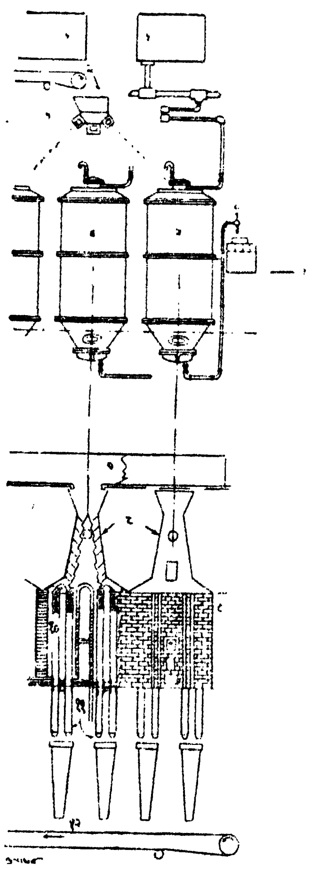
मैल-पानी का उपचार—जो मैल प्राप्त होता है, उसके पानी को दबाकर निकाल लेते हैं और फिर मैल-पिंड को पानी से मलाई-सा बनाकर छान लेते हैं। उस पानी को फिर गरम कर, छानकर उद्वाष्पक में गाढ़ा कर लेते हैं।

विलियमसन मैल में प्रधानतः ट्राइकेलसियम फास्फेट, अधिधारित अशुद्धियाँ, और विलयन रहते हैं। इस मैल को गरम जल से धोकर चूना डालकर ८·० से ८·४ पीएच बनाकर गरम कर स्थिर होने के लिए छोड़ देते हैं और फिर विलयन को निथार लेते हैं। जो चीजें बैठ जाती हैं, उसे फिर हलका करके छान लेते हैं। इससे जो मीठा पानी प्राप्त होता है, उसे फिर चीनी के घुलाने के काम में उपयोग करते हैं।

विमलीकरण का नियंत्रण—कितना विमलीकरण पदार्थ डालना चाहिए, यह कच्ची चीनी की प्रकृति पर निर्भर करता है। फास्फरिक अम्ल, P_2O_5, की मात्रा अच्छी अथवा बुरी चीनी पर निर्भर नहीं करती है। विलयन का पीएच ७·० से ७·३ रहना ठीक है। कुछ लोग पीएच ७·५ से ८·० पसन्द करते हैं।

कोयला निःस्यन्दन—जिस विलयन का फ़ास्फ़रिक अम्ल और चूना अथवा विलियमसन विधि से विमलीकरण हुआ है, उसमें भी कुछ रंग और कुछ अशुद्धियाँ अब भी रह जाती हैं। रंग को दूर करने के लिए जो पदार्थ उपयुक्त होता है वह जन्तव कोयला अथवा अस्थि-कोयला है। यह कोयला हड्डी के भंजक आसवन से दानेदार रूप में प्राप्त होता है। जान्तव-कोयला पहले-पहल १८११ ई० में चीनी के साफ़ करने में इस्तेमाल हुआ था। यद्यपि इसका मुख्य उद्देश्य रंग का दूर करना है; पर यह कार्बनिक और अकार्बनिक अशुद्धियों को भी दूर करता है जिससे केवल साफ़ चीनी ही नहीं प्राप्त होती वरन् चीनी की मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है और छोए की मात्रा कम हो जाती है।

अस्थि-कोयले के उपयोग में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। विलयन की घनता, ताप, बहाव की गति, अस्थि-कोयले की भौतिक दशा, इत्यादि अनेक बातों का पूरा ध्यान रखने पर ही सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त होता है।



चित्र ६७—कोयला छनना, शोषक और भट्टा

आजकल कोयले के निःस्यन्दन जो उपयुक्त होते हैं, वे ढालवें लोहे के उर्ध्वाधार बेलनाकार चहबच्चे होते हैं। ये शिखर पर और पेंदे में शंकु आकार के होते हैं। साधारणतया २० फुट गहरे और प्राय: १० फुट व्यास के होते हैं। शिखर पर एक खुलने

और बन्द होनेवाला दरवाजा होता है। पेंदे के निकट में पार्श्व में दो मार्ग होते हैं जिनसे कोयला निकाल सकते हैं। कोयला सछिद्र पट्ट पर रखा होता है। यह पहले मोटे बीने रूई के कम्बल से ढँका होता है और यह फिर महीन बीने रूई के कम्बल से ढँका रहता है ताकि कोयले की धूल छनकर विलयन में न चला आवे। शिखर पर पार्श्व से विलयन प्रविष्ट करता है और सछिद्र पट्ट के नीचे पार्श्व-नली से निकल जाता है।

कितना कोयला इस्तेमाल करना चाहिए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक परिष्करणी में अनुभव से मालूम होता है और कच्ची चीनी की प्रकृति और साफ़ चीनी के प्राप्त करने पर निर्भर करता है। साधारणतया आजकल १०० पाउण्ड कच्ची चीनी की सफ़ाई के लिए ३० से ४० पाउण्ड कोयला इस्तेमाल होता है।

जो कोयला इस्तेमाल होते हैं, वे दो या तीन श्रेणियों के होते हैं। उन्हें क, ख और ग श्रेणी अथवा 'प्रथम' 'द्वितीय' और 'तृतीय' श्रेणी कहते हैं। यदि किसी कारखाने में ३६ निःस्यन्दक हैं तो इनमें १८ में 'क' श्रेणी के और १८ में 'ख' श्रेणी के कोयले कहते हैं। यदि कोयले को पुनर्जीवित करने के लिए प्रत्येक चार चार घण्टे पर प्रबन्ध है तो इस निःस्यन्दन का चक्र ७२ घंटे में पूर्ण होगा। ७२ घण्टे में निम्नलिखित कार्य सम्पादित हो जाने चाहिए।

(१) कोयले से भरना, (२ कोयले को तरल से भरना, (३) विलयन को कोयले से बहा लेना (४) कोयले से चीनी को गरम पानी से धोकर निकाल लेना (५) अवशिष्ट जल को वायु से निकाल लेना और (६) भीगे कोयले को निकाल लेना। साधारणतया यह काम कम-से-कम २४ से ६० घण्टे में और अधिक-से अधिक १०० घण्टे से १२० घंटे में सम्पादित होता है। इनमें सारे काम नियत समय में ही सम्पादित होते हैं। केवल विलयन का बहाव का समय नियत नहीं रहता। यह कच्ची चीनी की प्रकृति पर निर्भर करता है।

निःस्यन्दक को अस्थि-कोयले से भरना—निःस्यन्द में कोयला ऐसा बिछाना चाहिए कि उसकी परत एक-सी बने, कहीं केवल मोटी और कहीं पतली न रहे। हाथ से ही साधारणतया कोयला फैलाकर पट्ट पर बिछाया जाता है। जहाँ तक हो कोयला का बिछाना एक-सा होना चाहिए।

अस्थि-कोयला पर विलयन—कोयले पर विलयन धीरे-धीरे डालना चाहिए ताकि वायु के अंश निकल जायँ। जब वायु के अंश निकल जायँ तब मार्ग कपाट (Valve) बन्द कर देना चाहिए और विलयन को धीरे-धीरे डालकर निःस्यन्दक को भर देना चाहिए। निःस्यन्दक भर जाने पर भी कुछ वायु निकलती रहती है। जब सारी वायु निकल जाय तब उसे बन्द कर उसपर दबाव डालना चाहिए।

अच्छे जले कोयला पर जब गरम विलयन प्रविष्ट करता है तब पर्याप्त उष्मा उत्पन्न होती है। यदि कोयले का ताप १००°-१५०° और विलयन का १६५° हो तो पहले कुछ निःस्यन्दक का ताप १८५°-१९०° हो जायगा। इस कारण आवश्यक है कि कोयले का ताप १६०° से कभी भी ऊँचा न रहना चाहिए।

कोयले को विलयन के साथ मिलाकर निःस्यन्द में रखने की परिपाटी इधर कुछ वर्षों से चल निकली है। निःस्यन्दक को पहले पाँचवा अथवा चौथा भाग सूखे

कोयले से भर देते हैं। तब कोयला और तरल साथ-साथ ऐसे डालते हैं कि वे दोनों मिलकर प्रविष्ट करते हैं। तीन घुमते हुए कनेल की सहायता से मिश्रित होकर वे निःस्यन्द में जाते हैं।

निःस्यन्दन (Filtration)—ज्योंही निःस्यन्दक भर जाता है और उसका दरवाजा बन्द कर दिया जाता है, छनना शुरू होता है। सबसे अधिक शुद्ध विलयन पहले छाना जाता है तब कम शुद्धता के विलयन छाने जाते हैं। चीनी का धोवन जो ६६° शुद्धता की होती है १६०°-१६५° फ० पर पहले प्रविष्ट करती है। बहाव की गति प्रति घंटा २०० से ३०० घन फुट होती है। कम शुद्ध चीनी के विलयन का छनना कम होता है इससे बहाव की गति क्रमशः धीमी होती जाती है और ताप बढ़ता जाता है। एक के बाद दूसरे प्रकार के तरल निःस्यन्द में डाले जाते रहते हैं। यदि अस्थि-कोयला दो या तीन श्रेणियों के होते हैं तब सबसे पुराने कोयले में वह विलयन जाता है जिसमें सबसे अधिक अशुद्धियाँ रहती हैं।

धोलाई—कुछ समय के बाद अस्थि-कोयले के रंग और अशुद्धियों के दूर करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। अब प्रवेश-कपाट को बन्द कर देते हैं और गुरुत्व के कारण तरल का तल नीचे चला जाता है। अब ऊपर के दरवाजे को खोलकर उसमें गरम जल, २१०° फ० डालकर कोयले को ढँक देते हैं। अब दरवाजे को बन्द कर उसपर दबाव डालते हैं। अब पानी धीरे-धीरे कोयला द्वारा बहता है। जब मीठे जल की घनता प्रायः ४०° ब्रिक्स पहुँच जाती है, तब बहाव की गति कम कर दी जाती और विलयन को उद्वाष्पक में गाढ़ा करते हैं। २ से ५ घण्टे के बाद पानी में कोई चीनी नहीं रहती और उसके उद्वाष्पन से कोई लाभ नहीं होता। १२ से १४ घण्टे तक पानी के बहाव से कोयले को धो देते हैं। प्रति घंटा प्रायः २० घन फुट पानी का बहाव होता है।

संपीड़ित वायु से फिर पानी को निकाल लेते हैं। तब पेंदे के दरवाजे से कोयले को निकाल लेते और सुखाते हैं।

अस्थि-कोयले का पुनर्जीवन—वायु से शून्य स्थान में कोयले को उच्च ताप पर गरम करने से कोयले का पुनर्जीवन हो जाता है। इस काम के लिए विशेष प्रकार के शुष्ककारक (driers) और भट्ठे उपयुक्त होते हैं। कोयले के जलाने से कार्बनिक अशुद्धियाँ, जो अब भी पानी से धोने के बाद रह जाती है, कुछ निकल जाती हैं और कुछ झुलस जाती हैं।

अस्थि-काल शुष्ककारक—शुष्क कारक अनेक प्रकार के होते हैं। ये भट्ठे की उच्छिष्ट गैसों से गरम किये जाते हैं। कोयला जब शुष्ककारक में प्रविष्ट करता है तब उसमें प्रायः १८ से २० प्रतिशत जल रहता है और जब उससे बाहर निकलता है तब लगभग १२ से १५ प्रतिशत जल रहता है। अन्य प्रकार के शुष्ककारकों से अधिक जल निकल सकता है।

कोयला-भट्ठा—नल-भट्ठे में, जो ढालवें लोहे का बना होता है, कोयले को गरम करते हैं। यह भट्ठा प्रायः ८ से १० फुट तक लम्बा होता है और इसका अभ्यन्तर अण्डाकार भाग ३ इंच से १२ इंच होता है। भट्ठे को कोयले, तेल अथवा गैसे जलाकर

गरम करते हैं। परिभ्रामक भट्ठे भी कई प्रकार के बने हैं। कोयले के उपयोग से उसमें क्यों परिवर्तन होते हैं, यह निम्नलिखित आँकड़ों से पता लगता है।

	नया कोयला	उच्च कोटि का इस्तेमाल हुआ कोयला	निम्न कोटि का इस्तेमाल हुआ कोयला
कार्बन	८·५५	६·१६	४·६२
अविलेय सिलिका	०·२५	०·३३	०·५०
कैलसियम सलफेट	०·०६	०·८२	१·०१
कैलसियम सलफाइड	०·०५	०·१५	०·२६
कैलसियम कार्बोनेट	८·६०	४·५०	३·७५
लोहा	०·०६	०·२०	०·२८
अनिश्चित (कैलसियम फास्फेट)	८२·१३	८७·८४	८६.५८
	१००·००	१००·००	१००·००

बौक्साइट—चीनी के विमलीकरण में अस्थि कोयले के स्थान में बौक्साइट का भी उपयोग हुआ है। बौक्साइट के उपयोग से राख की मात्रा बहुत कम हो जाती है। रंग भी उसी प्रकार दूर हो जाता है। बौक्साइट का मूल्य कम होता है और उसे पुनर्जीवित करने के लिए नीच ताप ८००° फ० ही पर्याप्त है।

उद्भिद् कार्बन—यद्यपि विमलीकरण के लिए अस्थि-कोयला सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, पर उद्भिद् कोयला भी इस काम के लिए उपयुक्त हो सकता है। समुद्र-घास, पीट, सिट्ठा, निःस्यन्दन पिंड, धान-छिलका अथवा काठ-धूल (लकड़ी के बुरादे) से बने कोयले का उपयोग हुआ है। ऐसे कोयले को क्रियाशील बनाने की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत लेखक ने ईख के सीठे से ऐसा क्रियाशील कार्बन तैयार किया है और परीक्षा करके देखा है कि उससे कच्ची चीनी की सफाई भी उतनी ही उत्तमता से हो सकती है। ब्लोस्की और बोन (Blouski and Bone) ने अस्थि-कोयले और क्रियाशील कार्बन का तुलनात्मक अध्ययन किया है और उनके गुण-दोषों का इस प्रकार वर्णन किया है।

अस्थि-कोयले के गुण—

१. अ-शर्करा पदार्थ निकल जाते हैं। छोए की मात्रा कम होती और चीनी का प्रत्यादान बढ़ जाता है।
२. धो और तपा कर अस्थि-कोयले का पुनर्जीवन सरलता से हो जाता है।
३. केवल अल्प मात्रा—१३ से १५ प्रतिशत—को पुनः स्थापित करना पड़ता है।
४. इसके व्यवहार की प्रविधि (technic) बहुत-कुछ अधिक ज्ञात हो चुकी है।

अस्थि-कोयले के दोष—

१. उपकरण में अधिक खर्च पड़ता है।
२. अस्थि-कोयले की अधिक मात्रा लगती है।
३. अस्थि-कोयले का धोवन अधिक होता है।

क्रियाशील कार्बन के गुण—

१. कार्बन की मात्रा कम लगती है, समय कम लगता और विधि सरल होती है।

२. कम समय लगने से चीनी का विपर्यय कम होता है और इससे चीनी की कमी कम होती है।

३. उसके उपकरण में खर्च कम पड़ता है।

४. इसका धोवन कम होता है।

क्रियाशील कार्बन के दोष—

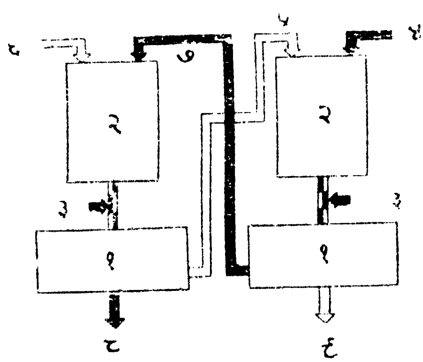
१. इससे अ-शर्करा पदार्थों की निकास कम होती है।

२. क्रियाशील कार्बन के पुनर्जीवन में अधिक हानि होती है। प्रतिचक्र में कम-से-कम पाँच प्रतिशत कम हो जाता है।

३. अधिक समय तक सीरे को संसर्ग में रखना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त अस्थि-कोयले से चीनी के बड़े-बड़े दाने, मिश्री इत्यादि भी सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं। जहाँ चीनी की सफाई के छोटे-छोटे कारखाने हैं, वहाँ क्रियाशील कार्बन का उपयोग अधिक सुविधाजनक हो सकता है।

उद्भिद् कार्बन-विधि—कार्बन से जब सीरे का विमलीकरण होता है तब यह दो क्रमों में होता है। एक क्रम में एक बार का इस्तेमाल कार्बन उपयुक्त होता है और दूसरे क्रम में ताज़ा कार्बन उपयुक्त होता है। इसके लिए जो उपकरण उपयुक्त होता है, उसका चित्र ६८ यहाँ दिया हुआ है।



चित्र ६८—दो क्रम कार्बन उपचार

१. छनना, २. मिलानेवाली टंकी, ३. द्रव और कार्बन नली, ४. नया कार्बन-प्रवेश, ५. एकबार साधित द्रव-प्रवेश, ६. असाधित द्रव-प्रवेश, ७. एकबार उपयुक्त कार्बन, ८. दो बार उपयुक्त कार्बन फेंक देने के लिए, ९. विरंजित द्रव दूसरे क्रम के लिए।

नये सीरे को ऐसी टंकी में लाते हैं जिसमें एक बार का उपयुक्त हुआ कार्बन रखा रहता है। कार्बन से छनकर तरल निःस्यन्दक में जाता है जहाँ यह फिर छान लिया जाता है। यहाँ से फिर तरल एक दूसरी टंकी में जाता है, जहाँ नया कार्बन रखा होता है। इससे छनकर वह फिर निःस्यन्दक में जाकर फिर छनता है। इस टंकी में रखा कार्बन फिर पहली टंकी में भेज दिया जाता है। दूसरी बार उपयुक्त कार्बन से चीनी को पानी से धोकर निकाल लेते और शुष्ककारक में सुखा लेते हैं। इसको फिर भट्ठी में गरमकर पुनर्जीवित करते हैं। पुनर्जीवन के लिए वायु और भाप का मिश्रण उचित अनुपात में लिये जाते हैं। उसके बाद

हलके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से साधकर फिर कॉस्टिक सोडे से निराकरण कर पीएच ७·० बनाते हैं। ऐसे पुनर्जीवित कार्बन की दक्षता मूल-कार्बन की दक्षता का प्राय: ८५ से ९० प्रतिशत होती है। मूल-कार्बन का प्राय: ९२ से ९४ प्रतिशत पुनर्जीवन से प्राप्त होता है। एक क्रियाशील कार्बन 'नौरिट' (Norit) के नाम से बाजारों में मिलता है और उसका उपयोग हो रहा है। नौरिट को दो प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन से धोकर फिर क्षारीय पानी (कास्टिक सोडा या कार्बोनेट) से धोकर गरम कर छान लेते और प्राय: दो क्रमों में ४०० से ६५०° श० तक गरम कर उसे पुनर्जीवित करते हैं।

विलियमसन विधि और फ़ास्फ़रिक अम्ल-चूने के साथ भी कार्बन का उपयोग हुआ है। कुछ लोगों ने १०० पाउन्ड चीनी में एक स्थान में ०·१५ से ०·२० पाउन्ड और दूसरे स्थान में ०·४ से ०·४० पाउन्ड कार्बन के उपयोग से अच्छी और बहुत ही साफ़ चीनी प्राप्त की है।

कार्बन और अस्थि-कोयला—कुछ कारखानों में अस्थि-कोयले और कार्बन का साथ-साथ उपयोग हुआ है और उससे अच्छा परिणाम निकला है। कुछ अशुद्धियों को कोयला शीघ्रता से शोषण कर लेता है और कुछ अशुद्धियों को कार्बन। इसमें पहले अस्थि-कोयले का उपयोग कर तब कार्बन का उपयोग करना चाहिए; क्योंकि अस्थि-कोयले से जो कुछ स्वाद और गंध आ जाती है, वह कार्बन से निकल जाती है।

क्लोरीन—सीरे के विमलीकरण के लिए क्लोरीन का भी उपयोग हुआ है। इसके लिए उत्कृष्ट कोटि का कैलसियम हाइपोक्लोराइट-ब्लीचिंग पाउडर (श्वेतन चूर्ण) उपयुक्त होता है। यह ईख के रस के विमलीकरण और चीनी के परिष्कार दोनों में व्यवहृत हो सकता है।

हाइपोक्लोराइट के इस उपयोग को 'सुक्रो-ब्लैंक विधि (The Sucro Blanc Process) कहते हैं।

इस विधि में कच्ची चीनी को पानी में ११०° फ० पर घुलाते हैं। फिर उसमें फास्फरिक अम्ल डालकर १५ मिनट तक उसके संसर्ग में रखते हैं। इस समय सबको बराबर प्रक्षुब्ध करते रहते हैं। अब इसमें चूना डालकर उसका पीएच ठीक कर लेते हैं।

अब इसे एडसन विमलीकारक में ले जाते हैं और उसमें हाइपोक्लोराइट डालकर वायु के बुलबुले निकालते हैं। इससे क्लोरीन निकलकर अशुद्धियाँ झाग के रूप में तल पर आ जाती हैं और घने पिंड में इकट्ठी होती हैं। यहाँ निम्न ताप पर ही अशुद्धियाँ निकल जाती हैं। इन्हें धीरे-धीरे चलते हुए अवरोध से निकालते जाते हैं और स्वच्छ विलयन को नीचे से निकालकर फिर दूसरी बार इसी प्रकार का उपचार करते हैं। इसे अब निःस्यन्द प्रेस में छान लेते हैं। इसमें अब बहुत अल्प मात्रा में सोडियम हाइड्रोसलफाइट डालकर निश्चय कर लेते हैं कि उसमें मुक्त क्लोरीन नहीं रह गया है। इस उपचार से विलयन बहुत स्वच्छ हो जाता है।

सुक्रो-ब्लैंक सुक्रोसेल विधि (Sucro-Blanc Sucrocel Process)—यह विधि प्राय: वही है जिसका वर्णन ऊपर में हो चुका है। अन्तर केवल यही है कि परिष्कृत तरल को फिर कुछ परिच्यावकों (Percolaters) में ले जाते हैं जिनमें सक्रिय खनिज, सुक्रोसेल बौक्साइट, रखे होते हैं। इस खनिज में शोषण-क्षमता बहुत

अधिक होती है। इसमें तरल वैसे ही चूता है जैसे अस्थि-कोयले में चूता है, पर परिच्यावक का विस्तार बहुत छोटा होता है। अस्थि-कोयले में जितने बड़े पात्र उपयुक्त होते हैं, उसके दशमांश पात्र से यहाँ काम चल जाता है। तरल और सुक्रोसेल केवल ४५ मिनट से एक घंटे ही संस्पर्श में रहते हैं और चीनी की केवल ५ प्रतिशत मात्रा ही सुक्रोसेल की लगती है। एक ही सुक्रोसेल पर तीन से चार बार तरल प्रवाहित किया जा सकता है। प्रत्येक बार धोने की आवश्यकता नहीं है।

सुक्रोसेल से अशर्करा पदार्थों का ५० प्रतिशत तक और रंगों का ६२ से ६५ प्रतिशत तक निकल जाता है। इसमें दबाव में छानने की आवश्यकता नहीं होती। इससे मेहनत और खर्च दोनों बच जाता है। इसमें रस को गाढ़ा करने के लिए अधिक भाप भी नहीं लगती। सुक्रोसेल द्वारा अशर्करा के निकल जाने से चीनी की मात्रा भी अधिक प्राप्त होती है।

अन्य पदार्थ—कुछ ऐसे कार्बनिक पदार्थ पाये गये हैं जिनकी सहायता से अशर्करा और अशुद्धियाँ सरलता से निकाली जा सकती हैं। कुछ कारखानों में इनका उपयोग हुआ है, पर ये कार्बनिक पदार्थ मूल्यवान होते हैं और उनके पुनर्जीवन का खर्च बहुत अधिक पड़ता है। इससे इनका उपयोग बहुत कम हुआ और होता है।

शर्करा का मणिभीकरण—विलयन के विमलीकरण और निस्यन्दन के बाद जो रस प्राप्त होता है, उसे 'प्रथम रस', 'द्वितीय रस', 'तृतीय रस' और 'चतुर्थ रस' कहते हैं। 'प्रथम रस' जल-सा सफेद होता। और उसकी शुद्धता ९६° से ६६·५° होती है। 'द्वितीय रस' कुछ पीला होता है और उसकी शुद्धता ९०° से ९३° रहती है। 'तृतीय रस' की शुद्धता ८४°-८७° रहती है और उसका रंग सुनहला होता है। 'चतुर्थ रस' की शुद्धता ७५° ८०° रहती है और वह इतना धुंधला होता है कि उससे दानेदार चीनी नहीं बन सकती।

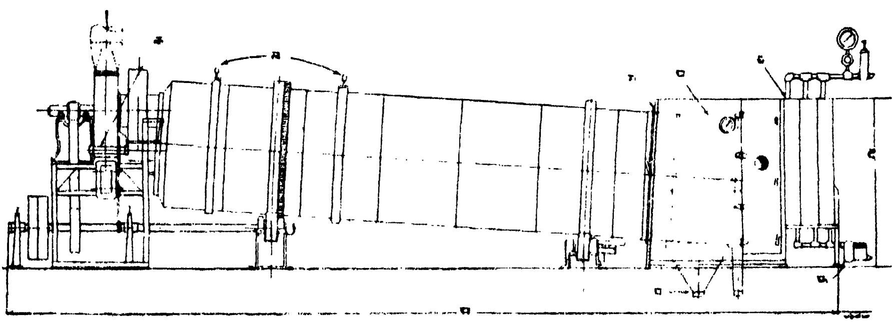
रस का शून्य कड़ाह में उद्वाष्पन करते हैं। ये कड़ाह वैसे ही होते हैं जैसे ईख-रस के उद्वाष्पन में उपयुक्त होते हैं। ये कड़ाह कुछ कम ऊँचे होते हैं ताकि उबलना शीघ्र हो और तापनतल अधिक हो। कई प्रकार के कड़ाह काम में आते हैं। कलेण्ड्रिया कड़ाह भी उपयुक्त होते हैं। इन कड़ाहों में कुछ सुधार अवश्य हुए हैं ताकि वे अधिक गाढ़े रस को उबाल सकें और उनमें अधिक भाप का खर्च न हो।

'प्रथम रस' से जो मणिभ प्राप्त होते हैं, वे उच्च श्रेणी के होते हैं। उनके मणिभ स्पष्ट और स्वच्छ होते हैं और अधिक मूल्य पर बिकते हैं। द्वितीय और तृतीय रसों से प्राप्त मणिभ उतने अच्छे नहीं होते। ये द्वितीय श्रेणी के होते हैं। दानेदार चीनी के स्थान में महीन चीनी भी इनसे प्राप्त हो सकती हैं। ऐसी चीनी को 'मृदु चीनी' (Soft Sugar) कहते हैं। मृदु चीनी श्वेत से लेकर गाढ़ा कपिल रंग तक की हो सकती है। इसकी बनावट स्पंजी होती है। इसमें मणिभीय आकार नहीं होते। ऐसी चीनी की भी बाजारों में पर्याप्त खपत होती है।

केन्द्रापसारक—केन्द्रापसारक में मणिभ को सीरे से अलग करते हैं। यदि बिलकुल सफेद चीनी प्राप्त करना है तो मणिभ को उष्ण जल से धोकर सीरे को पूर्ण रूप से निकाल लेते हैं। पानी कितना लगना चाहिए, यह सीरे की प्रकृति पर निर्भर करता है।

पहले मणिभ में १२ से २० पाउण्ड जल और अन्य मणिभों में ४० पाउण्ड तक जल लग सकता है।

मृदु चीनी को साधारणतया पानी से नहीं धोते। कुछ सीरे के रह जाने से चीनी का आवश्यक रंग प्राप्त होता है। तीव्र गतिवाले केन्द्रापसारक अब उपयुक्त होते हैं। इनमें घुमाव, पानी डालने, पिंड को तोड़ने और चीनी के निकाल बाहर करने का काम सब आत्म-संचालित होता है।



चित्र ६१—कणात्मक डिंडिम (Granulator Drum)

(क) से आर्द्र चीनी प्रविष्ट करती है, (ख) स्फाइकर है, (ग) बन्द करने का प्रबन्ध (Deal), (घ) परदा, (च) तापक, (फ) भाप-पाश (Steam trap), (प) चीनी निकास-मार्ग, (द) ऊँचाई, (स) लम्बाई।

चीनी की सुखाई—केन्द्रापसारक से निकलने के बाद चीनी को सुखाते हैं; क्योंकि इसमें प्राय: एक प्रतिशत पानी रहता है। इसे अब कणात्मक (Granulator) पर ले जाते हैं। इसे कणात्मक इस कारण कहते हैं कि यहाँ चीनी के कण अलग-अलग हो जाते हैं। यह कणात्मक लोहे का एक डिंडिम २५ फुट लम्बा और प्राय: ६ फुट व्यास का होता है। यह बेलन पर घूमता है और नीचे की ओर झुकता जाता है। डिंडिम के अभ्यन्तर में पतले निधाय (shelves) की पंक्तियाँ (चित्र ६६ देखें) होती हैं, जो डिंडिम के घुसने पर चीनी को उठाती और गिराती हैं। डिंडिम गरम वायु से गरम होता है। वायु भाप से गरम की जाती है। भाप कणात्मक के मध्य भाग में अथवा डिंडिम के अन्त में भाप नली से प्रविष्ट कर वायु को गरम करती है। निष्कासन पंखों से वायु डिंडिम में खींची जाती है। एक के ऊपर दूसरे दो कणात्मक काम करते हैं। ऊपर के डिंडिम से सूखी और गरम चीनी निकलती है। निचले डिंडिम में बहुत कम भाप की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे डिंडिम से ठंढी चीनी निकलती है। इसका ताप प्राय: ११०° फ० से नीचा ही रहता है। कभी-कभी चीनी को ठंढा करने के लिए एक तीसरा डिंडिम भी उपयोग में लाया जाता है। चीनी में धूल और जीवाणु प्रविष्ट न करें, इसके लिए छनी और धुली हुई वायु उपयुक्त होती है।

कुछ कारखानों में केवल एक ही डिंडिम उपयुक्त होता है। डिंडिम किस कोण पर स्थित रहना चाहिए, यह अधिक चीनी कितनी जल्द या देर से सूखती है, इसपर निर्भर करता है। यदि चीनी शीघ्र सूखती हो, कोण अधिक और देर से सूखती हो तो कोण

कम रहना चाहिए ताकि पहली दशा में चीनी डिंडिम से जल्दी निकले और दूसरी दशा में देर से निकले।

चीनी के बड़े-बड़े दानों के लिए इस प्रकार के शोषणकर्ता नहीं उपयुक्त होते; क्योंकि गिरने से मणिभों में खुरच पड़ जाती हैं। अन्य विधियों से तब उष्ण वायु की सहायता से ऐसे सुखाते हैं कि चीनी को गिरना न पड़े।

रोटो-लुवर शोषक (Roto-Louvere Drier)—एक दूसरे प्रकार का भी शोषक बना है जिसे 'रोटो-लुवर शोषक' कहते हैं। यह कणात्मक प्रकार का ही होता है। इसमें भी डिंडिम होता है जिसमें एक किनारे से दूसरे किनारे तक लुवर पट्ट लगे रहते हैं।

शर्करा का छानना—कणात्मक से चीनी धातु की जाली पर गिरती है और वह मणिभ के विस्तार के अनुसार भिन्न-भिन्न विस्तार को चीनी में बँट जाती है। मोटे दाने की चीनी एक स्थान में, महीन दाने की दूसरे स्थान में और मध्य दाने की तीसरे स्थान में छनकर इकट्ठी होती है। इसके छनने के लिए जाली हिलती है। क्षितिज से ३५° पर जाली नत रहती है।

धूल—चीनी के छानने में चीनी की कुछ महीन धूलें भी रहती हैं। ये एक पात्र में इकट्ठी होती हैं और बहुत महीन चीनी के रूप में बिकती हैं। पर चीनी की धूल इतनी महीन होती है कि उसमें नहीं पकड़ी जातीं। ये महीन धूलें धूल इकट्ठा होनेवाले भींगे पात्र में पकड़ ली जाती है। ऐसे अनेक प्रकार के पात्र आज बने हैं और उपयुक्त हो रहे हैं।

चीनी की पैकिंग—सूखी चीनी को अब सीधे बोरे में रखकर बन्द कर देते अथवा खत्ते में रख देते हैं और दिन में बोरे में बन्द करते हैं। ऐसी परिष्कृत चीनी को १०० पाउन्ड के बोरे में बन्द करते, तौलते और सीते हैं। छोटे-छोटे बैरेल में भी अल्प-अल्प मात्रा में रखे जाते हैं। कागज अथवा वस्त्र के थैले या दफ्ती के बक्स में भी भरकर, तौलकर बन्द कर दिये जाते हैं। आजकल कागज-बक्स अथवा बोरे में ही चीनी भरकर बाहर भेजने की चाल है।

चीनी की श्रेणी—साफ चीनी दो श्रेणियों की बनती है। एक को महीन चीनी (fine sugar) और दूसरे को अति-महीन चीनी (extra fine sugar) कहते हैं। अति-महीन चीनी की ही ज्यादा माँग है और अधिकांश परिष्करिणी अति-महीन चीनी ही तैयार करती हैं।

इनसे भी अधिक महीन चीनी मिलती है। महीन चीनी के छानने से यह प्राप्त होती है। इसे फल दानेदार चीनी (fruit granulated), फल चूर्ण चीनी (fruit powderd desert sugar), बेरी चीनी (berry sugar) या अधिचारु चीनी (super-fine sugar) कहते हैं।

इससे मोटी चीनी के दानेदार, मध्यम दानेदार या मध्यम मोटी चीनी या अति मोटी (extra coarse) चीनी कहते हैं। रोटी पकानेवाले अथवा मिश्री बनानेवाले या हलुवाई इसी चीनी को इस्तेमाल करते हैं।

घन या टिकिया के आकार की भी चीनी मिलती है। यह साँचे में बनती है।

टिकिया को सुखाकर बन्द करते हैं। कभी-कभी चीनी को छड़ (bars) या पटिया (slabs) में बना-काट कर बेचते हैं।

चीनी को पीसकर महीन बनाकर भी बेंचते हैं। ऐसी चीनी को चक्की में पीसते हैं और भिन्न-भिन्न आकार की चीनी को अलग अलग रखते हैं। ऐसी चीनी जमकर थक्के में बंध न जाय, इसे रोकने के लिए प्राय: ३ प्रतिशत तक स्टार्च भी मिला देते हैं। स्टार्च के स्थान में एक प्रतिशत ट्राइ-कैलसियम फास्फेट भी उपयुक्त होता है।

मृदु चीनी कई श्रेणियों की होती है। १ से १६ श्रेणियों की हो सकती है। १ से ५ श्रेणियों की मृदु चीनी प्राय: सफेद होती है। ऐसी चीनी की माँग नहीं है। अन्य श्रेणियों की चीनी रंगीन होती है। १५ और १६ नम्बर की चीनी की तो माँग बहुत कम रहती है। साधारणतया परिष्करिणी पाँच या छ: श्रेणियों की चीनी तैयार करती हैं। आठवीं श्रेणी की चीनी की माँग सबसे अधिक होती है। इसका रंग, हलका पीला होता है। १०, ११, १२ और १३ श्रेणियों की चीनी में रंग गाढ़ा होता जाता है।

चीनी के परिष्कार में प्राय: १ प्रतिशत चीनी नष्ट हो जाती है। ६५'० प्रतिशत चीनी दानेदार रूप में प्राप्त होती है और ४ प्रतिशत सीरे के रूप में रह जाती है।

अट्ठाईसवाँ प्रकरण

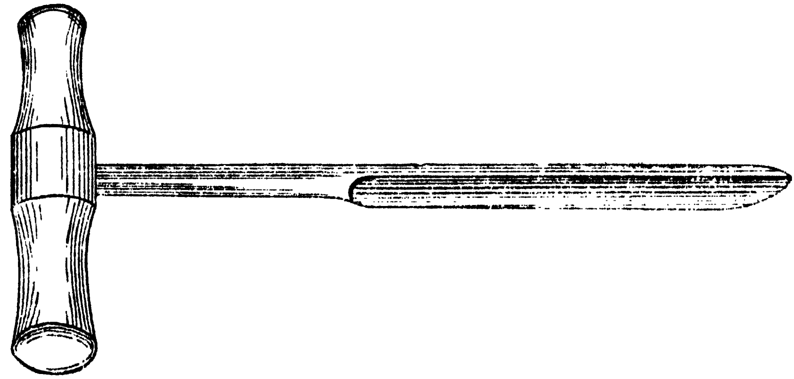
चीनी का विश्लेषण और नमूना

चीनी के मिलों में पद-पद पर चीनी के विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। मिलवालों को प्रतिदिन यह जानना बहुत आवश्यक है कि मिलों में जो ईखें आती हैं, उनमें चीनी की मात्रा कितनी है; जो रस ईखों से निकलता है, उसमें चीनी की मात्रा कितनी है; जो सीठा रह जाता है, उसमें कितनी चीनी बच जाती है; जो चीनी तैयार होती है उसमें वास्तविक चीनी की मात्रा कितनी रहती है और जो छोत्रा अवशेष रह जाता है, उसमें कितनी चीनी नष्ट होकर चली जाती है। यह सब ज्ञान होने पर ही किसी मिल के उचित अथवा अनुचित ढंग से चलने का ज्ञान हमें हो सकता है। इस कारण प्रत्येक मिल में रसायन के जाननेवाले रसायनज्ञ—केमिस्ट—की आवश्यकता होती है। इनका काम भिन्न-भिन्न नमूनों में चीनी की मात्रा निर्धारित कर मिल के संचालकों को प्रति-दिन बताना पड़ता है। प्रत्येक मिल में एक अच्छे रसायनज्ञ का रहना बहुत आवश्यक है जो चीनी का ठीक-ठीक और जल्द-से जल्द विश्लेषणकर प्रतिदिन बतलाता रहे। इस काम के लिए एक सुसज्जित प्रयोगशाला भी रहनी चाहिए जिसमें विश्लेषण के सब उपकरण, साधन और रसायन-द्रव्य विद्यमान हों और जहाँ शीघ्र-से-शीघ्र चीनी का विश्लेषण सम्पन्न हो सके। सब मिलों में केमिस्ट रहते हैं और रहना बहुत आवश्यक है। केमिस्ट के पद पर उसी व्यक्ति की नियुक्ति होनी चाहिए जो रसायन का ज्ञाता और चीनी के विश्लेषण में अनुभवी हो। किसी भी व्यक्ति को केमिस्ट के पद पर नियुक्त कर देना उचित नहीं है। इससे वेतन भले ही कम देना पड़े; पर उससे विश्लेषण के यथार्थ आँकड़े प्राप्त न होने से मिल को लाभ के बदले हानि होती है। इस कारण यह बहुत आवश्यक है कि मिलों में ऐसे ही रसायनज्ञ नियुक्त किये जायँ जो रसायन के अच्छे ज्ञान के साथ-साथ चीनी के विश्लेषण में पर्याप्त अनुभवी हों। ऐसे ही रसायनज्ञ से मिल को लाभ होगा यद्यपि ऐसे व्यक्ति को सम्भवतः अधिक वेतन देना पड़े।

विश्लेषण के लिए नमूना प्राप्त करना—जब किसी पदार्थ में चीनी की मात्रा निर्धारित करनी होती है, तब उसके लिए थोड़ा नमूना लेना पड़ता है। इस अल्प नमूने से ही चीनी के ढेर का ज्ञान होता है। इस कारण नमूने के लेने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि ऐसा न हो तो विश्लेषण से कोई लाभ नहीं होता। किसी ढेर से विश्लेषण के लिए कैसे नमूना निकाला जाय, यह बड़े महत्त्व का है। इसके लिए अनेक वर्षों के अनुभव से कुछ नियम बने हैं। इन नियमों को पूरा ध्यान में रखकर ही नमूना प्राप्त करना चाहिए।

चीनी से नमूना निकालना—बोरे या थैले में रखकर चीनी बाजारों में भेजी जाती है। कहीं एक बोरे में १०० पाउण्ड, कहीं १०५ पाउण्ड, कहीं १४० पाउण्ड, कहीं २५० पाउण्ड, कहीं ३१० पाउण्ड और कहीं ३१५ पाउण्ड तक चीनी या थैले में रखी जाती है। बोरे में जो चीनी रखी जाती है, सम्भव है वह एक-सी, एक विस्तार की, न हो। यद्यपि आजकल भिन्न-भिन्न छेदों की चलनी में छानकर एक बोरे में एक ही प्रकार की, एक ही विस्तार की, चीनी भरकर भेजने की प्रथा चल पड़ी है। इसपर भी इस नियम के सर्वत्र पालन न होने के कारण यह सम्भव है कि किसी बोरे की चीनी में एक-से दाने न हों, कुछ छोटे और कुछ बड़े सब मिले हों; सम्भव है किसी चीनी के बोरे में कुछ छोआ भी हो और वह छोआ बोरे के पेंदे में आकर इकट्ठा हो गया हो। सम्भव है एक बोरे की चीनी दूसरे बोरे की चीनी से भिन्न हो। इस कारण विश्लेषण के लिए अच्छा होता है कि प्रत्येक बोरे से चीनी के अलग-अलग नमूने निकालकर उन्हें मिलाकर परीक्षा की जाय।

बोरे से चीनी के नमूने निकालने के लिए एक छोटे उपकरण का उपयोग होता है जिसे निश्रेणी (tier) कहते हैं। यह इस्पात का बना हुआ एक लम्बा नोकीला उपकरण होता है जिसके एक ओर प्रसीता (groove) बनी होती है (चित्र ७०)। निश्रेणी को



चित्र ७०—चीनी का नमूना निकालने की छोटी निश्रेणी (Tier)

बोरे में घुसेड़कर निकाल लेने से प्रसीता में चीनी निकल आती है। प्रसीता से चीनी को अंगुली से निकालकर एक बाल्टी में रखते है। इसी प्रकार सब बोरों से नमूना निकालकर उसे पूर्ण रूप से मिलाकर उसी नमूने से थोड़ा निकालकर उसका विश्लेषण करते हैं। यहाँ निश्रेणी एक ही प्रकार की होनी चाहिए। इस निश्रेणी का आकार और विस्तार निश्चित होता है। निश्रेणी दो प्रकार की हो सकती है—एक लम्बी और दूसरी छोटी। पीपे से नमूना निकालने के लिए एक दूसरे प्रकार की निश्रेणी उपयुक्त होती है। अमेरिका में उपयुक्त होनेवाली निश्रेणी का विस्तार निम्नलिखित होता है :—

	छोटी निश्रेणी सेंटीमीटर	लम्बी निश्रेणी सेंटीमीटर	पीपे की निश्रेणी सेंटीमीटर
निश्रेणी की समस्त लम्बाई	४०·६	१५२·४	१०४
प्रसीता की लम्बाई	२२·६	१३२·१	६१·४

	छोटी निश्रेणी सेंटीमीटर	लम्बी निश्रेणी सेंटीमीटर	पीपे की श्रेणी सेंटीमीटर
जंघे की लम्बाई	१७·८	२०·३	१२·७
मूठ की लम्बाई	२६·७	३८·१	३०·५
प्रसीता की चौड़ाई	२·७	२·५	२·५
प्रसीता की गहराई	०·८	१·३	१·१
मूठ का व्यास	३·८	३·८	३·८

यदि थैला छोटा है तो छोटी निश्रेणी और यदि बड़ा है तो बड़ी निश्रेणी उपयुक्त करनी चाहिए। यदि चीनी लकड़ी के संदूक में रखी हुई है तो संदूक के किनारे से लम्बी निश्रेणी द्वारा चीनी निकालनी चाहिए। अलग-अलग बोरे या संदूक से बराबर-बराबर मात्रा में चीनी निकालकर रखनी चाहिए। प्रत्येक बार स्वच्छ निश्रेणी इस्तेमाल करनी चाहिए। उसमें चीनी सटी हुई नहीं होनी चाहिए।

बोरे के मध्य भाग से चीनी निकालनी चाहिए। निश्रेणी प्रायः बोरे के मध्य भाग तक पहुँचनी चाहिए। चीनी को निकालकर आर्द्र वायु में अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए नहीं तो चीनी में वायु से पानी सोख लेता है। नमूनेवाली बाल्टी को बन्दकर रखना चाहिए। चीनी के खुला रखने से उसका पानी भी उड़ सकता है। कुछ लोग समझते हैं कि पानी का उद्वाष्पन और पानी का अवशोषण एक दूसरे को समतुलित कर देता है, पर यह मत ठीक नहीं है। कहीं उद्वाष्पन अधिक होता है और कहीं अवशोषण अधिक। यह वायु की आर्द्रता और ताप पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

चीनी के नमूने को लेकर उसे सावधानी से पूरी तरह से मिला लेना चाहिए। यदि उसमें ढेले हैं तो उन्हें पीस लेना चाहिए और पीसी हुई चीनी को मिलाकर उसमें से थोड़ा निकालकर तब विश्लेषण करना चाहिए।

रस, सीरे और छोए अथवा तरल चीनी से नमूना निकालने में विशेष कठिनाई नहीं होती; क्योंकि जिस पात्र में वे रखे हों, उस पात्र को पूरा हिला-डोलाकर जब एक-सा एक रूप मिल जाय तब कांच या धातु की नली से नमूना निकाल लेना चाहिए। भिन्न-भिन्न पात्रों में रखे पदार्थों से नमूना निकालकर उसे फिर मिलाकर तब विश्लेषण करना चाहिए।

अमेरिका में छोए और सीरे से नमूना निकालने के नियम इस प्रकार बने हैं—"जितने पात्र में छोआ या सीरा रखे हों उन सब पात्रों से पूर्ण रूप से हिला-डोलाकर जब वे एक रूप हो जायँ तब नमूना निकालना चाहिए। यदि छोए बड़े-बड़े टैंकों में रखे हों और उन्हें एक-सा बनाना सम्भव न हो तो टैंक के ऊपरी भाग से एक नमूना, मध्य भाग से दूसरा नमूना और निचले भाग से तीसरा नमूना निकालकर सबको पूर्णरूप से मिलाकर तब विश्लेषण करना चाहिए।

रसों के नमूने निकालने के अनेक यन्त्र बने हैं जिनकी सहायता से पात्रों की विभिन्न गहराई से रसों का नमूना निकाला जा सकता है।

नमूने के निकाल लेने पर उसका विश्लेषण जल्द कर देना चाहिए, नहीं तो पानी के उद्वाष्पन, पानी के अवशोषण, विकर या सूक्ष्माणुओं की क्रिया से चीनी के संगठन में परिवर्तन हो सकता है। यदि नमूने को विश्लेषण के लिए कहीं दूर भेजना हो तो जिन

कारणों से विश्लेषण के फल दूषित हो सकते हैं, उन दोषों से बचने की कोशिश करनी चाहिए।

उद्वाष्पन अथवा अवशोषण से नमूने के संगठन में परिवर्तन होने से रोकने के लिए नमूने को ऐसे पात्र में बन्द करना चाहिए जिसमें वायु या पानी प्रविष्ट न कर सके। यदि किसी टिन के बरतन में नमूना भेजना है तो उस बरतन को पूर्ण रूप से वायु-अप्रवेश बन्द कर देना चाहिए ताकि उसमें वायु का प्रवेश न हो सके। ऐसे कामों के लिए चौड़े मुँह की बोतल या जार अच्छे होते हैं। ऐसी बोतलों के काग को पिघले मोम से बन्द कर देना चाहिए।

किण्वन क्रिया को रोकने के लिए पात्र को ठंढे स्थान में रखना चाहिए। गरम करके विकर-क्रिया का रोकना ठीक नहीं है; क्योंकि गरम करने से चीनी में अन्य परिवर्तन होने की सम्भावना हो सकती है। कभी-कभी परिरक्षक ओषधियों को डालकर सूक्ष्माणुओं से सुरक्षित रखा जाता है, पर ऐसी परिरक्षक ओषधियाँ होनी चाहिए कि चीनी पर उनकी कोई दूसरी क्रिया न हो। एक लिटर तरल में १० से २० बूँदें फार्मेलीन भी उपयुक्त हो सकती है, पर फार्मेलीन अधिक सक्रिय नहीं पाई गई है। मरक्यूरिक क्लोराइड इससे अधिक सक्रिय सिद्ध हुआ है। प्रतिशत भाग में ०·००४ से ०·२ प्रतिशत तक उपयुक्त हो सकता है। पोटैसियम आयोडाइड में घुलाकर मरक्यूरिक आयोडाइड कभी-कभी अच्छा काम करता है। लेड का भास्मिक अथवा उदासीन ऐसीटेट भी रसों के परिरक्षण के लिए अच्छा सिद्ध हुआ है।

उनतीसवाँ प्रकरण

चीनी और चीनी के उत्पाद में पानी का निर्धारण

पानी की मात्रा का निर्धारण सरल जान पड़ता है; पर वास्तव में यह इतना सरल नहीं है। इसके कई कारण है जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :—

१. जिन पदार्थों में चीनी रहती है, वे जल-ग्राही होते हैं। अवशोषण अथवा अधिधारण से पानी को पकड़े रहते हैं, सरलता से निकलने नहीं देते।

२. कुछ शर्कराएँ, विशेषतः फल-शर्करा, ८०° से १००° श० के बीच विच्छेदित होकर जल और अन्य वाष्पशील उत्पाद उत्पन्न करती हैं।

३. जिन पदार्थों के साथ चीनी मिली रहती है, वे पदार्थ गरम करने पर अनेक वाष्पशील पदार्थ एलकोहल, एल्डीहाइड, एस्टर, कार्बनिक अम्ल, कार्बन डायक्साइड और अमोनिया निकालते हैं जो गलती से पानी के अन्तर्गत निर्धारित होते हैं।

४. कुछ दशाओं में ऑक्सीकरण होता है जिससे वाष्पशील विच्छेदन-उत्पाद बनते हैं।

५. अनेक शर्कराओं-जैसा दुग्ध शर्करा-में स्फटन-जल होता है जो गरम करने से निकल जाता। स्फटन-जल कितना निकला है, इसका ज्ञान सरलता से नहीं होता।

चीनी में पानी का निर्धारण—चीनी में पानी की मात्रा निर्धारित करने के लिए २ से ५ ग्राम बारीक पीसी हुई चीनी को एल्युमिनियम, निकेल अथवा प्लैटिनम की रकाबी में रखकर उसे उबलते जलप-उष्मक में २ से ३ घंटा गरम करना चाहिए। तब उसे एक विशेष प्रकार के वायु-उष्मक में १०५° से ११०° श० तक एक घंटा तपाना चाहिए। इसे तब शोषित्र में ठंढा कर तौलना चाहिए। तौलने के बाद फिर एक घंटा १०५° से ११०° श० तक तपा कर शोषित्र में ठंढा कर फिर तौलना चाहिए। यह क्रम तब तक चलना चाहिए जब तक दो तौल एक से न हो जायँ।

यदि चीनी जल-ग्राही है तो रकाबी को तपाने के समय काँच के ढक्कन—वाच ग्लास-से ढके रखना चाहिए। कुछ दशाओं में काँच की डाटवाली बोतलें अच्छी होती हैं। ऐसी बोतल में रखने से तौलने के समय जल का उद्वाष्पन अथवा अवशोषण नहीं होता। डाँट-वाले धातुओं की रकाबी भी इस काम के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। वायु-उष्मक में ताप को १०५° से ११०° श० तक रखने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। ताप को १०५° से ११०° श० तक रखने के लिए गैस-मामक की आवश्यकता होती है। इसके लिए अनेक उष्मक बने हैं, पानी में नमक डालकर अथवा ग्लीसिरिन डालकर भी जल-उष्मक का ताप १०५° से ११०° श० रखा जा सकता है।

बिजली से तपाये जानेवाले उष्मक भी इस काम के लिए बने हैं। उष्मक के ढक्कन पर थर्मामीटर रखने का एक छेद बना होता है। काग में अँटकाकार तापमापी उसमें डाल दी जाती है। ऐसे उष्मक से १० से ३० मिनटों में ही चीनी का पानी निकल जाता है।

छोए में जल-निर्धारण—सीरे, छोए और रस से भी जिसमें फल-शर्करा नहीं है, इसी प्रकार पानी का निर्धारण होता है। पर इसके लिए छोए को सूखे बालू या झाँवाँ या अस्बेस्टस में अवशोषित करा कर तब सुखाने से पानी जल्द निकल जाता है। इसके लिए झाँवाँ को विशेष प्रकार से तैयार करना पड़ता है। झाँवें को पीसकर एक मिलिमीटर और ६ मिलिमीटर चलनी में छानकर अलग-अलग करते हैं। इन दोनों को अलग-अलग गन्धकाम्ल से ८ घंटा तक वाष्प-उष्मक में पकाकर अम्ल को धोकर रक्त ताप तक गरम कर सुखा देते हैं। अब रकाबी में पहले बारीक चूर्ण को ३ मिलिमीटर मोटी तह में फिर मोटे चूर्ण को ६ से १० मिलिमीटर तह में रखकर गरम करके तौलते हैं। तौलने के बाद छोआ रखकर तौलते हैं। इससे छोए का भार मालूम हो जाता है। अब उष्मक में १०५° से ११०° श० तक गरम और ठंढा कर कई बार तौलकर उसका भार मालूम करते हैं। जब दो तौल में भार स्थायी हो जाता है तब उस तौल से जल की मात्रा निर्धारित करते हैं।

झाँवें के चूर्ण के स्थान में स्फटिक पत्थर का चूर्ण अथवा गन्धकाम्ल में धुली सूखी बालू भी उपयुक्त कर सकते हैं।

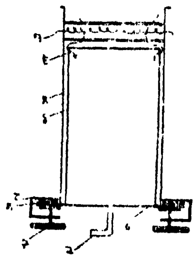
जिस नमूने में फल-शर्करा हो, उसमें जल का निर्धारण इस रीति से नहीं होता; क्योंकि १००° श० पर फल-शर्करा विच्छेदित हो जाती है। फल-शर्करावाली चीनी को शून्य में सुखाते हैं। शून्य में सुखाने से निम्न ताप पर ही पानी निकल जाता है। १००° श० तक तपाने की आवश्यकता नहीं होती। इसी विधि से मधु, छोए और ईख के रसों और अन्य फल-शर्करावाले पदार्थों में जल की मात्रा निर्धारित होती है।

इसके लिए पीसे झाँवे को ४०-अक्षी चलनी में छानकर गन्धकाम्ल में पकाकर, जल से धोकर, तपाकर, सुखाकर, शोषित्र में ठंढाकर पीपेट से उसमें पदार्थ को चारों ओर फैलाकर शून्य चूल्हे में तपाते हैं। शून्य-उष्मक का दबाव ५ मिलिमीटर से अधिक न हो तो अच्छा है, पर २५ मिलिमीटर तक रह सकता है। इतने दबाव पर ७०° श० पर ही सारा जल निकल जाता है। रकाबी को पूर्णरूप से ढककर तौलना चाहिए। उसे खुला उतनी ही देर रखना चाहिए जितना अत्यावश्यक हो। दो या तीन घंटों के अन्तर पर तौलना चाहिए। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि ४ घंटे में भार स्थायी हो जाता है। १७ घंटे तक सुखाने से भी उसमें कोई उल्लेखनीय कमी नहीं होती।

सीठे में जल-निर्धारण—सीठे में जल की मात्रा निर्धारित करने के लिए सीठे को १३०° श० तक तपाते हैं। उच्च ताप से परिणाम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस ताप पर २ घंटे में सारा जल निकल जाता है जब कि १००° श० ताप पर सारा जल निकालने के लिए कम-से-कम छः घंटा लगता है। कुछ स्थानों में छिछले पात्रों में और छिछले स्तरों में सीठे को रखते हैं। ये पात्र आधे इंच से एक इंच ऊँचे होते हैं। इनका क्षेत्रफल प्रायः २० वर्ग इंच होता है। इनमें २० से ३० ग्राम पदार्थ

अंट सकता है। इतनी अल्प मात्रा में औसतन नमूना प्राप्त हो सके, इसके लिए सीठे को बहुत महीन काटकर उसमें से लेना चाहिए।

एक दूसरी रीति में एक ऐसे पात्र का उपयोग होता है जिसमें १००० ग्राम सीठा अंट सकता है। इस पात्र में सीठा प्रायः २ घंटे में ही पूर्ण रूप से सूख जाता है। इसमें सीठे को काटकर छोटे करने की आवश्यकता नहीं होती। इस पात्र का चित्र यहाँ दिया



चित्र ७१—सीठा सुखाने का उपकरण

१. रंभाकार पात्र—६ इंच व्यास, १० इंच ऊँचा पात्र के शिखर पर, २. चौड़ा स्फार (flange), ३. पेंदे में छेद, ४. रम्भाकार पात्र जिसमें ५. स्फार लगा हुआ है, ६. पात्र के पेंदे में उष्ण करने का प्रबन्ध, तप्त या वैद्युत तप्त प्रतिरोध ७. आवरण ८. नली में लगा हुआ ९. एक संधर है।

हुआ है। इसमें एक बेलनाकार पात्र (१) होता है। यह १० इंच ऊँचा और ६ इंच व्यास का होता है। उसके शिखर पर चौड़ा उभड़ा किनारा (२) और पेंदे के पार्श्व में सछिद्र (३) होता है। (४) एक दूसरा बेलनाकार पात्र होता है जिसके शिखर पर चौड़ा उभड़ा किनारा (५) होता है। इस पात्र के पेंदे में वाष्पकुंडल अथवा बिजली से तपाने का प्रबन्ध रहता है। पात्र के पेंदे में छेद होता है—पात्र के ऊपर ढक्कन (८) होता है, जिसमें एक नली लगी रहती है जिसके द्वारा शून्य से जोड़ सकते हैं। '२', '५' संधर (९) से जुटे रहते हैं। शून्य से जोड़ने पर उष्ण वायु को सीठे में प्रवाहित करते हैं। इससे सीठा बहुत जल्द सूख जाता है।

तीसवाँ प्रकरण

घनता-मापन

किसी पदार्थ के ईकाई-आयतन में जितना द्रव्य रहता है, उसे उस पदार्थ की 'निरपेक्ष घनता' अथवा केवल 'घनता' कहते हैं। यदि पदार्थ की मात्रा 'म' है और आयतन 'अ' तो उसकी घनता 'घ' $= \frac{म}{अ}$

किसी पदार्थ और एक प्रमाप पदार्थ के सम आयतन की मात्राओं के अनुपात को उस पदार्थ की 'सापेक्ष घनता' कहते हैं। यदि सापेक्ष घनता 'स' है और सम आयतन पदार्थ का भार 'भ' और प्रमाप पदार्थ के सम आयतन का भार 'प्र', तो

$$स = \frac{भ}{प्र}$$

यदि प्रमाप पदार्थ जल है तो ऐसी सापेक्ष घनता को 'आपेक्षिक भार' या 'विशिष्ट भार' (specific gravity) कहते हैं। किसी पदार्थ के आपेक्षिक भार से पता लगता है कि वह पदार्थ जल से कितना भारी या हलका है।

चीनी के विश्लेषण में आपेक्षिक भार का निर्धारण बड़े महत्त्व का है। इसका महत्त्व इसी में है कि एक ही सान्द्रण की विभिन्न शर्कराओं के विलयनों की घनता एक ही होती है।

जल की ४° श० पर घनता की तुलना से नौ विभिन्न शर्कराओं के १० प्रतिशत विलयन की २०° श० पर घनता इस प्रकार है—अरबीनोज १'०३७६, ग्लूकोज (द्राक्षशर्करा) १'०३७७, फ्रक्टोज (फलशर्करा) १'०३८५, गैलेक्टोज १'०३७६, सोरबोज १'०३८१, सुक्रोज (इक्षु-शर्करा, चीनी) १'०३८१, मल्टोज १'०३८६, लैक्टोज (दुग्ध-शर्करा) १'०३७६, रैफिनोज १'०३७५। इन सब शर्कराओं की घनता, औसत घनता, १'०३८०, चीनी की घनता के तुल्य ही है। इस कारण घनता के निर्धारण से शर्करा या शर्कराओं के मिश्र की मात्रा का पता लग जाता है।

चीनी के विश्लेषण में आयतन के लिए जो ईकाई उपयुक्त होती है, वह क्यूबिक सेन्टीमीटर (सी० सी०) है। क्यूबिक सेन्टीमीटर कई प्रकार के होते हैं। मूल क्यूबिक सेन्टीमीटर एक ऐसे घन का आयतन है जिसका तट (किनारा) एक सेन्टीमीटर लम्बा होता है। मेट्रिक या वास्तविक सेन्टीमीटर को मिलिलिटर भी कहते हैं। यह ४° श० पर एक ग्राम शुद्ध जल का आयतन है। जल का दबाव ७६० मिलिलिटर रहता है। एक

मिलिलिटर मूल क्यूबिक सेन्टीमीटर के १'००००२७ के बराबर होता है। मोर (Mohr) क्यूबिक सेन्टीमीटर वायु में पीतल के बाट से १७'५° श० तौले पानी का आयतन है। यह १'००२३४ मिलिलिटर के बराबर है। मिलिलिटर ही वैज्ञानिक पुस्तकों में उपयुक्त होता है।

चीनी के विलयन का आपेक्षिक भार—अनेक वैज्ञानिकों ने चीनी के विलयन का आपेक्षिक भार बड़ी शुद्धता से निर्धारित किया है। विभिन्न वैज्ञानिकों के अंकों में थोड़ा अन्तर है, पर इनमें बौलिङ्ग के आँकड़े अधिक यथार्थ समझे जाते हैं। इन आँकड़ों की ब्रीक्स ने जाँच की है और उन्हें अधिक यथार्थ बनाया है। इन दोनों के निर्धारण १७'५° श० पर हुए हैं। ये ही आँकड़े यहाँ दिये जा रहे हैं—

चीनी प्रतिशत भार में	आपेक्षिक भार बौलिंग-ब्रीक्स १७'५° श०
०	१'०००००
५	१'०१९७०
१०	१'०४०१४
१५	१'०६१३३
२०	१'०८३२९
२५	१'१०६०७
३०	१'१२९६७
३५	१'१५४११
४०	१'१७९४३
४५	१'२०५६५
५०	१'२३२७८
५५	१'२६०८६
६०	१'२८९४९
६५	१'३१९८९
७०	१'३५०८८
७५	१'३८२८७

आपेक्षिक भार पर ताप का प्रभाव—ताप की वृद्धि से विलयन का आयतन बढ़ता है। इससे आपेक्षिक भार कम हो जाता है। ताप और आपेक्षिक भार का सम्बन्ध निम्न समीकरण के द्वारा प्रकट होता है :—

$$घ_त = घ_त + [\ घ_{त०} \times गामा\ (त० - त)\ ]$$

जहाँ '$घ_त$' 'त' ताप पर घनता है, $घ_{त०}$ ०° श०' ताप पर घनता और गामा चीनी के 'प' प्रतिशत विलयन के प्रसार का माध्यक (mean) गुणक (coefficient) है।

इसी प्रकार द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा के विलयन के प्रसार के माध्यक गुणक प्राप्त हुए हैं।

आपेक्षिक भार निकालने की रीतियाँ

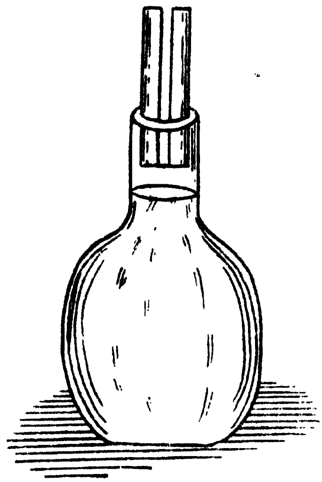
१. **आपेक्षिक भार-बोतल**—इस बोतल को पिक्नोमीटर कहते हैं। यह एक

विशेष प्रकार की बोतल है जिसके अनेक रूप और आकार होते हैं। ऐसी बोतल के एक नमूने का चित्र (चित्र ७२) यहाँ दिया हुआ है।

चीनी के विलयन का आपेक्षिक भार निकालने के लिए २०° श० ताप प्रमाप ताप-मान लिया गया है। इसी ताप पर विलयन का आपेक्षिक भार निकालते हैं। चीनी के विश्लेषण की अन्तरराष्ट्रीय कमीशन ने निश्चय किया है कि २०° श० पर निकाले विलयन के भार की ४° श० पर निकाले जल की घनता से तुलना करनी चाहिए। निम्न समीकरण के द्वारा आपेक्षिक भार निकालते हैं। यदि वास्तविक आपेक्षिक भार 'स' है तो—

$$स = \frac{म}{भ}\left(च - घ\right) + घ$$

जहाँ 'म' विलयन की तौल, 'भ' जल के समान आयतन की तौल 'च' जिस ताप पर घनता निकाला है, उस ताप पर जल की घनता, 'घ' वायु की घनता (०'००१२) है। यदि सब तौल २०° श० पर निकाली गई हैं तो



चित्र ७२—विशिष्टभार बोतल

$$स = \frac{०'९९७०३\ म}{भ} + ०'००१२ \text{ से } २०° \text{ श० पर}$$

विलयन का आपेक्षिक भार निकाला जाता है। दूसरे शब्दों में इस प्रयोग से प्राप्त आपेक्षिक भार को ०'९९७३ से गुना कर उसमें ०'००१२ के जोड़ने से विलयन का वास्तविक आपेक्षिक भार प्राप्त होता है।

छोए के आपेक्षिक भार निकालने में इस विधि में कुछ सुधार की आवश्यकता है; क्योंकि छोए में वायु और अन्य गैसों के बुलबुले रहने से उसका आपेक्षिक भार यथार्थ भार से कम हो जाता है। यह सुधार इस प्रकार किया जाता है—

छोए के आपेक्षिक भार निकालने के विशेष फ्लास्क बने हुए हैं। इस फ्लास्क में प्राय: १०० मिलिलिटर छोआ अँट सकता है। इस फ्लास्क की गरदन का अभ्यन्तर व्यास प्राय: ८ मिलिमीटर का होता है। फ्लास्क को पहले खाली तौलते हैं। तब एक लम्बे स्तम्भवाले कीप से अंकित चिह्न से कुछ नीचे तक छोए से भरते हैं। कीप को सावधानी से निकाल लेते हैं ताकि वह फ्लास्क की गरदन छुए नहीं। अब छोआ रखे फ्लास्क को तौलते हैं। तौलने के बाद सावधानी से अंकित चिह्न तक फ्लास्क को पानी से भर देते हैं। पानी ऐसी सावधानी से डालते हैं कि छोआ पानी से मिल न जाय। अब फ्लास्क को कुछ घन्टे अथवा सारी रात रख देते हैं ताकि वायु के सब बुलबुले निकल जायँ। अब फ्लास्क को २०° श० पर जल-ऊष्मक पर तपा कर अंकित चिह्न तक पानी

भरकर तौलते हैं। इन आंकड़ों से छोए का आपेक्षिक भार इस प्रकार निकालते हैं—

'क'	रिक्त फ्लास्क की तौल	३७·६०७ ग्राम
'ख'	फ्लास्क और छोए की तौल	१६७·१४८ ,,
'ग'	फ्लास्क, छोए और पानी की तौल	१७४·७११ ,,
'ग - ख'	पानी की तौल	७·५६३ ,,
'ख - क'	छोए की तौल	१२६·२४१ ,,

पानी का आयतन = $\frac{७·५६३}{०·९९७१८}$ = ७·५८४ मिलिलिटर

फ्लास्क का आयतन, १००·०६० मिलिलिटर है

अतः छोए का आयतन १००·०६० – ७·५८४
= ९२·४७६ मिलिलिटर

फ्लास्क के पानी का आयतन = १००·०६० × ०·९९७१८
= ९९·७७८ ग्राम

छोए की तौल में पीतल के बाँट के कारण ०·०९३ ग्राम की कमी हो जाती है। अतः छोए की वास्तविक तौल, शून्य में १२६·२४१ + ०·०९३ = १२६·३३४ ग्राम होती है। इस १२६·३३४ को ९२·४७६ से भाग देने से छोए का आपेक्षिक भार

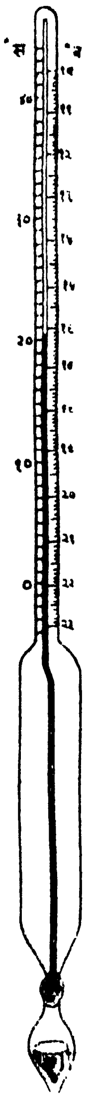
= $\frac{१२६·३३४}{९२·४७६}$ = १·३६८६

कुछ छोआ इतना गाढ़ा होता है कि उससे गैस के बुलबुले नहीं निकलते। ऐसे छोए से गैस के बुलबुले निकालने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

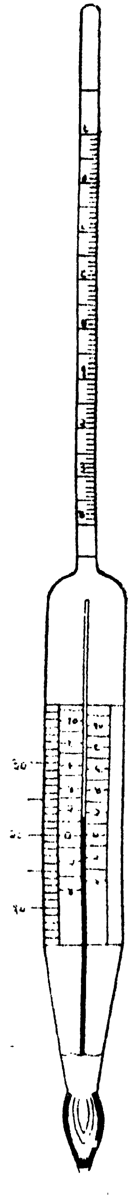
कुछ विशेष प्रकार के तुले भी आपेक्षिक भार के निकालने के लिए उपयुक्त होते हैं। ये तुले ऐसे ही हैं, जो साधारणतया तरलों के आपेक्षिक भार निकालने में उपयुक्त होते हैं। ऐसे तुलों का वर्णन भौतिक विज्ञान की पुस्तकों में मिलेगा।

आपेक्षिक भार निकालने की एक तीसरी विधि तरलमान (hydrometer) का उपयोग है, दो तरलमान के चित्र यहाँ दिये हुए हैं। इन तरलमानों के

स्तम्भ पर आपेक्षिक भार के अंक अंकित होते हैं और उनसे आपेक्षिक भार सीधे प्राप्त हो जाता है। इस रीति से आपेक्षिक भार शीघ्रता से निकल आता है।



चित्र ७३—ब्रिक्स तरलमान



चित्र ७४

यह बहुत यथार्थ हौर्न-ब्रिक्स तरलमान है। डिग्री दशांश तक पढ़ी जा सकती और शतांश तक अनुमान हो सकती है। इसमें दो स्केल होते हैं। एक भारी द्रव और एक हल्के द्रव के लिए।

चीनी प्रतिशत	आपेक्षिक भार	तरलमान का डूबा भाग
०	१'०००००	२०'०००
१०'००	१'०४०१४	१६'२२८
२०'००	१'०८३२६	१८'४६२
३०'००	१'१२६६७	१७'७०४
४०'००	१'१७६४३	१६'६५७
५०'००	१'२३२७८	१६'२२४
६०'००	१'२८६८६	१५'५०५

दूसरे प्रकार के तरलमान भी उपयुक्त होते हैं। इनमें ब्रिक्स के तरलमान में ताप के ज्ञान के लिए तापमापी लगी रहती है। एक दूसरा हौर्न-ब्रिक्स (Horn-Brix) तरलमान भी होता है। इन दोनों तरलमानों के चित्र यहाँ दिये हुए हैं।

आपेक्षिक भार निकालने के लिए बौमे का तरलमान भी उपयुक्त होता है। साधारणतया बौमे का तरलमान ही चीनी के कारखाने में उपयुक्त होता है। इसका शून्य विन्दु अस्रुत जल से और १५° चिह्न नमक के १५ प्रतिशत विलयन से निकाला जाता है। बीच के स्थानों को १५ बराबर-बराबर भागों में विभक्त करते हैं। पहले के तरलमान में जल और नमक के विलयन का ताप ठीक ज्ञात नहीं था। इससे जो अंक प्राप्त होते थे उनमें विभिन्नता होती थी; पर इसका निराकरण अब कर दिया गया है। इससे अब विभिन्न अङ्क नहीं प्राप्त होते। किसी तरल का आपेक्षिक भार 'स' बौमे के अंक 'ब' से इस प्रकार निकाला जा सकता है—

$$स = \frac{१४६'७८}{१४६'७८ - ब}$$

इसी की सहायता से गणना कर बौमे डिगरी के अंक प्राप्त होते हैं। आपेक्षिक भार को बौमे डिगरी में परिणत करने में जो स्थिरांक उपयुक्त होता है, उसे 'मापांक' (मोड्यूलस) कहते हैं। इसका मूल्य आज १४६'७८ है; पर अब इसके लिए १४५ अंक ही उपयुक्त होता है।

$$\text{बौमे डिगरी} = १४५ - \frac{१४५}{\text{२०° श० पर वास्तविक आपेक्षिक भार}}$$

चीनी की प्रतिशत मात्रा, २०° श० पर आपेक्षिक भार और बौमे डिगरी में निम्नलिखित सम्बन्ध है :—

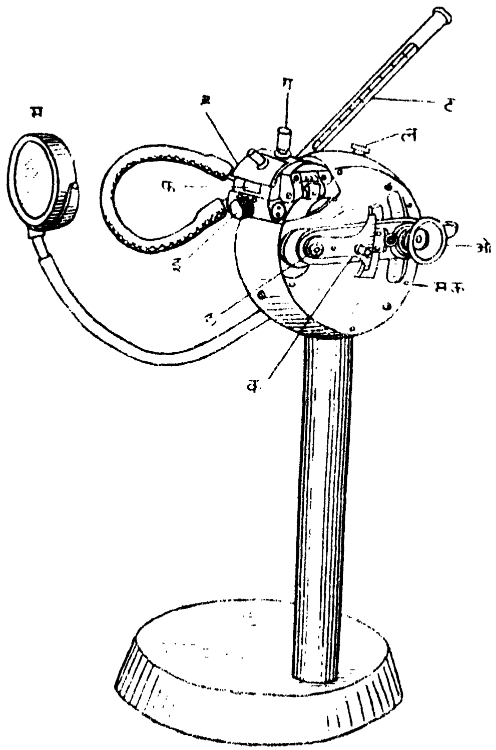
चीनी प्रतिशत	आपेक्षिक भार	बौमे डिगरी मापांक १४५, २०° श०	चीनी प्रतिशत	आपेक्षिक भार	बौमे डिगरी मापांक १४५, २०° श०
०·०	१·०००००	०·००	२८·०	१·११९६३	१५·४८
१·०	१·००३९०	०·५६	२९·०	१·१२४३७	१६·०२
२·०	१·००७८०	१·१२	३०·०	१·१२९१३	१६·५७
३·०	१·०११७३	१·६८	३१·०	१·१३३९४	१७·११
४·०	१·०१५६९	२·२४	३२·०	१·१३८७७	१७·६५
५·०	१·०१९६८	२·७९	३३·०	१·१४३६५	१८·१९
६·०	१·०२३६९	३·३५	३४·०	१·१४८५५	१८·७३
७·०	१·०२७७३	३·९१	३५·०	१·१५३५०	१९·२८
८·०	१·०३१८०	४·४६	३६·०	१·१५८४७	१९·८१
९·०	१·०३५९०	५·०२	३७·०	१·१६३४९	२०·३५
१०·०	१·०४००३	५·५७	३८·०	१·१६८५३	२०·८९
११·०	१·०४४१८	६·१३	३९·०	१·१७३६२	२१·४३
१२·०	१·०४८३७	६·६८	४०·०	१·१७८७४	२१·९७
१३·०	१·०५२५९	७·२४	४१·०	१·१८३९०	२२·५०
१४·०	१·०५६८३	७·७९	४२·०	१·१८९१०	२३·०४
१५·०	१·०६१११	८·३४	४३·०	१·१९४३४	२३·५७
१६·०	१·०६५४२	८·८९	४४·०	१·१९९६१	२४·१०
१७·०	१·०६९७६	९·४५	४५·०	१·२०४९१	२४·६३
१८·०	१·०७४१३	१०·००	४६·०	१·२१०२६	२५·१७
१९·०	१·०७८५४	१०·५५	४७·०	१·२१५६४	२५·७०
२०·०	१·०८२९७	११·१०	४८·०	१·२२१०६	२६·२३
२१·०	१·०८७४४	११·६५	४९·०	१·२२६५२	२६·७५
२२·०	१·०९१९४	१२·२०	५०·०	१·२३२१३	२७·२९
२३·०	१·०९६४७	१२·७४	५५·०	१·२६००७	२९·९०
२४·०	१·१०१०४	१३·२८	६०·०	१·२८९०८	३२·४९
२५·०	१·१०५६४	१३·८४	६५·०	१·३१९०५	३५·०४
२६·०	१·११०२७	१४·३९	७०·०	१·३४९९७	३७·५६
२७·०	१·११४९३	१४·९३			

इकतीसवाँ प्रकरण

भुजायमापक (रिफ़्रैक्टोमीटर)

चीनी के विश्लेषण में भुजायमापक नामक उपकरण का उपयोग होता है। यदि अनेक विलयनों में चीनी की मात्रा एक ही हो तो ऐसे विलयनों की भुजायदशना एक ही होती है।

जब प्रकाश की किरणें एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रविष्ट करती हैं तब देखा जाता है कि दूसरे माध्यम में प्रविष्ट करने पर किरणें टेढ़ी हो जाती हैं। इस वृत्त को



चित्र ७५—ज़ाइस शर्करा भुजायमापक (आब्बे भुजायमापक का सुधरा रूप)

भुजायन (refraction) कहते हैं। सब पारदर्शी तरल और ठोस पदार्थों के भुजायन के एक सामान्य नियम है जिसे भुजायन का नियम कहते हैं।

जब एक माध्यम '$म_1$' से दूसरे माध्यम '$म_2$' में किरणें प्रविष्ट करती हैं तो यदि

किरणों के प्रविष्ट होने के स्थान पर लम्ब खड़ा किया जाय तो लम्ब और प्रकाश-किरण के बीच एक कोण बनता है। इसी प्रकार दूसरे माध्यम की किरण और लम्ब के बीच भी कोण बनता है। इन दोनों कोणों की ज्या (sine) के अनुपात को भुजायदर्शना (refractive index) कहते हैं। इस भुजायदर्शना का उन दोनों माध्यम में प्रकाश के वेग से घना संबंध है।

विलयनों की भुजायदर्शना अनेक रीतियों से निकाली जा सकती है। एक सरल रीति भुजायमापक का उपयोग है। इसके लिए जो उपकरण साधारणतया उपयुक्त होता है, उसे "आब्बे भुजायमापक" कहते हैं। इस भुजायमापक में फ्लिण्ट काँच के दो त्रिपार्श्व होते हैं जिनकी भुजायदर्शना १'७५ होती है। इन दोनों काँचों को धातु के आधार पर मढ़ा होता है। एक त्रिपार्श्व पर जो स्थायी रूप से जड़ा हुआ होता है, उसपर उस तरल की बूंदें डालते हैं जिसकी भुजायदर्शना निकालनी होती है। दूसरे त्रिपार्श्व को जिसका अभ्यन्तरतल घिसकर बनाया होता है, धीरे-धीरे लाकर संधर से लटका देते हैं। एक दर्पण द्वारा प्रकाश को लाकर निचले त्रिपार्श्व पर डालते हैं।

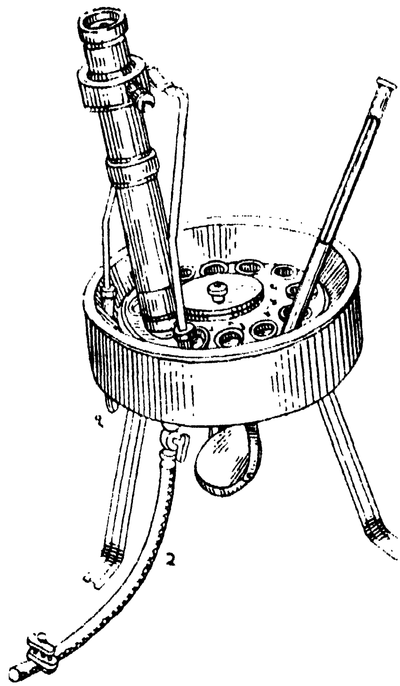
दर्पण से आई प्रकाश-किरण निचले त्रिपार्श्व से निकलकर विलयन द्वारा भुजयित हो ऊपर के त्रिपार्श्व द्वारा समानान्तर निकलकर दूरदर्शक में आती है जहाँ आँखों से देखी जाती है। भुजायमापक के दूरदर्शक के साथ एक विशालन लेंस (वीच) लगा रहता है जिसे एक पेंच से घुमा सकते हैं। अब क्षेत्र के असित और दीप्त भागों के बीच लेंस को घुमा-फिरा कर ऐसी स्थिति पर रखते हैं जहाँ से भुजायदर्शना को अनुमाप (scale) पर लेंस के द्वारा सीधे पढ़ सकते हैं। इस उपकरण में १'७५ से कम भुजायदर्शनावाले पदार्थों की ही भुजाय-दर्शना निकाल सकते हैं।

आब्बे भुजायमापक में एक समतोलक (Compensator) होता है। दोनों त्रिपार्श्व के द्वारा श्वेत प्रकाश जो अपकीर्ण होता है, उस अपकिरण को समतोलक सुधारता है। समतोलक के बिना क्षेत्र के असित और दीप्त भागों में ठीक-ठीक विभेद नहीं होता। भिन्न-भिन्न रंगों की किरणों से भुजायन भिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसे भुजायमापक बने हैं जिनमें भुजायदर्शना दशमलव के चार स्थानों तक पढ़ी जा सकती है। साधारणतया चीनी के विलयनों की भुजायदर्शना १'३३ से १'५४ के बीच होती है। चीनी की भुजाय-दर्शना निकालने के लिए जो भुजायमापक उपयुक्त होते हैं, वे ज़ाइस शर्करा भुजायमापक है (चित्र ७५)। आब्बे भुजायमापक का यह सुधरा हुआ रूप है। इसका सुधरा रूप चित्र ७६ है, जिससे अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है।

भुजायमापक के प्रभासन के लिए दिन-प्रकाश पर्याप्त है। सूर्य का प्रकाश सीधा उपयुक्त नहीं होता। चूँकि दिन का प्रकाश एक-सा नहीं होता, इसकी तीव्रता घटती-बढ़ती रहती है और कभी-कभी इतनी दुर्बल हो जाती है और विलयन का रंग इतना गाढ़ा हो सकता है कि कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता पड़े। इस कारण बिजली का उत्ताप दीप अथवा वेल्सवाक (Welsbach) का गैसदाहक उपयुक्त होता है। उपकरण के सामने कूट का एक टुकड़ा रख दिया जाता है जो निरीक्षक की आँखों और ऊपर के त्रिपार्श्व में प्रकाश जाने से रोकता है। दृष्टिक्षेत्र को प्रकाश के विक्षोभक प्रभाव से रक्षा कर उपकरण की ग्राह्यता को बढ़ाता है। कुछ उपकरणों में रंगमान और सूक्ष्मदर्शक दीप भी

लगे रहते है। आजकल प्रबल प्रचंडता के बिजली के सोडियमवाष्प दीप भी उपयुक्त होते है। ऐसी दशा में रुमतोलक की आवश्यकता नहीं होती।

भुजायदर्शना ताप की वृद्धि से बढ़ती है। इसके लिए आवश्यक है कि किसी स्थायी ताप पर ही भुजायदर्शना निर्धारित की जाय। स्थायीताप के लिए उपकरण



चित्र ७६—ज़ाइस निमज्जन भुजायमापक (Zeiss Immersion Refractomer)

में उस ताप का जल प्रवाहित करते हैं और उसमें लगे तापमापी से जल के ताप का ज्ञान प्राप्त करते हैं। साधारणतया कमरे के ताप पर ही जल का ताप रखते हैं, जल के ताप को स्थायी रखने अथवा वायु से ऊँचा किसी ताप पर जल के रखने के लिए बिजली से गरम करने का प्रबंध करते हैं। ऐसे उपकरणों को "जाइस स्पाइरल हीटर" (जाइस सर्पिल तापक) और 'जल दबाव नियामक" कहते हैं जिनका उपयोग होता है। इनके अतिरिक्त और भी पानी गरम करने के अनेक साधन उपयुक्त होते हैं।

भुजायदर्शना और शर्कराओं के विलयनों के बीच क्या सम्बन्ध है, इसकी सारणी तैयार हुई है।

विभिन्न सान्द्रण के विलयनों और भुजायदर्शना का सम्बन्ध।

२०°श पर भुजायदर्शना	इक्षुशर्करा प्रतिशत	द्राक्षशकरा प्रतिशत	दुग्धशक
१·३३४३	१·००	१·००	१·००
१·३३५७	२·००	२·००	२·००
१·३४०२	५·००	५·००	५·११

२०°श पर भुजायदर्शना	इक्षुशर्करा प्रतिशत	द्राक्षशर्करा प्रतिशत	दुग्धशर्करा प्रतिशत
१.३४७७	१०.००	१०.०७	१०.१३
१.३५५५	१५.००	१५.०६	१५.१३
१.३६३७	२०.००	२०.०६	—
१.३७२२	२५.००	२५.००	—
१.३८१०	३०.००	३०.०२	—
१.३९०२	३५.००	३५.०३	—
१.३९९७	४०.००	४०.०५	—
१.४०९६	४५.००	४५.०५	—
१.४२००	५०.००	५०.०३	—
१.४३०६	५५.००	५५.०२	—
१.४४१९	६०.००	६०.०१	—
१.४५३४	६५.००	६५.०१	—
१.४६५३	७०.००	७०.००	—
१.४७७६	७५.००	७५.००	—
१.४९०३	८०.००	८०.००	—
१.५०३४	८५.००	८५.००	—
१.५१७०	९०.००	९०.००	

शर्कराओं के विलयनों के भुजायदर्शना पर ताप का जो प्रभाव पड़ता है, वह वैसा ही है जैसा शर्कराओं के विलयनों पर आपेक्षिक भार का प्रभाव पड़ता है। ब्रीक्स की सारणी दोनों के लिए एक-सी है।

ताप-संशोधन—ऊपर जो सारणी दी हुई है, उसका ताप २०° श० है। दूसरे ताप पर भी भुजाय-दर्शना निकाली जा सकती है; पर ऐसे प्राप्त परिणामों में संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। यह संशोधन निम्नलिखित सारणी से प्राप्त होता है—

अन्तर-राष्ट्रीय ताप-संशोधन
२०° श० भुजायमान के लिए

	प्रतिशत चीनी (इक्षु-शर्करा)														
	०	५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०	५५	६०	६५	७०
	प्रतिशत इक्षु-शर्करा से घटाना														
१०	०·५०	०·५४	०·५८	०·६१	०·६४	०·६६	०·६८	०·७०	०·७२	०·७३	०·७४	०·७५	०·७६	०·७८	०·७९
११	०·४६	०·४९	०·५३	०·५५	०·५८	०·६०	०·६२	०·६४	०·६५	०·६६	०·६७	०·६८	०·६९	०·७०	०·७१
१२	०·४२	०·४५	०·४८	०·५०	०·५२	०·५४	०·५६	०·५७	०·५८	०·५९	०·६०	०·६१	०·६१	०·६३	०·६३
१३	०·३७	०·४०	०·४२	०·४४	०·४६	०·४८	०·४९	०·५०	०·५१	०·५२	०·५३	०·५४	०·५४	०·५५	०·५५
१४	०·३३	०·३५	०·३७	०·३९	०·४०	०·४१	०·४२	०·४३	०·४४	०·४५	०·४५	०·४६	०·४६	०·४७	०·४८
१५	०·२७	०·२८	०·३१	०·३२	०·३४	०·३४	०·३५	०·३६	०·३७	०·३७	०·३८	०·३९	०·३९	०·४०	०·४०
१६	०·२२	०·२४	०·२५	०·२६	०·२७	०·२८	०·२८	०·२९	०·३०	०·३०	०·३०	०·३१	०·३१	०·३२	०·३२
१७	०·१७	०·१८	०·१९	०·२०	०·२१	०·२१	०·२१	०·२२	०·२२	०·२३	०·२३	०·२३	०·२३	०·२४	०·२४
१८	०·१२	०·१३	०·१३	०·१४	०·१४	०·१४	०·१४	०·१५	०·१५	०·१५	०·१५	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६
१९	०·०६	०·०६	०·०६	०·०७	०·०७	०·०७	०·०७	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८

प्रतिशत इक्षु-शर्करा में जोड़ना

२१	०·०६	०·०७	०·०७	०·०७	०·०७	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८
२२	०·१३	०·१३	०·१४	०·१४	०·१५	०·१५	०·१५	०·१५	०·१५	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६
२३	०·१९	०·२०	०·२१	०·२२	०·२२	०·२३	०·२३	०·२३	०·२३	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४
२४	०·२६	०·२७	०·२८	०·२९	०·३०	०·३०	०·३०	०·३१	०·३१	०·३१	०·३१	०·३२	०·३२	०·३२
२५	०·३३	०·३५	०·३६	०·३७	०·३८	०·३८	०·३९	०·४०	०·४०	०·४०	०·४०	०·४०	०·४०	०·४०
२६	०·४०	०·४२	०·४३	०·४४	०·४५	०·४६	०·४७	०·४८	०·४८	०·४८	०·४८	०·४९	०·४९	०·४९
२७	०·४८	०·५०	०·५२	०·५३	०·५४	०·५५	०·५५	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६
२८	०·५६	०·५७	०·६०	०·६१	०·६२	०·६३	०·६३	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४
२९	०·६४	०·६६	०·६८	०·६९	०·७१	०·७२	०·७२	०·७३	०·७३	०·७३	०·७३	०·७२	०·७२	०·७२
३०	०·७२	०·७४	०·७७	०·७८	०·७९	०·८०	०·८१	०·८१	०·८१	०·८१	०·८०	०·८१	०·८१	०·८७

एक समय उष्ण देशों के लिए २८° श० पर उपयोग होनेवाले भुजायमान के लिए सारणी बनी थी। भारत का ताप प्राय: २८° श० के लगभग रहता है। इस देश के लिए यह सारणी अधिक उपयोगी है। अत: वह यहाँ दी जा रही है।

यदि उष्णदेशीय भुजायमान में २८° श० पर भुजायदर्शना निकाली गई है तो निम्नलिखित सारणी से संशोधन अंक प्राप्त होते हैं।

ताप °श	इक्षु-शर्करा प्रतिशत														
	०	५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०	५५	६०	६५	७०
	प्रतिशत इक्षु शर्करा से घटाना														
२०	०·५७	०·५६	०·६०	०·६१	०·६२	०·६३	०·६३	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४	०·६४	०·६५	०·६५	०·६५
२१	०·५१	०·५२	०·५३	०·५३	०·५५	०·५५	०·५५	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६	०·५६	०·५७	०·५७	०·५७
२२	०·४४	०·४६	०·४६	०·४६	०·४७	०·४८	०·४८	०·४९	०·४९	०·४८	०·४८	०·४८	०·४९	०·४९	०·४९
२३	०·३७	०·३८	०·३९	०·३९	०·४०	०·४०	०·४०	०·४१	०·४१	०·४१	०·४०	०·४०	०·४०	०·४१	०·४१
२४	०·३०	०·३१	०·३२	०·३२	०·३२	०·३२	०·३२	०·३३	०·३३	०·३३	०·३२	०·३२	०·३२	०·३३	०·३३
२५	०·२३	०·२३	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४	०·२५	०·२५	०·२५	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४	०·२४
२६	०·१६	०·१६	०·१६	०·१३	०·१६	०·१६	०·१६	०·१७	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६	०·१६
२७	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८

प्रतिशत इक्षु शर्करा में जोड़ना

२९	·०९	०·०९	०·०९	०·०९	०·०९	०·०९	०·०९	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८	०·०८
३०	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७	०·१७
३१	०·२६	०·२६	०·२६	०·२६	०·२६	०·२६	०·२६	०·२६	०·२५	०·२५	०·२५	०·२५	०·२५	०·२५	०·२५
३२	०·३५	०·३५	०·३५	०·३५	०·३५	०·३५	०·३४	०·३४	०·३४	०·३४	०·३४	०·३२	०·३३	०·३३	०·३३
३३	०·४४	०·४४	०·४४	०·४४	०·४४	०·४३	०·४३	०·४३	०·४३	०·४२	०·४२	०·४२	०·४२	०·४२	०·४२
३४	०·५४	०·५४	०·५३	०·५३	०·५३	०·५२	०·५२	०·५२	०·५२	०·५१	०·५०	०·५१	०·५०	०·५०	०·५०
३५	०·६३	०·६३	०·६३	०·६२	०·६२	०·६२	०·६१	०·६१	०·६१	०·६१	०·६०	०·६०	०·५९	०·५९	०·५९
३६	०·७३	०·७३	०·७३	०·७२	०·७२	०·७२	०·७१	०·७०	०·६९	०·६९	०·६९	०·६८	०·६७	०·६७	०·६०

अन्य शर्कराओं की भुजायदर्शना—अन्य शर्कराओं की भुजायदर्शना इक्षु शर्करा की भुजायदर्शना से भिन्न नहीं होती, यद्यपि विलयन की सान्द्रता की वृद्धि से भिन्नता क्रमश: अत्यल्प मात्रा में बढ़ती जाती है। अधिक भिन्नता फल-शर्करा की भुजायदर्शना में होती है। फलशर्करा की भुजायदर्शना की सारणी यहाँ दी जाती है।

फल शर्करा की भुजायदर्शना

तिशत	भुजायदर्शना २०° और 'डी' प्रकाश	भुजायदर्शना २५° और 'डी' प्रकाश
०	१.३३३००	१.३३२५२
१	३४४२	३३६३
२	३५८५	३५३५
३	३७२६	३६७८
४	३८७४	३८२२
५	४०२०	३९६७
६	४१६७	४११३
७	४३१५	४२६०
८	४४६४	४४०८
९	४६१४	४५५७
१०	४७६५	४७०७
११	४९१७	४८५७
१२	५०७०	५००९
१३	५२२४	५१६२
१४	५३७९	५३१६
१५	५५३४	५४७०
१६	५६९१	५६२६
१७	५८४९	५७८३
१८	६००८	५९४२
१९	६१६९	६१०२
२०	६३३२	६२६२
२१	६४९६	६४२५
२२	६६५९	६५८८
२३	६८२७	६७५३
२४	६९९६	६९२१
२५	७१६६	७०८८
२६	७३३६	७२५८
२७	७५०६	७४२९
२८	७६८०	७५९८
२९	७८५४	७७७१

प्रतिशत	भुजायदर्शना २०° और 'डी' प्रकाश	भुजायदर्शना २५° और 'डी' प्रकाश
३०	१.३८०३०	१.३७६४५
३१	८२०७	८१२१
३२	८३८५	८२९७
३३	८५६४	८४७६
३४	८७४५	८६५५
३५	८९२७	८८३६
३६	९१११	९०१८
३७	९२९५	९२०१
३८	९४८१	९३८६
३९	९६६९	९५७३
४०	९८५८	९७६०
४१	१.४००४८	९९४९
४२	०२३९	१.४०१४०
४३	०४३२	०३३१
४४	०६२५	०५२४
४५	०८२१	०७१८
४६	१०१८	०९१४
४७	१२१६	११११
४८	१४१५	१३०९
४९	१६१६	१५ ९
५०	१८१८	१७१०

भुजायमान से विलयन के समस्त ठोस पदार्थ का भी ज्ञान होता है। यह ज्ञान अधिक यथार्थता से उसी दशा में होता है, जब सीरा अथवा छोआ बहुत अशुद्ध नहीं है।

चुकन्दर के छोए से निम्न आँकड़े प्राप्त हुए हैं।

संख्या	भुजायमान से समस्त ठोस	सुखाने से समस्त ठोस
१	८०·६	८१·६०
२	८०·२	८१·८०
३	८१·०	८१·२४
४	७९·५	८१·४८
५	७७·३	७८·१६
६	७४·९	७६·२०
७	७४·६	७६·१४
८	८२·०	८३·१६
९	७७·८	७९·३६

संख्या	भुजायमान से समस्त ठोस	सुखाने से समस्त ठोस
१०	७८'६	७८'७४
११	७६'१	७६'६२
१२	७६'३	७७'३२

इन आँकड़ों से पता लगता है कि भुजायमान से प्राप्त आँकड़े अधिकांश दशाओं में नियमित रूप से थोड़े कम हैं। ऐसे फलों के कुछ आँकड़े यहाँ दिये जाते हैं।

संख्या	भुजायमान से प्राप्त ठोस	सुखाने से प्राप्त ठोस
१	८१'०	७७'७६
२	७८'०	७६'०८
३	७६'४	७८'३६
४	७६'०	७६'१४
५	७६'२	७३'४७
६	७८'२	७६'४१
७	७१'२	७६'४४
शुद्ध सीरा	७७'०	७७'३६
शुद्ध छोआ	७६'८	७६'८७
शुद्ध छोआ	८०'०	७६'३६

एक दूसरे प्रकार का भुजायमान भी चीनी के विलयन के लिए उपयुक्त होता है। इसे 'जायस उत्प्लावन भुजायमान' (Zeiss Immersion Refractometer) कहते हैं। इस भुजायमान के सिद्धान्त वही हैं जो 'आब्बे भुजायमान' के हैं। इसकी सारणी निम्नलिखित है—

२०° श० पर 'जाइस इमर्शन रिफ्रेक्टोमीटर' से प्राप्त
चीनी के विलयन में चीनी के प्रतिशत आँकड़े

अनुमाप वाचन	भुजायमान २०°	चीनी प्रतिशत
१४'४७	१'३३२६६	०
१५	३३२०	०'१५
१६	३३५८	०'४१
१७	३३६७	०'६८
१८	३४३५	०'६४
१६	३४३५	१'२१
२०	३५१३	१'४८
२१	३५५१	१'७४
२२	३५६०	२'०१
२३	३६२८	२'२७

अनुमाप वाचन	भुजायमान २०° श०	चीनी प्रतिशत
२४	१·३३६६७	२·५४
२५	३७ ५	२ ८०
२६	३७४३	३·०७
२७	३७८१	३·३३
२८	३८२०	३ ५६
२९	३८५८	३·८५
३०	३८९६	४·११
३१	३९३४	४·३६
३२	३९७२	४·६२
३३	४०१०	४·८८
३४	४०४८	५·१४
३५	४०८६	५·४०
३६	४१२४	५·६५
३७	४१६२	५·९१
३८	४१९९	६·१६
३९	४२३७	६ ४१
४०	४२७५	६·६६
४१	४३ : ३	६·९१
४२	४३५०	७·१६
४३	४३८८	७·४१
४४	४४ २६	७·६३
४५	४४६३	७·९१
४६	४५००	८·१५
४७	४५३७	८·३९
४८	४५७५	८·६४
४९	४६१२	८·८९
५०	४६५०	९·१३
५१	४६८७	९·३८
५२	४७२४	९·६२
५३	४७६१	९·८६
५४	४७९८	१० १०
५५	४८३६	१०·३४
५६	४८७३	१०·५८
५७	४९१०	१०·८२
५८	४९४७	११·०६
५९	४९८४	११·३०

अनुमाप वाचन	भुजायमान २०° श०	चीनी प्रतिशतै
६०	१.३५०२१	११.५४
६१	५०५८	११.७८
६२	५०९५	१२.०१
६३	५१३२	१२.२५
६४	५१६९	१२.४८
६५	५२०५	१२.७२
६६	५२४२	१२.९५
६७	५२७९	१३.१८
६८	५३१६	१३.४१
६९	५३५२	१३.६४
७०	५३८८	१३.८७
७१	५४२५	१४.१०
७२	५४६१	१४.३२
७३	५४९७	१४.५६
७४	५५३३	१४.७९
७५	५५६९	१५.०१
७६	५६०६	१५.२४
७७	५६४२	१५.४७
७८	५६७८	१५.६९
७९	५७१४	१५.९१
८०	५७५०	१६.१४
८१	५७८६	१६.३६
८२	५८२२	१६.५८
८३	५८५८	१६.८१
८४	५८९४	१७.०३
८५	५९३०	१७.२५
८६	५९६६	१७.४७
८७	६००२	१७.६९
८८	६०३८	१७.९१
८९	६०७४	१८.१२
९०	६१०९	१८.३४
९१	६१४५	१८.५६
९२	६१८१	१८.७८
९३	६२१७	१९.००
९४	६२५२	१९.२१
९५	६२८७	१९.४२

अनुमाप वाचन	भुजायमान २०° श०	चीनी प्रतिशत
६६	१·३६३२३	१६·६३
६७	६३५६	१६·८५
६८	६३६४	२०·०६
६६	६४२६	२०·२७
१००	६४६४	२०·४८
१०१	६५००	२०·६६
१०२	६५३५	२०·६०
१०३	६५७०	२१·२१
१०४	६६०५	२१·३२
१०५	६६४०	२१·५३

'जाइस' ने शर्कराओं की भुजायदर्शना निकालने का एक और विशेष प्रकार का भुजायमापक निकाला है। यह केवल शर्कराओं के लिए ही नहीं, बरन् तेल इत्यादि अन्य पदार्थों के लिए भी, जिनकी भुजायदर्शना १·५४ से ज्यादा नहीं है, उपयुक्त हो सकता है। इस यंत्र के त्रिपार्श्व ऐसे काँच के बने होते हैं जो जल्दी टूटते नहीं। वे हलके होते हैं और उनकी भुजायदर्शना कम होती है।

यह उपकरण बेलनाकार होता है। यह एक सीमा आधार पर चढ़ा होता है, जिसमें दो त्रिपार्श्व मढ़े होते हैं। ये ऊपर की प्रधि (rim) की बाईं ओर होते हैं। ऊपर का त्रिपार्श्व एक कील पर घुम सकता है। नीचे के त्रिपार्श्व के क्षैतिजतल पर चीनी के विलयन की कुछ बूँदे फैला देते हैं। ऊपर के त्रिपार्श्व को उसके अपने स्थान पर 'संघर' से लटका देते हैं। बिजली दीप से चंड प्रकाश दर्पण द्वारा एक परावृतकर-आयत-विवर से प्रविष्ट कराते हैं। दूरदर्शक से वाचनांक प्राप्त करते हैं। दूरदर्शक, जो विवर्तनी (pivot) से लगा होता है, को ऊपर-नीचे घुमाकर यथार्थ अंक प्राप्त करते हैं। इस भुजायमान से वाचन प्राप्त करना 'आब्बे भुजायमापक' से सुविधाजनक होता है।

इस भुजायमापक में दो अनुमाप होते हैं। बाएँ अनुमाप से भुजायदर्शना का १·३३ से १·५४ तक का दशमलव के तीसरे स्थान तक वाचन करते हैं। आन्तर गणना से (interpolation) चतुर्थ स्थान के अंक प्राप्त करते हैं। दूसरे दाएँ अनुमाप से चीनी की प्रतिशतता का अंक प्राप्त करते हैं। इस अनुमाप में ०° से ५० प्रतिशत तक प्रत्येक प्रतिशत पाँच भागों में विभक्त रहता है और ५० से ६५ प्रतिशत तक प्रत्येक प्रतिशत दस भागों में विभक्त होता है। यह भुजायमान २०° श० और २८° श० पर भुजायदर्शना निकालने के लिए बना होता है। यदि अन्य ताप पर भुजायदर्शना निकाली जाय तो ताप के लिए संशोधन करना पड़ता है। यह संशोधन ऊपर दिया हुआ है।

'बेलिंगहम' और 'स्टानले' ने एक ऐसा भुजायमान प्रस्तुत किया है जिससे भुजायन बड़ी शिघ्रता से कमरे के ताप पर निकाला जा सकता है; पर परिणाम बहुत यथार्थ नहीं होता। जहाँ अधिक यथार्थता की आवश्यकता नहीं, वहाँ यह सरलता से उपयुक्त हो सकता है। इसे प्रक्षेप (projection) भुजायमान कहते हैं। इसमें एक ही त्रिपार्श्व होता

है। त्रिपार्श्व उपकरण में स्थित दीप के परावृत्त प्रकाश से प्रभासित होता है। स्थान-स्थान पर नग्न आँखों से अनुमाप का वाचन होता है। इसमें दो ओर अनुमाप होते हैं। एक ओर के अनुमाप में ३० से ६० प्रतिशत चीनी पढ़ी जाती है। एक प्रतिशत का दसवाँ अंश पढ़ा जा सकता है। दूसरी ओर के अनुमाप में भुजायदर्शना १·३८० से १·४५० रहती है जिनमें प्रत्येक अंश में ०·००२, और १·४५० से १·५१७ में प्रत्येक अंश में ०·००१ पढ़ी जा सकती है। इन दोनों की सीमारेखा आक्षुरित सिर (milled head) पर रहती है। इस आक्षुरित सिर की दूसरी ओर एक दूसरा आक्षुरित सिर रहता है जिसकी सहायता से प्रभासित प्रकाश में एक पीत निस्यन्दक अथवा प्रसृति (diffused) हरित रखा जा सकता है जिससे सीमा-रेखा अधिक तीव्र हो जाती है।

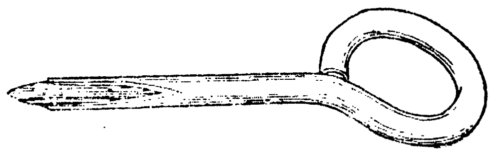
इनके अतिरिक्त कुछ हस्त भुजायमान भी बने हैं जिनसे भुजायदर्शना बड़ी जल्दी निकाली जा सकती है और उनसे समस्त ठोस पदार्थों की मात्रा का ज्ञान शीघ्रता में हो जाता है। ऐसे भुजायमान से ईखों के खेतों में प्रयोग हो जाते हैं। ऐसे भुजायमान एक सीधी नली के बने होते हैं जिसके एक छोर पर एक त्रिपार्श्व बद्ध रहता है और दूसरे छोर पर दूरदर्शक रहता है। इसमें समतोलक की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि अनुभव से पता लगा है कि तुरन्त के निकाले रस में रंग का झल्लर (झालर) नहीं होता। पर वाचन के समय हरे रंग का निःस्यन्दक नेत्र-दर्शक के ऊपर रख देने से क्षेत्र के कम छायावाले और अधिक छायावाले भागों का विभेद सरलता से हो जाता है। शून्य से १० प्रतिशत तक पूर्ण प्रतिशत अंक में और १० से ३० प्रतिशत आधे प्रतिशत अंक में पढ़ा जा सकता है। इसका विस्तार ऐसा होता है कि हलके रसों के लिए यह प्रधानतया उपयुक्त हो सके।

इस उपकरण से भुजायदर्शना निकालने में ढक्कन को खोलकर त्रिपार्श्व के तल पर विलयन रख देते हैं और फिर ढक्कन से ढँक देते हैं। अब उपकरण को आकाश अथवा दूसरे किसी प्रकाश की ओर करके दूरदर्शक को अनुमाप पर नाभीयन (focus) करते हैं और उससे चीनी की प्रतिशतता पढ़ते हैं, जहाँ सीमारेखा अनुमाप का अन्तावरोधन (intecept) करती है। अनुमाप के शून्य विन्दु को शुद्ध जल से उस ताप पर जाँच करते हैं जिस ताप के लिए उपकरण बना है। यदि संशोधन अल्प है तो प्रत्येक वाचन में उसे शुद्ध कर लेते हैं, नहीं तो पेच को घुमाकर उसे ठीक कर लेते हैं।

बेलिंगहम और स्टानली ने एक छोटा हस्त भुजायमान बनाया है, जो इतना छोटा है कि सरलता से जेब में रखा जा सकता है। इस भुजायमान को बौश और लम्ब का 'हैंड रिफ्राक्टोमीटर' कहते हैं। इसके अनुमाप पर आधा प्रतिशत चीनी का वाचन पढ़ा जा सकता है। इसके दो नमूने प्राप्य हैं। एक में शून्य से ६० प्रतिशत तक और दूसरे में ४० से ८५ प्रतिशत तक पढ़ा जा सकता है। यह उपकरण २०° श० पर स्वङ्कित होता है। इसमें थर्मामीटर भी लगा रहता है जिसकी सहायता से क्या जोड़ना या घटाना चाहिए, यह मालूम हो सकता है।

इन उपकरणों से भुजायन निकालने के लिए ईख के रस की आवश्यकता होती है। इसके लिए अनेक साधन उपयुक्त होते हैं। इनमें 'गेग्बोल की चाकू' उपयुक्त होती है। इस चाकू का चित्र यहाँ दिया है। इस चाकू को ईख के स्तम्भ में डालकर रस को

निकालकर उसकी परीक्षा करते हैं। दूसरे प्रकार के छेद करनेवाले छिद्रक (borer) भी उपयुक्त हो सकते हैं पर छिद्रकों से ईख को क्षति पहुँचती है। उनकी वृद्धि कुछ समय के लिए रुक जाती है। इन छिद्रकों से सूई का उपयोग अच्छा होता है। सूई के



चित्र ७७—ईख के रस से नमूना निकालने की गेम्बोल चाकू

उपयोग से पौधे को कोई क्षति नहीं पहुँचती। सूई का उपयोग पहले-पहल भारत में ही हुआ।

पैन रिफ्राक्टोमीटर—यह उपकरण कारखाने के लिए बना है। यह शून्य कड़ाह या उद्वाष्पक या नली की दीवार में स्थायी रूप से जुटा रहता है। वस्तुतः शून्य कड़ाह में चीनी के उबालने के नियन्त्रण के लिए इसका उपयोग होता है। तरलावशेष में चीनी के मणिभों से उसकी भुजायदर्शना में कोई अन्तर नहीं पड़ता; क्योंकि मणिभ तरल के आवरण से ढके रहते हैं। इससे त्रिपार्श्व और मणिभों के बीच तरल का आवरण रहता है।

कौन भुजायमान चुनना चाहिए, इसका निर्णय आवश्यकतानुसार विश्लेषकों को करना चाहिए। साधारण रसायनशाला के कामों के लिए और उच्च भुजायदर्शनावाले पदार्थों के लिए आब्बे भुजायमान श्रेष्ठ हैं। यदि भुजायदर्शना १·५८ से अधिक नहीं है तो 'जाइस भुजायमान' अच्छा है। इससे परिणाम शीघ्र प्राप्त होता है। अधिक यथार्थ परिणाम के लिए इमर्सन (उत्प्लावन) भुजायमान श्रेष्ठ है ; पर इसमें ताप के सावधान नियंत्रण की आवश्यकता है। बौश और लौम्ब भुजायमान से सबसे अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है।

ठोस पदार्थ का निर्धारण—एक ही नमूने में विभिन्न रीतियों से समस्त ठोस पदार्थ का निर्धारण कर देखा गया है कि विभिन्न रीतियों से प्राप्त आँकड़ों में क्या सम्बन्ध है। निम्नलिखित सारणि 'क' में सीरा के वे ठोस पदार्थ हैं जो उसमें डाले गये हैं। इससे यह आँकड़ा वास्तविक ठोस पदार्थ का है। स्तम्भ 'ख' में प्रायः १००° श० पर बालू के साथ सुखाने पर जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं, वे हैं—स्तम्भ 'ग' में स्फटिक बालू या अस्बेस्टस पर प्रायः ७०° श० पर शून्य में सुखाये सीरे के ठोस पदार्थ ; स्तम्भ 'घ' में सम मात्रा में पानी डालकर ब्रीक्स विधि से प्राप्त; स्तम्भ 'च' में भुजायमान से प्राप्त और स्तम्भ 'छ' में टोलिवन के साथ आस्रुत विधि से प्राप्त ठोस पदार्थ।

सारणी

चीनी के उत्पादन में समस्त ठोस पदार्थ

	क	ख	ग	घ	च	छ
ईख का छोआ	१	७४·८१	७५·६३	८०·७७	७५·६६	
,,	२	७४·२६	७५·७८	७६·७६	७५·१३	
,,	३	—	७६·३६	—	७८·७२	७४·१२
परिष्कृत छोआ	४	७३·३	७८·५०	७७·३	७५·३	
परिष्कृत सीरा		—	६७·११	—	७६·८५	७७·५७
कृत्रिम सीरा		६६·६०	६६ ८०	६७·६५	६६·३७	
२५ प्रतिशत विपर्यस्त शर्करा						
विपर्यस्त शर्करा सीरा	८०·६६	—	—	८०·१४	७८·८५	

इन आँकड़ों से पता लगता है कि ब्रिक्स रीति से प्राप्त आँकडे अधिक यथार्थ हैं। इसका कारण यह है कि पानी डालने से विलयन में संकोचन होता है। इसमें अपवाद केवल वह सीरा है, जिसमें विपर्यस्त शर्करा की मात्रा अधिक है। यहाँ विलयन का संकोचन एक ही सान्द्रता के शर्करा-विलयन की अपेक्षा विपर्यस्त शर्करा के विलयन की घनता कम होने से उसकी हानि-पूर्त्ति आवश्यकता से अधिक होती है। भिन्न-भिन्न रीतियों से ठोस की मात्रा निर्धारित करने में बहुत-कुछ उसमें विद्यमान अवयवों की प्रकृति पर परिणाम निर्भर करता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से सुखानेवाली (शुष्क) रीति से ही यथार्थ परिणाम प्राप्त होना चाहिए। पर व्यावहारिक दृष्टि से निम्न ताप पर परिणाम बहुत-कुछ बालू-या अस्बेस्टस और सूखे पदार्थ की निष्पत्ति पर निर्भर करता है। बहुत समय तक गरम करने से भी स्थायी तौल नहीं प्राप्त होती है। आपेक्षिक भार और भुजायदर्शना अधिक यथार्थता से निर्धारित हो सकते हैं। पर परिणाम में वास्तविक मात्रा से कुछ अन्तर होता है। अन्तर होने का कारण अ-शर्करा पदार्थों की प्रकृति और मात्रा है।

कुछ लोगों ने समीकरणों के द्वारा इन परिणामों की विभिन्नता के मिटाने की चेष्टाएँ की हैं; पर ऐसे समीकरण सब स्थानों के लिए एक-से लागू नहीं हो सकते।

कुछ लोगों ने शर्करा की मात्रा निर्धारित करने के लिए स्निग्धता का मापन बतलाया है। कुछ लोगों ने मधु में चीनी की मात्रा निर्धारित करने में इस विधि का उपयोग भी किया है। इस विधि से प्राप्त आँकड़े को अन्य विश्वसनीय रीति से प्राप्त आँकड़ों की तुलना से देखा जाता है कि स्निग्धता रीति से २६ नमूनों के मधु के विश्लेषण से जल की मात्रा में ०·२ प्रतिशत विभ्रम (error) तक परिणाम निकाला जा सकता है और किसी भी नमूने में ०·७ प्रतिशत से अधिक अन्तर नहीं पाया गया है। पर इस विधि के उपयोग में सावधानी रखने की आवश्यकता है; क्योंकि मधु में डेक्सट्रीन के होने से परिणाम में अन्तर हो सकता है।

बत्तीसवाँ प्रकरण

ध्रुवीयण और ध्रुवीयणमापक

प्रकाश की किरणें ईथर में चलनेवाली एक प्रकार की तरंगे हैं। ये तरंगें अनुप्रस्थ रीति से प्रदोलित होती हैं। तरंगों के विस्तार होते हैं। तरंगों की लम्बाई को तरंगदैर्घ्य कहते हैं। तरंगदैर्घ्य को ग्रीक भाषा के अक्षर लैमोडा 'λ' से प्रकट करते हैं। लैमोडा के लिए मिलिमीटर के दसलाखवें भाग को ईकाई मानते हैं। इस ईकाई को एम म्यू (mu) कहते हैं। लैमोडा को आंग्स्ट्रोम ईकाई 'A°' द्वारा भी प्रकट करते हैं। आंगस्ट्रोम ईकाई एम म्यू का दसवाँ भाग होता है अर्थात् $A^\circ = ०.१$ mu। प्रति सेकंड में तरंगों की जितनी संख्या होती है, उसे प्रदोलन अर्घ या वाइब्रेशन फ्रिक्वेन्सी कहते हैं। किसी समावयव माध्यम में यदि प्रकाश का वेग 'व' है तो प्रदोलन अर्घ 'स' और तरंगदैर्घ्य लैमोडा और वेग के बीच का सम्बन्ध $स = \frac{व}{\lambda}$ द्वारा प्रकट होता है।

प्रकाश की किरण की प्रचंडता दोलनांक के वर्ग के अनुपात में होती है। इसका रंग ईथर-तरंग प्रदोलन अर्घ की गति पर निर्भर करता है। प्रकाश के रंगों को तरंगदैर्घ्य λ अथवा प्रदोलन अर्घ 'स' द्वारा पकट कर सकते हैं।

रंग	प्रदोलन गति प्रति सेकंड अरब में	तरंगदैर्घ्य एम-म्यू में
लाल (रक्त)	४३७	८६३
नारंगी	४८५	६१५
पीला	५३४	५५६
हरा	५८२	५१२
नीला	६३१	४७३
नील	६७६	४३६
नील-लोहित (बैंगनी)	७२८	४१०

मनुष्य की आँखें प्रकाश के उन्हीं प्रदोलनों को देख सकती है, जिनका प्रदोलन प्रति सेकंड ३६६ से ८०४ अरब है और जिनका तरंगदैर्घ्य ८२० और ३७३ एम-म्यू के बीच है। ८२० तरंगदैर्घ्य से बड़ी तरंगें ताप-किरण या अधोरक्त किरण होती हैं और ३७३ से छोटी तरंगें रासायनिक किरण अथवा पार-नील-लोहित किरण होती है। इन दोनों तरंगों को हमारी आँखें नहीं देख सकती हैं।

ध्रुवीयणमापन के लिए किसी विशिष्ट तरंगदैर्घ्य का प्रकाश होना चाहिए। इसके लिए सोडियम लवण दीप अथवा पारद के उत्ताप वाष्प-दीप का उपयोग होता है। इन दीपों से निकले प्रकाश में कुछ प्रमुख किरण-लकीरें होती हैं, जिन्हें अँग्रेजी वर्णाक्षरों के अक्षरों से सूचित करते हैं। सोडियम-लवण-दीप से निकले प्रकाश में D-लकीर ध्रुवीयण मापन के लिए अधिक सुविधाजनक पाया गया है। इसका लैमोडा ५८६'३ एम-म्यू के बराबर है। आजकल विद्युत्-दीप अधिकाधिक उपयोग में आ रहा है; क्योंकि इसका प्रकाश अधिक प्रचंड होता और यह सरलता से यंत्रों में ही उत्पन्न किया जा सकता है।

सामान्य प्रकाश की तरंगें सब दिशाओं में, चारों ओर ऊपर, नीचे, बाएँ-दाएँ समान रूप से गमन करती हैं। कुछ यत्नों से यह सम्भव हो सका है कि प्रकाश की ये तरंगें एकही दिशा में एकही तल में गमन करें। ऐसे प्रकाश को जिसकी तरंगें एक दिशा में एक तल में ही गमन करे ध्रुवियित प्रकाश कहते हैं। प्रकाश का ध्रुवीयण हो गया है, ऐसा भी बोलते हैं। प्रकाश के ध्रुवीयण से प्रकाश की तरंगें एक ही तल में गमन करती हैं। ऐसी तरंगों के प्रदोलन के लम्ब में जो तल होता है, उसे ध्रुवीयण-तल कहते हैं। प्रकाश के ध्रुवीयण को पहले-पहल ह्यूजेन्स ने (Huygens) १६७८ में देखा था। उस समय वे अइस लैण्ड स्पार (यह एक प्रकार का पत्थर होता है जो खानों से निकलता है) के मणिभ पर प्रकाश के भुजायन का अध्ययन कर रहे थे। उस समय उन्होंने इसे समझा नहीं। सन् १८०८ में 'मेलस' (Malus) ने ध्रुवीयण का अध्ययन कर बताया कि प्रकाश के परावर्तन (reflection) से भी प्रकाश का ध्रुवीयण होता है।

जब प्रकाश किसी पारदर्शतल पर पड़ता है तब कुछ किरणें परावर्तित हो जाती हैं और कुछ किरणें भुजयित हो जाती हैं। नौरेम्बर्ग ने कालकांच के दो दर्पणों की सहायता से एक छोटा उपकरण तैयार किया था, जिससे वे प्रकाश के ध्रुवीयण का अध्ययन कर सके थे। पर साधारणतया प्रकाश के ध्रुवीयण के अध्ययन के लिए आइस-लैण्ड अथवा कैल्क स्पार के मणिभ ही उपयुक्त होते हैं। यह खनिज स्वच्छ और पारदर्श होता है और सरलता से त्रियगवर्ग में काटा जा सकता है। ऐसे त्रियगवर्ग मणिभ में किसी पदार्थ के देखने से उसका प्रतिविम्ब दोहरा देख पड़ता है। ऐसे मणिभ के द्वारा प्रकाश की किरणों का दोबारा भुजायन होता है। ऐसे मणिभ से 'निकोल' ने एक त्रिपार्श्व बनाया था, जिसे 'निकोल त्रिपार्श्व' कहते हैं। त्रिपार्श्व के छोर-तल घिसे हुए होते हैं। वे ६८° के न्यून कोण बनाते हैं। त्रिपार्श्व को तब दो टुकड़ों में काटकर चिकना बना और पालिशकर कनाडा बाल्सम से विषम कोण में पूर्व अवस्था में जोड़ देते हैं। इस त्रिपार्श्व में जब प्रकाश-किरण प्रविष्ट करती है, तब वह सामान्य किरण और असामान्य या ध्रुवीयन किरणों में बँट जाती है। सामान्य किरणें त्रिपार्श्व के कनाड बाल्सम से परावर्तित हो जाती हैं और असामान्य किरण त्रिपार्श्व से निकलकर ध्रुवीयन-दर्शक में प्रविष्ट करती है। 'निकोल त्रिपार्श्व' ही ध्रुवीयण-दर्शक अथवा ध्रुवीयण-मान अथवा शर्करा-मान में उपयुक्त होते हैं। इसी सिद्धान्त पर अनेक त्रिपार्श्व बने हैं। इनमें 'ग्लान त्रिपार्श्व' सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

अनेक पदार्थ हैं जिनमें ध्रुवीयन-तल के घुमाने की क्षमता विद्यमान है। ऐसे पदार्थों में चीनी, द्राक्ष-शर्करा, फल-शर्करा, दुग्धाम्ल, स्फटिक इत्यादि हैं। कुछ पदार्थ ध्रुवीयन-तल

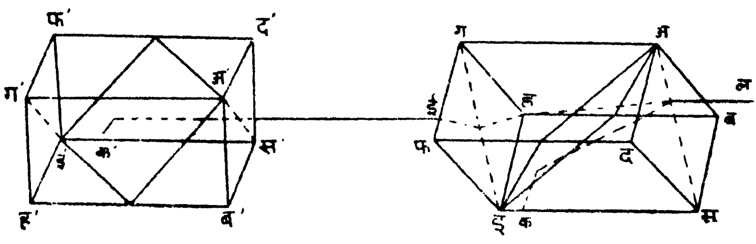
को दाएँ घुमाते हैं। ऐसे पदार्थों को दक्षावर्तक कहते हैं। कुछ पदार्थ ध्रुवीयन-तल को बाएँ घुमाते हैं। ऐसे पदार्थों को वामावर्तक कहते हैं। चीनी और द्राक्ष-शर्करा दक्षावर्तक हैं। फल-शर्करा वामावर्तक है। स्फटिक दोनों प्रकार का दक्षावर्तक और वामावर्तक होता है।

विशिष्ट ध्रुवीयन—भिन्न-भिन्न शर्कराओं के परिभ्रमण अथवा आवर्तन की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। ध्रुवीयन की मात्रा अनेक बातों पर निर्भर करती है। इनमें (१) पदार्थ की प्रकृति, (२) विलयन की सान्द्रता, (३) ध्रुवीयित प्रकाश से पारगत विलयन की लम्बाई, (४) विलयन का ताप, (५) प्रकाश का तरंगदैर्घ्य, (६) माध्यम अथवा विलायक प्रमुख है। ध्रुवीयन की तुलना के लिए किसी प्रमाप की आवश्यकता होती है। किसी पदार्थ का विशिष्ट ध्रुवीयन ध्रुवीयन का वह कोण है जो एक ग्राम 'प्र' विलीन एक सी० सी० विलयन की १ डेसी मीटर लम्बाई से उत्पन्न होता है। किसी पदार्थ का यदि 'धु' निरीक्षित ध्रुवीयन है, और यह सोडियम प्रकाश 'डी' के द्वारा 'त' तापक्रम पर 'ल' डेसीमीटर लम्बाई के 'क' ग्राम १०० सी० सी० के विलयन में प्रविलीन होने से उत्पन्न हुआ है तो उस पदार्थ का विशिष्ट ध्रुवीयन 'प' होगा।

$$\left[\text{प} \right]^{\text{त}}_{\text{डी}} = \frac{\text{धु} \times १००}{\text{ल} \times \text{क}}$$

विशिष्ट ध्रुवीयन को पदार्थ के अणु-भार के गुणन से अणु ध्रुवीयन प्राप्त होता है।

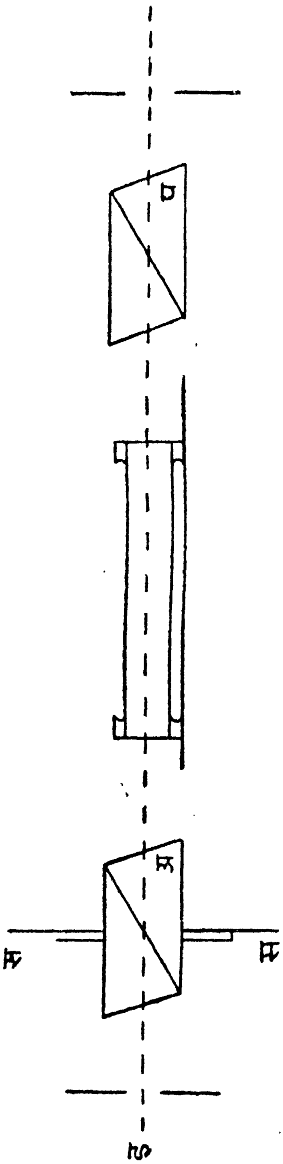
ध्रुवीयन-दर्शक और ध्रुवीयन-मापक बनाने में दो निकोल त्रिपार्श्व उपयुक्त होते हैं। एक को ध्रुवीयक (polarizer) और दूसरे का विश्लेषक (analyser) कहते



चित्र ७८—रेखित त्रिपार्श्व। ध्रुवियक और विश्लेषक दो निकोल त्रिपार्श्व। पहला त्रिपार्श्व 'अ ब स द इ फ ग ह' ध्रुवीयक है जिसका अक्ष-तल 'अ स इ ग' पर स्थित है। 'ल' से किरण प्रविष्ट करती है। यह दुबारा परावर्तित होती है। सामान्य किरण 'क' पर निकल जाती। असामान्यकिरण 'ई' पर निकलती है। यह ध्रुवियित किरण दूसरे त्रिपार्श्व द' स' 'इ' ह' फ' ग' ह' (विश्लेषक) में प्रविष्ट करती है जो अपने अक्ष पर घूर्णित होती है। इसका मार्ग ज्यों-का-त्यों रहेगा, यदि वह एक ही अक्ष-तल पर प्रदोलित होती रहे।

हैं। ध्रुवीयक स्थायी रूप से स्थित होता है, प्रकाश की किरणें त्रिपार्श्व में प्रविष्ट कर दोबारा भुजायित हो जाती हैं। साधारण किरणें त्रिपार्श्व के बाहर निकल जाती हैं

और असाधारण किरणें एक स्थान पर निकलकर त्रिपार्श्व के अक्षीय तल पर प्रदोलित हो दूसरे त्रिपार्श्व में प्रविष्ट करती है। दूसरे त्रिपार्श्व को उसके अक्ष पर घुमाकर यथास्थान रख सकते हैं। यदि विश्लेषक को उसके लम्बे अक्ष पर घुमावें तो ध्रुवीयन से निकला प्रकाश दोबारा ध्रुवायित हो उठता है और वे ही अवयव जो

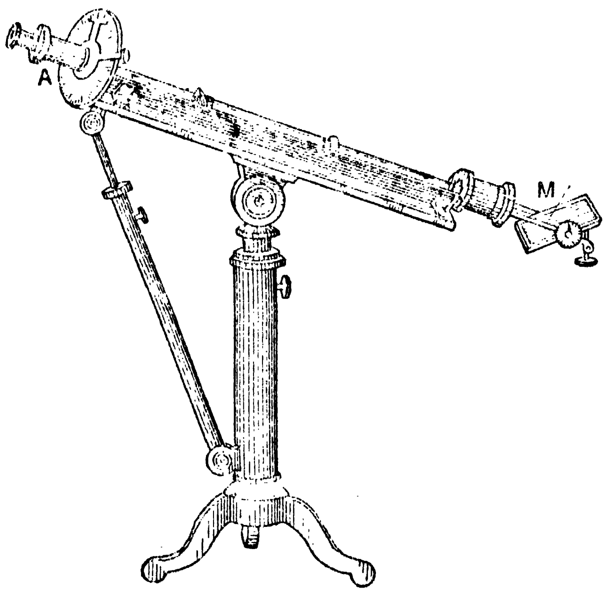


चित्र ७१—सरल ध्रुवीयन दर्शक। 'प' त्रिपार्श्व से किरण प्रविष्ट कर 'इ' आँख पर पड़ती है। 'स' एक अनुमाप है। 'अ' विश्लेपक है। दोनों त्रिपार्श्वों के बीच एक नली रखने से प्रकाश-किरण की दिशा बदल जायगी। विश्लेपक को घुमाकर प्रकाश को लुप्त कर सकते हैं।

प्रमुख अक्ष पर प्रदोलित होते हैं बाहर निकलते हैं। विश्लेषक के घुमाने से उससे निकले प्रकाश की प्रचंडता धीमी होती हुई अन्त में बिलकुल लुप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में ध्रुवीयक और विश्लेषक के अक्षीय-तल एक दूसरे के लम्ब पर होते हैं और तब कहा जाता है कि दोनों त्रिपार्श्व रेखित (crossed) हैं। यदि विश्लेषक को और घुमावें तो

प्रकाश की किरणें फिर आने लगेंगी और आधे परिभ्रमण के बाद अक्षीय-तल समानान्तर हो जायँगे और तब प्रकाश की पूर्व प्रचंडता फिर आ जायगी।

ध्रुवीयनदर्शक के सामान्य रूप की बनावट और सिद्धान्त अब सरलता से समझ में आ जायगा। सबसे पहले बायो (Biot) ने ध्रुवीयनदर्शक १८४० ई० में बनाया था। इसमें एक ध्रुवीयक होता है। यहाँ निकोल पार्श्व स्थायी रूप से स्थित होता है, 'क' (A) एक विश्लेषक है जिसे घुमाकर जिस स्थिति में चाहें रख सकते हैं। इस त्रिपार्श्व के कोणीय आवर्तन (rotation) को एक अनुमाप पर नाप सकते हैं। प्रकाश के किसी एक रंग की किरण निकलकर त्रिपार्श्वों के द्वारा होकर आँखों में प्रविष्ट करती है। यदि विश्लेपक ध्रुवीयक के निर्देश से रेखित है तो अनुमाप के शून्य पर बिलकुल अंधेरा रहेगा। यदि दोनों त्रिपार्श्वों के बीच कोई नली रखें, जिसमें काशिक विलयन-जैसे चीनी का विलयन रखा हो, तो ध्रुवीयक से चलकर प्रकाश की जो किरणें आँखों में पहुँचेगी, वह बिलकुल लुप्त नहीं हो जायगी। विश्लेपक को घुमाकर प्रदोलन-तल को उन्मज्जद (emergent) प्रकाश के लम्ब में कर देने से प्रकाश लुप्त हो जायगा। ऐसी दशा में जितना कोणीय आवर्तन होगा, उसे अंकित अनुमाप पर पढ़ सकते हैं। यदि विश्लेपक को और घुमावें तो १८० कोण पर प्रकाश फिर लुप्त हो जायगा। चूँकि विभिन्न तरंगदैर्घ्य के प्रकाश-किरण काशिक पदार्थों में विभिन्न आवर्तन देते हैं, इससे आवश्यक है कि एक ही रंग के प्रकाश उपयुक्त हो।



चित्र ८०—बायो का ध्रुवीयनदर्शक

'A' विश्लेपक है और 'M' काले कांच का दर्पण जो ध्रुवीयक का काम करता है। किरण के लोप से अन्तिम बिन्दु का ज्ञान होता है।

बायो के ध्रुवीयनदर्शक इसी सिद्धान्त पर बना था। इसमें ध्रुवीयक काल काँच का एक दर्पण M था और विश्लेपक A काल्क स्पार का त्रिपार्श्व था। इसमें श्वेत प्रकाश ही उपयुक्त होता था। इस ध्रुवीयनदर्शक में अब अनेक सुधार हुए हैं।

वेंट्ज्के का ध्रुवीयन-दर्शक—१८४२ ई० में वेंट्ज्के द्वारा बायो के ध्रुवीयन-दर्शक में सुधार का परिणाम है। वेंट्ज्के ने दर्पण के स्थान में निकोल त्रिपार्श्व ही उपयुक्त किया। इन्होंने भी श्वेत प्रकाश ही उपयुक्त किया और अन्तिम बिन्दु उस अवस्था को माना जब पीत किरणें विश्लेषक के प्रधान अक्ष के समकोण के तल पर प्रदोलित होती हुई लुप्त होकर रक्त किरणें प्रकट कर देती हैं। विश्लेषक के अनुमाप के वृत्त पर शर्करा की प्रतिशतता पढ़ी जाती थी। १८५४ ई० में 'मिटशरले' ने एक रंग की किरणों का उपयोग कर अधिक यथार्थ परिणाम प्राप्त किया। फिर रोबिके (Robiquet polariscope) ने भी इसमें कुछ सुधार किया। पर इन्होंने श्वेत प्रकाश का ही उपयोग किया था। विश्लेषक के साथ इन्होंने समतोलक का उपयोग किया। यह स्फटिक का बना पट्ट था। इसके बाद अन्य अनेक व्यक्तियों ने ध्रुवीयन-दर्शक में कई सुधार किये।

जेलेट की अर्ध-छाया युक्ति (Jelletts Half-shadow Device)—ध्रुवीयन-दर्शकों के पूर्व दोषों को दूर करने के लिए सन् १८५८ में जेलेट ने अर्ध-छाया त्रिपार्श्व की युक्ति निकाली। यह त्रिपार्श्व चतुः समभुजाकर कैल्कस्पार का प्रायः दो इंच लंबा होता है। इसके छोर वर्गाकार और लम्बाई में ऐसे तल से विभाजित होते हैं जो छोरों के समानान्तर होते हैं और त्रिपार्श्व के अक्षीयतल से छोटा कोण बनाते हैं। इसका आधा भाग प्रतिवर्तित (reversed) होता है। दोनों भागों को जोड़कर त्रिपार्श्व के छोरों को घिसकर चमकीला बना देते हैं। त्रिपार्श्व के अर्ध-भाग के अक्षीयतल एक दूसरे से नत होते हैं। इस प्रकार एक अर्ध भाग निकोल के साथ रेखित होता है और दूसरा भाग ऐसा नहीं होता। दूसरे भाग से प्रकाश स्वच्छन्दता से आता रहता है। त्रिपार्श्व का एक आधा भाग जब पूर्ण असित (dark) रहता है, तब दूसरे आधे भाग से प्रकाश आता जाता रहता है। इन दोनों परिस्थितियों के मध्य में क्षेत्र के दोनों भागों में एक-सा आच्छाया (penumbra) प्राप्त होता है। इस प्रकार अर्ध-छाया की गहराई त्रिपार्श्व के दो आधों के अक्षीयतलों के अभिनमन (inclination) से बदलता रहता है। यही इसका अन्तिम बिन्दु है।

जेलेट का ध्रुवीयनमान १८६४ ई० में बना था। अर्ध-छाया त्रिपार्श्व विश्लेषक होता है। विश्लेषक और ध्रुवीयक दोनों सिरों पर स्थित होते हैं। यंत्र प्रायः ४५° कोण पर नत रहता है। विश्लेषक के ठीक ऊपर एक रम्भ (Cylindrical) कोशा ऊपर में होती है और खुली हुई पेंदे में काँच द्वारी होती है। कोशा में एक ऐसा तरल भरा जाता है जिसका आवर्तन उस पदार्थ का विपरीत होता है जिसकी परीक्षा करनी है। जब चीनी के विलयन की परीक्षा करनी होती है तब कोशा में कुछ वामावर्तक तारपीन का तेल रखते हैं। चीनी के विलयन को एक नली में रखकर तारपीन कोशा में खिसका देते हैं। अब दृष्टि-क्षेत्र के दो अर्धों को समतुलित करते हैं। इसके लिए अनुश्रेणी (vernier) युक्त अनुमाप पर आक्षुरित शिरवाले तर्कु (Shindle) को घुमाते हैं और तब वाचन करते हैं। अनुमाप से तब तारपीन-स्तर की मोटाई को पढ़ते हैं। सबसे पहले ज्ञात चीनी मात्रा का विलयन डालकर अनुमापक का अंक-शोधन (calibrate) करते हैं तब अज्ञात चीनी-मात्रा के विलयन से चीनी की मात्रा निर्धारित करते हैं। जेलेट ने श्वेत प्रकाश

उपयुक्त किया था। इससे दोनों आधे क्षेत्रों के रंग में अधिक अन्तर न होने के कारण कुछ कठिनाई का अनुभव हुआ था।

कोर्नु (Cornu) ने जेलेट की युक्ति में कुछ सुधारकर उन्नत त्रिपार्श्व बनाया। इसके बाद अन्य कई अन्वेषकों ने इसमें सुधार किये। इनमें लौरेंट (Laurent) और लिपिक (Lippich) के सुधार अधिक महत्त्व के हैं। यहाँ मैं लौरेंट और लिपिक के ध्रुवीयनमान का ही वर्णन करूँगा।

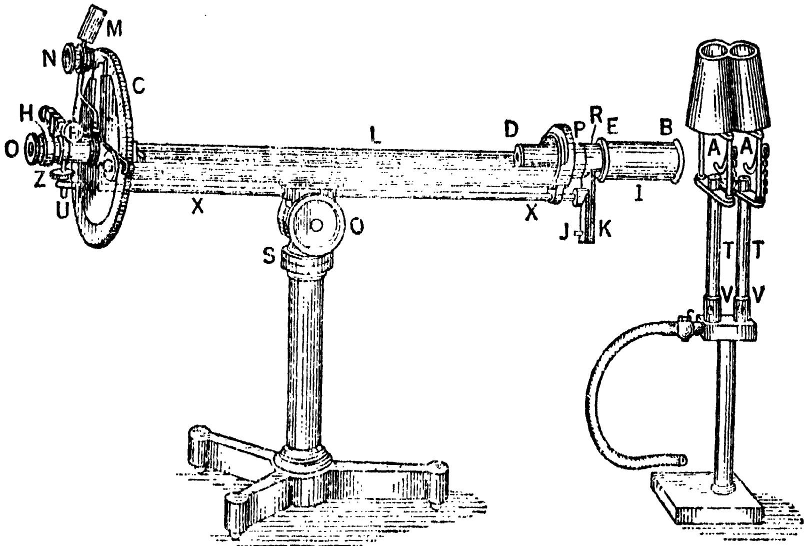
लौरेंट का अर्ध-छाया ध्रुवीयनमान—लौरेंट के ध्रुवीयनमान में दो निकोल त्रिपार्श्व, ध्रुवीयक और विश्लेषक, होते हैं। ध्रुवीयक एक छोटे उद्याम (liver) से जुटा रहता है, जिससे ध्रुवीयक को दाएँ या बाएँ थोड़े कोणों में घुमा सकते हैं। इस यंत्र में विशेषता यह है कि स्फटिक का एक पतला पट्ट पूर्ण समतल और प्रकाशीय अक्ष के पूर्ण समानान्तर में रखा होता है। यह पट्ट एक विशिष्ट मोटाई का होता है और काँच पर ऐसा मढ़ा होता है कि उससे दृष्टि-क्षेत्र का केवल एक अर्ध भाग छिप सके। ध्रुवीयक से निकली प्रकाश-किरणें पट्ट में प्रविष्ट कर दो अवयवों में बँट जाती हैं। एक अवयव सामान्य किरण होती है जो प्रकाशीय अक्ष के तल पर प्रदोलित होती है और दूसरा अवयव असाधारण किरण होती है जो प्रकाशीय अक्ष के समानान्तर तल पर होती है। असाधारण किरण कम भुजायित होने के कारण शीघ्रता से निकल जाती है। स्फटिक पट्ट की मोटाई ऐसी होती है कि दोनों किरणें बाहर निकलें तो सामान्य किरणों से असाधारण किरणें आधे तरंगदैर्ध्य से आगे रहती हैं। पट्ट की मोटाई प्रकाश के तरंग-दैर्घ्य पर निर्भर करती है।

इस ध्रुवीयमान से सुविधा यह है कि इसका शून्यविन्दु नहीं बदलता ; पर असुविधा यह है कि केवल एक तरंग दैर्ध्य का प्रकाश उपयुक्त होता है। साधारणतया यह सोडियम प्रकाश के लिए ही बना होता है।

लौरेंट के ध्रुवीयनमान के निर्माण कर्ता एक फ्रांसीसी कम्पनी है। इसका चित्र अगले पेज में दिया हुआ है। इसमें प्रकाश के लिए सोडियम वाष्प का दाहक (AA) रहता है। प्रभासन के लिए लेंस (B) रहता है। इसमें एक चरण (quadrant C) रहता है। इस चरण के वाह्यवृत्त पर वृत्त-डिगरियाँ रहती हैं और अभ्यन्तर वृत्त पर शर्करा डिगरियाँ अंकित रहती हैं। इसमें एक प्राचीर (diaphragm) होता है, जिसमें स्फटिक का अर्ध तरंग पट्ट रहता है। पोटैसियम डाइक्रोमेट का एक स्फट प्रकाश के छानने के लिए (E) रहता है। शून्य विन्दु के व्यवस्थापन के लिए एक पेच (screw F) होता है। विश्लेषक और उस भुजा को, जिसपर अनुश्रेणी रहती है, घुमाने के लिए एक दन्ति-पेच (Geared screw G,) रहता है। कांसे का ६०० मिलिमीटर लम्बी द्रोणी (L) होती है, जिसमें निरीक्षणनली रखी जाती है। अनुमाप के प्रभासन के लिए एक दर्पण (M) रहता है। एक दूसरा विशालन काँच अनुमाप के वाचन के लिए (N) रहता है। ध्रुवीयक के रखने के लिए एक नली (R) रहती है। इस नली को अल्पमात्रा में भुजा (K) के द्वारा कूर्पर (J) से घुमा सकते हैं। इस कूर्पर को उद्याम (U) से शलाका (rod) द्वारा घुमाते हैं।

लौरेंट ध्रुवीयनमान में शर्करा अनुमाप का १००° विन्दु कोणीय आवर्तन के २१·६६७° (२१°४०') के अनुरूप है। यह स्फटिक के एक मिलिमीटर के मोटे पट्ट का

आवर्तन समझा जाता है। शर्करा अनुमाप दाएँ ४०० अनुभागों में और बाएँ २०० अनुभागों से बटा रहता है। इससे इसके द्वारा दक्षावर्तक और बामावर्तक दोनों प्रकार की शर्कराओं का ध्रुवीयन निकाला जा सकता है। जिस शर्करा से २१·६६७° आवर्तन प्राप्त



चित्र ८१—लौरेंट का ध्रुवीयनमान।

होता है उसका भार वायु में पीतल की बाँट से १६·२६६ ग्राम होता है। इतनी चीनी को घुलाकर विलयन का आयतन २०° श० पर १०० मिलिमीटर बनाते है। ऐसे विलयन का कोणीय आवर्तन १०० विन्दु पर २६·६०° निश्चित हुआ है।

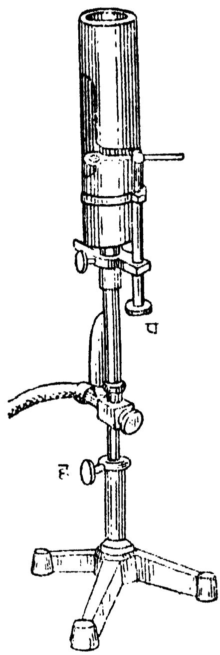
लिपिक ध्रुवीयनमान—लिपिक ने सन् १८८० ई० में एक नया ध्रुवीयक निकाला। इसकी अर्ध-छाया व्यापस्थापक होती है और यह किसी रंग के प्रकाश के लिए उपयुक्त हो सकता है। यदि इसमें स्फटिक समतोलन लगा दिया जाय तो इसमें श्वेत प्रकाश भी उपयुक्त हो सकता है।

लिपिक के ध्रुवीयक में दो निकोल त्रिपार्श्व, एक बड़ा और दूसरा छोटा, होता है। संवद्धता के अनुसार बड़े त्रिपार्श्व को इसके लम्बे अक्ष पर घुमा सकते हैं। दूसरे निकोल त्रिपार्श्व को अर्ध-त्रिपार्श्व कहते हैं। यह बड़े त्रिपार्श्व के सम्मुख मढ़ा होता है ताकि क्षेत्र का आधा भाग इससे ढंक जाय। यह अर्ध-त्रिपार्श्व थोड़ा झुका हुआ है ताकि इसका अभ्यन्तर अनुलंब छोर एक उग्र अनुभाजन रेखा बनाती है।

पहले-पहल जो अर्ध-छायाध्रुवीयनमान बने थे, उनमें अर्ध-छाया का कोण स्थिर रहता था—साधारणतया ५° से ८° के बीच। पीछे जो उपकरण बने हैं, उनमें ऐसा प्रबन्ध था कि उन्हें किसी भी कोण पर रख सकते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सामान्य उपकरणों में अर्ध-छाया का स्थिर रहना अच्छा है।

ध्रुवीयन में प्रकाश—श्वेत प्रकाश के उपयोग में अनेक दोष हैं। उन दोषों के दूर करने के लिए ध्रुवीयनमान बहुत पेचीला हो जाता है। इस कारण साधारणतया

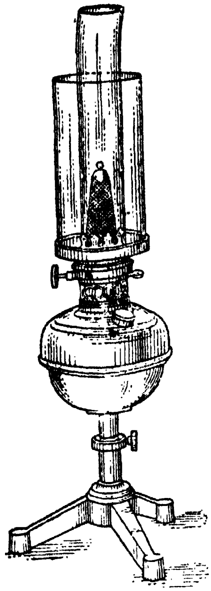
ध्रुवीयमान में एक रंग का प्रकाश ही उपयुक्त होता है। पहले-पहल बुसेन दाहक में सोडियम लवण डालकर सोडियम का पीत प्रकाश उपयुक्त होता था। पर वह प्रकाश भी वर्ण-पट की दृष्टि से शुद्ध नहीं होता। इस कारण इस प्रकाश को भी पोटैसियम डाइक्रोमेट कोशा से छानकर एक रूप प्रकाश उपयुक्त होने लगा। पीछे युरेनियम सलफेट की भी कोशा उपयुक्त होने लगी थी। इससे जो परिणाम प्राप्त होता है, उसे [a]D चिह्न से सूचित करते हैं। बिजली से प्राप्त सोडियम प्रकाश अधिक प्रचंड होता है। इसमें प्रकाश



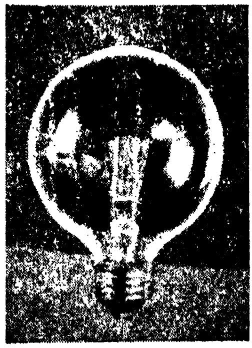
चित्र ८२—सरल गैस सोडियम लम्प 'ह' पेंच, 'प' पेंच

की प्रचंडता साधारण दीप की प्रचंडता से २० से ३० गुना अधिक होती है। आजकल अब ध्रुवीयन-मापन में पारदवाष्प से निकले प्रकाश का उपयोग होता है। इस प्रकार प्राप्त आँकड़ों को [a]Hg द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

आजकल श्वेत प्रकाश को भी पोटैसियम डाइक्रोमेट की कोशा में छानकर उपयुक्त करते हैं। ऐसे प्रकाश का माध्यम तरंग-दैर्घ्य ६०० म्यू म्यू होता है। यदि ऐसे प्रकाश को छाना न जाय तो विभ्रम संशोधन की आवश्यकता होती है। चौड़ी बत्तीवाला किरासन दीप, गैस दीप या ऐसीटिलीन दीप या किसी प्रकार का विद्युत् प्रकाश उपयुक्त हो सकता है। बिजली बत्ती के उपयोग में अंशु (filament) के प्रतिबिम्ब को हटाने के लिए घिसा हुआ काँच या पारदर्श कागज को बीच में रख सकते हैं। लैण्डट के बिजली-प्रकाश के लाभ ये हैं—(१) परिणाम में अधिक यथार्थता, (२) अर्ध-छाया का शीघ्र व्यवस्थापन, (३) ताप का प्रभाव बहुत अल्प और (४) ध्रुवीयनमान की सरलता।

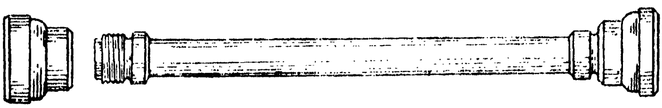


चित्र ८३—एल्कोहल लम्प



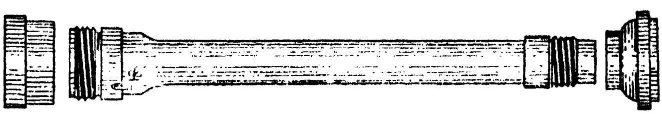
चित्र ८४—बिजली का लैंम्प

ध्रुवीयनमान में चीनी के विलयन रखने के लिए नलियाँ उपयुक्त होती हैं। ऐसी कुछ नलियों का चित्र ८५ और चित्र ८६ यहाँ दिया हुआ है। यह नलियाँ काँच की अथवा



चित्र ८५—कांच की ध्रुवीयनमान नली

धातु की बनी होती हैं। उनके दोनों छोर पूर्ण रूप से घिसकर पेच-सूत्र से ऐसे जोड़े होते हैं कि उनसे विलयन निकल न जाय। नली को खड़ा कर विलयन भरकर काँच ढक्कन लगाकर



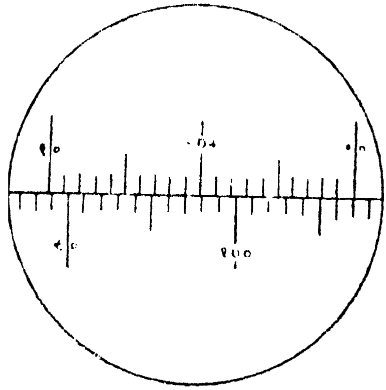
चित्र ८६—स्मिट और हँस की ध्रुवीयनमान नली। यहाँ वायु के नली के बाहर बुलबुले 'क' स्थान पर इकट्ठे होते हैं।

ऐसे बन्द कर देते हैं कि उसमें वायु के बुलबुले न रहें। कुछ आधुनिक रूप की नलियाँ भी यहाँ दी जा रही हैं। एक नली में छोर इतने निकले होते हैं कि उसमें वायु के बुलबुले भी हों तो वे दृष्टि-क्षेत्र के बाहर ही रहते हैं। कुछ नलियाँ ऐसी भी बनी हैं, जिनमें ताप के ज्ञान के लिए ताप-मापक लगा रहता है।

इन नलियों की लंबाई २½, ५, १०, ०, ३०, ४०, ५० और ६० सेन्टीमीटर की हो सकती है। इनका व्यास इतना होना चाहिए कि प्रकाश की किरणों के प्रवेश से उनके अभ्यन्तर परावर्तन से विध्रुवीयण न हो। नली का अभ्यन्तर व्यास ९ मिलिमीटर अधिक सुविधाजनक होता है।

उपकरण के वाचन के लिए अंधेरा स्थान सुविधाजनक होता है। इससे वाह्य-प्रकाश को पूर्णरूप से रोका जा सकता है।

ध्रुवीयन-मापक अनुमाप—ध्रुवीयन मापक के अनुमाप समतोलक के गतिमान स्फान (wedge) पर मढ़े होते हैं। अनुमाप की अनुश्रेणी स्थायी होती है। अनुमाप किसी मिश्र-धातु का बना होता है। मिश्र-धातु ऐसी होती है जिसका प्रसार बहुत अल्प अथवा प्राय: शून्य हो। पहले प्रकार की एक मिश्र धातु निकेलिन है। दूसरे प्रकार की एक मिश्रधातु – इस्पात और निकेल की—इनवार (invar) है। कुछ अनुमाप काँच के भी बने होते हैं। कुछ यंत्रों में अनुमाप स्फटिक के स्फान पर भी खुदे होते हैं। ऐसे एक अनुमाप का चित्र ८७ यहाँ दिया हुआ है।



चित्र ८७—अनुमाप की अनुश्रेणी

उपर्युक्त ध्रुवीयनमान किसी भी काशिक पदार्थ की ध्रुवीयन की माप के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। अब तो ऐसे भी यंत्र बने हैं जिनमें ध्रुवीयन के मूल्यवाचन के स्थान में उनका चित्र खींच जाता है। ऐसे यंत्रों को स्फटिक वर्ण-पट चित्रक (spectrograph) कहते हैं। ऐसे यंत्र मूल्यवान होते हैं और उनका उपयोग शर्कराओं के विश्लेषण में अभी नहीं हो रहा है।

जो ध्रुवीयनमापक शर्करा के विश्लेषण में उपयुक्त होते है, उन्हें शर्करामापक (Saccharimeter) भी कहते हैं। ये ध्रुवीयन-मापक के सिद्धान्त पर ही बने हैं। ऐसे शर्करा-मापक का वर्णन आगे होगा।

तेतीसवाँ प्रकरण

सरल ध्रुवीयन रीति

यदि किसी काशिक शर्करा में अन्य कोई काशिक पदार्थ नहीं है अथवा ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसका प्रभाव शर्करा के आवर्तन पर पड़े तो ऐसी दशा में निम्नलिखित समीकरणों से चीनी की मात्रा निकाली जा सकती है।

$$\left[क \right]_{डी} = \frac{१०० \times प}{स^{\circ} \times ल^{\circ}} \quad \text{जिससे } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{ल^{\circ} \times [क]_{डी}}$$

$$\left[क \right]_{डी} = \frac{१०० \times प}{प्र \times घ \times लं} \quad \text{जिससे } प्र = \frac{१०० \times प}{लं \times घ \times [क]_{डी}}$$

जहाँ 'क' विशिष्ट आवर्तन 'प' कोणीय आवर्तन 'स', पदार्थ की सान्द्रता (१०० मिलिलिटर में ग्राम) 'ल', नली की लम्बाई डेसीमीटर में है।

डेसीमीटर नली में कोणीय आवर्तन से शर्करा की सान्द्रता (१०० मिलिलिटर ग्राम में) इन सूत्रों से निकाली जा सकती है।

$$\text{इक्षु-शर्करा } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (+ ६६\cdot५)} = ०\cdot७५१८ प$$

$$\text{द्राक्ष-शर्करा } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (+ ५२\cdot८)} = ०\cdot९४७० प$$

$$\text{फल-शर्करा } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (- ९२\cdot५)} = ०\cdot५४०५ प$$

$$\text{दुग्ध-शर्करा } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (+ ५२\cdot५)} = ०\cdot९५२४ प$$

$$\text{जाइलोज़ } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (+ १९\cdot०)} = २\cdot६३१६ प$$

$$\text{गैलेक्टोज़ } स^{\circ} = \frac{१०० \times प}{२ \times (+ ८१\cdot०)} = ०\cdot६१७३ प$$

$$\text{मौल्टोज स}^\circ = \frac{१०० \times प}{२ \times (+१३८\cdot०)} = ०\cdot३६२३ प$$

शर्करा के विलयन में शर्करा की प्रतिशतता विलयन की सान्द्रता की घनता से भाग देने पर प्राप्त होती है। इस प्रकार से प्राप्त शर्करा की प्रतिशतता अनेक दशाओं में पर्याप्त यथार्थ होती है ; पर सान्द्रता या ताप से विशिष्ट आवर्तन में अन्तर होने के कारण परिणाम केवल सन्निकट होता है। अधिक यथार्थ परिणाम के लिए सान्द्रता और ताप का संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। इस संशोधन का उल्लेख ऊपर में हो चुका है।

शर्करा-मापक वाचन को कोणीय आवर्तन में परिवर्तन—शर्करा-मापकों में साधारणतया कोणीय आवर्तन की माप का प्रबन्ध नहीं रहता। शर्करा-मापक में वेन्टज् का अनुमाप होता है। इस सोडियम डी प्रकाश में अनुमाप के वाचन को कोणीय आवर्तन के परिणत करने के लिए निम्नलिखित खण्ड (factor) उपयुक्त होते हैं। वेन्टज् के अनुमाप को इन खण्डों के गुणन से कोणीय आवर्तन प्राप्त होते हैं—

इक्षु-शर्करा	०·३४६५
द्राक्ष-शर्करा	०·३४४८
दुग्ध-शर्करा	०·३४५२
विपर्यस्त शर्करा	०·३४३२

साधारणतया ०·३४६ खण्ड से स्फटिक-स्फान शर्करा-मापक में पर्याप्त यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है।

भिन्न-भिन्न शर्कराओं के जिस सामान्य भार से १०० मिलिलिटर में घुलाकर १०० वाचन प्राप्त होता है, वे निम्नलिखित हैं—

इक्षु-शर्करा	२६·०२६ ग्राम
द्राक्ष-शर्करा	३२·३६८ ,,
फल-शर्करा	१८·४१६ ,,
दुग्ध-शर्करा (+ १ जल अणु)	३२·६७२ ,,
मौल्टोज	१२·५२८ ,,
विपर्यस्त शर्करा	८६·३३३ ,,

शर्करा-मापक वाचन का भार में परिवर्तन—वेन्टज् के १ डिगरी से भिन्न-भिन्न शर्कराओं की मात्रा का निम्नलिखित बोध होता है—

१° वें, २०° श० पर = ०·२६०३ ग्राम इक्षु-शर्करा
१ वें, २०° श० पर = ०·३२२६ ग्राम द्राक्ष-शर्करा
१ वें, २०° श० पर = ०·१८४३ ग्राम फल-शर्करा
१ वें, २०° श० पर = ०·३२६७ ग्राम दुग्ध-शर्करा हाइड्रेट
१ वें, २०° श० पर = ०·१२५३ ग्राम मौल्टोज
१ वें, २०° श० पर = ०·८६३२ ग्राम विपर्यस्त शर्करा

अन्तरराष्ट्रीय कमीशन ने चीनी के विश्लेषण में एकरूपता लाने के लिए निम्नलिखित नियम बनाये हैं।

"सब ध्रुवीयन २०° श० पर होना चाहिए।"

शर्करा-मापक का सत्यापन भी २०° श० पर ही होना चाहिए। वेन्टज् के अनुमाप में पीतल की बाँट से वायु में तौला हुआ ३६ ग्राम शुद्ध शुष्क चीनी को २०° श० पर १०० सी० सी० विलयन बनाकर ध्रुवीयन मापक में, जिसका ताप भी २०° श० है, वाचन से ठीक १०० वाचन प्राप्त होता है। ध्रुवीयन के समय चीनी के विलयन का ताप भी २०° श० पर स्थायी रहना चाहिए।

जिन देशों का ताप २०° श० से ऊपर रहता है, वहाँ शर्करा मापक को ३०° श० या अन्य किसी उपयुक्त ताप पर व्यवस्थापित करना चाहिए। चीनी का विलयन भी उसी ताप पर तैयार कर उपयुक्त करना चाहिए।

चीनीवाले पदार्थों को ध्रुवीयन के लिए अर्धछाया यंत्र का उपयोग करना चाहिए।

अवलोकन के समय यंत्र को स्थिर स्थान पर रखना चाहिए और प्रकाश से इतनी दूर रहना चाहिए कि निकोल उससे गरम न हो जाय।

प्रभासन के लिए ऐसा दीप उपयुक्त करना चाहिए जिससे प्रचंड प्रकाश प्राप्त हो सके। गैस दाहक, गैस दीप, विद्युत् दीप, सोडियम प्रकाश, पेट्रोलियम ज्युले दीप इसके लिए उपयुक्त हो सकता है।

प्रत्येक अवलोकन के बाद प्रमाप स्फटिक पट्ट द्वारा देख लेना चाहिए कि यंत्र का व्यवस्थापन ठीक तो है। बाँट, फ्लास्क, नली और कांच ढक्कन की यथार्थता की भी जाँच कर लेनी चाहिए। अनेक वाचन लेकर उनसे औसत मान ले लेना चाहिए।

चीनी के विलयन बनाने के संबन्ध में अन्तरराष्ट्रीय कमीशन के नियम इस प्रकार हैं।

"एक ही परीक्षा करनी है तो १०० मिलिलिटर विलयन बनाकर सब-का-सब अथवा उसका एक प्रभाग लेकर उपयुक्त करना चाहिए। विलयन को स्वच्छ करने के लिए, लेड सबऐसीटेट का विलयन अथवा लेड के शुष्क सबऐसीटेट अथवा लवण रहित अलुमिना विलेपन (cream) उपयुक्त करना चाहिए। अस्थि-काल अथवा विरंजक चूर्ण का उपयोग ठीक नहीं है।

विलयन को चिह्न तक बनाकर और चिह्न के ऊपर के भाग को निःस्यन्दन पत्र से पोंछकर विलयन को खूब मिला लेना चाहिए। अब उसे शीघ्रता से छाननेवाले निःस्यन्दन पर डालकर छान लेना चाहिए। छानने के समय कीप को काँच ढक्कन से ढंके रखना चाहिए ताकि पानी का उद्वाष्पन न हो। प्रथम २५ मिलिलिटर को छोड़ देना चाहिए। उसके बाद के विलयन को लेकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए। यह विलयन बिलकुल स्वच्छ रहना चाहिए।

यह स्मरण रखने की बात है कि यदि विलयन को स्वच्छ करना है तो चिह्न तक विलयन बनाने के पहले लेड सबऐसीटेट का विलयन अथवा एल्युमिना का विलेपन डालना चाहिए। चिह्न तक बना लेने के बाद ही शुष्क लेड सबऐसीटेट डाला जाता है।

जो रीति चीनी के विलयन की परीक्षा में उपयुक्त होती है, वही रीति ईख के रस, सीरे और छोए के लिए भी उपयुक्त होती है।

विलयन के स्वच्छ करने में जो रीतियाँ उपयुक्त होती हैं, उनमें तीन प्रकार के विभ्रम हो सकते हैं—

१. अवक्षिप्त अशुद्धियों के आयतन के कारण विभ्रम हो सकता है।

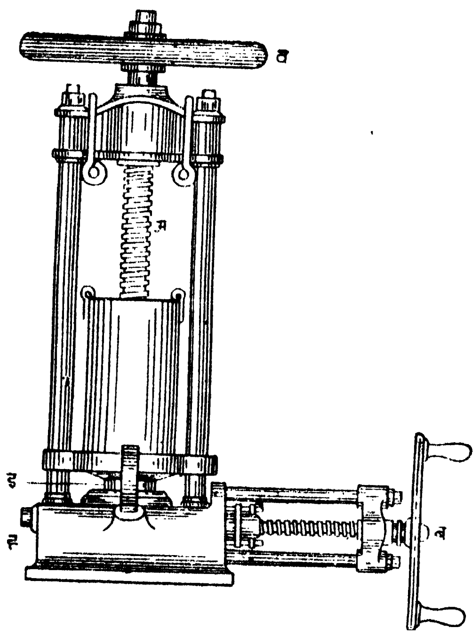
२. विलयन से चीनी के अवक्षिप्त हो जाने के कारण विभ्रम हो सकता है।

३. चीनी और अन्य पदार्थों के विशिष्ट आवर्तन में परिवर्तन के कारण विभ्रम हो सकता है।

विलयन के स्वच्छ करने के लिए अन्य पदार्थ भी, ब्लीचिंग पाउडर, क्षारीय लेडनाइट्रेट, अस्थि-काल, वानस्पतिक कोयला, हाइड्रोसल्फाइट, एल्युनियम हाइड्राक्साइड इत्यादि उपयुक्त हुए हैं। इन सबों में अलुमिना विलेपन सबसे श्रेष्ठ है। इसमें विभ्रम अल्पतम होता है।

ऐसे चीनी के विलयन का ध्रुवीयन जिसमें अविलेय पदार्थ उपस्थित है। जिन पदार्थों में अविलेय पदार्थ नहीं है, उनका विश्लेषण सरल है, पर जिन पदार्थों में अविलेय पदार्थ हैं, उनका विश्लेषण पेचीदा हो जाता है। ईख में चीनी का विश्लेषण ऐसा ही है।

ईख को पहले बहुत महीन करते हैं। महीन करने के लिए अनेक साधन उपयुक्त हो सकते हैं। यहाँ सावधानी केवल यही करनी है कि रस किसी प्रकार नष्ट न हो जाय। ईख से रस निकालने के जो यंत्र बने हैं, वे उपयुक्त हो सकते हैं। इनमें यंत्र को हाथ से चलाकर रस निकालते हैं। ऐसे मशीन बहुत मजबूत होते हैं; क्योंकि ईख का वल्क कड़ा होता है।



चित्र ८८—आभ्मस पीडक, यहाँ 'व', चक्र,

'अ' पेच 'इ' पिस्टन 'ह' खाली स्थान 'व' क्षैतिज आभ्मस पेच हैं

भारत, अस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में 'क्यूटेक्स' वियोजक (disintegrator) अधिकता से उपयुक्त होते हैं। इसमें ४६ आरी-बिम्ब एक दूसरे से सटे हुए और प्रतिमिनट

१५०० परिक्रमण करते हुए होते हैं। इनमें सामने से ईख डाला जाता है और आरी से दबाया जाता है और कटी हुई ईख नीचे सन्दूक में गिरती जाती है। मांस काटनेवाली मशीन भी कहीं-कहीं सफलता से उपयुक्त होती है। ऐसी कटी हुई ईख से दबाव से रस निकालते हैं। इसके लिए हस्तपीडक अथवा आम्भसपीडक उपयुक्त करते हैं। एक आम्भस पीडक का चित्र यहाँ दिया है।

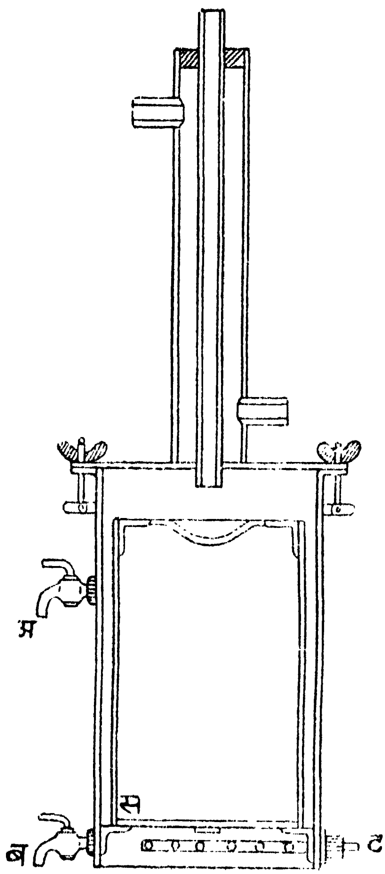
'व' चक्र के घुमाने से पेच 'अ' एक पात्र में नीचे जाता है और ईख के गुदे को दबाता है। उसका रस पार्श्वमार्ग से निकल जाता है। अब क्षैतिक पेच 'व' को अन्दर घुमाते हैं, यह पेच (screw) ग्लीसिरोल से भरे पात्र 'ह' को दबाता है जिससे पिस्टन 'इ' ऊपर को उठता है और उर्ध्वाधार दबाव से रस के दूसरे अंश को निकालता है। अन्तिम दबाव दबावमापक से सूचित होता है। दबाव प्राय: ३०० वायुमण्डल का दबाव होना चाहिए। जैसे जैसे दबाव बढ़ता है, रस गँदला होता जाता है। ध्रुवीयन मापन के पहले सब रस को खूब मिला लेना चाहिए। ऐसे रस में कुछ अविलेय कोशा की वस्तुएँ रह जाती हैं। चीनी की मात्रा निर्धारित करने में इसका भी विचार आवश्यक है। साधारणतया ईख के रस में इसकी मात्रा १० से १२ प्रतिशत और चुकन्दर के रस में ४'७५ से ५ प्रतिशत मान ली जाती है।

इस प्रकार रस निकालने से १० से ३० प्रतिशत रस डंठल में ही रह जाता है। रस के साथ पर्याप्त मात्रा में एल्बुमिनायड, पेक्टीन, मोम, इत्यादि भी आ जाते हैं। इनको अवक्षिप्त करके निकाल लेने पर उनके साथ चीनी का कुछ अंश भी निकल जाता है।

सीठे में चीनी का निर्धारण—सीठे को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उसमें उष्ण जल डालकर जेमेरोन उपकरण में चीनी को निकाल लेते हैं। केवल ५० ग्राम सीठे को लेकर उससे चीनी निकाल लेते। ऐसे रस को १५०० मिलिलिटर बनाकर ४०० मिलिलिटर नली में रखकर उसका आवर्तन प्राप्त करते हैं। वाचन को ३'६ से गुना करने से सीठे का आवर्तन प्राप्त होता है। यदि ऐसे विलयन में चीनी की मात्रा बड़ी अल्प है, तो विलयन को सान्द्र कर उसमें चीनी की मात्रा बढ़ा लेते हैं। ५०० मिलिलिटर विलयन को उदासीन करने के बाद उद्वाष्पन द्वारा १०० या २५० मिलिलिटर में बनाकर तब आवर्तन निकालते हैं। ऐसी दशा में वाचन को २ या ५ से भाग देने से वास्तविक मान प्राप्त होता है। यह निष्कर्षन रीति साधारणतया उपयुक्त नहीं होती। पाचन रीति ही रस की प्राप्ति के लिए उपयुक्त होती है। पाचन रीति में (Norris bagasse Digester) नौरिस बागास पाचित्र अथवा स्पेन्सर भ्रामक पाचित्र (Spencer Rotary Digester) अथवा डियर (Deerr) पाचित्र उपयुक्त हो सकता है।

भारत में डियर पाचित्र ही उपयुक्त होता है। इसके पाचन-पात्र दो विस्तार के होते हैं। एक में ५०० ग्राम और दूसरे में १००० ग्राम सीठा उपयुक्त हो सकता है। आवश्यक मात्रा में पानी भरकर उसे पेंदे में रखे वाष्प-कुंडल से गरम करते हैं। पाचित्र के ढक्कन में पाश्चवाही संघनक लगा रहता है। यह संघनक पात्र के ऊपरी प्रधि में दृढ़ अर्गलित (botted) होता है। पाचित्र का समावेशन पानी भरकर मालूम करते हैं।

सीठे की मात्रा 'ब' जिससे अर्ध-नार्मल विलयन प्राप्त हो सके, इस समीकरण के द्वारा निकालते हैं।



चित्र ८१—डियर पात्र-चित्र। समावेशन ५०० या १०७० ग्राम 'अ' भाप-कुंडल 'ब' से रस निकाल लिया जाता है और 'द' से गरम किया जाता है।

$$ब = \frac{भ}{७'६६ - क}$$ जहाँ पात्र का जल-समावेशन मिलिलिटर में है और 'क' सीठे में जल की मात्रा के १०० से भाग देने से प्राप्त प्रतिशतता है। यदि पाचक-पात्र का समावेशन ७२१५ मिलिलिटर है और सीठे की औसत जल-मात्रा ४६ प्रतिशत है तो

सीठे का भार होगा $\frac{७२१५}{७'६६-०'४६} = ६६८$ ग्राम।

पाचित्र को जल से भर देते हैं। अधिक जल को ऊपर की टोंटी से पानी निकालकर उसे बन्द कर देते हैं। अब सछिद्र धातु के पिटक (basket) में सीठे की आवश्यक मात्रा रखकर पाचित्र में गिरा देते हैं। ढक्कन को यथास्थान रखकर संघनक में ठंढा पानी

बहाकर पात्र को एक घंटा उबालते हैं। नीचे की टोंटी से निष्कर्ष को निकालकर ठंढा कर लेते हैं। इसका कुछ अंश लेड सब-ऐसीटेट से स्वच्छ कर, छानकर ४०० मिलिमीटर नली में रखकर शर्करामापक में आवर्तन का मान प्राप्त करते हैं।

यदि पानी की पर्याप्त मात्रा उपयुक्त हुई है तो प्रायः १००° ताप पर एक घंटे में सारी शर्करा निकल आती है। कुछ लोगों का मत है कि ५०° श० पर २½ से ३ घंटे में सारी शर्करा निकल आती है। पर कुछ लोग कहते हैं कि बिना १००° श० तक गरम किये, बिना तोड़े कोशाओं से सारी चीनी निकाली नहीं जा सकती है।

सीठे में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा प्रायः नगण्य होती है। विलयन को कुछ क्षारीय रखने से विपर्यास रोका जा सकता है।

शर्करा-मापक द्वारा चीनी के विश्लेषण में अनेक छोटे-छोटे विभ्रम होते हैं। उनमें ब्राऊन ने इन १२ विभ्रमों का विशेष उल्लेख किया है—(१) मिलाने में जलवाष्प की हानि, (२) तौलने में जलवाष्प की हानि, (३) सामान्य भार में विभ्रम, (४) लेड के अवक्षेप का आयतन (५) फलशर्करा का अवक्षेप, (६) फ्लास्क के आयतन में विभ्रम, (७) फ्लास्क के विलयन में अपूर्ण मिश्रण, (८) छानने में उद्वाष्पन, (९) ध्रुवीयन की नली की लम्बाई में विभ्रम, (१०) बाइक्रोमेटकोशा के अभाव, (११) ताप में विभेद और (१२) शर्करामापक के अनुमाप में विभ्रम।

इनमें कुछ विभ्रम तो एक दूसरे की पूर्ति करते हैं। कुछ तो ऐसे हैं, जैसे भार, फ्लास्क, नली और शर्करा-मापक के विभ्रम। इनसे परिणाम में विशेष अन्तर नहीं होता। शेष ऐसे हैं जिनसे परिणाम में कुछ वृद्धि होती है। इन विभ्रमों को कम करने के लिए निम्न लिखित तीन नियम स्मरण रखना चाहिए।

१. उपकरण के अंशांकन के सब विभ्रम को न्यूनतम रखो।

२. विभ्रम कैसा ही छोटा क्यों न हो, जो हटाया जा सके, उन्हें अवश्य हटाओ।

३. जो विभ्रम हटाया न जा सके, उसे न्यूनतम रखो।

इन पूर्वोपायों के कारण विभ्रम अधिक-से-अधिक ०·१२० तक हो सकता है। दो रसायनज्ञों के परीक्षण के फल में ०·२ प्रतिशत से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए।

चौंतीसवाँ प्रकरण

द्विध्रुवीयन रीति

यदि चीनी में कोई अन्य काशिक पदार्थ विद्यमान है तो सरल ध्रुवीयन रीति से चीनी की मात्रा निर्धारित नहीं हो सकती। ऐसी दशा में द्विध्रुवीयन रीति उपयुक्त होती है। इस रीति में चीनी को विपर्यास द्वारा द्राक्ष और फल शर्कराओं में परिणत कर ध्रुवीयन दो बार निकालते हैं। जब चीनी को किसी अम्ल अथवा विकर के द्वारा साधते हैं तो ३४२ ग्राम चीनी १८ ग्राम जल के साथ मिलकर १८० ग्राम द्राक्ष-शर्करा और १८० ग्राम फल-शर्करा बनती हैं। एक ग्राम चीनी वस्तुत: १·०५२६३ ग्राम विपर्यस्त शर्करा बनती है।

यदि २०° श० पर इक्षु-शर्करा का विशिष्ट आवर्तन +६६·५ लें तो उसी तापक्रम पर विपर्यस्त शर्करा के अर्धनार्मल भार का विशिष्ट आवर्तन −२०·२८ होगा। तो एक भाग इक्षु-शर्करा और उसके विपर्यय के बाद शर्करा के बीच विशिष्ट आवर्तन का संबंध होगा ६६·५ : १·०५२६३ × (−२०·२८) अथवा ६६·५ : −२१·३४७३। इस प्रकार विशिष्ट आवर्तन में ८७·८४७३ की कमी होती है। इस कारण एक डिगरी में ८७·८४७३ ÷ ६६·५ = १·३२१० की कमी होती है।

इन आँकड़ों से हम चीनी की मात्रा सरलता से निकाल सकते हैं, यदि उस चीनी में अन्य काशिक पदार्थों पर विपर्यस्तकर्ता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके निकालने की रीति यह है—

२०° श० पर शर्करामापक से विशिष्ट आवर्तन निकालते हैं। अब शर्करा को विपर्यास कर उसके आधे नार्मल भार का विशिष्ट आवर्तन निकालते हैं। इस आवर्तन को १·३२१० से भाग देकर दो से गुना कर देते हैं। इससे चीनी की प्रतिशतता निकल आती है।

चीनी के विपर्यास के लिए इनवर्टेस् श्रेष्ठ कर्त्ता है; पर साधारणतया विपर्यास के लिए हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उपयोग होता है। इस अम्ल का द्राक्ष-शर्करा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव को रोकने के लिए विपर्यास का ताप ६८° श० से ऊपर नहीं जाने देते और वह भी १५ मिनटों से अधिक गरम नहीं करते। यदि इस सीमा को उल्लंघन कर दें तो द्राक्ष-शर्करा का कुछ नाश हो जाता है अथवा सारी इक्षु-शर्करा का विपर्यास नहीं होता। ध्रुवीयन नली का ताप भी स्थायी रखने की सावधानी रखनी चाहिए। यदि थोड़ी भी नली गरम हो जाय तो उससे फल में अन्तर हो जाता है। विपर्यस्त शर्करा के ध्रुवीयन में नली के चारों ओर ठंढे पानी का बहाव आवश्यक है।

विपर्यास की क्लेरगेट (Clerget) की रीति यह है कि जिस विलयन की जाँच करनी है, उसके ५० मिलिलिटर को ५५ मिलिलिटर के फ्लास्क में रखकर प्रबल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर ५५ मिलिलिटर बना लें। अब फ्लास्क को धीरे-धीरे गरम करें ताकि १५ मिनटों में ६८° श० ताप पहुँच जाय। अब इसको ठंढा होने दें और ठंढा होने पर उपयोग करें। हरज़फेल्ड ने इस विधि का इस प्रकार संशोधन किया है। १०० मिलिलिटर फ्लास्क में ५० मिलिलिटर विलयन को रखकर उसमें २० मिलिलिटर जल और ५ मिलिलिटर ३८ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, जिसकी आपेक्षिक घनता १·१८८ हो, डालें। अब फ्लास्क को गरम करें ताकि २½ से ३ मिनटों में ६७° ताप पहुँच जाय। अब इसे ५ मिनटों तक ६७-७०° श० पर रखे। अब शीघ्रता से ठंढाकर १०० मिलिलिटर बनाकर उसकी परीक्षा करे। इस रीति में अन्य लोगों ने कुछ और सुझाव रखे हैं।

वाकर का सुझाव है कि फ्लास्क में ७५ मिलिलिटर विलयन को रखकर उसे ६५° श० तक गरम करें तब ३८·८ प्रतिशत अम्ल के ५ मिलिलिटर को डालें। बिना गरम किये १५ मिनटों के बाद विपर्यास पूर्ण हो जाता है। टोलमेन का सुझाव है कि ५० मिलिलिटर विलयन में ५ मिलिलिटर प्रबल अम्ल डाल कर २६° श० पर १० घंटा और २०° श० पर २० घंटा रखने से विपर्यास पूर्ण हो जाता है।

कम ताप पर विपर्यास—कमरे के ताप पर विपर्यास किया जा सकता है; पर इसमें समय अधिक लगता है। यदि ताप २० श० से नीचा नहीं है तो २४ घंटे में विपर्यास हो जाता है और यदि ताप २५° श० के ऊपर है तो १० घंटा समय लगता है; पर यदि पदार्थ अशुद्ध है तो कुछ अधिक समय लगता है। २८° श० पर रखने से २४ घंटे में विपर्यास अवश्य पूर्ण हो जाता है।

स्टियरवाल्ड का सुझाव—पदार्थ का विलयन तैयार कर उसका ५० मिलिलिटर लेकर १०० मिलिलिटर फ्लास्क में रखो और ३० मिलिलिटर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (आपेक्षिक घनता १·१) डालकर २०°-२५° श० के बीच तीन घण्टे के लिए और २५° श० से ऊपर केवल दो घंटे के लिए रख छोड़ो। विलयन को अब १०० मिलिलिटर बनाकर उसकी परीक्षा करो। स्टियरवल्ड ने इस सूत्र का उपयोग किया था।

$$श = \frac{१०० \; (प - प')}{१३५·२४ + ०·०६८३ \; (ग - १३) — ०·५ \; (त० - २०)}$$

यहाँ 'श' शर्करा की प्रतिशतता है। प औ प' सीधा और विपर्यस्त ध्रुवीयन और 'ग' १०० मिलिलिटर विलयन में ग्राम में शर्करा का भार और 'त' ताप है।

अम्ल की मात्रा का प्रभाव—देखा गया है कि प्रति ५ मिलिलिटर अम्ल की वृद्धि से विपर्यस्त शर्करा के वाचन में वृद्धि होती है। अम्ल के प्रभाव को कम करने के लिए अनेक सुझाव रखे गये हैं। उनमें कुछ सुझाव ये हैं—

सैलार्ड का सुझाव—सैलार्ड का सुझाव है कि चीनी का अम्ल द्वारा विपर्यास करने के पश्चात् ठंढा करके उसे सोडियम हाइड्रौक्साइड द्वारा उदासीन बना लेना चाहिए। सोडियम हाइड्रौक्साइड आवश्यकता से अधिक नहीं डालना चाहिए। विपर्यास के पहले

वाचन लेने के पूर्व उस विलयन में भी आवश्यक मात्रा में सोडियम क्लोराइड डालकर वाचन लेना चाहिए। यह रीति उतनी सुविधाजनक नहीं है। जैकसन-गिलिस रीति इससे अधिक सुविधाजनक है। इस रीति को अन्तरराष्ट्रीय संघ ने स्वीकार किया है।

जैकसन-गिलिस रीति—पदार्थ का नार्मल विलयन तैयार करो अथवा विलयन का कुछ अंश ले लो। जिस ताप पर शर्करामान में अवलोकन लेना है, उस ताप पर विलयन का ठीक ठीक आयतन बनाओ। शुष्क क्षारीय लेड ऐसीटेट से विलयन को स्वच्छ करो। यदि अधिक स्वच्छ विलयन की आवश्यकता हो तो अलुमिना विलेपन से स्वच्छ कर तब नियत आयतन में बनाओ। विलयन को छान लो।

(यदि आवश्यकता पड़े तो लेड को यहाँ निकाल सकते हो। पीसा हुआ पोटैसियम अथवा सोडियम औक्जलेट डालकर सीस को पूर्णतया अवक्षिप्त कर लो। इस प्रतिकारक को सारे विलयन में डालो। यदि यहाँ लेड को न निकालो तो पीछे क्लोराइड के रूप में उसे निकाल सकते हो।)

स्वच्छ विलयन को ५०,५० मिलिलिटर पिपेट से निकालकर दो १०० मिलिलिटर फ्लास्क में रखकर प्रत्येक फ्लास्क में २० मिलिलिटर पानी डालो। एक फ्लास्क में सोडियम क्लोराइड का १० मिलिलिटर विलयन डालो (प्रतिलिटर सोडियम क्लोराइड के विलयन में २३१'५ ग्राम रहना चाहिए)। जिस ताप पर अवलोकन लेना है, उसपर उसका आयतन ठीक कर लो। दूसरे फ्लास्क में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर उसका विपर्यास कर लो। फ्लास्क में तापमापक रखकर गरम जल-उष्मक में ६५° श० तक गरम करो। अब उष्मक से फ्लास्क को हटाकर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का १० मिलिलिटर (१'१०२९ आपेक्षिक घनता) २०° श० पर डालकर हिलाकर ३० मिनटों के लिए रख छोड़ो। अब ठंढा करके ताप पर आयतन बनाकर नली में रखकर वाचन लो।

६०° श० पर विपर्यास—जल-उष्मक को ठीक ६०° श० पर रखकर उसमें फ्लास्क को रख दो। तीन मिनटों तक उसे हिलाते रहो और ताप पर १० मिनटों तक रखे रहो। शीघ्रता से ठंढा करके जिस ताप पर अवलोकन करना है, उसपर नियत आयतन बनाकर हिलाकर शीघ्रता से छान लो।

इनवर्टेस द्वारा चीनी की मात्रा का निर्धारण।

ऋजु वाचन—पदार्थ का ५२ ग्राम २०० मिलिमिटर फ्लास्क में जल में प्रविलीन करो। इसमें थोड़ा क्षारीय लेड ऐसीटेट का विलयन सावधानी से डालो। आवश्यकता से अधिक मत डालो। फिर इसमें १ से २ मिलिलिटर अलुमिना विलेपन डालो। हिलाओ। पानी डालकर चिह्न तक भर दो। अब खूब हिलाकर छान डालो। प्रथम २५ मिलिलिटर विलयन को छोड़ दो। छानने के समय कीप को घटि-काँच से ढके रहो। जब पर्याप्त विलयन छन जाय तब अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट डालकर सीस को अवक्षिप्त कर लो। सोडियम कार्बोनेट थोड़ा-थोड़ा डालो। अधिक मत डालो। डालकर खूब मिला दो। अब छान लो और प्रथम २५ मिलिलिटर को त्याग दो। इस सीस-रहित विलयन से ५० मिलिलिटर पिपेट से निकालकर, १०० मिलिलिटर फ्लास्क में रखकर पानी डालकर चिह्न तक भर दो और उसे नली में रखकर

वाचन करो। वाचन को दो से गुना करने पर विपर्यास के पूर्व का वाचन प्राप्त करो।

विपर्यास वाचन—लेड-रहित निःस्यन्द के ५० मिलिलिटर को ऐसिटिक अम्ल डालकर अम्लिक बना लो। एक दूसरे लेड-रहित निःस्यन्द के ५० मिलिलिटर को लेकर १०० मिलिलिटर फ्लास्क में रखकर उसमें आवश्यक मात्रा में अम्ल डालकर इनवर्टेस का ५ मिलिलिटर डालो। फ्लास्क को १०० मिलिलिटर तक पानी से भरकर रातभर रख दो (इसका ताप २०° श० से कम नहीं रहना चाहिए) और फिर उसे ठंढा कर २०° श० पर १०० मिलिलिटर चिह्न तक बना लो। खूब हिलाकर २०° श० पर २०० मिलिमीटर नली में रखकर आवर्तन निकालो। यदि पूर्ण विपर्यास में कुछ सन्देह हो तो विलयन के कुछ अंश को कुछ घंटे के बाद फिर आवर्तन निकालो। यदि विपर्यास पूर्ण है तो दोनों वाचनों में अन्तर नहीं होना चाहिए। निम्नलिखित सूत्र से चीनी की प्रतिशतता निकालो।

$$\text{श} = \frac{१००(\text{प} - \text{प}')}{१३२ + ०\text{·}०७३(\text{ग्र} - १३) - ०\text{·}५(\text{त} - २०)}$$

जहाँ श = चीनी की प्रतिशतता

प = नार्मल विलयन का ऋजु वाचन

प' = नार्मल विलयन का आवर्तन वाचन

ग्र = विपर्यस्त विलयन के १०० मिलिलिटर में समस्त ठोस पदार्थ ग्राम में

त = ताप जिसपर वाचन लिया जाता है

छोए में चीनी की मात्रा निर्धारित करने के लिए पूर्ण विपर्यास के लिए २८° श० पर २४ घंटा समय चाहिए। यदि ६०° श० पर विपर्यास करना है तो १५ से २० मिनट समय चाहिए। यदि विपर्यास ७०° श० पर करना है तो उसके लिए ८ मिनट पर्याप्त है। निम्न ताप पर अधिक समय तक रखा रहना विपर्यास के लिए अच्छा है। इससे अन्य परिवर्तन अल्पतम होते हैं।

पैंतीसवाँ प्रकरण

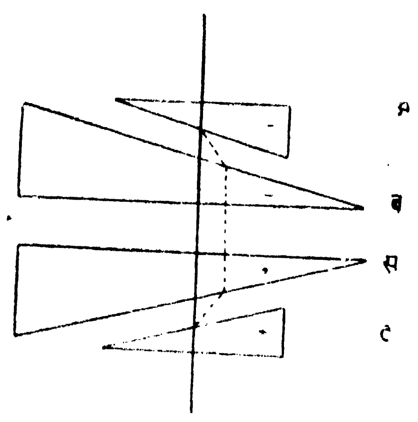
शर्करा-मापक

कुछ ध्रुवीयनमापक ऐसे बने हैं जो केवल शर्कराओं के ध्रुवीयनमापन में उपयुक्त होते हैं। ऐसे यंत्रों को शर्करा-मापक (Saccharimeter) कहते हैं। कुछ शर्करा-मापकों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है; क्योंकि ये शर्करा मापक ही चीनी के विश्लेषण में बहुत अधिकता से आज उपयुक्त होते हैं।

एक वर्ण के प्रकाश की प्राप्ति में कुछ कठिनता और असुविधाएँ होती हैं। इस कारण कुछ ऐसे शर्करा-मापक बने हैं, जिनमें दिन प्रकाश अथवा दीप-प्रकाश से ही चीनी के विलयन की काशिता निकाली जा सकती है। ऐसे यंत्रों की विशेषता यह है कि इनमें स्फटिक-स्फान-समतोलन उपयुक्त होता है। इनमें विश्लेषक और ध्रुवीयक दोनों स्थायी होते हैं। विलयन और विश्लेषक के बीच एक काशिक स्फटिक के स्फान को तबतक घुमाते हैं जब तक चीनी के विलयन का आवर्तन ठीक-ठीक समतुलित न हो जाय। स्फटिक स्फान से एक अनुमाप लगा रहता है, जिससे चीनी की प्रतिशतता में आवर्तन प्राप्त करते हैं। समतोलन के लिए स्फटिक इसलिए चुना गया है कि स्फटिक का आवर्तन इक्षु-शर्करा के आवर्तन के बराबर ही होता है। शर्करा और स्फटिक के बीच आवर्तन-अपकिरण (dispersion) में जो अल्प होने से अल्पअन्तर विक्षोभ होता है, उसे बाइक्रोमेट निःस्यंदन से दूर कर सकते हैं।

एकि-स्फान पद्धति—एकि-स्फान पद्धति में स्फटिक-मणिभ के प्रकाशीय अक्ष के लम्ब में स्फटिक-स्फान कटे होते हैं। स्फटिक-स्फान दक्षावर्तक अथवा वामावर्तक हो सकता है। स्फान के चढ़ाने की रीति आवर्तन की प्रकृति पर निर्भर करती है। यह पद्धति उतनी अच्छी नहीं समझी जाती।

द्वि-स्फान पद्धति—एक स्फान पद्धति से अच्छी होती है। इस पद्धति को स्मिट और हांस (Schmidt और Haensch) ने निकाला था। पद्धति में दो छोटे स्फान 'अ' और द' और दो बड़े स्फान 'ब' और 'स' होते हैं (चित्र ६०)। बड़े स्फान गतिमान होते हैं और छोटे स्थायी। दो बड़े स्फान के साधारणतया एक ही ओर नोक निकले होते हैं। इससे नततलों के बीच के वायु-स्थानों में प्रकाश-किरणों का भुजाय बराबर एक सा होता है। दोनों पद्धतियों के स्फान एक-दूसरे से यथासम्भव सन्निकट रहते हैं। दोनों बड़े स्फानों के साथ अनुमाप रहते हैं। अनुमापों को दूर-दर्शक से पढ़ते हैं।



चित्र ६०—छोटे स्फान 'अ' और 'द'
बड़े स्फान 'ब' और 'स'

द्वि-स्फान पद्धति में दक्षावर्तक पदार्थों के लिए 'ब' अनुमाप को इसकी अनुश्रेणी के साथ शून्य पर रखकर 'अ' अनुमाप पर आवर्तन को पढ़ते हैं। वामावर्तक विलयनों के लिए अनुमाप की अनुश्रेणी को शून्य पर रखकर 'ब' अनुमाप पर वाचन करते हैं।

भिन्न भिन्न शर्करा-मापकों में भिन्न-भिन्न अनुमाप उपयुक्त होते हैं। उनमें जो अनुमाप अधिक महत्त्व के हैं, उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

फ्रांसीसी शर्करा अनुमाप—फ्रांसीसी यंत्र के निर्माण-कर्ताओं ने जो शर्करा-मापक बनाये हैं, उसमें उन्होंने स्फटिक के एक मिलिमीटर की मोटाई का पट्ट उपयुक्त किया है। यह पट्ट प्रकाशीय अक्ष के ठीक ठीक लंब में कटा होता है। इस शर्करा मापक में १००° का आवर्तन २१° ४०' अथवा २१.६६७° होता है। २०° श० पर १६ ग्राम और १६.४७ ग्राम के बीच शर्करा से यह मान प्राप्त होता है। बहुत सूक्ष्म अन्वेषण के बाद यह निश्चय हुआ है कि १६.२६ ग्राम के १०० मिलिलिटर में २०° श० पर घुलाने से २१.६६७° मान प्राप्त होता है।

जर्मन अथवा वेन्टज्के अनुमाप—जर्मनी के बने शर्करा-मापकों में वेन्टज्के का अनुमाप उपयुक्त होता है। इसमें नली की लम्बाई २०० मिलिमीटर होती है। यहाँ २६.०४८ ग्राम शुद्ध चीनी को वायु में पीतल की बाँट से तौलकर १७.५° श० पर १०० मिलिलिटर विलयन बनाने से उसका आपेक्षिक भार १.१ प्राप्त होता है। इसी विलयन का आवर्तन १००° होता है। कुछ यंत्रों में २६ ग्राम को घुलाकर २०° श० पर १०० सी० सी० बनाकर उपयुक्त करते हैं।

अन्तर-राष्ट्रीय शर्करा अनुमाप—सन् १६१६ ई० में बेट्स और जैकसन ने प्रयोगों से देखा कि पूर्ण शुद्ध चीनी के उपयोग से २६ ग्राम चीनी को घुलाकर विलयन को १०० मिलिलिटर बनाकर अनुमाप पर ६६.८६५° प्राप्त होता है। पीछे उन्होंने इस मान को बदलकर ६६.६०° निश्चय किया। अन्तर-राष्ट्रीय कमीशन ने इस मान को मान लिया। अन्तर-राष्ट्रीय कमीशन ने यह भी निश्चित किया कि वास्तविक क्यूबिक सेंटीमीटर को मिलिलिटर लिखना चाहिए। शर्करामापक का ताप २०° श० रहना चाहिए। १७.५° श० से २०° श० के परिवर्तन के लिए इन दोनों तापों पर स्फटिक और इक्षु-शर्करा के आपेक्षिक अन्तर होने के कारण भार को फिर से निकालने की आवश्यकता पड़ी। इससे २६ ग्राम के स्थान पर २६.००८२ ग्राम भार प्राप्त हुआ। २६ ग्राम भार रखने के लिए उन्होंने वेन्टज्के शर्करा अनुमाप के १००° विन्दु की परिभाषा यह दी।

"२६ ग्राम शुद्ध चीनी को वायु में पीतल की बांट से तौलकर और घुलाकर, २०° श० पर १०० मिलिलिटर बनाकर तथा २०० मिलिमीटर नली में रखकर शर्करामापक—जिसमें स्फटिक-स्फान समतुलन भी २०° श० पर ही हुआ है— में मापने से शर्करा-मापक का अनुमाप १००° विन्दु पर रहता है।"

यह निश्चित नहीं है कि इस मान को सब लोगों ने स्वीकार कर लिया है। सन् १६१२ में बेट्स ने रिपोर्ट की कि जर्मन शर्करामापक इस अन्तर-राष्ट्रीय अनुमाप से ठीक नहीं उतरते। इन यंत्रों पर ६६.८६५° अंक प्राप्त होता है। कुछ लोगों ने इससे भी कम मान, ६६.८१° से ६६.६०°, प्राप्त किया था। इसका ६६.६०° मान १६३२ ई० में अन्तर-राष्ट्रीय कमिशन

द्वारा स्वीकृत हुआ था। उन्होंने सिफारिश की कि यदि २६ ग्राम भार रखा जाय तो पुराना अनुमाप बदल दिया जाय और यदि पुराना अनुमाप रखा जाय तो २६ ग्राम भार को २६·०२६ ग्राम में बदल दिया जाय। यह सामान्य भार और इसका आधा भार १३·०१३ ग्राम कुछ-कुछ षड्भुजीय अनुमाप में आज भी उपयुक्त होते हैं। जब कोई शर्करा मापक खरीदा जाय तब यह जान लेना चाहिए कि इसमें कौन अनुमाप उपयुक्त हुआ है ताकि उस अनुमाप के अनुकूल चीनी की मात्रा उपयुक्त की जा सके।

अन्तर-राष्ट्रीय कमीशन ने यह भी निश्चय किया है कि इस अन्तर-राष्ट्रीय शर्करा अनुमाप में डिगरियाँ शर्करा-डिगरियाँ अथवा 'एस' डिगरी' द्वारा प्रकट की जायँ ताकि इनका वेन्ट्ज्के डिगरिया अथवा 'वे' डिगरियों से कोई गड़बड़ी न हो। यह अन्तर-राष्ट्रीय अनुमाप आज भी सब देशों में उपयुक्त नहीं होता। अब भी कहीं फ्रांसीसी, कहीं वेन्टज्के कही द्वि-दशमलव अनुमाप उपयुक्त होते हैं।

जर्मन अनुमाप बर्तुल डिगरी में—अन्तर-राष्ट्रीय कमिशन ने सन् १९३२ में जर्मन अनुमाप में सामान्य स्फटिक पट्ट का आवर्तन ३४·६२०° वर्तुल डिगरी निश्चित किया।

द्वि-दशमलव शर्करा अनुमाप—ऊपर कहा जा चुका है कि २० ग्राम के सामान्य भार पर आवर्तन नापने का प्रस्ताव रखा गया था। इस प्रस्ताव का अनेक लोगों ने अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव की विशेषता यह थी कि फ्रांसीसी और जर्मन अनुमापों को यह मिलाता है और दशमलव भार के उपयोग से गणना सरल हो जाती है। १०० मिलिलिटर विलयन के ५०,२५,२०,१० और ५ मिलिलिटर के अशेष भाजक में चीनी की मात्रा समांक में होती है। इन लाभों से अनेक लोगों ने इस अनुमाप को स्वीकार कर लिया है और अनेक देशों में इसका व्यवहार होता है। इस अनुमाप को द्वि-दशमलव शर्करा अनुमाप कहते हैं।

बाइक्रोमेट-प्रकाश-निःस्यन्दन—यदि वेन्ट्ज्के अनुमाप में १००° विन्दु मान लें तो शर्करा और स्फटिक के बीच अपकिरण से आवर्तन में जो विभ्रम होता है, उसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि श्वेत प्रकाश को पोटैसियम बाइक्रोमेट के ६ प्रतिशत विलयन के १·५ सेन्टीमीटर स्तर के द्वारा ले जाकर प्रकाश को छान लें। यथार्थ परिणाम की दृष्टि से प्रकाश का यह निःस्यन्दन बहुत आवश्यक है। अनेक शर्करामापकों में ३ प्रतिशत विलयन को ३ सेन्टीमेटर की कोशा में उपयुक्त करते हैं। यदि विलयन में ऐसे कार्बोहाइड्रेट हैं, जैसे द्राक्ष-शर्करा और डेक्स्ट्रीन, तो उपयुक्त विलयन के दुगुने संकेन्द्रण की आवश्यकता होती है।

यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि बाइक्रोमेट-निःस्यन्दित श्वेत प्रकाश और सोडियम प्रकाश के द्वारा प्राप्त इक्षु-शर्करा के सामान्य भार के आवर्तन में यद्यपि बहुत कुछ समानता है; पर वे बिलकुल एक-से नहीं हैं। इसका कारण यह है कि गुरुत्वा-कर्षण के काशिक केन्द्र में अल्प अन्तर तो रहता ही है। स्फटिक और शर्करा में बाइक्रोमेट निःस्यन्दित प्रकाश और सोडियम के प्रकाश में बहुत ही अल्प अन्तर है; पर कम तरंगदैर्घ्य के प्रकाश में यह अन्तर अधिक हो जाता है।

शर्करामापक के अनुमाप का अंशांकन—शर्करा-मापक के निर्माण-कर्त्ता अनुमाप के १००° विन्दु के निश्चय करने में शर्करा के सामान्य भार के स्थान में सावधानता से प्रस्तुत प्रमाप स्फटिक पट्ट का उपयोग अधिकता से करते हैं। इससे रसायनतः शुद्ध शर्करा

के विलयन तैयार करने में जो असुविधाएँ और विभ्रम होते हैं, उनसे वे बच जाते हैं। इसके सिवा स्थायी ताप पर पट्ट में कोई परिवर्तन नहीं होता, यदि पट्ट को कोई यांत्रिक आघात न पहुँचे।

अनुमाप वाचन पर सान्द्रता का प्रभाव—स्मिट ने एक सारणी तैयार की है जिससे सान्द्रता के परिवर्तन से विशिष्ट आवर्तन में जो परिवर्तन होते हैं, उनका संशोधन हो जाता है। इन संशोधनों को स्मिट के सूत्र से गणित किया गया है। स्मिट का सूत्र यह है।

$[a]_D$ = ६६'५१४—०'००८४१५३ स। यहाँ स सान्द्र है। लैण्डोट का सूत्र यह है—

$[a]_D^{२०°}$ = ६६'४३५ + ०'००८७० स° — ०'००० २३५² स। यहाँ (स° = ० से ६५ है)।

सारिणी

शर्करा-मापक वाचन में इक्षु की सान्द्रता का प्रभाव

अनुमाप अंश	सान्द्रता ग्राम, इक्षु-शर्करा १०० मिलिलिटर २०° श०	विशिष्ट आवर्तन इक्षु-शर्करा २०° श०	अनुमाप अंश का वास्तविक शर्करा मान लैण्डोटसूत्र से	अनुमाप अंश का वास्तविक शर्करामान स्मिटसूत्र से
१००'००	२६'००	६६'५०२	१००'००	१००'००
९९'००	२४'६६	६६'५०६	९९'००	९५'९८
९५'००	२४'७०	६६'५०७	९४'९९	९४'९८
९०'००	२३'४०	६६'५१०	८९'९९	८९'९७
८५'००	२२'१०	६६'५१३	८४'९९	८४'९६
८०'००	२०'८०	६६'५१४	७९'९९	७९'९५
७५'००	१९'५०	६६'५१५	७४'९९	७४'९४
७०'००	१८'२०	६६'५१६	७६९'९९	६९'९३
६५'००	१६'९०	६६'५१५	६४'९९	६४'९२
६०'००	१५'६०	६६'५१४	५९'९९	४५९'९२
५५'००	१४'३०	६६'५११	५४'९९	५४'९२
५१'००	१३'२६	६६'५०९	५०'९९	५०'९२
५०'००	१३'००	६६'५०८	५०'००	४९'९२
४५'००	११'७०	६६'५०५	४५'००	४४'९२
४०'००	१०'४०	६६'५००	४०'००	३९'९२
३५'००	९'१०	६६'४९५	३५'००	३४'९२
३३'००	८'५८	६६'४९२	६३'००	३२'९३
३२'००	८'३२	६६'४९१	३२'०१	३१'९३
३०'००	७'८०	६६'४८९	३० ०१	२९'९३

अनुमाप अंश	सान्द्रता ग्राम, इक्षु-शर्करा १०० मिलिलिटर २०° श०	विशिष्ट आवर्तन इक्षु शर्करा २०° श०	अनुमाप अंश का वास्तविक शर्करामान लण्डोटसूत्र से	अनुमाप अंश का वास्तविक शर्करामान स्मिटसूत्र से
२५·००	६·५०	६६·४८१	२५·०१	२४·६४
२०·००	५·२०	६६·४७४	२०·०१	१९·९५
१५·००	३·९०	६६·४६५	१५·०१	१४·९६
१०·००	२·६०	६६·४५६	१०·०१	९·९७
६·००	१·५६	६६·४४३	६·०१	५·९८
५·००	१·३०	६६·४४२	५·००	४·९८

इस सारिणी से मालूम होता है कि लैण्डोट समीकरण से प्राप्त अंकों में विचलन केवल ०·०१ है और स्मिट के अंको में ०·०८ है। इस कारण इस विचलन का सरलता से त्याग किया जा सकता है।

शर्करामापकों के अनुमापों का सत्यापन—स्फटिक स्फानों की अपूर्णता के कारण शर्करामापकों के अनुमापों के सत्यापन की आवश्यकता होती है।

यह सत्यापन तीन रीतिओं से, स्फटिक पट्ट द्वारा, शुद्ध इक्षु-शर्करा द्वारा और नियंत्रण नली द्वारा होता है।

स्फटिक पट्ट द्वारा सत्यापन—अनुमाप के सत्यापन की सरलतम, सुगमतम और अत्यन्त यथार्थ रीति सावधानता से प्रमापित स्फटिक पट्ट का उपयोग है। ऐसे अनेक पट्टों का मूल्य बहुत अधिक होता है, इस कारण कुछ पट्टे ही इसके लिए उपयुक्त होते हैं। शून्य विन्दु के निश्चयन के लिए कुछ पट्ट तो अत्यन्त आवश्यक हैं। ऐसे प्रमाप पट्ट यंत्र-निर्माण कर्त्ताओं द्वारा प्रस्तुत कर बिकते हैं। ये धातु की नली में चढ़े होते हैं और किस शर्करामापक के अनुमाप पर क्या वाचन देंगे, यह लिखे रहते हैं। ऐसे पट्टों को कहीं फिर जाँच करा लेना चाहिए। यंत्र में रखने पर पट्टों का तल ध्रुवीयित प्रकाश-किरण के लम्ब में रहना चाहिए। इस कारण पट्ट को ढीला नहीं रहना चाहिए। पर उसे बहुत अधिक दबाए भी न रहना चाहिए, नहीं तो स्फटिक में प्रकाशीय विभ्रम हो जाने की संभावना हो सकती है।

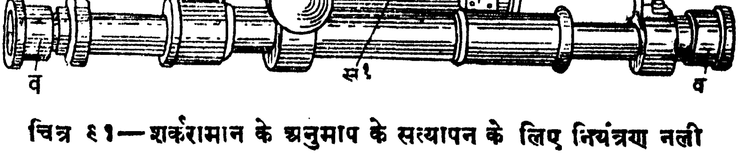
शुद्ध शर्करा द्वारा सत्यापन—इस रीति में शुद्ध शर्करा का उपयोग होना चाहिए। शुद्ध शर्करा तैयार करने की रीति अन्तरराष्ट्रीय कमीशन ने इस प्रकार दी है। 'शुद्ध व्यापार की शर्करा को पानी में घुलाकर उष्ण संतृप्त जलीय विलयन तैयार करो। शुद्ध एथिल एलकोहल द्वारा शर्करा को अवक्षिप्त कर एक छोटे केन्द्रापसारक यंत्र में शर्करा को घुमाकर फिर शुद्ध एलकोहल से धो डालो। इस शर्करा को फिर पानी में घुलाकर विलयन से एलकोहल द्वारा शर्करा को अवक्षिप्त कर पूर्ववत् धो डालो। मणिभ के दूसरे नमूने को निःस्यन्दन पत्र में दबाकर और सुखाकर कांचपात्र में उपयोग के लिए रखो। शर्करा में जो जल का अंश रह जाय, उसकी मात्रा निकालकर शर्करा तौलने में उसका ध्यान रखो। यदि केंद्रापसारी यंत्र न प्राप्त हो, तो शर्करा के महीन मणिभ को बुकनरकीप में छानो और धोओ। एलकोहल से अवक्षिप्त करने के पहले संतृप्त विलयन बनाने में विलयन को ८०° श० से ऊपर नहीं गरम करना चाहिए। ऐसे जलीय विलयन को बनाकर उसे उष्ण-

जल कीप द्वारा एलकोहल में डालने से और हिलाते रहने से शर्करा का अवक्षेप ऐसे महीन रूप में प्राप्त होता है जो बड़ी सरलता से वायु में सूख जाता है। इसे ५०° श० पर पारद के ४० मिलिमीटर दबाव पर सुखाकर जल की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। निम्न ताप इसलिए आवश्यक है कि उच्च ताप पर अत्यधिक शुद्ध चीनी जल्दी से विच्छेदित हो जाती है।

एक दूसरी रीति से भी शुद्ध चीनी प्राप्त हो सकती है। चीनी का संतृप्त विलयन आसुत जल में तैयार करते हैं। इस विलयन को फिर प्रचुर मात्रा में रंग दूर करनेवाला वानस्पतिक कार्बन के साथ साधते हैं। इसे फिर ऐसे निःस्यन्दन पत्र द्वारा छानते हैं, जो पहले से किसेलगुहर द्वारा आच्छादित होता है। इससे विलयन के खनिज और कोलायडल (श्लेषाभीय) पदार्थ दूर हो जाते हैं। अब विलयन को अमोनिया द्वारा कुछ क्षारीय बनाकर उद्वाष्पन के समय विपर्यय (Inversion) से बचाते हैं। अब अस्बेस्टस रेशे की पतली गद्दी पर छानकर ३५° श० से निम्न ताप पर ही प्राय: २५ मिलिमीटर दबाव पर विलयन को गाढ़ा करते हैं। जब विलयन में प्राय: ७८ प्रतिशत चीनी हो जाय तब उसे किसी काँच पात्र में रखकर चीनी का मणिभ डालकर छोड़ देते हैं। प्राय: दो घंटे में चीनी के मणिभ निकल आते हैं। पर कई घंटे रखकर तब केन्द्रापसारी यंत्र में विलयनाव शेष को पूर्ण रूप से निकाल लेते हैं। अब चीनी के स्फट को अम्ल-हीन एलकोहल से धोकर उसे सुखा लेते हैं। इसे अन्त में फास्फरस पेन्टौक्साइड पर शून्य शोषित्र में रखकर तथा सुखाकर तब उपयोग में लाते हैं। ऐसी शुद्ध चीनी में राख की मात्रा ०·००१५ प्रतिशत, जल की मात्रा ०·००२ प्रतिशत और विपर्यस्त शर्करा की मात्रा ०·००१५ प्रतिशत और समस्त अशुद्धियों की मात्रा ०·००५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती है। इतनी अशुद्धियों से शर्करामान के अवलोकन में कोई उल्लेखनीय विभ्रम नहीं होता।

शुद्ध चीनी की प्राप्ति के लिए शुद्ध छोटे-छोटे दानेदार शर्करा ही उपयुक्त करनी चाहिए। मिश्री के मणिभ इसके लिए उपयुक्त नहीं हैं; क्योंकि ऐसे मणिभ में कभी-कभी अम्ल रहते हैं जो शोधन के समय शर्करा का विपर्यय करते हैं।

नियंत्रण नली द्वारा सत्यापन—इसके लिए श्मिट और हांश की नियंत्रणनली उपयुक्त होती है। इस नली में बिलकुल शुद्ध चीनी आवश्यक नहीं, सारे अनुमाप के



चित्र ६१—शर्करामान के अनुमाप के सत्यापन के लिए नियंत्रण नली

सत्यापन के लिए कुछ ही विलयन आवश्यक हैं। ऐसी एक नली का चित्र यहाँ दिया हुआ है। यह नली दूरदर्शक के आकार की होती है। इसमें २१० से ४२० मिलिमीटर लम्बा विलयन का स्तम्भ रखा जा सकता है। विलयन की लम्बाई का नियमन (regulation) एकपेच 'ट' द्वारा होता है। यह अनुमाप 'स' पर और अनुश्रेणी 'ज' से ०·१ मिलि-

मीटर तक पढ़ा जाता है। नली में एक आशय (reservoir) होता है, जिससे विलयन भरा नहीं जाता, पर जब नली को छोटा करते हैं तब विलयन नली से निकलकर आशय में इकट्ठा होता है। नली को भरने के लिए इसे पेच 'प' द्वारा पूरा निकालकर तब आशय के ढक्कन को खोलकर और सूराख को अंगुली से या काग से बन्द कर देते हैं। अब इस नली को ध्रुवीयमापक नली के सदृश भर देते हैं। काग को हटा देते और नली को छोटा करके विलयन के कुछ अंश को आशय में बह जाने देते हैं। अब ढक्कन को रख देते हैं, ताकि विलयन का यथासम्भव उद्वाष्पन न हो।

पहले चीनी के ऐसी सान्द्रता का विलयन तैयार करते हैं जो प्राय: ४ ० मिलीमीटर की नली में १००° विन्दु का वाचन दे। इसी विलयन की नली को घटा-बढ़ाकर और भी कुछ अंश का वाचन कर सकते हैं। यदि नली की लम्बाई ४२० मिलीमीटर हो तो १०५ वाचन प्राप्त होगा। यदि नली की लम्बाई ३८० है तो ६५ प्राप्त होगा।

इसी विलयन से २२० मिलीमीटर नली में ५५ अंश प्राप्त कर सकते है। इससे कम वाचन के लिए दूसरे विलयन तैयार करते हैं। लैण्डोल्ट ने वेन्ज के अनुमाप पर परीक्षण के लिए नियन्त्रण-नली के साथ विलयन की सान्द्रता क्या रहनी चाहिए, वह निम्न सारिणी से निकाला है—

संख्या	विलयन के १०० मिलीमिटर में चीनी की मात्रा ग्राम में	सत्यापन के लिए प्रस्थान विन्दु	सत्यापन के अनुमाप अंश का विस्तार
१	१२·५३	१००	९५,९०,८५,६०,५२
२	६·८६	५५	५०,४५,४०,३५,३०
३	३·७६	३०	२५,२०,१६
४	२·००	१६	१५,१०,६
५	१·१३	६	५

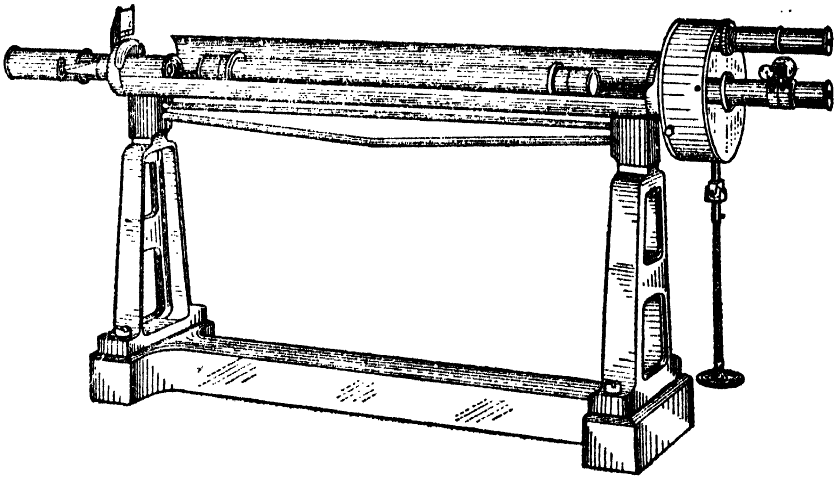
स्फटिक के ताप-गुणक—ताप के परिवर्तन से विशिष्ट विपर्यय में क्या परिवर्तन होता है, इसका वर्णन आगे होगा; पर शर्करामान के स्फटिक संतुलन में भी ताप का प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव तीन प्रकार का हो सकता है। (१) स्फान के प्रसार अथवा संकोचन से स्फान के आकार में परिवर्तन हो सकता है। (२) स्फटिक के विशिष्ट आवर्तन (Specific rotation) में इनकी मोटाई के परिवर्तन से परिवर्तन हो सकता है। (३) अनुमाप के पदार्थ के प्रसार अथवा संकोचन से अनुमाप में परिवर्तन हो सकता है। इन परिवर्तनों के लिए वाचन के मान में संशोधन की आवश्यकता होती है।

चीनी के ताप-गुणक—वेन्टज के वाचन में शुद्ध शर्करा के प्रति १° श० के परिवर्तन से औसत ०·०३०३ का परिणमन (Variation) होता है। इस कारण ताप गुणक ०·०००३०३ माना गया है। अन्य शर्कराओं में भी इसी प्रकार के परिणमन पाये गये हैं।

आजकल अनेक प्रकार के शर्करामापक बने हैं। उन सबों का वर्णन करना स्थान की कमी से सम्भव नहीं है। केवल कुछ शर्करामापकों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है जो साधारणतया उपयोग में आते हैं।

स्मिट और हांश एक-स्फान शर्करामापक—एक शर्करामापक का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इसमें स्फटिक का एक स्फान होता है। यह आन्तुरित (milled) पेच से घुम सकता है। इसमें एक लम्ब होता है जो पृथक करने योग्य अभिवार (bracket) में स्थित रहता है। वाचन अनुमाप निकेलिन पट्ट पर खुदा रहता है जो स्फान के साथ बँधा रहता है अथवा स्वयं स्फान पर खोदा रहता है। इस यंत्र में यदि चाहें तो तापमापक भी लगा सकते हैं जिससे स्फान का ताप मालूम कर सकें।

इसी प्रकार का शर्करामापक लौकें जोबिन का शर्करामापक है जिसका चित्र यहाँ दिया गया है।

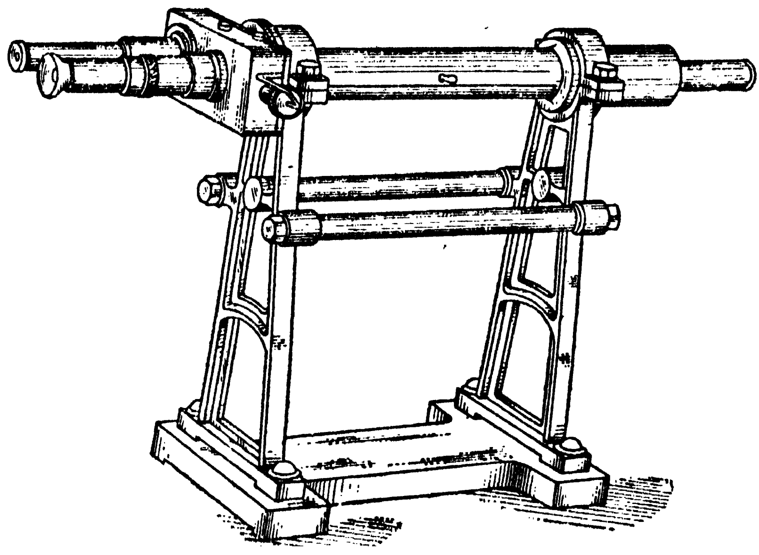


चित्र ६२—लौकें-जोबिन शर्करामापक

स्मिट और हांश का द्वि-स्फान शर्करामापक भी होता है जिससे एक स्फान दूसरे से कुछ ऊँचे पर स्थित रहता है। दोनों दो आंन्तुरित पेच से घूम सकते हैं। इसमें बिजली से प्रकाश उत्पन्न करने का ऐसा प्रबन्ध रहता है कि उससे अवलोकक लिख-पढ़ भी सकता है। ऐसे यंत्रों में बाइक्रोमेट कोण के स्थान में काँच निस्यन्दक भी रहता है जिसे इच्छानुसार उद्याम (lever) द्वारा घुमा सकते हैं। उष्ण स्थानों के लिए यन्त्रों में विश्लेषक और ध्रुवीयक ऐसे मढ़े होते हैं कि दो पेचों की सहायता से उन्हें शीघ्रता से हटा सकें। इन्हें हटाकर सूराख को धातु के पट्टों से बन्द कर देते हैं ताकि धूल उसमें न प्रविष्ट कर सके। त्रिपार्श्व को धोकर शोषित्र में अथवा कन्दु (oven) में रख देते हैं ताकि त्रिपार्श्वों पर कवक न पैदा हो।

फ्रिक शर्करामापक—फ्रिक का शर्करामापक अर्ध-छाया शर्करामापक है और उसकी बनावट बिलकुल अर्ध-छाया शर्करामापक-सी ही है, केवल अनुमाप के प्रभासन की रीति में भिन्नता है। इसमें प्रभासन स्थान से निकला प्रकाश व्यवधि (diaphragm) द्वारा होकर दर्पण और लेंसों से प्रतिविम्बित (reflected) हो अनुमाप पर पड़ता है। अनुमाप उर्ध्वाधार काँच पट्ट पर खोदा होता है जो स्फटिक स्फान पर मढ़ा होता है और अनुश्रेणी पट्ट के पीछे घूमता है। इससे अनुमाप के भाजन बड़े साफ देख पड़ते हैं और वाचन सुखपूर्वक और यथार्थता से हो जाता है।

बेलिंघम और स्टानले स्फटिक-स्फान शर्करामापक—एक शर्करामापक का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इसका ध्रुवियक कैलसाइट के दो ठोस चतुःसमभुज होते हैं और इस प्रकार कटे होते हैं कि साधारण किरण तो पार्श्व में अवशोषित हो जाती है; पर असाधारण किरण उससे निकल जाती है। प्रत्येक चतुःसमभुज से स्फान-आकार का प्रभाग (section) इस प्रकार कटा रहता है कि उससे अर्ध-छाया कोण बनता है। बिना किसी सीमेंट अथवा बाल्सम के दोनों त्रिपार्श्व एक दूसरे के संस्पर्श में रखे होते हैं ; क्योंकि इस सीमेंट अथवा बाल्सम में समय बीतने पर दरारें पड़ जाती हैं और क्षेत्र में असमानता आ जाती है। इन चतुःसमभुजों में एक का छोर बहुत तीक्ष्ण होता है और क्षेत्र के दो भागों का यह विभाजन रेखा होती है।



चित्र ६३—बेलिंघम और स्टानले शर्करामापक

इसका ध्रुवीयक सरलता से हटाकर धोआ जा सकता और फिर पूर्ववत् रखा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर यह सरलता से बदला भी जा सकता है।

इस शर्करामापक की स्फटिक-संतुलन पद्धति एक विशिष्ट प्रकार की होती है। इसका चल-स्फान वृत्ताकार होता है और इसका वितान केवल दो सेंटीमीटर होता है। इसका स्फान दक्षावर्तक और वामावर्तक स्फटिकों के दो विभिन्न गुणों स्फानों को एक साथ जोड़कर समानान्तर पट्ट के रूप में बना होता है। स्फानों का प्रत्येक जोड़ा एक उपयुक्त धारक (container) में रखा होता है। अनुमाप का वितान -३०° से $+ १३०^\circ$ होता है।

कुछ शर्करामापकों में स्फटिक-स्फान समतोलन नहीं होता। ऐसे यंत्रों में सोडियम-वाष्प दीप उपयुक्त करना पड़ता है। ऐसे यंत्र सस्ते होते और उनके परिणाम में अधिक यथार्थता होती है; क्योंकि पूर्णतः समायव स्फटिक-स्फानों का प्राप्त होना कठिन होता है। ऐसे यंत्रों में एक यंत्र है :—

बेलिंघम और स्टानले शर्करामापक। इसका चित्र यहाँ दिया हुआ है। यह एक भारी स्थाम पर मढ़ा होता है। स्थाम के तल वक्र होते हैं ताकि उसपर धूल न बैठे और न तरल ही अधिक देर तक टिका रहे। यंत्र का एक आवश्यक अंग वैद्युत् सोडियम-वाष्प दीप होता है। यह एक ओर स्थित रहता है और पीछे से खोला जा सकता है। यंत्र में ध्रुवियक और विश्लेषक होते हैं। विश्लेषक को आच्छुरित पेच से घुमा सकते हैं। अनुमाप काँच के वृत्त पर खोदा रहता है और इसे पारेषित (transmitted) प्रकाश से जो सोडियमदीप से प्राप्त होता है, पढ़ते हैं। ऐसा यंत्र इंगलैण्ड के हिलजर कम्पनी तथा और भी अन्य कम्पनियों द्वारा तैयार होता है।

बेलिंघम और स्टानले प्रक्षेप (projection) शर्करामापक—इस यंत्र के वाचन में प्रक्षेप भुजायमान का सिद्धान्त उपयुक्त होता है। काशिक अक्ष के समकोण में अवलोकन छोर रख कर एक दूसरी विशेषता इसमें जोड़ी जाती है। इसके अनुमाप में -३०° से $+ १००^\circ$ तक वाचन हो सकता है। अनुश्रेणी एक दूसरे काँच पर खोदी रहती है। वृत्त को हाथ से घुमाते और अन्तिम व्यवस्थापन (adujstment) पेंच के द्वारा करते हैं। इस यंत्र के एक किनारे में परदा रहता है, उसी में होकर वाचन करते हैं। इससे अंधेरे स्थान की आवश्यकता नहीं होती। नग्न आँखों से अवलोकन और वाचन करते हैं। अनुमाप में ०.०१° तक पढ़ सकते हैं।

छत्तीसवाँ प्रकरण

शर्करामापक के उपसाधन

ध्रुवीयनमापक और शर्करामापक में सबसे अधिक आवश्यक अंग उनका प्रभासन है। इसके लिए अनेक प्रकार के दीप उपयुक्त होते हैं। उनमें सोडियम दीप अधिक महत्त्व के हैं।

सोडियम गैस दीप—इसका सबसे सरल रूप बुंसेन दाहक है। बुंसेन दाहक के चारों ओर चिमनी लगी रहती है। इस चिमनी को आवश्यकतानुसार पेच से ऊपर-नीचे कर सकते हैं। दाहक में एक छोटा प्रसीती (grooved)-वलय होता है जो पोरसीलेन अथवा प्लेटिनम का बना होता है। इसी प्रसीती-वलय पर नमक रखते हैं। दाहक का उष्ण भाग वलय पर पड़कर सोडियम प्रकाश उत्पन्न करता है। यहाँ वलय में समय-समय पर नमक डालने की आवश्यकता होती है। लैण्डोट के सोडियम दीप से बड़ी प्रचंड ज्वाला प्राप्त होती है। अन्य प्रकार के सोडियमदीप भी बने हैं और उपयुक्त होते हैं। पर ऐसे दीप असुविधाजनक होते हैं। इनसे निकला प्रकाश उतना प्रचंड नहीं होता जितना वैद्युत् उत्तापदीप होते हैं।

वैद्युत् सोडियम-वाष्प दीप—वैद्युत् सोडियम-वाष्प दीप से अधिक प्रचंड प्रकाश प्राप्त होता है। अनेक रूपों के सोडियम-वाष्प दीप आज बने हैं और उपयुक्त होते हैं। इनमें जाइस का वैद्युत् सोडियम-वाष्प दीप महत्त्व का है। यह दीप ११० से २२० वोल्ट के एकान्तरिक अथवा वाह-विद्युत् में उपयुक्त हो सकता है। सोडियम गैस दीप से यह इस कारण अच्छा है कि इसकी ज्वाला खुली नहीं रहती और इसमें बहुत अल्प उष्मा उत्पन्न होती है। प्रकाश की प्रचंडता अधिक और एक-सी होती है। प्रचंडता घटती बढ़ती नहीं, वरन् एक रूप से स्थायी रहती है।

सोडियम प्रकाश का शोधन—अधिक यथार्थ मापन के लिए सोडियम किरणों को शुद्ध करने की आवश्यकता होती है। यह दो रीतियों से हो सकता है। या तो इसके लिए प्रकाश-निःस्यन्दन उपयुक्त हों अथवा अन्य साधनों से अनावश्यक किरणों को हटा दें। बाइक्रोमेट और युरेनस लवणों के विलयनों के उपयोग से सब अनावश्यक किरणें छनकर निकल जाती हैं। इसके लिए लिपिश-प्रकाश निःस्यन्दन अधिक उपयोग सिद्ध हुआ है। इसमें प्रकाश निस्यन्दन के लिए दो प्रकाश-कोशा उपयुक्त होते हैं। एक में पोटैसियम बाइक्रोमेट का ६ प्रतिशत विलयन रखा रहता है और दूसरे में यूरेनस सल्फेट का विलयन रखा रहता है। इस विलयन को इस प्रकार तैयार करते हैं।

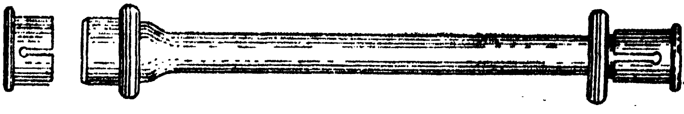
पाँच ग्राम शुद्ध यूरेनील सल्फ़ेट—मणिभ जल के साथ—को १०० मिलिलिटर जल में घुलाते हैं। उसमें दो ग्राम रसायनतः शुद्ध जस्ते का चूर्ण डालकर उसमें तीन मिलिलिटर सान्द्र गन्धकाम्ल थोड़ा-थोड़ा एक-एक मिलिलिटर डालते हैं। जब हाइड्रोजन का निकलना बन्द हो जाता है तब फिर एक मिलिलिटर गन्धकाम्ल डालते हैं। क्रिया होने के समय फ्लास्क को काग से बन्द रखते हैं। छः घन्टे तक फिर उसे रख छोड़ते हैं। छः घन्टे के बाद विलयन को छानकर कोशा को ऐसे भर देते हैं कि वायु का छोटा-से-छोटा बुलबुला ही उसमें रह सके। एक दिन रखने के बाद कोशा को काम में लाते हैं। ऐसा विलयन एक से दो मास तक काम दे सकता है। जब इसका गाढ़ा हरा रंग ऑक्सीकरण से पीत हो जाय तो उसे फेंक कर दूसरा ताजा विलयन उपयुक्त करते हैं।

सोडियम प्रकाश का वर्णपट संशोधन—जब बहुत यथार्थता का परिणाम प्राप्त करना होता है तब वर्णपट से संशोधन द्वारा शुद्ध सोडियम प्रकाश प्राप्त करते हैं। इस संशोधन के लिए स्मिट और हांश का मोनोक्रोमेटर उपयुक्त करते हैं।

अन्य एक-वर्णिक प्रकाश—पारद-वाष्प दीप से भी एक-वर्णिक किरण रश्मि प्राप्त होती है। यहाँ पारद का हरित लकीर ५४६·१ एम-म्यू की प्राप्त होती है। अनेक प्रकार के पारद दीप इस काम के लिए बने हैं और बिकते हैं। कुछ दीपों में जस्ता, कैडमियम, थैलियम, पौटैसियम, रूबीडियम, सीज़ियम या निओन भी उपयुक्त हुए हैं। इन सबों में सोडियम प्रकाश के सदृश वर्णपट-संशोधन की आवश्यकता होती है।

श्वेत प्रकाश दीप—शर्करामापकों के प्रभासन के लिए अनेक श्वेत प्रकाश दीप बने हैं और उपयुक्त होते हैं। इनमें कुछ दीपों में किरासन के तेल जलते हैं। कुछ में एलकोहल। गैस दीप भी इस काम के लिए बने हैं। पर इन दीपों से प्रचंड प्रभासन नहीं प्राप्त होता। इस काम के लिए उत्ताप विद्युत् दीप अच्छे प्रमाणित हुए हैं। 'माजड़ा' दीप इसके लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है। एलकोहल दीप भी इस काम के लिए बने हैं। ऐसीटिलीन दीप भी उपयुक्त हो सकते हैं। कुछ दीपों के चित्र पृष्ठ ३११ और ३१२ में दिए हुए हैं।

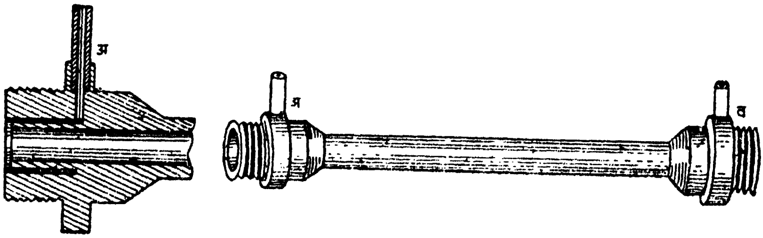
ध्रुवीयन नली—जिस नली में चीनी का विलयन रखकर आवर्तन निकाला जाता है, उस नली के चुनाव में सावधानता रखनी चाहिए। इन में तीन बातों का ध्यान बहुत



चित्र ६४—लैण्डोल्ट (Landolt) ध्रुवीयन-नली (२०७ मिलिमीटर की)

आवश्यक है। पहली बात यह है कि नली की लम्बाई बहुत यथार्थ होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि नली के छोर और काँच ढक्कन के तल समानान्तर रहना चाहिए और तीसरी बात यह है कि नली में ठीक तरह से टोपी लगाकर यथास्थान मध्य में रखा रहना चाहिए। ऐसी कुछ नलियों का चित्र जो इसके लिए उपयुक्त होते हैं यहाँ दिया जा रहा है। कुछ नलियों में धातु की टोपियाँ लगी रहती हैं; पर अधिकांश में काँच की टोपियाँ ही होती हैं।

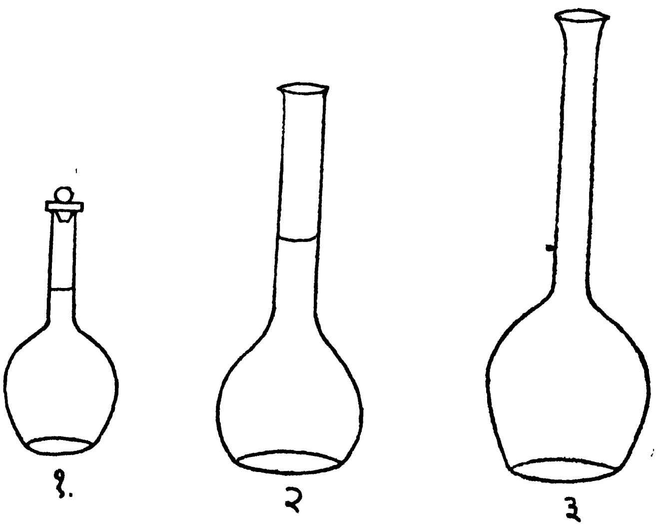
कुछ नलियाँ उच्च ताप के लिए बनी हैं। आवर्तन निर्धारण में चीनी की ठीक-ठीक मात्रा का ज्ञान रहना चाहिए नहीं तो परिणाम यथार्थ और विश्वनीय नहीं होगा। चीनी के भार निकालने के लिए रासायनिक तुला का उपयोग होता है। ऐसी तुला में २०० ग्राम तक यथार्थता से तौला जा सकता है। इस में ०·१ मिलिग्राम से अधिक का विभ्रम नहीं होना चाहिए। इसकी द्रुतता ०·१ मिलिग्राम होनी चाहिए। प्रत्येक प्रयोगशाला में एक



चित्र ६५—पेले (Pellet) की नली (सतत ध्रुवीयन के लिए)

ऐसी तुला होनी चाहिए। तुला की बाँट भी यथार्थ होनी चाहिए। शर्करा विश्लेषण के लिए २६·०२६ ग्राम और १३·०१३ ग्राम की बाँट बनी होती है। रासायनिक तुला के अतिरिक्त सामान्य रूप से पदार्थों को तौलने के लिए एक खुली तुला भी होनी चाहिए जिससे सन्निकट भार तौला जा सके।

फ्लास्क—चीनी का विलयन तैयार करने के लिए फ्लास्क की आवश्यकता होती है। इसके लिए फ्लास्क ऐसा होना चाहिए जिसमें काँच के डाँट लगे हों। ऐसे कुछ फ्लास्कों



२५ सी०सी० ५० सी०सी० १०० सी०सी०

चित्र ६६—मापक-फ्लास्क

का चित्र यहाँ दिया जा रहा है। इन फ्लास्कों का समावेशन भिन्न-भिन्न होता है। दस मिलिलिटर से १००० मिलिलिटर के फ्लास्क, साधारणतया उपयुक्त होते हैं। साधारणतया, १०, २०, २५, ५०, १००, २००, २५०, ३००, ५०० और १००० मिलिलिटर के

फ्लास्क दूकानों पर मिलते हैं। जिस समावेशन के फ्लास्क की आवश्यकता हो, उन्हें मँगाकर उपयुक्त करना चाहिए। इन फ्लास्कों के गरदन पर चिह्न बना रहता है जिस चिह्न तक विलयन बनाना चाहिए। कुछ फ्लास्कों में ताप भी अंकित रहते हैं। कुछ फ्लास्कों की गरदन लम्बी और पतली होती हैं और कुछ की चौड़ी। पतली गरदनवाले फ्लास्क अच्छे होते हैं; क्योंकि उनमें विलयन के भरने में विभ्रम कम होता है।

शर्करा के विश्लेषण में ऐसे फ्लास्क को उपयुक्त करना चाहिए जो श्रेष्ठ काँच के बने हों, पारदर्श हों और जिनमें वायु के बुलबुले न हों। फ्लास्क ऐसे काँच का बना होना चाहिए जिसपर रासायनिक क्रिया न्यूनतम हो। ऐसे फ्लास्क का अभितापन (annealing) पूर्णरूप से होना चाहिए। फ्लास्क का अंशांकन चारों ओर एक-सा महीन, पर स्पष्ट रूप से दृश्य होना चाहिए। ऐसे फ्लास्कों की पेंदे कुछ उठी हुई नतोदर होनी चाहिए ताकि उनके लुढ़क जाने का डर न हो। इनकी गरदन रम्भाकार होनी चाहिए। जहाँ अंशांकन चिह्न है, वहाँ गरदन मोटी नहीं होनी चाहिए। अंशांकन का चिह्न चारों ओर एक-सा रहना चाहिए। यह चिह्न १०० मिलिलिटर फ्लास्क में ऊपर के छोर से कम-से-कम ३ सेंटीमीटर नीचे और नीचे के छोर से कम-से-कम एक सेंटीमीटर ऊपर रहना चाहिए।

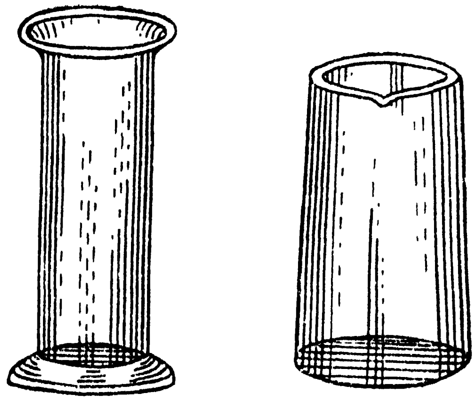
शर्करा फ्लास्क के अंकों का शोधन होना चाहिए। ये १०० मिलिलिटर के फ्लास्क या तो २०° श० अथवा १७·५° श० पर अंशांकित होते हैं। इन अंकों के शोधन की रीति निम्नलिखित है।

जिस फ्लास्क की परीक्षा करनी है, उसे पूर्णरूप से साफ कर सुखा लेना चाहिए और तब जिस ताप के लिए फ्लास्क बना है, उस ताप पर उसे तौलना चाहिए। तौलने के बाद प्रमाप ताप पर ही आसुत जल से भरकर तौलना चाहिए।

इस्तमाल करने से पहले आसुत जल को उबाल लेना चाहिए ताकि जल से सारी विलीन वायु निकल जाय। उबालकर पानी को ठंढा कर लेना चाहिए और तब चिह्न तक पानी से भरना चाहिए। गरदन में चिह्न के ऊपर के भाग को पोंछकर बिलकुल सुखा लेना चाहिए। यदि फ्लास्क २७·५° के लिए बना है तो इस ताप पर आसुत जल का भार पीतल की बाँट से वायु में १०० ग्राम रहना चाहिए। यदि ताप ४° श० है तो शून्य में इसका भार १०० ग्राम पर वायु में पीतल की बाँट से २०° श० पर ९९·७·१७६ ग्राम रहना चाहिए। इस फ्लास्कों में विभ्रम की निम्न सीमाएँ निर्धारित की गई है।

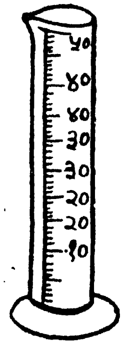
समावेशन मिलीलीटर	विभ्रम की सीमा
२०००	०·५
१०००	०·३
५००	०·१५
३००	०·१२
२००	०·१०
५०	०·०८
२५	०·०३
११	०·०१

कीप और रम्भ—शर्करा के विलयन के छानने के लिए काँच के कीप उपयुक्त होते हैं। इन कीपों का स्तम्भ छोटा होना चाहिए। लम्बे स्तम्भवाले कीप अच्छे नहीं होते। कीप इतना बड़ा होना चाहिए कि उसमें १०० मिलीलिटर विलयन अँट सके; काँच के कीप बहुत टूटते हैं। इससे अमेरिका में कठोर रबर के कीप उपयुक्त हो रहे हैं।



ब ख

चित्र ९७—पानी के स्थानान्तरण के लिए जार



चित्र ९८—मापकरम्भ

ये रबर के कीप सन्तोषप्रद प्रमाणित हुए हैं। विलयन के छानने के समय कीप को बड़े घटी-काँच से ढके रखना चाहिए ताकि विलयन का उद्वाष्पन न हो। विलयन का निःस्यन्दन काँच के रम्भ या जार में करना चाहिए। ऐसे कुछ जारों और रम्भों का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

शर्करामापकों को रखने के लिए अलग कमरा होना आवश्यक है, नहीं तो धुएँ और वाष्पों से यन्त्र के संक्षरण की सम्भावना रहती है। कमरा ऐसा होना चाहिए कि वायु स्वच्छन्दता से प्रविष्ट कर सके और सरलता से अँधेरा किया जा सके। यदि कोई कमरा अधिक बड़ा हो तो उसे घेरकर परदा डालकर शर्करामापक के लिए एक छोटा बन्द स्थान बनाया जा सकता है। यदि यह भी सम्भव न हो तो यन्त्र को लकड़ी के एक बड़े सन्दूक में रखकर प्रयोगशाला के किसी किनारे में रखा जा सकता है। जिस मेज पर यन्त्र रखा जाय, वह मजबूत होना चाहिए। यदि मेज को रबर की गद्दी पर रखें तो यन्त्र का हिलना-डोलना बहुत-कुछ कम किया जा सकता है। यह बहुत आवश्यक है कि शर्करामापक को पूर्णतया स्वच्छ रखा जाय। कहीं भी यदि धूल पड़े हो तो उसे साफ कर देना चाहिए। काँचों और अन्य भागों को कोमल वस्त्र से पोंछना चाहिए। यदि विलयन कहीं गिरे तो उसे तत्काल पोंछकर साफ कर देना चाहिए।

बाइक्रोमेट कोशा को समय-समय पर देखते रहना चाहिए। यदि उसमें बुलबुले निकलें तो तुरन्त बदल देना चाहिए। बाइक्रोमेट कोशा के स्थान में यदि काँच उपयुक्त हो तो काँच को सदा स्वच्छ रखना चाहिए। यदि यन्त्र काम में न आता हो तो उसे साफ कर के ढँककर रखना चाहिए। वस्तुत: विश्लेषण के समस्त उपसाधनों को, नलियों, फ्लास्कों, कीपों इत्यादि को, पूर्ण स्वच्छ रखना चाहिए। यदि विलयन के स्वच्छ करने में लेड सबएसिटेट का उपयोग हुआ है तो उससे काँच के पात्रों में लेड कार्बोनेट का श्वेत आवरण चढ़ जाता है। इस आवरण को रोशेल लवण और सोडियम हाइड्रौक्साइड के विलयन में धोकर हटा देना चाहिए। हाइड्रोक्लोरिक अथवा नाइट्रिक अम्ल से भी यह आवरण हट जाता है। इन पदार्थों से धोने के बाद फिर स्वच्छ जल से कई बार धोकर सुखाकर रखना चाहिए।

सैंतीसवाँ प्रकरण

शर्कराओं का विशिष्ट आवर्तन

शर्कराओं के विलयन में आवर्तन होता है। भिन्न-भिन्न शर्कराओं के आवर्तनों की तुलना के लिए हमें आवर्तन को विशिष्ट आवर्तन अथवा विशिष्ट आवर्तक बल द्वारा प्रकट करना पड़ता है। वस्तुत: विशिष्ट आवर्तन वह कोणीय आवर्तन है जो ऐसे विलयन से जिसमें पदार्थ का एक ग्राम एक मिलिलिटर में प्रविलीन कर एक डेसीमीटर लम्बी नली में रखने से ध्रुवीयित प्रकाश के तल को प्रदान करता है। इस विशिष्ट आवर्तन को [क] द्वारा सूचित करते हैं। इस विशिष्ट आवर्तन को निम्न समीकरण द्वारा निकालते हैं।

$$\left[\text{क} \right] = \frac{१०० \times \text{प}}{\text{सं} \times \text{लं}}$$

—जहाँ 'प' विलयन का कोणीय आवर्तन, सं विलयन की सान्द्रता (१०० मिलिलिटर में ग्राम भार) और लं अवलोकन नली की लम्बाई डेसीमीटर में है। सं के स्थान में प्र × घ उपयुक्त कर सकते हैं। जहाँ 'प्र' पदार्थ का विलयन में प्रतिशतता और 'घ' विलयन की वास्तविक घनता है। इससे उपर्युक्त समीकरण अब हो जाता है।

$$\left[\text{क} \right] = \frac{१०० \times \text{प}}{\text{प्र} \times \text{घ} \times \text{लं}}$$

जैसे ऊपर कहा गया है कि कोणीय आवर्तन प्रकाश के तरंगदैर्घ्य पर निर्भर करता है। यदि प्रकाश के लिए सोडियम प्रकाश उपयुक्त हो तो सोडियम की डी लकीर से इस प्रकाश को प्रकट करते हैं। ऐसी दशा में लिखते हैं $\left[\text{क} \right]_{\text{डी}}$। जिस ताप पर विशिष्ट आवर्तन निकालते हैं, उस ताप को भी जोड़ देते हैं। यदि ताप २०° श० है तो यह $\left[\text{क} \right]^{२०°}_{\text{डी}}$ से प्रकट होता है।

विशिष्ट आवर्तन निकालने की रीति यह है। २० ग्राम चीनी को तौलकर १०० मिलिलिटर विलयन बनाकर २०° श० पर ४००-मिलीमीटर नली में रखकर कोणीय आवर्तन ५३·२° निकालते हैं। इससे इस सान्द्रता का विशिष्ट आवर्तन

$$\left[\text{क} \right]^{२०°}_{\text{डी}} = \frac{१०० \times ५३{\cdot}२}{२० \times ४} = +६६{\cdot}५$$ प्राप्त होता है।

शर्करामापक में यदि वेन्टज के अनुमाप में वाचन प्राप्त किया है तो उसे कोणीय डिगरी में इस प्रकार परिणत कर सकते हैं।

१५ ग्राम चीनी को पानी में घुलाकर १०० मिलिलिटर बनाकर २०० मिलिमीटर नली में रखकर शर्करामापक में रखने से +५७·७ वाचन प्राप्त होता है। चूँकि १° वें = ०·३४६५७ कोणीय डीगरी के इस कारण

$$\text{चीनी का} \left[\text{क} \right]_{\text{डी}} = \frac{१०० \times (०·३४६५७ \times ५७·७)}{१५ \times २} = +६६·६$$

ऊपर कहा गया है कि प्रकाश के विभिन्न तरंगदैर्घ्यों के कारण स्फटिक और चीनी के आवर्तन में विभिन्नता होती है। यह आवर्तन-विभिन्नता कुछ दशाओं में बहुत अधिक पायी गई है। इसके सुधार के लिए अनेक सूत्र प्रस्तावित हुए हैं। इनमें लौरी और रिचार्ड के सूत्र से अधिक यथार्थ परिणाम-फल प्राप्त होता है। वह सूत्र है—

$$\left[\text{क} \right] = \frac{२१·६४८}{\text{लैमोडा}^{२} - ०·०२१३}$$ जहाँ तरंगदैर्घ्य लैमोडा माइक्रोन (एक मिलिमीटर का सहस्रवाँ भाग में) में प्रकट किया गया है।

विशिष्ट आवर्तन पर सांद्रता का प्रभाव—अनेक लोगों ने इसका अध्ययन किया है और इसके फलस्वरूप उन्होंने कुछ समीकरणों को निकाला है जिनसे इसके परिणाम और यथार्थ वाचन में बहुत समानता पाई गई है। यदि हम विशिष्ट आवर्तन को कोटि (ordinate) और चीनी के विलयन को भुजा (abscissa) मानकर लकीर खींचे तो हमें या तो सीधी रेखा अथवा एकेन्द्र (parabola) अथवा अधीन्द्र (hyperbola) प्राप्त होगा। १० प्रतिशत विलयन का विशिष्ट आवर्तन +६६·५६, २० प्रतिशत का +६६·५२, ३० प्रतिशत का +६६·४१, ४० प्रतिशत का ६६·२७ और ५० प्रतिशत का ६६·०६ प्राप्त होता है। निम्न समीकरण की सहायता से विशिष्ट आवर्तन निकाला गया है।

$$\left[\text{क} \right]^{२०^\circ}_{\text{डी}} = ६६·५६४ + ०·००२५\ \text{प्र} - ०·०००२५\ \text{प्र}^{२}$$; १० प्रतिशत का ६६·५६, २० प्रतिशत का ६६·५१, ३० प्रतिशत का ६६·४१, ४० प्रतिशत का ६६·२६ और ५० प्रतिशत का ६६·०६। यह मान यथार्थ वाचन से बहुत अधिक मिलता-जुलता है। यह समीकरण १० प्रतिशत से कम और ५० प्रतिशत से अधिक सांद्रता के लिए लागू नहीं है। स्मिटज (Schmitz) ने ५ से ६५ प्रतिशत विलयन के लिए यह समीकरण दिया है :—

$$\left[\text{क} \right]^{२०^\circ}_{\text{डी}} = ६६·५१० + ०·००४५०८\ \text{प्र} - ०·०००२८०५२\ \text{प्र}^{२}$$

अन्य लोगों ने भी इसी प्रकार के समीकरण दिये हैं।

विशिष्ट आवर्तन पर ताप का प्रभाव—विशिष्ट आवर्तन पर ताप का प्रभाव उतना अधिक नहीं होता। कुछ लोगों के मत से प्रायः नगण्य होता है। ताप की वृद्धि से विशिष्ट आवर्तन में कमी होती है। एक ने निकाला है कि विशिष्ट आवर्तन में

एक डिगरी ताप की वृद्धि से ०·०००२३२ की कमी होती है। दूसरे ने एक डिगरी की वृद्धि से ०·०११४ की कमी देखी है। इस कमी को निम्नलिखित समीकरण के द्वारा प्रकट करते हैं :—

$$\left[\text{क}\right]^{\text{ता}}_{\text{डी}} = \left[\text{क}\right]^{२०}_{\text{डी}} - ०·०११४\ (\text{ता} - २०)$$

अन्य शर्कराओं के विशिष्ट आवर्तन पर भी इसी प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं।

विशिष्ट आवर्तन पर विलायक का प्रभाव—साधारणतया चीनी के विलयन जल में ही बनते हैं। पर कभी-कभी एलकोहल सदृश अन्य विलायकों में भी बन सकते हैं। ऐसी दशा में विलायक के प्रभाव का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

टौलेन्स ने १० प्रतिशत विलयन का विशिष्ट आवर्तन विभिन्न विलायकों में इस प्रकार प्राप्त किया है—

जल में	+६६·६६७
१ भाग जल और ३ भाग एथिल एलकोहल में	+६६·८२७
१ भाग जल और ३ भाग मेथिल एलकोहल में	+६८·६२८
१ भाग जल और ३ भाग ऐसीटोन में	+६७·३६६

इससे ज्ञात होता है कि मेथिल एलकोहल और ऐसीटोन विलायक में विशिष्ट आवर्तन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है; पर एथिल एलकोहल में बहुत अल्प। क्रासेन ने भी ८० प्रतिशत एलकोहल में विशिष्ट आवर्तन में वर्धन पाया है। अन्य शर्कराओं में भी इसी प्रकार के परिवर्तन पाये गये हैं। वस्तुत: विलायक का प्रभाव विशिष्ट आवर्तन पर पर्याप्त पड़ता है और इसे भुलाया नहीं जा सकता।

विशिष्ट आवर्तन पर अन्य पदार्थों का प्रभाव- यह प्रभाव दो प्रकार का होता है। कुछ पदार्थ जैसे क्षार, और अम्लिक लवण ऐसे है जिनकी रासायनिक क्रिया चीनी पर होती है और उससे विशिष्ट आवर्तन में परिवर्तन होता है। इस रासायनिक परिवर्तन से इक्षु-शर्करा का विपर्यय हो जाता है। इस कारण यह आवश्यक है कि चीनी के विलयन का विशिष्ट आवर्तन उदासीन विलयन में ही निकाला जाय। उदासीन विलयन में ऐसे परिवर्तन की सम्भावना नहीं है।

उदासीन लवणों का प्रभाव भी पड़ता है; पर यह प्रभाव दूसरे प्रकार का होता है। यह बहुत-कुछ भौतिक होता है। जिन शर्कराओं का विपर्यय नहीं होता, उन पर भी अम्लों का प्रभाव ऐसा ही होता है।

अलकली और अलकली-मिट्टी धातुओं के लवणों, क्लोराइड, नाइट्रेट, सल्फेट, फास्फेट, ऐसीटेट और साइट्रेट, मैगनीसियम सलफेट और अनेक अन्य लवणों से इक्षु-शर्करा के विशिष्ट आवर्तन में कमी होती है और लवणों की मात्रा की वृद्धि से ह्रास में वृद्धि होती है और लवणों के अणुभार की कमी से भी आवर्तन के ह्रास में वृद्धि होती है। अलकली हाइड्राक्साइडों और अलकली - मिट्टी के हाइड्राक्साइडों और कार्बोनेटों से भी विशिष्ट आवर्तन में कमी होतो है।

लेड सब-ऐसीटेट का आवर्तन पर प्रभाव— चीनी के विलयन को स्वच्छ करने के लिए लेड सब- ऐसीटेट के विलयन का उपयोग होता है। विटमान ने विपर्यस्त विलयन

के ५० मिलिलिटर को पानी और लेड सब-ऐसीटेट का ५० मिलिलिटर डालकर ध्रुवीयन का अध्ययन किया था। उससे निम्नांकित आंकड़े प्राप्त हुए थे—

जल मिलिलिटर	लेड सब-ऐसीटेट विलयन मिलिलिटर	ध्रुवीयन
५०	०	–२·३
४०	१०	–१·०
३०	२०	+३·७
१०	४०	+७·५

बेटस और ब्लेक के आंकड़े निम्नलिखित हैं—

क्षारीय लेड विलयन मिलिलिटर की संख्या	एक जिसमें लेड लवण पड़ा था और दूसरा जिसमें लेड लवण नहीं था। दोनों के वाचन में अन्तर
०·५	–०·०६
१·०	–०·१३
२·०	–०·१३
३·०	–०·१८
४·०	–०·०६
५·०	–०·०३
६·०	०·००
७·०	+०·०५
८·०	+०·०६
१०·०	+०·१६
१५·०	+०·२६
२०·०	+०·४५
२५·०	+०·५८
३०·०	+०·६२
३५·०	+०·७७
४०·०	+०·७७
६३·०	+०·६५

धन चिह्न से उच्च ध्रुवीयनमान का और ऋण चिह्न से न्यून ध्रुवीयनमान का बोध होता है। इससे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि लेड सब-ऐसीटेट के विलयन का विशिष्ट

आवर्तन पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। अन्य शर्कराओं पर भी इसी प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। उदासीन लवणों का प्रभाव विभिन्न होता है। कुछ लवणों से आवर्तन बढ़ जाता और कुछ से कम हो जाता है तथा कुछ से बिलकुल कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं दिया जा सकता है।

काशिक पदार्थों का विशिष्ट आवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी अध्ययन हुआ है। अनेक काशिक शर्कराओं को मिलाकर उनके आवर्तन का विस्तार से अध्ययन हुआ है। उससे हम निम्नलिखित परिणाम पर पहुँचे हैं। "यद्यपि विशिष्ट आवर्तन एक योगजात गुण है; पर मिश्र शर्कराओं का विशिष्ट आवर्तन उनके आंशिक सान्द्रता के विशिष्ट आवर्तनों का योग नहीं होता। यह विशिष्ट आवर्तन प्रत्येक शर्करा के विशिष्ट आवर्तनों का योग होता है, यदि यह शर्करा समस्त शर्करा की सान्द्रता पर अकेले रहती है।" दूसरे शब्दों में विशिष्ट आवर्तन शर्करा के आंशिक सान्द्रता से प्रभावित नहीं होता; बल्कि जल की सान्द्रता से प्रभावित होता है।

क्षीणावर्तन—अनेक शर्कराओं में क्षीणावर्तन देखा जाता है। पहले-पहले देखा गया था कि द्राक्ष शर्करा के जलीय विलयन का आवर्तन कुछ दिनों के बाद आधा हो जाता था। इससे इसका नाम अर्धावर्तन (birotation) दिया गया था; किन्तु दूसरो शर्कराओं में यह आवर्तन अनियमित रूपसे बढ़ता देखा गया। इससे इसका नाम बहु-आवर्तन (multirotation) दिया गया था। पीछे लौरी ने १८६६ में इसका नाम क्षीणा-वर्तन (mutarotation) दिया। अनेक शर्कराओं में यह क्षीणावर्तन देखा जाता है। कुछ पदार्थों में आवर्तन बढ़ जाता है और कुछ में कम हो जाता है। कुछ पदार्थों में कुछ दिशाओं में घटता और कुछ दिशाओं में बढ़ जाता है। माल्टोज़ में विलयन के रखने पर आवर्तन बढ़ जाता है।

ताप की वृद्धि से क्षीणावर्तन का वेग बढ़ जाता है। ०° श० पर क्षीणावर्तन बड़ी धीमी गति से होता है; पर १००° श० पर क्षीणावर्तन तत्क्षण हो जाता है। विभिन्न शर्कराओं का क्षीणावर्तन विभिन्न गति से होता है और यह बहुत-कुछ ताप, विलायक और अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह रासायनिक क्रिया का एक-अणुक नियम पालन करता है; पर कुछ क्षीणावर्तन की क्रियाएँ बड़ी पेचीली होती हैं।

अम्लों से क्षीणावर्तन की गति में विशेष परिवर्तन नहीं होता। क्षारों का प्रभाव अधिक होता है। सब से कम गति ऐसे विलयन में होता है जिसका पी. एच. मान ४ ६ है। पीएच के कम या अधिक होने से गति बढ़ जाती है।

लवणों के प्रभाव के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है। अधिकांश लवणों से, विशेषतः क्षारीय लवणों से, क्षीणावर्तन की गति बढ़ जाती है। सोडियम क्लोराइड के विलयन से क्षीणावर्तन की गति धीमी हो जाती है।

चीनी का क्षीणावर्तन केवल जलीय विलयन में ही नहीं होता, वरन् मेथिल एलकोहल, एथिल एलकोहल और ऐसीटोन में भी होता है; पर इन कार्बनिक विलायकों में गति पर्याप्त धीमी होती है। कार्बनिक विलयनों में जल डालने से गति बढ़ जाती है और जलीय विलयन में कार्बनिक विलायक डालने से गति धीमी हो जाती है।

क्षीणावर्तन के होने के संबंध में अनेक व्याख्याएँ दी गई हैं। सब से पहली

व्याख्या लैएडोट की थी, जिनका मत था कि शर्करा के पानी में घुलाने से पानी के साथ मिलकर शर्करा के अणुक़समूह बन जाते हैं; पर पीछे देखा गया कि चीणावर्तन के होने से शर्करा के अणु-भार में कोई परिवर्तन नहीं होता। इससे इस व्याख्या को त्याग देना पड़ा। टौलेन्स का मत था कि जल के साथ शर्करा अस्थायी हाइड्रेट बनाती है और इस हाइड्रेट से जल निकल जाने के कारण ही आवर्तन में परिवर्तन होता है। यह मत भी आज मान्य नहीं है। टानरेट ने १८९५ में बताया कि शर्कराएँ दो रूपों में रह सकती हैं। एक रूप में इनके आवर्तन बहुत ऊँचे होते हैं और दूसरे रूप में बहुत कम। तीन शर्कराओं के सम्बन्ध में उनके आँकड़े निम्नलिखित हैं—

	स्थायीरूप क	स्थायीरूप ख	अस्थायीरूप ग
द—द्राक्षशकरा	+१०५°	+५२·५°	+२२·५°
द—गैलेक्टोज	+१३५°	+८१°	+५२°
दुग्ध शर्करा	+८८°	+५५°	+३६°

इनमें 'क' रूप सामान्य शर्कराओं के हैं जो जलीय विलयन के मणिभ से प्राप्त होते हैं। 'ख' रूप वे हैं जो 'क' रूप शर्करा के जलीय विलयन में शुद्ध एलकोहल डालने से अवक्षिप्त होते हैं। यह रूप स्थायी आवर्तन के हैं। 'ग' रूप विशेष रीति से प्राप्त होते हैं। 'क' रूप शर्करा के सान्द्र जलीय विलयन के उद्वाष्पन द्वारा सुखाकर अनेक घन्टों तक प्राय: १००° श० पर तपाने से 'ग' रूप प्राप्त होता है। लिप्पमान ने यह मत प्रकट किया था कि शर्करा के दो रूपों के बीच वरिमा-रासायनिक (Stereo-chemical) परिवर्तन से चीणावर्तन होता है। आज यह मत सर्व-स्वीकृत है कि चीणावतन दो प्रकार के आवर्तन-वाले शर्कराओं के कारण होता है। एक प्रकार की शर्कराओं को 'क' और दूसरे प्रकार की शर्कराओं को 'ख' कहते हैं। इन दोनों शर्कराओं के संगठन विभिन्न होते हैं और उनका आवर्तन विभिन्न होता है; पर जब ये जल में प्रविलीन किये जाते हैं तब उन दोनों के बीच परस्पर परिवर्तन होता है। एक रूप दूसरे रूप में परिणत हो जाता है और तब कुछ समय के बाद दोनों में साम्य स्थापित हो जाता है। शर्करा का स्थायी आवर्तन दोनों रूपों के आवर्तन का योग होता है।

शर्करा	क रूप	क ⇄ ख	ख रूप
द-द्राक्षशर्करा	+११३·४°	+५२·२°	+१९°
द-फल शर्करा	−२१°	−९२°	−१३३·५°
दुग्ध शर्करा	+९०°	+५५·३°	+३५°
द-गैलेक्टोज	+११४°	+८०·५°	+५२°
द-जाइलोज	+९२°	+१९°	−२०°
मौल्टोज़	+१६८°	+१३६°	+११८°
द-अरबीनोज़	−५४°	−१०५°	−१७५°

'क' और 'ख' रूपों का अनुपात शर्करा की प्रकृति पर ही नहीं; वरन् विलायक, सान्द्रता और ताप पर भी निर्भर करता है।

अड़तीसवाँ प्रकरण

शर्करा विश्लेषण की रासायनिक रीति

शर्कराएँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ शर्कराएँ ऐसी हैं जो क्यूप्रिक ऑक्साइड को क्यूप्रस ऑक्साइड में परिणत कर देती हैं। ऐसी शर्कराओं को अवकारक शर्करा कहते हैं। ऐसी शर्कराओं में द्राक्ष शर्करा (ग्लुकोज), फल-शर्करा (फ्रुक्टोज) और दुग्ध शर्करा (लैक्टोज) प्रमुख हैं। कुछ शर्कराएं क्यूप्रिक ऑक्साइड को क्यूप्रस ऑक्साइड में परिणत नहीं करतीं ; ऐसी शर्कराओं को अ-अवकारक शर्करा कहते हैं। इक्षुशर्करा और माल्टोज अ-अवकारक शर्करा के उदाहरण हैं। अवकारक शर्कराओं की क्रियाएँ जो क्यूप्रिक ऑक्साइड पर होती हैं, वे इस प्रकार की हैं। यहाँ ग्लूकोज ग्लूकोनिक अम्ल में आक्सीकृत हो जाता है।

$$C_6H_{12}O_6 + 2\,CuO = C_6H_{12}O_7 + Cu_2O$$

और क्यूप्रिक ऑक्साइड क्यूप्रस ऑक्साइड में अवकृत हो जाता है। इसी क्रिया के आधार पर शर्कराओं की मात्रा निर्धारित करने की दो रीतियाँ, भारात्मक रीति और आयतन मित रीति, निकली हैं। इन रीतियों का फेहलिंग (Fehling) ने सन् १८४८ में विस्तार से अध्ययन किया था। इस कारण इन रीतियों को फेहलिंग रीति भी कहते हैं। इस रीति में फेहलिंग विलयन का उपयोग होता है। फेहलिंग विलयन के तैयार करने की रीति निम्नलिखित है—

कॉपर सलफेट विलयन—कॉपर सलफेट के मणिभ का सूत्र है $CuSO_4$ $5H_2O$। ऐसे मणिभ के ३४.६४ ग्राम को जल में घुलाकर ५०० मिलिलिटर विलयन बनाओ। यदि विलयन पूर्णत: स्वच्छ न हो तो अस्बेस्टस द्वारा छान लो।

२. क्षारीय टारट्रेट विलयन—१६० ग्राम रौशेल लवण (उदासीन सोडियम पोटैसियम टारट्रेट) को और ५० ग्राम सोडियम हाइड्राक्साइड को जल में घुलाकर ५०० मिलिलिटर बनाओ। दो दिन रखने के बाद अस्बेस्टस से इसे छान लो। यदि शुद्ध रासायनिक का उपयोग हुआ है तो छानने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती।

सम आयतन में इन दोनों विलयनों के मिलाने से फेहलिंग विलयन बनता है। ऐसे विलयन के १००० मिलिलिटर में ८.८२२ ग्राम ताँबा अथवा एक मिलिलिटर में ०.००८८२२ ग्राम ताँबा रहता है। ऐसे विलयन का एक मिलिलिटर ठीक ०.००५ ग्राम अनार्द्र द्राक्ष शर्करा को अवकृत करता है अर्थात द्राक्ष शर्करा का एक भाग तांबे के

१.७६५ भाग को अवकृत करता है। यदि हम द्राक्ष शर्करा के एक अणु का सम्बन्ध निकालें तो १ अणुभार अर्थात् १८० ग्राम १८० × १.७६५ = ३१७·६ ग्राम ताँबे को अवकृत करता है। एक अणु द्राक्ष-शर्करा ५ परमाणु ताँबे को अवकृत करता है। फेहलिंग विलयन में क्या रहता है, इसके सम्बन्ध में रसायनज्ञों ने बड़ी खोजें की हैं। ऐसा मालूम होता है कि इस विलयन में क्यूप्रिक हाइड्रॉक्साइड का उपघोल (sols) रहता है, वास्तविक घोल नहीं है। यही कारण है कि रखे रहने पर इस उपघोल से क्यूप्रस ऑक्साइड अवक्षिप्त हो जाता है। इसी कारण फेहलिंग विलयन अधिक समय तक रखे रहने से खराब हो जाता है। उसकी सक्रियता न्यून हो जाती है। ये दोनों विलयन अलग-अलग रखे रहते हैं। परीक्षण करने के समय ही दोनों के सम आयतन को मिलाकर परीक्षा करते हैं।

इस फेहलिंग विलयन से चीनी की मात्रा निकालने की दो रीतियाँ हैं। एक रीति में इस फेहलिंग विलयन को आवश्यकता से अधिक मात्रा में डालकर जो अधिक फेहलिंग बच जाता है, उसका निर्धारण करते हैं अथवा जो क्यूप्रस ऑक्साइड अवक्षिप्त हो जाता है उसे निकाल, शुद्ध कर उसकी मात्रा के ज्ञान से शर्करा की मात्रा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ आयतनमित रीति अथवा भारात्मक दोनों ही रीतियाँ उपयुक्त हो सकती हैं।

दूसरी रीति में फेहलिंग विलयन का एक निश्चित मात्रा लेकर देखते हैं कि कितने शर्करा के विलयन से सारा तांबा का लवण अवकृत होता है। यहाँ केवल आयतनमित रीति ही उपयुक्त हो सकती है।

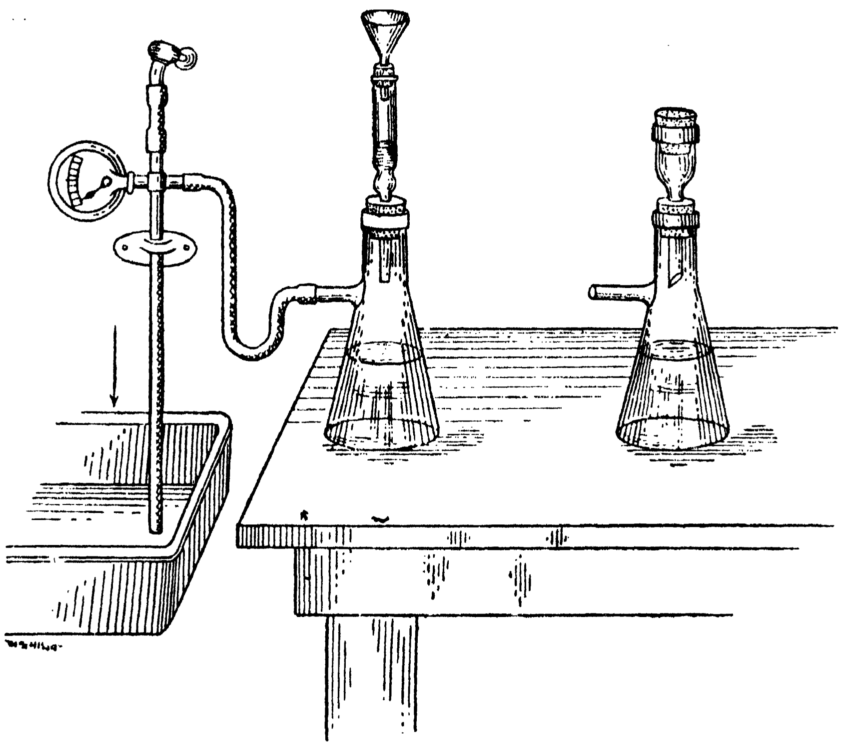
फेहलिंग विलयन के इस्तेमाल करने के पूर्व उसे प्रमापित कर लेते हैं। प्रमापित करने के लिए शुद्ध विपर्यस्त शर्करा का उपयोग करते हैं। शुद्ध द्राक्ष-शर्करा से भी विलयन का प्रमापण हो सकता है।

प्रमाप विपर्यस्त शर्करा विलयन—शुद्ध चीनी के २.३७५ ग्राम को ४० मिलिलिटर जल में घुलाकर उसमें प्राय: पाँच मिलिलिटर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालते हैं। इस हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की आपेक्षिक घनता २०° पर १·१०२९ होनी चाहिए। इसे अब २४ घन्टे रख देते हैं। वायु का ताप २०° श० से कम नहीं रहना चाहिए। २४ घन्टे के बाद सोडियम हाइड्रॉक्साइड से विलयन को ठीक-ठीक उदासीन कर विलयन को ५०० मिलिलिटर में बनाते हैं। ऐसे विलयन के १०० मिलिलिटर में ०.५०० ग्राम विपर्यस्त शर्करा रहती है।

कॉपर विलयन के २५ मिलिलिटर और क्षारीय विलयन के २५ मिलिलिटर को ४०० मिलिलिटर समावेशन के पाइरेक्स बीकर में रखकर उसमें शर्करा के विलयन का ५० मिलिलिटर डालो। अब बीकर को क्वथन बिन्दु तक गरम करो। इस ताप के पहुँचने में चार मिनट का समय लगना चाहिए। ठीक दो मिनट तक विलयन को धीरे-धीरे उबलने दो। इसके बाद तुरन्त का उबाला हुआ १०० मिलिलिटर ठंढा जल डालकर शीघ्र ही छान लो और क्यूप्रस ऑक्साइड को इकट्ठा करो। हैरिस का सुझाव है कि गरम करने के समय तापमान के उपयोग से यथार्थता बढ़ जाती है। तापमान का कन्द

बीकर के तल से ४ मिलिलिटर के अन्दर रहना चाहिए। तापमान में ज्योंही १००° श० सूचित हो क्वथन विंदु का प्रारम्भ समझ लेना चाहिए। बीकर का काँच पाइरेक्स अथवा अन्य उच्च कोटि का होना चाहिए और एक आकार का, ४०० मिलिलिटर से बड़ा नहीं, होना चाहिए। पानी का डालना शीघ्रता से और अवक्षेप का छानना भी शीघ्रता से होना चाहिए। अवक्षेप को गूचमूषा में छानना चाहिए। कीप का आकार भी नियत रहना चाहिए। पीतल का कीप इसके लिए उपयुक्त हो सकता है। स्पेन्सर कीप और घर इसके लिए अच्छा है। गचमूषा में कैसे छाना जाता है, उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।

कुछ रसायनज्ञ अवक्षेप के छानने के लिए अलण्डम मूषा पसन्द करते हैं; क्योंकि इसमें अस्बेस्टस की गद्दी रखने की आवश्यकता नहीं होती। चूँकि यह मूषा सछिद्र होती है, इससे इसे एक विशेष घर में रखने की आवश्यकता होती है। स्पेंसर का घर



चित्र ९९—गूच मूषा में छानने की विधि

इस के लिए अधिक उपयोगी है। नयी मूषा को हलके नाइट्रिक अम्ल, फिर फेहलिंग विलयन और अन्त में उष्ण जल से पाचित करने की आवश्यकता होती है।

अवक्षेप को अस्बेस्टस गद्दी पर रखकर उष्णजल से पूर्णतया धोकर, १० मिलिलिटर एलकोहल और अन्त में १० मिलिलिटर ईथर से धो लेना चाहिए। उबलते पानी के तार पर जल-तापक में ३० मिनट सुखाकर ठंढाकर तौलना चाहिए। ०.८८८२ गुणक की सहायता से ताँबे का भार निकालना चाहिए और ताँबे की सारिणी से विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकालनी चाहिए।

गूचमूषा के अस्बेस्टस को हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से पाचितकर, अम्ल को धोकर निकाल लेने पर दाहक सोडा के १० प्रतिशत विलयन से फिर पाचित कर तब उष्ण फेहलिंग विलयन से कई बार धोकर, फिर नाइट्रिक अम्ल से धोकर जल से धो लेना चाहिए। मूषा में चौथाई इंच मोटी तह अस्बेस्टस की रहनी चाहिए।

ताँबे की मात्रा से जब द्राक्ष-शर्करा की मात्रा निकालते हैं, उसके लिए जिस सारिणी का उपयोग करते हैं वे आगे दिया है। कभी-कभी अधिक सुविधाजनक होता है यदि ताँबे के आक्साइड को ताँबा धातु में परिणत कर लें।

हाइड्रोजन के द्वारा ऑक्साइड को ताँबे में परिणत करते हैं। ऑक्साइड को एक काँचनली में रखकर हाइड्रोजन को प्रवाहित करते हैं। हाइड्रोजन प्रवाहित करने के पूर्व नली की वायु को पूर्ण रूप से निकाल लेते हैं, नहीं तो विस्फोट होने की सम्भावना रहती है। हाइड्रोजन को हाइड्रोजन-उत्पादक पात्र में तैयार करते हैं। इसको नली में ले जाने के पूर्व कैलसियम क्लोराइड द्वारा सुखा लेते हैं। नली को गरम रखते है और तब हाइड्रोजन प्रवाहित करते हैं। जब तक अवकरण पूरा नहीं होता, नली से जल-वाष्प निकलता रहता है। जब जल-वाष्प का निकलना बन्द हो जाय तब अवकरण पूर्ण समझना चाहिए। अब उसे शोषित्र में ठंढाकर तौलते हैं।

एक दूसरी रीति से भी, एलकोहल से, क्यूप्रस ऑक्साइड को ताँबे में अवकृत करते हैं। एलकोहल के वाष्प से क्यूप्रस आक्साइड को अवकृत करते हैं। इसके अवकरण में ४ से ५ मिनट पर्याप्त होता है। अवकृत हो जाने पर ताँबे को शीघ्रता से शोषित्र में रखकर ठंढा करना चाहिए, नहीं तो ताँबे को आक्सीकृत हो जाने का भय रहता है। कभी-कभी ताँबा कार्बन के साथ लिप्त रह सकता है।

एलिन की द्राक्ष-शर्करा निर्धारण की सारिणी।

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
११	१२·४	६·६
१२	१३·५	७·१
१३	१४·६	७·६
१४	१५·८	८·१
१५	१६·६	८·६
१६	१८·०	९·०
१७	१९·१	९·५
१८	२०·३	१०·०
१९	२१·४	१०·५
२०	२२·५	११·०
२१	२३·६	११·५
२२	२४·८	१२·०
२३	२५·९	१२·५
२४	२७·०	१३·०

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष शर्करा मिलिग्राम में
२५	२८·१	१३·५
२६	२९·३	१४·०
२७	३०·४	१४·५
२८	३१·५	१५·०
२९	३२·७	१५·५
३०	३३·८	१६·०
३१	३४·९	१६·५
३२	३६·०	१७·०
३३	३७·२	१७·५
३४	३८·३	१८·०
३५	३९·४	१८·५
३६	४०·५	१८·९
३७	४१·७	१९·४
३८	४२·८	१९·९
३९	४३·९	२०·४
४०	४५·०	२०·९
४१	४६·२	२१·४
४२	४७·३	२१·९
४३	४८·४	२२·४
४४	४९·५	२२·९
४५	५०·७	२३·४
४६	५१·८	२३·९
४७	५२·९	२४·४
४८	५४·०	२४ ९
४९	५५·२	२५·४
५०	५६·३	२५·९
५१	५७·४	२६·४
५२	५८ ५	२६·९
५३	५९·७	२७·४
५४	६०·८	२७·९
५५	६१·९	२८·४
५६	६३·०	२८·८
५७	६४·२	२९·३
५८	६५·३	२९·८
५९	६६·४	३० ३

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष शर्करा मिलिग्राम में
६०	६७·६	३०·८
६१	६८·७	३१·३
६२	६९·८	३१·८
६३	७०·९	३२·३
६४	७२·१	३२·८
६५	७३·२	३३·३
६६	७४·३	३३·८
६७	७५·४	३४·३
६८	७६·६	३४·८
६९	७७·७	३५·३
७०	७८·८	३५·८
७१	७९·९	३६·३
७२	८१·१	३६·८
७३	८२·२	३७·३
७४	८३ ३	३७·८
७५	८४·४	३८·३
७६	८५·६	३८·८
७७	८६·७	३९·३
७८	८७·८	३९·८
७९	८८·७	४०·३
८०	९०·१	४०·८
८१	९१·२	४१·३
८२	९२·३	४१·८
८३	९३·४	४२·३
८४	९४·६	४२·८
८५	९५·७	४३·४
८६	९६·८	४३·७
८७	९९·९	४४·४
८८	९९·१	४४·७
८९	१००·२	४५·४
९०	१०१·३	४५·९
९१	१०२·४	४६·४
९२	१०३·६	४६·९
९३	१०४·७	४७·४
९४	१०५·८	४७·९

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष शर्करा मिलिग्राम में
९५	१०७·०	४८·४
९६	१०८·१	४८·९
९७	१०९·२	४९·४
९८	११०·३	४९·९
९९	१११·५	५०·४
१००	११२·६	५०·९
१०१	११३·७	५१·४
१०२	११४·८	५१·७
१०३	११६·०	५२·४
१०४	११७·१	५२·९
१०५	११८·२	५३·५
१०६	११९·३	५४·०
१०७	१२०·५	५४·५
१०८	१२१·६	५५·०
१०९	१२२·७	५५·५
११०	१२३·८	५६·०
१११	१२५·०	५६·५
११२	१२६·१	५७·०
११३	१२७·२	५७·५
११४	१२८·३	५८·०
११५	१२९·६	५८·६
११६	१३०·६	५९·१
११७	१३१·७	५९·६
११८	१३२·८	६०·१
११९	१३४·०	६०·६
१२०	१३५·१	६१·१
१२१	१३६·२	६१·६
१२२	१३७·४	६२·१
१२३	१३८·५	६२·६
१२४	१३९·६	६३·१
१२५	१४०·७	६३·७
१२६	१४१·८	६४·२
१२७	१४३·०	६४·७
१२८	१४४·१	६५·२
१२९	१४५·२	६५·७

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
१३०	१४६·४	६६·२
१३१	१४७·५	६६·७
१३२	१४८·६	६७·२
१३३	१४९·७	६७·७
१३४	१५०·८	६८·२
१३५	१५२·०	६८·८
१३६	१५३·१	६९·३
१३७	१५४·२	६९·८
१३८	१५५·४	७०·३
१३९	१५६·५	७०·८
१४०	१५७·६	७१·३
१४१	१५८·७	७१·८
१४२	१५९·९	७२·३
१४३	१६१·०	७२·९
१४४	१६२·१	७३·४
१४५	१६३·२	७३·९
१४६	१६४·४	७४·४
१४७	१६५·५	७४·९
१४८	१६६·६	७५·५
१४९	१६७·७	७६·०
१५०	१६८·९	७६·५
१५१	१७०·०	७७·०
१५२	१७१·१	७७·५
१५३	१७२·३	७८·१
१५४	१७३·४	७८·६
१५५	१७४·५	७९·१
१५६	१७५·६	७९·६
१५७	१७६·८	८०·१
१५८	१७७·९	८०·७
१५९	१७९·०	८१·२
१६०	१८०·१	८१·७
१६१	१८१·३	८२·२
१६२	१८२·४	८२·७
१६३	१८३·५	८३·३
१६४	१८४·६	८३·८

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
१६५	१८५.८	८४.३
१६६	१८६.६	८४.८
१६७	१८८.०	८५.३
१६८	१८६.१	८५.६
१६६	१६०.३	८६.४
१७०	१६१.४	८६.६
१७१	१६२.५	८७.४
१७२	१६३.६	८७.६
१७३	१६४.८	८८.५
१७४	१६५.६	८६.०
१७५	१६७.०	८६.५
१७६	१६८.१	६०.०
१७७	१६६.३	६०.५
१७८	२००.४	६१.१
१७६	२०१.५	६१.६
१८०	२०२.६	६२.१
१८१	२०३.८	६२.६
१८२	२०४.६	६३.१
१८३	२०६.०	६३.७
१८४	२०७.१	६४.२
१८५	२०८.३	६४.७
१८६	२०६.४	६५.२
१८७	२१०.५	६५.७
१८८	२११.७	६६.३
१८६	२१२.८	६६.८
१६०	२१३.६	६७.३
१६१	२१५.०	६७.८
१६२	२१६.२	६८.४
१६३	२१७.३	६८.६
१६४	२१८.४	६६.४
१६५	२१६.५	१००.०
१६६	२२०.७	१००.५
१६७	२२१.८	१०१.०
१६८	२२२.६	१०१.५
१६६	२२४.०	१०२.०

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
२००	२२५'२	१०२'६
२०१	२२६'३	१०३'१
२०२	२२७'४	१०३'७
२०३	२२८'५	१०४'२
२०४	२२९'७	१०४'७
२०५	२३०'८	१०५'३
२०६	२३१'९	१०५'८
२०७	२३३'०	१०६'३
२०८	२३४'२	१०६'८
२०९	२३५'३	१०७'४
२१०	२३६'४	१०७'९
२११	२३७'६	१०८'४
२१२	२३८'७	१०९'०
२१३	२३९'८	१०९'५
२१४	२४०'९	११०'०
२१५	२४२'१	११०'६
२१६	२४३'२	१११'१
२१७	२४४'३	१११'६
२१८	२४५'४	११२'१
२१९	२४६'६	११२'७
२२०	२४७'७	११३'२
२२१	२४८'७	११३'७
२२२	२४९'९	११४'३
२२३	२५१'०	११४'८
२२४	२५२'४	११५'३
२२५	२५३'३	११५'९
२२६	२५४'४	११६'४
२२७	२५५'६	११६'९
२२८	२५६'७	११७'४
२२९	२५७'८	११८'०
२३०	२५८'९	११८'५
२३१	२६०'१	११९'०
२३२	२६१'२	११९'६
२३३	२६२'३	१२०'१
२३४	२६३'४	१२०'७

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
२३५	२६४.७	१२१.२
२३६	२६५.७	१२१.७
२३७	२६६.८	१२२.३
२३८	२६८.०	१२२.८
२३९	२६९.१	१२३.४
२४०	२७०.२	१२३.९
२४१	२७१.३	१२४.४
२४२	२७२.५	१२५.०
२४३	२७३.६	१२५.५
२४४	२७४.७	१२६.०
२४५	२७५.८	१२६.६
२४६	२७७.०	१२७.१
२४७	२७८.१	१२७.६
२४८	२७९.२	१२८.१
२४९	२८०.३	१२८.७
२५०	२८१.५	१२९.२
२५१	२८२.६	१२९.७
२५२	२८३.७	१३०.३
२५३	२८४.८	१३०.८
२५४	२८६.०	१३१.४
२५५	२८७.१	१३१.९
२५६	२८८.२	१३२.४
२५७	२८९.३	१३३.०
२५८	२९०.५	१३३.५
२५९	२९१.६	१३४.१
२६०	२९२.७	१३४.६
२६१	२९३.८	१३५.१
२६२	२९५.०	१३५.७
२६३	२९६.१	१३६.२
२६४	२९७.२	१३६.८
२६५	२९८.३	१३७.३
२६६	२९९.५	१३७.८
२६७	३००.६	१३८.४
२६८	३०१.७	१३८.९
२६९	३०२.८	१३९.५

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
२७०	३०४·०	१४०·०
२७१	३०५·१	१४०·६
२७२	३०६·२	१४१·१
२७३	३०७·३	१४१·७
२७४	३०८ ५	१४२·२
२७५	३०९·६	१४२·८
२७६	३१० ७	१४३ ३
२७७	३११·९	१४३·९
२७८	३१३·०	१४४·४
२७९	३१४·१	१४५·०
२८०	३१५·२	१४५·५
२८१	३१६·४	१४६·१
२८२	३१७·५	१४६·६
२८३	३१८·६	१४७·२
२८४	३१९·७	१४७·७
२८५	३२०·९	१४८·३
२८६	३२२·०	१४८·८
२८७	३२३·१	१४९·४
२८८	३२४ २	१४९·९
२८९	३२५·४	१५०·५
२९०	३२६·५	१५१·०
२९१	३२७ ६	१५१ ६
२९२	३२८·७	१५२·१
२९३	३२९·९	१५२.७
२९४	३३१·०	१५३ २
२९५	३३२·१	१५३·८
२९६	३३३·३	१५४·३
२९७	३३४·४	१५४·९
२९८	३३५·५	१५५·४
२९९	३३६·६	१५६·०
३००	३३७·८	१५६·५
३०१	३३८ ९	१५७·१
३०२	३४०·०	१५७·६
३०३	३४१·१	१५८·२
३०४	३४२·३	१५८·७

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
३०५	३४३·४	१५९·३
३०६	३४४·५	१५९·८
३०७	३४५·६	१६०·४
३०८	३४६·८	१६०·९
३०९	३४७·९	१६१·५
३१०	३४९·०	१६२·०
३११	३५०·१	१६२·६
३१२	३५१·३	१६३·१
३१३	३५२·४	१६३·७
३१४	३५३·५	१६४·२
३१५	३५४·६	१६४·८
३१६	३५५·८	१६५·३
३१७	३५६·९	१६५·९
३१८	३५८·०	१६६·४
३१९	३५९·१	१६७·०
३२०	३६०·३	१६७·५
३२१	३६१·४	१६८·१
३२२	३६२·५	१६८·६
३२३	३६३·७	१६९·२
३२४	३६४·८	१६९·७
३२५	३६५·९	१७०·३
३२६	३६७·०	१७०·९
३२७	३६८·२	१७१·४
३२८	३६९·३	१७२·०
३२९	३७०·४	१७२·५
३३०	३७१·५	१७३·१
३३१	३७२·७	१७३·७
३३२	३७३·८	१७४·२
३३३	३७४·९	१७४·८
३३४	३७६·०	१७५·३
३३५	३७७·२	१७५·९
३३६	३७८·३	१७६·५
३३७	३७९·४	१७७·०
३३८	३८०·५	१७७·६
३३९	३८१·७	१७८·१

ताँबा मिलिग्राम में	ताँबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
३४०	३८२.८	१७८.७
३४१	३८३.९	१७९.३
३४२	३८५.०	१७९.८
३४३	३८६.२	१८०.४
३४४	३८७.३	१८०.९
३४५	३८८.४	१८१.५
३४६	३८९.४	१८२.१
३४७	३९०.७	१८२.६
३४८	३९१.८	१८३.२
३४९	३९२.९	१८३.७
३५०	३९४.०	१८४.३
३५१	३९५.२	१८४.९
३५२	३९६.३	१८५.४
३५३	३९७.४	१८६.०
३५४	३९८.७	१८६.६
३५५	३९९.७	१८७.२
३५६	४००.८	१८७.७
३५७	४०१.९	१८८.३
३५८	४०३.१	१८८.९
३५९	४०४.२	१८९.४
३६०	४०५.३	१९०.०
३६१	४०६.४	१९०.६
३६२	४०७.६	१९१.१
३६३	४०८.७	१९१.७
३६४	४०९.८	१९२.३
३६५	४१०.९	१९२.९
३६६	४ २.१	१९३.४
३६७	४१३.२	१९४.०
३६८	४१४.३	१९४.६
३६९	४१५.४	१९५.१
३७०	४१६.६	१९५.७
३७१	४१७.७	१९६.३
३७२	४१८.८	१९६.८
३७३	४२०.०	१९७.४

तांबा मिलिग्राम में	तांबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
३७४	४२१·१	१९८·०
३७५	४२२·२	१९८·६
३७६	४२३·३	१९९·१
३७७	४२४·५	१९९·७
३७८	४२५·६	२००·३
३७९	४२६·७	२००·८
३८०	४२७·८	२०१·४
३८१	४२९·०	२०२·०
३८२	४३०·१	२०२·५
३८३	४३१·२	२०३·१
३८४	४३२·३	२०३·७
३८५	४३३·५	२०४·३
३८६	४३४·६	२०४·८
३८७	४३५·७	२०५·४
३८८	४३६·८	२०६·०
३८९	४३८·०	२०६·५
३९०	४३९·१	२०७·१
३९१	४४०·२	२०७·७
३९२	४४१·३	२०८·३
३९३	४४२·४	२०८·८
३९४	४४३·६	२०९·४
३९५	४४४·७	२१०·०
३९६	४४५·९	२१०·६
३९७	४४७·०	२११·२
३९८	४४८·१	२११·७
३९९	४४९·२	२१२·३
४००	४५०·३	२१२·९
४०१	४५१·५	२१३·५
४०२	४५२·६	२१४·१
४०३	४५३·७	२१४·६
४०४	४५४·८	२१५·२
४०५	४५६·०	२१५·८
४०६	४५७·१	२१६·४
४०७	४५८·२	२१७·०
४०८	४५९·४	२१७·५

तांबा मिलिग्राम में	तांबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
४०९	४६०·५	२१८·१
४१०	४६१·६	२१८·७
४११	४६२·७	२१९·३
४१२	४६३·८	२१९·९
४१३	४६५·०	२२०·४
४१४	४६६·१	२२१·०
४१५	४६७·२	२२१·६
४१६	४६८·४	२२२·२
४१७	४६९·५	२२२·८
४१८	४७०·६	२२३·३
४१९	४७१·८	२२३·९
४२०	४७२·९	२२४·५
४२१	४७४·०	२२५·१
४२२	४७५·६	२२५·७
४२३	४७६·२	२२६·३
४२४	४७७·४	२२६·९
४२५	४७८·५	२२७·५
४२६	४७९·६	२२८·०
४२७	४८०·७	२२८·६
४२८	४८१·९	२२९·२
४२९	४८३·०	२२९·८
४३०	४८४·१	२३०·४
४३१	४८५·३	२३ ·०
४३२	४८६·४	२३१·६
४३३	४८७·५	२३२·२
४३४	४८८·६	२३२·८
४३५	४८९·७	२३३·४
४३६	४९०·९	२३३·९
४३७	४९२·०	२३४·५
४३८	४९३·१	२३५·१
४३९	४९४·३	२३५·७
४४०	४९५·४	२३६·३
४४१	४९६·५	२३६·९
४४२	४९७·६	२३७·५
४४३	४९८·८	२३८·१

तांबा मिलिग्राम में	तांबे के आक्साइड मिलिग्राम में	द्राक्ष-शर्करा मिलिग्राम में
४४४	४६६·६	२३८·७
४४५	५०१·०	२३९·३
४४६	५०२·१	२३९·८
४४७	५०३·२	२४०·४
४४८	५०४·४	२४१·०
४४९	५०५·५	२४१·६
४५०	५०६·६	२४२·२
४५१	५०७·८	२४२·८
४५२	५०८·९	२४३·४
४५३	५१०·०	२४४·०
४५४	५११·१	२४४·६
४५५	५१२·३	२४५·२
४५६	५१३·४	२४५·७
४५७	५१४·५	२४६·३
४५८	५१५·६	२४६·९
४५९	५१६·८	२४७·५
४६०	५१७·९	२४८·१
४६१	५१९·०	२४८·७
४६२	५२०·१	२४९·३
४६३	५२१·३	२४९·९

विपर्यस्त शर्करा निर्धारण की मिसल रीति—फेहलिंग विलयन के आधार पर मिसल ने विपर्यस्त शर्करा की मात्रा भी निकाली है। यहाँ कॉपर सल्फेट के २५ मिलिलिटर को टारट्रेट विलयन के २५ मिलिलिटर से मिलाकर जो विलयन प्राप्त होता है उससे विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकालते हैं। ऐसी विपर्यस्त शर्करा के विलयन में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा ०·२४५ ग्राम से अधिक नहीं रहनी चाहिए। पानी डालकर विलयन को १०० मिलिलिटर बनाकर गरम करते हैं और ठीक दो मिनटों तक उसे उबलते रखते। अब क्यूप्रस ऑक्साइड को अस्बेस्टस पर छानकर उसे तांबे में अवकृत करते हैं, फिर निम्न सारिणी से विपर्यस्त शर्करा की मात्रा प्राप्त करते हैं।

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
९०	४६·९	९४	४८.९
९१	४७·४	९५	४९·५
९२	४७·९	९६	५०·०
९३	४८·४	९७	५०·५

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
९८	५१·१	१३३	६९·७
९९	५१·६	१३४	७०·२
१००	५२·१	१३५	७०·८
१०१	५२·७	१३६	७१·३
१०२	५३·२	१३७	७१·९
१०३	५३·७	१३८	७२·४
१०४	५४·३	१३९	७२·९
१०५	५४·८	१४०	७३·५
१०६	५५·३	१४१	७४·०
१०७	५५·९	१४२	७४·५
१०८	५६·४	१४३	७५·१
१०९	५६·९	१४४	७५·६
११०	५७·५	१४५	७६·१
१११	५८·०	१४६	७६·७
११२	५८·५	१४७	७७·२
११३	५९·१	१४८	७७·८
११४	५९·६	१४९	७८·३
११५	६०·१	१५०	७८·९
११६	६०·७	१५१	७९·४
११७	६१·२	१५२	८०·०
११८	६१·७	१५३	८०·५
११९	६२·३	१५४	८१·०
१२०	६२·८	१५५	८१·६
१२१	६३·३	१५६	८२·१
१२२	६३·९	१५७	८२·७
१२३	६४·४	१५८	८३·२
१२४	६४·९	१५९	८३·८
१२५	६५·५	१६०	८४·३
१२६	६६·०	१६१	८४·८
१२७	६६·५	१६२	८५·४
१२८	६७·१	१६३	८५·९
१२९	६७·६	१६४	८६·५
१३०	६८·१	१६५	८७·०
१३१	६८·७	१६६	८७·६
१३२	६९·२	१६७	८८·१

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
१६८	८८·६	२०३	१०७·९
१६९	८९·२	२०४	१०८·५
१७०	८९·७	२०५	१०९·१
१७१	९०·३	२०६	१०९·६
१७२	९०·८	२०७	११०·२
१७३	९१·४	२०८	११०·८
१७४	९१·९	२०९	१११·३
१७५	९२·४	२१०	१११·९
१७६	९३·०	२११	११२·५
१७७	९३·५	२१२	११३·०
१७८	९४·१	२१३	११३·६
१७९	९४·६	२१४	११४·२
१८०	९५·२	२१५	११४·७
१८१	९५·७	२१६	११५·३
१८२	९६·२	२१७	११५·८
१८३	९६·८	२१८	११६·४
१८४	९७·३	२१९	११७·०
१८५	९७·८	२२०	११७·५
१८६	९८·४	२२१	११८·१
१८७	९९·०	२२२	११८·७
१८८	९९·५	२२३	११९·२
१८९	१००·१	२२४	११९·८
१९०	१००·६	२२५	१२०·४
१९१	१०१·२	२२६	१२०·९
१९२	१०१·७	२२७	१२१·५
१९३	१०२·३	२२८	१२२·१
१९४	१०२·९	२२९	१२२·६
१९५	१०३·४	२३०	१२३·२
१९६	१०४·०	२३१	१२३·८
१९७	१०४·६	२३२	१२४·३
१९८	१०५·१	२३३	१२४·९
१९९	१०५·७	२३४	१२५·५
२००	१०६·३	२३५	१२६·०
२०१	१०६·८	२३६	१२६·६
२०२	१०७·४	२३७	१२७·२

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
२३८	१२७·८	२७३	१४७·८
२३९	१२८·३	२७४	१४८·४
२४०	१२८·९	२७५	१४९·०
२४१	१२९·५	२७६	१४९·५
२४२	१३०·०	२७७	१५०·१
२४३	१३०·६	२७८	१५०·७
२४४	१३१·२	२७९	१५१·३
२४५	१३१·८	२८०	१५१·९
२४६	१३२·३	२८१	१५२·९
२४७	१३२·९	२८२	१५३·१
२४८	१३३·५	२८३	१५३·७
२४९	१३४·१	२८४	१५४·३
२५०	१३४ ६	२८५	१५४·९
३५१	१३५·२	२८६	१५५·५
२५२	१३५·८	२८७	१५६·१
२५३	१३६·३	२८८	१५६·७
२५४	१३६·९	२८९	१५७·२
२५५	१३७·५	२९०	१५७·८
२५६	१३८·१	२९१	१५८·४
२५७	१३७ ६	२९२	१५९·०
२५८	१३९·२	२९३	१५९·६
२५९	१३९·८	२९४	१६०·२
२६०	१४०·४	२९५	१६०·८
२६१	१४०·९	२९६	१६१·४
२६२	१४१·५	२९७	१६२·०
२६३	१४२·१	२९८	१६२ ६
२६४	१४२ ७	२९९	१६३·२
२६५	१४३·२	३००	१६३·८
२६६	१४३·८	३०१	१६४·४
२६७	१४४·४	३०२	१६५·०
२६८	१४४·९	३०३	१६५·६
२६९	१४५·५	३०४	१६६·२
२७०	१४६·१	३०५	१६६·८
२७१	१४६·७	३०६	१६७·३
२७२	१४७·२	३०७	१६७·९

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
३०८	१६८.५	३४३	१८९.६
३०९	१६९.१	३४४	१९०.२
३१०	१६९.७	३४५	१९०.८
३११	१७०.३	३४६	१९१.४
३१२	१७०.९	३४७	१९२.०
३१३	१७१.५	३४८	१९२.६
३१४	१७२.१	३४९	१९३.२
३१५	१७२.७	३५०	१९३.८
३१६	१७३.३	३५१	१९४.४
३१७	१७३.९	४५२	१९५.०
३१८	१७४.५	३५३	१९५.६
३१९	१७५.१	३५४	१९६.२
३२०	१७५.६	३५५	१९६.८
३२१	१७६.२	३५६	१९७.४
३२२	१७६.८	३५७	१९८.०
३२३	१७७.४	३५८	१९८.६
३२४	१७८.०	३५९	१९९.२
३२५	१७८.६	३६०	१९९.८
३२६	१७९.२	३६१	२००.४
३२७	१७९.८	३६२	२०१.१
३२८	१८०.४	३६३	२०१.७
३२९	१८१.०	३६४	२०२.३
३३०	१८१.६	३६५	२०३.०
३३१	१८२.२	३६६	२०३.६
३३२	१८२.८	३६७	२०४.२
३३३	१८३.५	३६८	२०४.८
३३४	१८४.१	३६९	२०५.५
३३५	१८४.७	३७०	२०६.१
३३६	१८५.४	३७१	२०६.७
३३७	१८६.०	३७२	२०७.३
३३८	१८६.६	३७३	२०८.०
३३९	१८७.२	३७४	२०८.६
३४०	१८७.८	३७५	२०९.२
३४१	१८८.४	३७६	२०९.९
३४२	१८९.०	३७७	२१०.५

तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम	तांबा मिलिग्राम	विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम
३७८	२११·१	४०५	२२८·६
३७९	२११·७	४०६	२२९·३
३८०	२१२·४	४०७	२३०·०
३८१	२१३·०	४०८	२३०·७
३८२	२१३·६	४०९	२३१·४
३८३	२१४·३	४१०	२३२·१
३८४	२१४·९	४११	२३२·८
३८५	२१५·५	४१२	२३३·५
३८६	२१६·१	४१३	२३४·३
३८७	२१६·८	४१४	२३५·०
३८८	२१७·४	४१५	२३५·७
३८९	२१८·०	४१६	२३६·४
३९०	२१८·७	४१७	२३७·१
३९१	२१९·३	४१८	२३७·८
३९२	२१९·९	४१९	२३८·५
३९३	२२०·५	४२०	२३९·२
३९४	२२१·२	४२१	२३९·९
३९५	२२१·८	४२२	२४०·६
३९६	२२२·४	४२३	२४१·३
३९७	२२३·१	४२४	२४२·०
३९८	२२३·७	४२५	२४२·७
३९९	२२४·३	४२६	२४३·४
४००	२२४·९	४२७	२४४·१
४०१	२२५·७	४२८	२४४·९
४०२	२२६·४	४२९	२४५·६
४०३	२२७·१	४३०	२४६·३
४०४	२२७·८		

ताँबे को क्यूप्रिक ऑक्साइड के रूप में—क्यूप्रस ऑक्साइड को धो और सुखाकर एक अवगुण्ठ भट्ठी (muffle) में १५ मिनट तक रक्तताप पर गरम करते हैं। इससे क्यूप्रस ऑक्साइड क्यूप्रिक् आक्साइड में परिणत हो जाता है। इसे शोषित्र में ठंढाकर जल्द से जल्द तौलते हैं क्योंकि क्यूप्रिक ऑक्साइड आर्द्रताग्राही होता है। ताँबे के इस काले ऑक्साइड को ०·८ से गुना करने से ताँबे का भार निकल आता है।

यह रीति अच्छी है और अनुभव से सन्तोषप्रद और अधिक यथार्थ प्रमाणित हुई है। अच्छा तो यह होगा कि पहले ताँबे के काल ऑक्साइड की मात्रा निर्धारित कर तब उसे अवकृत कर ताँबे की मात्रा निकालकर परिणाम को जाँचा जाय। ताँबे के तौलने से जो परिणाम प्राप्त होता है, वह कुछ ऊँचा होता है; क्योंकि ताँबे में कार्बन के कुछ अंश मिले रहते हैं।

क्यूप्रस ऑक्साइड की मात्रा निर्धारित करने में आयतनमित रीतियों का भी उपयोग करते हैं। यह रीति जल्दी सम्पादित हो जाती है और परिणाम भी अधिक यथार्थ होता है। इन रीतियों में परमैंगनेट आयोडाइड, थायोसायनेट और डाइक्रोमेट रीतियाँ उपयुक्त होती हैं।

बरट्रैंड रीति—इस रीति में परमैंगनेट का विलयन इस्तेमाल होता है। यह विलयन इस प्रकार तैयार किया जाता है।

४·६८ ग्राम शुद्ध पोटाश परमैंगनेट को पानी में विलीन कर कुछ दिन रख देते हैं। तब इसे अस्बेस्टस पर अथवा काँच-ऊन पर छानकर एक लिटर बनाकर उसे प्रमापित करते हैं। पोटाश परमैंगनेट के विलयन के प्रमापित करने के निम्नाङ्कित विधियों में किसी एक का उपयोग किया जा सकता है—

औक्जैलिक अम्ल रीति—०·६३ ग्राम शुद्ध शुष्क औक्जैलिक अम्ल के मणिभ को आसुत जल में मिलाकर १०० मिलिलिटर बनाओ। यह विलयन दशांश नार्मल है। यह विलयन बहुत समय तक स्थायी नहीं रहता। पर नार्मल विलयन अधिक स्थायी होता है। नार्मल विलयन में १०० मिलिलिटर में ६·३ ग्राम औक्जैलिक अम्ल रहता है।

आर्सीनियस ऑक्साइड रीति—११०° श० पर सुखाया ०·३ ग्राम आर्सीनियस ऑक्साइड को ४०० मिलिलिटर बीकर में रखकर १० मिलिलिटर सोडियम हाइड्रॉक्साइड के ठंढे विलयन (२० प्रतिशत) को डालो और घुलने के लिए रख दो। समय-समय पर उसे हिलाते रहो। अब उसमें प्रायः १०० मिलिलिटर पानी और १० मिलिलिटर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का विलयन डालकर एक बूंद पोटैसियम आयोडाइड का हलका विलयन डालो। अब इस विलयन को परमैंगनेट के विलयन द्वारा विलयनमापन करो। परमैंगनेट तबतक डालो जबतक परमैंगनेट का गुलाबी रंग ३० सेकंड तक स्थायी रहे। एक दूसरा प्रयोग भी ठीक उसी प्रकार का बिना आर्सीनियस ऑक्साइड डाला करो। इन दोनों वाचनों से पोटैसियम परमैंगनेट की वास्तविक मात्रा मालूम हो जायगी।

फेरिक सलफेट विलयन—६७·५ ग्राम फेरिक अमोनियम सलफेट को पानी में घुलाकर ५०० मिलिलिटर विलयन बनाओ। इस विलयन के २५ मिलिलिटर को चार नार्मल गन्धकाम्ल के विलयन के १० मिलिलिटर से अम्लिक बनाकर परमैंगनेट के विलयन से विलयनमापन करो।

इस विलयन के साथ अन्तिम बिन्दु मालूम करने के लिए सूचक का उपयोग करते हैं। इसके लिए अर्थोफिनाप्थ्रोलीन मोनोहाइड्रेट का विलयन तैयार करते हैं।

इसके ०·७४ ग्राम को फेरस सलफेट के २५ मिलिलिटर विलयन में घुलाकर तैयार करते हैं। फेरस सलफेट का विलयन ०·७ ग्राम फेरस सलफेट को १०० मिलिलिटर में घुलाकर तैयार करते हैं।

ताँबे के ऑक्साइड की मात्रा निर्धारित करने के लिए ताँबे के अवक्षेप को गूचमूषा से बीकर में हस्तान्तरित कर भली प्रकार से धो लेते हैं। अब इसमें फेरिक सलफेट का ५० मिलिलिटर डालकर खूब हिलाकर क्यूप्रस ऑक्साइड को पूर्णरूप से घुला लेते हैं। जब ऑक्साइड पूर्णतया घुल जाय तो उसमें २० मिलिलिटर ४ नार्मल गन्धकाम्ल का विलयन डालकर पोटैशियम परमैंगनेट के विलयन से विलयनमापन करते हैं। अन्तिम विन्दु पहुँचने के समय सूचक की एक बूँद डालते हैं। अन्तिम विन्दु पर कपिलवर्ण हरा हो जाता है, यहाँ क्रिया इस प्रकार होती है।

$$Fe_2(SO_4)_3 + Cu_2O + H_2SO_4 = 2\,FeSO_4 + 2CuSO_4 + H_2O$$

यदि पोटैशियम परमैंगनेट के एक लिटर में परमैंगनेट की मात्रा ४·९८ ग्राम है तो इसका एक मिलिलिटर ताँबे के ०·०१० ग्राम के बराबर है।

ताँबे के ऑक्साइड की मात्रा का निर्धारण आयोडीन और सोडियम थायोसलफेट के विलयन के द्वारा भी होता है।

सोडियम थायोसलफेट का विलयन—१९ ग्राम सोडियम थायोसलफेट का मणिभ लो। इस मणिभ का सूत्र $Na_2S_2O_3\ 5H_2O$ होता है। इसे पानी में घुलाकर एक लिटर बनाओ। अब बड़ी यथार्थता से प्रायः ०·२ ग्राम शुद्ध ताँबे का पत्तर तौलो और उसे २५० मिलिलिटर के फ्लास्क में रखकर ५ मिलिलिटर ऐसा नाइट्रिक अम्ल डालो जिसमें आधा प्रबल नाइट्रिक अम्ल और आधा पानी हो। प्रबल नाइट्रिक अम्ल की आपेक्षिक घनता १·४२ होती है। इस हलके नाइट्रिक अम्ल में ताँबा घुल जायगा। अब इसमें पानी डालकर ५० मिलिलिटर बना लो और उसको उबाल डालो ताकि नाइट्रिक अम्ल के सारे लाल धुएँ निकल जायँ। तब उसमें ५ मिलिलिटर प्रबल ब्रोमीन जल डालकर फिर उबाल डालो, ताकि ब्रोमीन के सारे धुएँ पूर्ण रूप से निकल जायँ। ब्रोमीन इस कारण डाला जाता है कि नाइट्रिक अम्ल के लाल धुएँ पूर्ण रूप से निकल जायँ। अब विलयन को ठंढाकर उसमें प्रबल अमोनिया का ७ मिलिलिटर डालकर उबाल डालो ताकि अमोनिया का आधिक्य निकल जाय। अब इसमें प्रबल ऐसिटिक अम्ल की कुछ बूंदे डालकर विलयन को स्वच्छ बनाओ। अब इसे ठंढा कर उसमें पोटैसियम आयोडाइड का विलयन डालो। १०० मिलिलिटर जल में ५० ग्राम पोटैसियम आयोडाइड डालकर विलयन बनाओ। इस विलयन का प्रायः ६ मिलिलिटर डालो। इससे पोटैसियम आयोडाइड से क्यूप्रस आयोडाइड का अवक्षेप बनेगा और आयोडीन मुक्त होगा।

$$2\,Cu(C_2H_3\,O_2)_2 + 4\ KI = Cu_2I_2 + 4K\ C_2H_3O_2 + 2I$$

कॉपर ऐसीटेट क्यूप्रस आयोडाइड

मुक्त आयोडीन से विलयन का रंग कपिल वर्ण का होगा। इस विलयन को

सोडियम थायोसलफेट से विलयनमापन करो। जब विलयन का कपिल वर्ण बहुत हल्का हो जाय तब उसमें स्टार्च का विलयन डालो ताकि विलयन नीला हो जाय। तबतक थायोसलफेट का विलयन डालते जाओ जबतक स्टार्च का नीला रंग हलके लीलक रंग का हो जाय। अब थायोसलफेट के विलयन को बूंद-बूंद सावधानी से डालो। प्रत्येक बूंद डालने के बाद क्रिया के सम्पादन के लिए कुछ ठहर जाओ। इससे अन्तिम विन्दु के निर्धारण में कठिनता नहीं होगी। थायोसलफेट का एक मिलिलिटर ताँबे के ०.००५ ग्राम के बराबर होता है। सोडियम थायोसलफेट और आयोडीन के बीच क्रिया इस प्रकार होती है।

$$2\,Na_2S_2O_3 + 2I = 2\,NaI + Na_2S_4O_6$$

स्टार्च विलयन तैयार करने में ०.५ ग्राम स्टार्च को थोड़ा पानी से लेई बनाकर गरम जल से उसे २५० मिलिलिटर बना लेते हैं। इसमें स्टार्च का पिण्ड नहीं रहना चाहिए। लेई बनाकर पानी डालने से पिण्ड नहीं बनता। ठंढा विलयन उपयुक्त करना चाहिए और विलयन पुराना नहीं रहना चाहिए। समय-समय पर ताजा विलयन तैयार करना चाहिए।

ताँबे का निर्धारण—अवक्षिप्त क्यूप्रस ऑक्साइड को गूचमूषा में धो देने के बाद घटि-कांच से ढककर नाइट्रिक अम्ल (१:१) के उष्ण ५ मिलिलिटर विलयन में घुलाओ। पिपेट से अम्ल को घटि-काँच के नीचे डालो। जब घुल जाय तब उसे २५० मिलिलिटर के फ्लास्क में मूषा को धोकर सारा ताँबा डाल दो। ५० मिलिलिटर जल इसके लिए पर्याप्त होगा। लाल धुएँ को निकालने के लिए विलयन को उबाल डालो। फिर उसमें ५ मिलिलिटर ब्रोमीन जल डालकर उबाल डालो। अब थायोसलफेट से विलयनमापन करो।

विपर्यस्त शर्करा का निर्धारण—यदि किसी नमूने में द्राक्ष-शर्करा की मात्रा १.५ प्रतिशत से अधिक और इक्षु-शर्करा की मात्रा ९८.५ से कम है तो द्राक्ष - शर्करा की मात्रा इस प्रकार निर्धारित होती है।

तां = ताँबे की मात्रा

ध्रु = ध्रुवीयन

भ = विलयन के ५० मिलिलिटर में पदार्थ का भार

गु = ताँबे को विपर्यस्त शर्करा में परिणत करने का गुणक

$$\frac{\text{तां}}{२} = \text{विपर्यस्त शर्करा का सन्निकट भार} = \text{श}$$

$$\text{श} \times \frac{१००}{\text{भ}} = \text{विपर्यस्त शर्करा की प्रतिशतता} = \text{इ}$$

$$\frac{१०० \times घु}{घ_{ु} \times ह} = सं,$$ इक्षु-शर्करा की आपेक्षिक संख्या

१०० − सं = न; विपर्यस्त शर्करा की आपेक्षिक संख्या

$$\frac{तां \times गु}{भ}$$ = विपर्यस्त शर्करा की प्रतिशतता

डाइक्रोमेट रीति। डाइक्रोमेट विलयन —७'७१३५ ग्राम शुद्ध पोटैसियम डाइक्रोमेट के विलयन को घुलाकर एक लिटर विलयन बना लो। ऐसे विलयन का एक मिलिलिटर १० मिलिग्राम तांबे के बराबर है।

६१'८ ग्राम फेरस अमोनियम सलफेट के मणिभ को घुलाकर उसमें ५ मिलिलिटर प्रबल गन्धकाम्ल डालकर एक लिटर बना लो। यह विलयन स्थायी नहीं होता। इसकी प्रबलता में प्रति दिन ह्रास होता रहता है। इस कारण प्रतिदिन पोटैसियम डाइक्रोमेट के विलयन से विलयनमापन कर इसकी प्रबलता निकाल लेनी चाहिए। इसके लिए ऑर्थो-फीनान्थ्रोलिन फेरस सलफेट का विलयन सूचक रूप में उपयुक्त होता है। इसका रंग नीला से लाल हो जाता है।

गूचमूषा से क्यूप्रस् ऑक्साइड के अवक्षेप को बीकर में हस्तान्तरित करो। अस्बेस्टस गद्दी को भी उसके साथ ले लो। पानी डालकर काँच शलाका से गद्दी को तोड़ लो। अब पिपेट से डाइक्रोमेट विलयन की निश्चित मात्रा उसमें डालो। इस विलयन की मात्रा इतनी रहनी चाहिए कि समस्त क्यूप्रस ऑक्साइड को ऑक्सीकृत कर लेने पर भी पर्याप्त बच जाय। इसमें अब शीघ्रता से हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का विलयन डालो और सदा तबतक हिलाते रहो जबतक सारा क्यूप्रस ऑक्साइड घुल न जाय। मूषा को भी विलयन में डूबाकर निश्चित कर लो कि मूषा में सटा हुआ सारा क्यूप्रस ऑक्साइड घुल गया है। अब मूषा को निकालकर जल से पूरा धोलो। एक बूंद सूचक डालकर विलयन को फेरस सलफेट के विलयन से विलयन-मापन करो। अन्तिम विन्दु पर रंग स्थायी रह जायगा।

इस प्रकार के प्राप्त अंक से डाइक्रोमेट के आयतन की मात्रा निकालो जो क्यूप्रस ऑक्साइड को आक्सीकृत करता है और उससे मिलिग्राम में तांबे की मात्रा निकालो। अधिक यथार्थ परिणाम थायोसल्फेट की रीति की तुलना से डाइक्रोमेट रीति से प्राप्त होता है।

इन प्रयोगों से यथार्थ परिणाम प्राप्त हो सके उसके लिए निम्नलिखित सावधानी रखने की आवश्यकता है—

सब रसायन द्रव्य, कापर सलफेट, दाहक अल्कली, रोशेल लवण शुद्धतम होना चाहिए। कापर सलफेट और रोशेल लवण को अलग-अलग बनाकर अस्बेस्टस अथवा कांच-ऊन में छानकर रखना चाहिए और प्रयोग के समय ही मिलाकर इस्तेमाल करना चाहिए। प्रत्येक प्रयोग के साथ एक रिक्त प्रयोग भी करना चाहिए।

मुनसन-वाकर रीति—यह रीति उन सभी शर्कराओं के लिए उपयुक्त होती है जो फेहलिंग के विलयन का अवकरण करते हैं। ऐसी शर्कराओं में द्राक्ष-शर्करा, फलशर्करा, विपर्यस्त शर्करा और दुग्ध शर्कराएँ हैं। उन शर्कराओं की मात्रा का भी निर्धारण हो सकता है जो जलांशन से विपर्यस्त शर्कराओं में परिणत हो जाते हैं। ऐसी शर्कराओं में इक्षु शर्करा और मल्टोज हैं। इन शर्कराओं के मिश्रण से प्रश्न कुछ पेचीला हो जाता है; पर यहाँ हम केवल एक ही मिश्रण का विचार करेंगे जिसमें केवल विपर्यस्त शर्कराएँ और इक्षु-शर्करा से प्राप्त विपर्यस्त शर्कराएँ विद्यमान हैं। यदि ऐसे मिश्रण के संगठन का कुछ सन्निकट ज्ञान हो तो उससे अधिक सुविधा होती है। वस्तुत: मिश्रण के संगठन का सन्निकट ज्ञान बहुत आवश्यक है।

यदि विपर्यस्त शर्करा की मात्रा १० प्रतिशत से कम हो तो ऐसी शर्करा के लिए २० ग्राम शर्करा तौल कर ५० मिलिलिटर में बनाना चाहिए। यदि मात्रा १० प्रतिशत से अधिक है तो ५० मिलिलिटर के लिए ०·४ ग्राम पर्याप्त है। यदि मिश्रण में शर्कराओं की मात्रा अज्ञात हो तो एक प्रारम्भिक विश्लेषण से सन्निकट मात्रा का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

यहाँ पूर्व की भाँति ताँबे का विलयन तैयार कर ताँबे के ऑक्साइड को अव-क्षिप्त कर इकट्ठा कर धो लेना चाहिए। इसमें केवल एक बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए। उबालने के बाद पानी नहीं डालना चाहिए। ६०° श० पर भी अवक्षेप को धोने के लिए जल की नियत मात्रा डालनी चाहिए।

यह रीति छोए में विपर्यस्त शर्करा के निर्धारण के लिए बड़ी अच्छी है। इस रीति से प्राप्त आँकड़े निम्नलिखित सारिणी में दिये हुए हैं।

मुनसेन-वाकर रीति, केवल विपर्यस्त शर्करा और इक्षु-शर्करा की उपस्थिति में विपर्यस्त शर्करा के लिए है।

ताँबा	विपर्यस्ती शर्करा	विपर्यस्ती शर्करा और इक्षु-शर्करा		
		०·३ ग्राम समस्त शर्करा	०·४ ग्राम समस्त शर्करा	२ ग्राम समस्त शर्करा
१०	५.२	३·२	२·६	
१५	७·७	५·८	५·४	
२०	१०·२	८·३	७·६	१·६
२५	१२·८	१०·६	१०·५	४·४
३०	१५·३	१३·४	१३·०	७·०
३५	१७·८	१६·०	१५·६	६·५
४०	२०·४	१८·६	१८·२	१२·१
४५	२२·६	२१·२	२०·७	१४·७

तापक्रम	विपर्यस्त शर्करा	विपर्यस्त शर्करा इक्षु-शर्करा		
		०·३ ग्राम समस्त शर्करा	०·४ ग्राम समस्त शर्करा	२ ग्राम समस्त शर्करा
५०	२५·५	२०·८	२३·३	१७·३
५५	२८·१	२६·३	२५·६	१९·९
६०	३०·६	२८·९	२८·५	२२·५
६५	३३·२	३१·६	३१·१	२५·७
७०	३५·८	३४·२	३३·७	२७·७
७५	३८·४	३६·८	३६·३	३०·३
८०	४१·०	३९·४	३८·९	३२·९
८५	४३·०	४२·०	४१·६	३५·५
९०	४६·२	४४·७	४२·२	३८·२
९५	४८·८	४७·३	४६.८	४०.८
१००	५१·५	५०·०	४९·५	४३·५
१०५	५४·१	५२·६	५२·१	४६·१
११०	५६·७	५५·३	५४·८	४८·८
११५	५९·४	५७·९	५७·४	५१·५
१२०	६२·०	६०·६	६०·१	५४·१
१२५	६४·७	६३·३	६२·८	५६.८
१३०	६७·४	६६·०	६५·५	५९·५
१३५	७०·०	६८·७	६८·२	६२.२
१४०	७२·७	७१·४	७०·९	६४.९
१४५	७५·४	७४·१	७३·६	६७·७
१५०	७८·१	७६·६	७६·३	७०·४
१५५	८०·८	७९·५	७९·०	७३·१
१६०	८३·५	८२·२	८१·७	७५·९
१६५	६८.२	८५·०	८४·५	७८·६
१७०	८८·९	८७·७	८७·२	८१·४
१७५	९१·७	९०·५	९०·०	८४·१
१८०	९४·४	९३·२	९२·७	८६·९

ताँबा	विपर्यस्त शर्करा	विपर्यस्त शर्करा और इक्षु-शर्करा।		
		० ३ ग्राम समस्त शर्करा	०.४ ग्राम समस्त शर्करा	२ ग्राम समस्त शर्करा
१८५	९६.१	९६.०	९५.५	८९.७
१९०	९९.९	९८.७	९८.२	९२.४
१९५	१०२.४	१०१.५	१०१.०	९५.२
२००	१०५.४	१०४.३	१०३.८	९८.०
२०५	१०८.२	१०७.१	१०६.६	१००.९
२१०	११०.९	१०९.९	१०९.४	१०३.७
२१५	११३.७	११२.७	११२.२	१०६.५
२२०	११६.५	११५.५	११५.०	१०९.३
२२५	११९.३	११८.३	११७.८	११२.२
२३०	१२२.१	१२[illegible].१	१२०.७	११५.०
२३५	१२४.९	१२४.०	१२३.५	११७.९
२४०	१२७.८	१२६.८	१२६.३	१२०.७
२४५	१३०.६	१२९.६	१२९.२	१२३.६
२५०	१३३.४	१३२.५	१३२.०	१२६.६
२५५	१३६.३	१३५.३	१३४.९	१२९.४
२६०	१३९.१	१३८.२	१३७.८	१३२.३
२६५	१४२.०	१४१.१	१४०.७	१३५.२
२७०	१४४.८	१४४.०	१४३.५	१३८.१
२७५	१४७.७	१४६.८	१४६.४	१४१.०
२८०	१५०.६	१४९.७	१४९.३	१४३.९
२८५	१५३.५	१५२.६	१५२.२	१४६.९
२९०	१५६.४	१५५.५	१५५.२	१४९.८
२९५	१५९.३	१५८.५	१५८.१	१५२.८
३००	१६२.२	१६१.४	१६१.०	१५५.७
३०५	१६५.१	१६४.३	१६४.०	१५८.७
३१०	१६८.०	१६७.२	१६६.९	१६१.७
३१५	१७१.०	१७०.२	१६९.९	१६४.७

तांबा	विपर्यस्त शर्करा	विपर्यस्त शर्करा और इक्षु-शर्करा		
		०·३ ग्राम समस्त शर्करा	०·४ ग्राम समस्त शर्करा	२·० ग्राम समस्त शर्करा
३२०	१७३·९	१७३·१	१७२·८	१६७·७
३२५	१७६·९	१७६·१	१७५·८	१७०·७
३३०	१७९·८	१७९·१	१७८·८	१७३·७
३३५	१८२·८	१८२·१	१८१·८	१७६·७
३४०	१८५·८	१८५·०	१८४·८	१७९·८
३४५	१८८·८	१८८·०	१८७·८	१८२·८
३५०	१९१·८	१९१·०	१९०·८	१८५·९
३५५	१९४·८	१९४.०	१९३·८	१८८·९
३६०	१९७·८	१९७·१	१९६·९	१९२·०
३६५	२००·८	२००·१	१९९·९	१९५·१
३७०	२०३·८	२०३·१	२०३·०	१९८·२
३७५	२०६·९	२०६.२	२०६·०	२०१·३
३८०	२०९·९	२०९·२	२०९·१	२०४·४
३८५	२१३·०	२१२·३	२१२·२	२०७·५
३९०	२१६·०	२१५·४	२१५·३	२१०·६
३९५	२१९·१	२१८·५	२१८·४	२१३·८
४००	२२२·२	२२१·५	२२१·५	२१७·०
४०५	२२५·४	२२४·७	२२४·७	२२०·१
४१०	२२८·५	२२७·८	२२७·८	२२३·३
४१५	२३१·७	२३१·०	२३१·०	२२६·६
४२०	२३४·८	२३४·२	२३४·२	२२९·८
४२५	२३८·१	२३७·५	२३७·५	२३३·१
४३०	२४१·५	२४०·९	२४१·०	२३६·५
४३५	२४५·६	२४५·१	२४५·१	२४०·४

आयतनमित रीति—भारात्मक रीति के स्थान में आयतनमित रीति भी शर्कराओं की मात्रा निर्धारित करने में उपयुक्त हो सकती है। पहले लोगों का ऐसा विचार था कि आयतनमित रीति से उतना यथार्थ परिणाम नहीं प्राप्त हो सकता है; पर अब

आयतनमित रीति में बहुत-कुछ संशोधन हुआ है, जिससे आयतनमित रीति से प्राप्त आँकड़े भी बहुत यथार्थ होते हैं और विश्वसनीय पाये गये हैं। आयतनमित रीति में समय भी कम लगता है और रीति अपेक्षतया सरल होती है। इससे अन्तरराष्ट्रीय संघ ने भी आयतनमित रीति की सिफारिश की है। इनमें केवल दो रीतियों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

इयनोन-लेन आयतनमित रीति--इसमें परीक्षण के लिए ऐसा विलयन तैयार करते हैं जिसमें यदि इक्षु-शर्करा की मात्रा कम है तो १०० मिलिलिटर में ०.२५ से ०.८ ग्राम विपर्यस्त शर्करा रहती है और यदि मात्रा अधिक है—जैसे छोआ, सीरा, रस इत्यादि में—तो १०० मिलिलिटर में ०.१ से ०.३ ग्राम रहती है। यदि इसमें कोई चूने का लवण हो तो सूखे सोडियम ऑक्जलेट डालकर चूने को अवक्षिप्त कर कीसलगुहर पर छान लेते हैं। यदि आवश्यक हो तो लेड ऐसीटेट डालकर भी विलयन को स्वच्छ कर लेते हैं और फिर पोटैसियम ऑक्जलेट और डाइसोडियम फ़ास्फ़ेट डालकर सीस को दूर कर लेते हैं।

सूचक के लिए मेथिलिन ब्लू का विलयन इस्तेमाल करते हैं। मेथिलिन ब्लू के एक ग्राम को आसुत जल में विलीनकर १०० मिलिलिटर बना लेते हैं।

फेहलिंग विलयन के २५ मिलिलिटर को एक ३०० मिलिलिटर के एरलेनमेयर फ्लास्क में रखकर उसमें ठंढे में शर्करा का विलयन डालो। अब विलयन को तारजाली पर रखकर गरम करो और धीरे-धीरे दो मिनटों तक उबलने दो। उसी दशा में मेथिलिन ब्लू के विलयन का ३ से ४ बूंद डालकर विलयन-मापन को पूरा करो। मेथिलिन ब्लू का विलयन बहुत सूक्ष्म-ग्राही होता है। ब्लू रंग लाल या नारंगी में परिणत हो जाता है। फ्लास्क के ठंढा होने से वायु के प्रवेश से सूचक फिर ऑक्सीकृत हो जाता है। इस कारण उबलते विलयन में ही अन्तिम बिन्दु का निर्धारण करना चाहिए। जलवाष्प के निकलते रहने से सूचक का ऑक्सीकरण नहीं होता।

एक प्रारम्भिक प्रयोग करके शर्करा की सन्निकट मात्रा निकालकर तब दूसरे प्रयोग में अधिक यथार्थ मात्रा निकालनी चाहिए। बीकर को विलयन-मापन के समय सदा ही तार जाली पर उबालते रहना चाहिए।

कुछ लोगों ने सुझाव रखा है कि कॉपर सलफेट के विलयन को प्रमाप करना चाहिए। इस प्रमाप के लिए चीनी का विलयन तैयार करना चाहिए। ठीक ९.५ ग्राम शुद्ध शुष्क चीनी को १०० मिलिलिटर जल में घुलाकर ५ मिलिलिटर प्रबल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (आपेक्षिक घनता १.१९) डालकर ३ दिन तक रख देना चाहिए। वायु का ताप २०° श० से कम नहीं होना चाहिए। तीन दिनों के बाद विलयन को एक लिटर में बना लेना चाहिए। यह अम्लिक एक प्रतिशत विलयन बहुत स्थायी होता है और महीनों तक सुरक्षित रहता है।

प्रमाप के लिए इस विपर्यस्त शर्करा के ५० मिलिलिटर को सावधानी से उदासीन बनाकर २५० मिलिलिटर फ्लास्क में रखकर चिह्न तक भर देना चाहिए। फिर ऊपर की भाँति फेहलिंग विलयन के साथ विलयन मापन करना चाहिए। इससे गुणक निकलता है। यह गुणक है $= \frac{\text{विलयन} \times \text{शर्करा का मिलिग्राम में भार १०० मिलिलिटर में}}{१००}$

फेहलिंग के २५ मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा

(इयनोन-लेन रीति)

शर्करा विलयन मिलिग्राम में	चीनी नहीं		१०० मिलिलिटर में १ ग्राम चीनी	
	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा (मिलिग्राम में)	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा (मिलि ग्राम में)
१५	१२३ ६	८२४	१२२·६	८१७
१६	१२३·६	७७२	१२२ ७	७६७
१७	१२३ ६	७२७	१२२ ७	७२१
१८	१२३ ७	६८७	१२२·७	६८२
१९	१२३ ७	६५१	१२२·८	६४६
२०	१२३·८	६१९·५	१२२·८	६१४·०
२१	१२३·८	५८९·५	१२२·८	५८४·८
२२	१२३·९	५६३·२	१२२·९	५५८·२
२३	१२३·९	५३८·७	१२२·९	५३४·०
२४	१२४·०	५१६·७	१२२·९	५१२·१
२५	१२४·०	४९६·०	१२३·०	४९२·०
२६	१२४·१	४७७·३	१२३·०	४७३ १
२७	१२४·२	४५३·७	१२३·०	४५५ ६
२८	१२४·२	४४३·६	१२३·१	४३९·६
२९	१२४·२	४२८·३	१२३·१	४२४·४
३०	१२४·३	४१४·३	१२३·१	४१०·४
३१	१२४·३	४०१ ०	१२३·२	३९७·४
३२	१२४·४	३८८·७	१२३·२	३८५·०

फेहलिंग के २५ मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा
(इयनोन-लेन रीति)

शर्करा विलयन मिलिग्राम में	चीनी नहीं		१०० मिलिलिटर में १ ग्राम चीनी	
	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा (मिलिग्राम में)	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा (मिलिग्राम में)
३३	१२४·४	३७७·०	१२३·२	३३३·४
३४	१२४·५	३६६·२	१२३·३	३६२·६
३५	१२४·५	३५५·८	१२३·३	३५२·३
३६	१२४·६	३४६·१	१२३·३	३४२·५
३७	१२४·६	३३६·८	१२३·४	३३३·५
३८	१२४·७	३२८·१	१२३·४	३२४·७
३९	१२४·७	३१९·७	१२३·४	३१६·४
४०	१२४·८	३११·९	१२३·४	३०८·६
४१	१२४·८	३०४·४	१२३·४	३०१·२
४२	१२४·९	२९७·३	१२३·५	२९४·१
४३	१२४·९	२९०·५	१२३·५	२८७·३
४४	१२५·०	२८४·१	१२३·६	२८०·९
४५	१२५·०	२७७·९	१२३·६	२७४·७
४६	१२५·१	२७२·०	१२३·६	२६८·७
४७	१२५·१	२६६·३	१२३·७	२६३·१
४८	१२५·२	२६०·८	१२३·७	२५७·७
४९	१२५·२	२५५·६	१२३·७	२५२·५
५०	१२५·३	२५०·६	१२३·८	२४७·६

फेलिंग विलयन के १०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा
(इयनोन-लेन रीति)

इक्षु शर्करा विलयन मिलिलिटर	इक्षु शर्करा नहीं		१०० मिलिलिटर में १ ग्राम इक्षु-शर्करा		१०० मिलिलिटर में ५ ग्राम इक्षु-शर्करा		१०० मिलिलिटर में १० ग्राम इक्षु-शर्करा		१०० मिलिलिटर में २५ ग्राम इक्षु-शर्करा	
	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में
१५	५०.५	३३६	४९.९	३३३	४७.६	३१७	४६.१	३०७	४३.४	२८९
१६	५०.६	३१६	५०.०	३१२	४७.६	२९७	४६.१	२८८	४३.४	२७१
१७	५०.७	२९८	५०.१	२९५	४७.६	२८०	४६.१	२७१	४३.४	२५५
१८	५०.८	२८२	५०.१	२७८	४७.६	२६४	४६.१	२५६	४३.३	२४०
१९	५०.९	२६७	५०.२	२६४	४७.६	२५०	४६.१	२४३	४३.३	२२७
१०	५०.९	२५४.५	५०.२	२५१.०	४७.६	२३८.०	४६.१	२३०.५	४३.२	२१६
११	५१.०	२४२.९	५०.२	२३९.०	४७.६	२२६.७	४६.१	२१९.५	४३.२	२०६
१२	५१.१	२३१.८	५०.३	२२८.२	४७.६	२१६.४	४६.१	२०९.५	४३.१	१९६
१३	५१.२	२२२.२	५०.३	२१८.७	४७.६	२०७.०	४६.१	२००.४	४३.०	१८७
१४	५१.२	२१३.३	५०.३	२०९.८	४७.६	१९८.०	४६.०	१९२.१	४२.९	१७९
१५	५१.२	२०४.८	५०.४	२०१.६	४७.६	१९०.४	४६.०	१८४.०	४२.८	१७१
१६	५१.३	१९७.४	५०.४	१९३.८	४७.६	१८३.१	४६.०	१७६.९	४२.८	१६४
१७	५१.४	१९०.४	५०.४	१८६.७	४७.६	१७६.४	४६.०	१७०.४	४२.७	१५८
१८	५१.४	१८३.७	५०.५	१८०.२	४७.७	१७०.३	४६.०	१६४.२	४२.७	१५२

फेलिंग विलयन के १०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा
(इयनोन-लेन रीति)

इक्षु शर्करा विलयन मिलिलिटर	इक्षु शर्करा नहीं		१०० मिलिलिटर में १ ग्राम इक्षु शर्करा		१०० मिलिलिटर में ५ ग्राय इक्षु शर्करा		१०० मिलिलिटर में १० ग्राम इक्षु शर्करा		१०० मिलिलिटर में ८५ ग्राम इक्षु-शर्करा	
	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में	विपर्यस्त शर्करा गुणक	१०० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा मिलिग्राम में
२९	५१.५	१७७.६	५०.५	१७४.१	४७.७	१६४.५	४६.०	१५८.६	४२.६	१४७
३०	५१.५	१७१.७	५०.५	१६८.३	४७.७	१५९.०	४६.०	१५३.३	४२.५	१४२
३१	५१.६	१६६.३	५०.६	१६३.१	४७.७	१५३.९	४५.९	१४८.१	४२.५	१३१
३२	५१.६	१६१.२	५०.६	१५८.१	४७.७	१४९.१	४५.९	१४३.४	४२.४	१३२
३३	५१.७	१५६.६	५०.६	१५३.३	४७.७	१४४.५	४५.९	१३९.१	४२.३	१२८
३४	५१.७	१५२.२	५०.६	१४८.९	४७.७	१४०.३	४५.८	१३४.९	४२.२	१२४
३५	५१.८	१४७.९	५०.७	१४४.७	४७.७	१३६.३	४५.८	१३०.९	४२.२	१२१
३६	५१.८	१४३.९	५०.७	१४०.७	४७.७	१३२.५	४५.८	१२७.१	४२.१	११७
३७	५१.९	१४०.२	५०.७	१३७.०	४७.७	१२८.९	४५.७	१२३.३	४२.०	११४
३८	५१.९	१३६.६	५०.७	१३५.५	४७.७	१२५.५	४५.६	१२०.३	४२.०	१११
३९	५२.०	१३३.३	५०.८	१३०.२	४७.७	१२२.३	४५.७	१२७.१	४१.९	१०७
४०	५२.०	१३०.१	५०.८	१२७.०	४७.७	११९.२	४५.६	११४.१	४१.८	१०४
४१	५२.२	१२७.१	५०.८	१२३.९	४७.७	११६.३	४५.६	११२.२	४१.८	१०२
४२	५२.२	१२४.२	५०.८	१२१.०	४७.७	११३.५	४५.६	१०८.५	४१.७	९९
४३	५२.२	१२१.७	५०.८	११८.२	४७.७	११०.९	४५.५	१०५.८	४१.६	९७
४४	५२.२	११८.७	५०.९	११५.६	४७.७	१०८.४	४५.५	१०३.४	४१.५	९४

ऐसे गुणकों को Lane और Eynon ने निर्धारित किया है और उसीसे विपर्यस्त शर्करा के भार का ज्ञान होता है जो ताँबे के विलयन को पूर्ण रूप से अवकृत करने के लिए आवश्यक है। परिणाम की यथार्थता ताँबे की मात्रा पर निर्भर करती है। इस कारण ताँबे की मात्रा लेने में बड़ी यथार्थता की आवश्यकता है।

इक्षु-शर्करा की उपस्थिति में यदि विपर्यस्त शर्करा की मात्रा न्यून हो तो उपयुक्त रीति सुविधाजनक नहीं है। ऐसी शर्करा के लिए लफ़-स्कूर्ल रीति उपयुक्त होती है।

लफ-स्कूर्ल रीति—इस काम के लिए ताँबे का जो विलयन उपयुक्त होता है, वह निम्नलिखित रीति से तैयार होता है।

१७·३ ग्राम कॉपर सलफेट के और ११५ ग्राम साइट्रिक अम्ल के मणिभ को धीरे-धीरे गरमकर प्राय: २०० मिलिलिटर पानी में घुलाते हैं। इस विलयन को हिलाते हुए उसमें १८५·३ ग्राम अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट को प्राय: ५०० मिलिलिटर जलमें घुलाकर विलयन को डालते हैं। इस दूसरे विलयन को पहले विलयन में डालना चाहिए। पहले विलयन को दूसरे में नहीं। ठंढा हो जाने पर मिश्रण को एक लिटर में बनाकर उसमें धोआ और जलाया हुआ दो ग्राम कीसलगुहर डालकर छान लेना चाहिए। इस विलयन की क्षारिता १·७८ नार्मल होना चाहिए। कुछ दशाओं में शर्करा के विलयन में उदासीन लेड ऐसिटेट डालकर लेड ऐसिटेट को फौस्फेट-औक्ज़लेट मिश्रण द्वारा निकाल लेने से स्वच्छ विलयन प्राप्त होता है।

शर्करा की मात्रा इतनी लेनी चाहिए कि उसमें विपर्यस्त शर्करा ४५ मिलिग्राम से अधिक न हो। इसके लिए साधारणतया ५ ग्राम लिया जाता है। विलयन के २५ मिलिलिटर को लेकर उसमें २५ मिलिलिटर ताँबे का विलयन डालकर ३०० मिलिलिटर एरलेनमेयर फ्लास्क में रखना चाहिए। इस फ्लास्क में झाँवे का कुछ टुकड़ा रखकर उर्ध्वाधार संघनक जोड़कर तार जाली के अस्बेस्टस पर रखकर फ्लास्क को गरम करना चाहिए। ऐसा गरम करना चाहिए कि तीन मिनटों में उबलने लगे और ठीक पाँच मिनट तक उबलता रहे। उसके बाद बिना हिलाये फ्लास्क को पानी की टोटी में ठंढा कर लेना चाहिए। अब ठंढे विलयन में आयोडेट-रहित पोटैसियम आयोडाइड के २० प्रतिशत विलयन का १५ मिलिलिटर डालकर २५ प्रतिशत गन्धकाम्ल का विलयन १५ मिलिलिटर धीरे-धीरे डालना चाहिए ताकि उसके बुदबुदन से विलयन निकलकर नष्ट न हो जाय। स्टार्च के एक प्रतिशत विलयन का एक मिलिलिटर डालकर सोडियम थायोसल्फेट द्वारा आयोडीन की मात्रा मालूम करनी चाहिए। एक रिक्त प्रयोग भी २५ मिलिलिटर जल लेकर करना चाहिए। इस रिक्त प्रयोग और वास्तविक प्रयोग के अन्तर से विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकालनी चाहिए।

परिष्कृत चीनी में विपर्यस्त शर्करा का निर्धारण क्रेज़ी रीति—ज़रबन ने इस रीति का उपयोग किया है और उससे अच्छा परिणाम पाया है। वे इस रीति को अपनी पुस्तक के ८४२ पृष्ठ में इस प्रकार वर्णन करते हैं। इस काम के लिए क्रेज़ी ने ताँबा प्रतिकारक इस प्रकार तैयार किया था—विलयन १, एक लिटर में ७·८६ ग्राम मणिभीय कॉपर सलफेट (=२ ग्राम ताँबा)। विलयन २. एक लिटर में ३·२६२ ग्राम अनार्द्र सोडियम कार्बोनेट और २० ग्राम रौशेल लवण। इन दोनों विलयनों के प्रत्येक के २५ मिलिलिटर

विलयन को २५० मिलिलिटर एरलेनमेयर फ्लास्क में हस्तान्तरित करते हैं। एक दूसरे इसी प्रकार के फ्लास्क में १० ग्राम परिष्कृत चीनी को ५० मिलिलिटर में विलीन कर ५ मिलिलिटर दशांशनार्मल (N/10) पोटैसियम बाईकार्बोनेट विलयन (एक लिटर में १०·०१ ग्राम) डालते हैं। दोनों विलयनों को अलग-अलग एक बड़े बर्नर से तार जाली पर जो अस्बेस्टस तख्ते से ढका रहता और जिसमें ६ सेन्टीमीटर व्यास का सूराख होता है, उसे गरम करते हैं ताकि वह उबलने लगे। विलयन को उबलने तक पहुँचने में सवा दो से पौने तीन मिनट लगाना चाहिए। अब छोटी ज्वाला से विलयन को १० मिनट उबलते रखना चाहिए। अब उसमें ताजा उबाला हुआ और ठंडा किया ५० मिलिलिटर जल सावधानी से डालना चाहिए ताकि उसमें वायु के बुलबुले न घुसे और न फ्लास्क हिले ही। अब इसे ठंडे जल में ५ मिनट और ठंडा करते हैं। अब ४ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (एकेन्द्रिक हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के एक आयतन में दो आयतन पानी डालकर) के एक से सवा मिलिलिटर डालकर विलयन को अम्लिक करके शीघ्र ही ६३·५७ वाँ नार्मल आयोडीन विलयन (१ मिलिलिटर = १ मिलिग्राम तांबा) का आधिक्य डालना चाहिए। क्यूप्रस ऑक्साइड पूर्ण रूप से विलीन हो जाना चाहिए और आयोडीन विलयन का प्रायः ५ मिलिलिटर आधिक्य रहना चाहिए। इसे ६३·५७ वां नार्मल थायोसलफेट विलयन से विलयन-मापन कर लेना चाहिए। थायोसलफेट तब तक डालना चाहिए जब तक कम-से-कम १ मिनटों तक आयोडीन स्टार्च विलयन का नीला रंग स्थायी रहे।

आयोडीन डालने के मिलिलिटर और थायोसलफेट के मिलिलिटर का अन्तर अवकृत तांबे के मिलिग्राम के बराबर होता है। इक्षु-शर्करा के विलयन के स्थान में केवल जल लेकर एक रिक्त विलयन-मापन से वास्तविक प्रयोग के परिणाम का संशोधन हो जाता है। तांबे का प्रत्येक मिलिग्राम विपर्यस्त शर्करा के ०·४३५ ग्राम के बराबर होता है अथवा यदि विश्लेषण के लिए १० ग्राम इक्षु-शर्करा उपयुक्त हुआ है तो ०·००४३५ प्रतिशत शर्करा के समतुल्य है। यह अनुपातिता विपर्यस्त शर्करा के ०·०५ प्रतिशत मात्रा तक ठीक होती है। यह मात्रा परिष्कृत शर्करा में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा की सीमा से अधिक है।

इक्षु-शर्करा की भी अवकरण क्रिया होती है। क्रेजी ने देखा है कि शुद्धतम इक्षु-शर्करा के १० ग्राम में १·७ मिलिग्राम तांबा अवकृत हो जाता है; पर ज़रबन का मत है कि इक्षु-शर्करा का अवकरण इतना कम होता है कि उससे परिणाम में उल्लेखनीय अन्तर नहीं होता।

इक्षु-शर्करा का फेह्लिंग विलयन द्वारा निर्धारण—अवकरण शर्कराओं के अतिरिक्त अनवकरण शर्कराओं का निर्धारण भी फेहलिंग विलयन द्वारा होता है। यहाँ अनवकरण शर्करा को जलांशन द्वारा अवकरण शर्करा में परिणत कर उससे अनवकरण शर्करा की मात्रा निर्धारित करते हैं। इस प्रकार इक्षु-शर्करा और स्टार्च इत्यादि की मात्रा निर्धारित कर सकते हैं।

इक्षु-शर्करा के जलांशन से द्राक्ष और फल-शर्कराएँ बनती हैं। ९५ भाग इक्षु-शर्करा से १०० भाग विपर्यस्त शर्करा प्राप्त होती है। यदि विपर्यस्त शर्करा की मात्रा

कॉपर सलफेट के विलयन से निकालें तो उस परिणाम को ०·९५ से गुणा करने से इक्षु-शर्करा की मात्रा निकल आती है ; इसमें ध्यान रखने की बात यह है कि ऐसे विलयन के ५० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा प्राय: २४० मिलिग्राम अथवा इक्षु-शर्करा की मात्रा २२५ मिलिग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए।

जिस नमूने में विपर्यस्त शर्करा और इक्षु-शर्करा दोनों विद्यमान हैं, उनमें पहले विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकाल लेनी चाहिए और बाद में जलांशन के बाद समस्त विपर्यस्त शकरा की मात्रा निकालनी चाहिए। फिर पहले परीक्षण से विपर्यस्त शर्करा की मात्रा दूसरे परीक्षण में से निकालकर तब उस अंक को ०·९५ से गुना करने से इक्षु-शर्करा की मात्रा निकल आती है।

मुनसन और वाकर रीति से चीनी के किसी नमूने में पहले विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निर्धारित करते हैं। अब विलयन के ५० मिलिलिटर को निकालकर १०० मिलि-लिटर के फ्लास्क में रखकर उसमें २० मिलिलिटर पानी डालकर एक तापमापक डाल देते हैं। अब विलयन को ठीक ६५° श० तक गरम जल के उष्मक में गरम करते हैं। जब ६५° श० तक गरम हो जाय, तब उसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का १० मिलिलिटर डाल कर, मिलाकर ३० मिनटों तक रख देते हैं। उसे अब ठंढे जल में ठंढा कर, तापमापक को हटाकर धो लेते हैं और तब विलयन को एक लिटर फ्लास्क में हस्तान्तरित कर प्राय: २८° श० पर विपर्यय के लिए २४ घंटे रख देते हैं। अब दाहक सोडा से विलयन को प्राय: उदासीन बनाकर एक लिटर बना लेते हैं। यह विलयन ऐसा होना चाहिए कि विपर्यस्त विलयन के ५० मिलिलिटर में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा २४० मिलिग्राम से अधिक न हो। जब विपर्यय पूर्ण हो जाय तो अवकरण शर्करा की मात्रा मुनसन-वाकर रीति से निकाल लेनी चाहिए। इससे इक्षु-शर्करा से प्राप्त विपर्यस्त शर्करा की मात्रा मालूम हो जाती है। इसे ०·९५ से गुना करने से इक्षु-शर्करा की मात्रा निकल आती है।

डी-भाले रीति—यह रीति परिष्कृत चीनी में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकालने के लिए उपयुक्त होती है। चीनी में विपर्यस्त शर्करा की मात्रा ०·०१५ प्रतिशत तक रह सकती है। इस रीति में सूचक के रूप में मेथिलिनब्लू का विलयन उपयुक्त होता है। मेथिलिनब्लू का ०·२० प्रतिशत विलयन होना चाहिए।

यह परीक्षण परखनली में किया जाता है। परखनली स्वच्छ काँच का ६ इंच लम्बा और तीन चौथाई इंच व्यास का होना चाहिए। परखनली की तौल एकसी ६·४ से ६·६ ग्राम की रहनी चाहिए। उसके ऊपर के भाग में रबर का वलय लगा रहना चाहिए ताकि इन वलयों की सहायता से स्थायी-तल जल-उष्मक पर वे लटकाये जा सकें। जल-उष्मक ताँबे का होना चाहिए। वह ७ इंच घन का हो और उसमें तीन सूराख एक-एक इंच व्यास के हों। बीच के सूराख में परखनली रखी जाती है और दो सुराख वाष्प निकलने के लिए रहते हैं। जल-उष्मक में ऊपर से २ इंच नीचे के तल पर पानी रहना चाहिए। जल-उष्मक को वलय-दाहक से गरम करना चाहिए। स्थायी दबाव पर दाहक में गैस आनी चाहिए। गैस का दबाव ३·५ से ३·७५ इंच जल का होना चाहिए। स्थायी दबाव के लिए गैस-यामक लगे रहना चाहिए।

अब चीनी के नमूने के ७ ग्राम को बड़ी यथार्थता से तौलकर ६ मिलिलिटर पानी

में घुलाकर, स्वच्छ सूखे परख-नली में रखकर मेथिलिन ब्लू का एक मिलिलिटर विलयन डालकर उसमें ३ नार्मल सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन का एक मिलिलिटर डालना चाहिए। इन विलयनों को सूक्ष्म-बुरेट से लेना चाहिए।

अब परखनली में काग लगाकर १५ सेकंड तक जोरों से हिलाकर ठीक १२० सेकंड के लिए जल-उष्मक में डुबाकर रख देना चाहिए। अब परखनली को निकालकर अनेक प्रमाप-नलियों के रखे रंग से ५ सेकंड में मिलाना चाहिए। प्रमाप-नलियों में कॉपरसलफेट और अमोनिया के विलयन रखे रहते हैं। १६·५ ग्राम मणिभीय कॉपरसलफेट को उबाले आसुत जल में घुलाकर ५०० मिलिलिटर बनाकर उसमें अमोनियम हाइड्रॉक्साइड डाला जाता है। अमोनिया की आपेक्षिक घनता ०·८८० रहनी चाहिए और अमोनियम हाइड्रॉक्साइड की मात्रा ३२·६ प्रतिशत।

विपर्यस्त शर्करा-प्रमाप प्रतिशत	कॉपर सलफेट विलयन मिलिलिटर	अमोनिया मिलिलिटर
०·००१	४०·००	१०
०·००२	२४·६०	१०
०·००३	१६·४०	१०
०·००४	१०·६६	१०
०·००५	७·१८	१०
०·००६	४·६२	१०
०·००७	२·६७	१०
०·००८	२·२६	१०
०·००९	१·७४	१०
०·०१०	१·३३	१०
०·०१५	०·५०	१०

ऊपर के प्रत्येक मिश्रण में उबाला आसुत पानी डालकर ५० मिलिलिटर बनाकर बन्द करके रखते हैं। यदि विपर्यस्त शर्करा की मात्रा ०·०१५ प्रतिशत से अधिक है, तो पहले उसमें विपर्यस्त-मुक्त इक्षु-शर्करा की ज्ञात मात्रा डालकर नमूने को ७ ग्राम बनाकर तब घुलाकर उसमें विपर्यस्त शर्करा की मात्रा निकालते हैं।

यह रीति शीघ्रता से सम्पादित हो जाती है और पर्याप्त सुविधाजनक है।

उनचालीसवाँ प्रकरण

शर्कराओं का रसायन

शर्कराएँ कार्बोहाइड्रेट वर्ग के यौगिक हैं। कार्बोहाइड्रेटों में कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन रहते हैं। हाइड्रोजन और ऑक्सिजन उसी अनुपात में रहते हैं, जिस अनुपात में ये दोनों तत्त्व जल में विद्यमान हैं। इसी कारण इनका नाम हाइड्रेट आफ कार्बन या संक्षिप्त नाम 'कार्बोहाइड्रेट' पड़ा। पर आज यह ठीक नहीं है कि सब कार्बोहाइड्रेटों में हाइड्रोजन और ऑक्सिजन जल में उपस्थित हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के अनुपात में ही हों। कुछ ऐसे कार्बोहाइड्रेट भी मिले हैं जिनमें हाइड्रोजन और ऑक्सिजन का यह अनुपात जल में उपस्थित इन तत्त्वों के अनुपात के अनुकूल नहीं है; पर यह नाम उन के लिए भी उपयुक्त होता है।

रसायनज्ञों ने कार्बोहाइड्रेटों को तीन वर्गों में विभक्त किया है। उन्हें एक-शर्करोज़ (मोनो-सैकेरोज), द्वि-शर्करोज़ (डाइ-सैकेरोज) और बहु-शर्करोज़ (पोली-सैकेरोज) कहते हैं।

साधारणत: जिन्हें हम शर्करा कहते हैं, वे एक-शर्करोज़ और द्वि-शर्करोज़ वर्ग के यौगिक हैं। द्राक्ष-और फल शर्कराएँ एक-शर्करोज़ वर्ग के हैं और चीनी और दुग्धशर्करा द्वि-शर्करोज वर्ग के यौगिक हैं।

एक दूसरी दृष्टि से रसायनज्ञों ने शर्कराओं को दो सामान्य वर्गों में विभक्त किया है। एक अवकरण शर्कराएँ और दूसरा अनवकरण शर्कराएँ। अवकरण शर्कराएँ फेहलिंग विलयन से क्यूप्रस ऑक्साइड का अवक्षेप देती हैं। अनवकरण शर्कराएँ साधारणतया ऐसा नहीं करतीं। बहुत समय तक उबालने से वे भी अल्प मात्रा में अवक्षेप देती हैं। अवकरण शर्कराओं की संख्या अधिक है। साधारणतया वे एक-शर्कराएँ या एक-शर्करोज और उनके संजात हैं। अधिकांश द्वि-शर्कराएँ जैसे दुग्धशर्करा, माल्टशर्करा (माल्टोज), और विरल शर्कराएँ, सेलोवायोज़, जेन्टियोबायोज़, मेलोवायोज़ भी अवकरण शर्कराओं में ही हैं। अवकरण शर्कराओं में महत्त्व की शर्करा द्वि-शर्करा, इक्षु-शर्करा, है। इसके अतिरिक्त कुछ और विरल शर्कराएँ, ट्रेहालोज़, रैफिनोज़ अनवकरण शर्कराओं में सम्मिलित हैं।

अवकरण शर्कराओं का परीक्षण—१. शर्कराओं को किसी बन्द पात्र में रख कर सीधे ज्वाला पर गरम करने से उससे एक विशिष्ट प्रकार की गंध निकलती है। इस

गंध को रंज शर्करा-सम (caramel-like) गंध कहते हैं। यह गंध केवल शर्कराओं से ही नहीं निकलती, वरन् अन्य अम्लों और बहु-परमाणुक एलकोहलों से भी निकलती है। इस कारण इस परीक्षण को केवल शर्करा का लाक्षणिक गुण नहीं कह सकते।

शर्कराओं को इस प्रकार गरम करने से जल, कार्बन मनॉक्साइड और कार्बन डायक्साइड के अतिरिक्त फार्मिक अम्ल, ऐसिटिक अम्ल, एसीटोन, फरफ्यूरल और अन्य एल्डीहाइड सदृश पदार्थ निकलते हैं। जली हुई शर्करा की गंध फरफ्यूरल और एल्डीहाइड के कारण ही तीखी होती है।

२. अवकरण शर्कराओं की महत्ता की क्रिया कुछ धातुओं के लवणों और कार्बनिक पदार्थों के अवकरण की है। ताँबा, चाँदी, पारद और बिस्मथ सदृश धातुओं के अनेक लवण क्षारीय विलयनों में अवकरण शर्कराओं द्वारा अवकृत हो जाते हैं। यह अवकरण एल्डीहाइड के कारण होता है। धातुओं के लवण इससे या तो धातुओं में अथवा धातुओं के निम्न ऑक्साइडों में परिणत हो जाते हैं। इससे एल्डीहाइड समूह —CHO, कार्बोक्सिल समूह,—COOH, में परिणत हो जाता है। क्यूप्रिक ऑक्साइड क्यूप्रस ऑक्साइड में और सिल्वर ऑक्साइड चाँदी में परिणत हो जाता है। शर्कराओं के परीक्षण में कॉपर सल्फेट और सिलवर नाइट्रेट के विलयन उपयुक्त होते हैं।

फेहलिंग विलयन—फेहलिंग विलयन तैयार करने की रीति का वर्णन विश्लेषण प्रकरण में हो चुका है। इस विलयन में क्यूप्रिक् ऑक्साइड का उपयोग रहता है। इस विलयन से ईंट रंग का क्यूप्रस् ऑक्साइड का अवक्षेप प्राप्त होता है। इस अवक्षेप की मात्रा शर्करा की मात्रा के अनुपात में होती है। फेहलिंग विलयन से एरेबिनोज़ से पेन्टोनिक, फार्मिक, ग्लाइकोलिक और ट्राइ-ऑक्सी ब्यूटिरिक अम्ल बनते हैं। द्राक्ष तथा इसी प्रकार की अन्य शर्कराओं से कार्बोनिक, फार्मिक, ग्लाइकोलिक, ग्लीसिरिक, ट्राइ-ऑक्सी ब्यूटिरिक और हेक्सोनिक अम्ल बनते हैं।

फेहलिंग विलयन के अवकरण में बाह्य पदार्थों का प्रभाव पड़ता है। मूत्र, यूरिक अम्ल, एलब्युमिन, पोपटोन इत्यादि पदार्थों से क्यूप्रस् ऑक्साइड का अवक्षेप या तो रुक जाता है अथवा शर्कराओं के अभाव में भी अवक्षेप आ जाता है। इस कारण आवश्यक है कि शर्कराओं के परीक्षण के समय बाह्य पदार्थों को लेड ऐसीटेट विलयन डालकर निकाल लें। लेड ऐसीटेट के आधिक्य को भी सोडियम कार्बोनेट अथवा फास्फेट डालकर निकाल लेना चाहिए। विलयन में यदि रंग हो तो जान्तव कोयला द्वारा छान लेने से रंग दूर हो जाता है।

बेनीडिक्ट ताम्र विलयन—फेहलिंग विलयन के स्थान में बेनीडिक्ट के विलयन का उपयोग कभी-कभी अच्छा होता है। इस विलयन के लिए १७३ ग्राम सोडियम साइट्रेट और १०० ग्राम अनार्द्र सोडियम सल्फेट को प्राय: ८०० मिलिलिटर जल में घुलाओ। १७·३ ग्राम मणिभीय कॉपर सल्फेट को १०० मिलिलिटर में घुलाओ। अब दोनों विलयनों को मिलाकर एक लिटर बना लो। यूरिक अम्ल और मूत्र से बेनीडिक्ट का विलयन अवकृत नहीं होता। इस कारण मूत्र में शर्करा-मापन के लिए यह विलयन अधिक उपयुक्त है।

रजत लवण विलयन—इस विलयन को टौलेन का प्रतिकारक भी कहते हैं; क्योंकि टौलेन ने इस विलयन को पहले-पहल शर्करा के परीक्षण में उपयुक्त किया था।

एक भाग सिल्वर नाइट्रेट को १० भाग पानी में घुलाओ। फिर एक भाग सोडियम हाइड्राक्साइड को १० भाग पानी में घुलाओ। इन दोनों विलयनों का समभाग लेकर मिलाकर उसमें बूंद-बूंद अमोनिया तबतक डालो जबतक सिल्वर ऑक्साइड का सारा अवक्षेप घुल न जाय। ऐसे विलयन में १००० भाग जल में एक भाग द्राक्ष-शर्करा से ठंढी अवस्था में भी सिल्वर का अवक्षेप बनता और प्राय: १० मिनटों में परख-नली में चाँदी का सुन्दर दर्पण बन जाता है। गरम करने से चाँदी का अवक्षेप और भी शीघ्रता से प्राप्त होता है। परीक्षण के समय ही दोनों विलयनों को मिलाकर इस्तेमाल करना चाहिए। यह परीक्षण बहुत सूक्ष्म-ग्राही है और इससे एक लाख भाग जल में एक भाग द्राक्ष-शर्करा की उपस्थिति भी जानी जा सकती है। यह क्रिया केवल शर्कराओं से ही नहीं वरन, अन्य एल्डीहाइडो से भी होती है।

अन्य लवणों का भी शर्कराओं से अवकरण होता है। उनमें मरक्यूरिक सायनाइड का क्षारीय विलयन, बिस्मथ सबनाइट्रेट का क्षारीय विलयन, निकेल सल्फेट और टारटेरिक अम्ल का क्षारीय विलयन, मोलिबडेट का अम्लिक विलयन प्रमुख हैं।

इक्षु-शर्करा की उपस्थिति के ज्ञान के लिए मोलिबडेट विलयन बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। जिस नमूने में इक्षु-शर्करा की उपस्थिति जानना हो, उसका आधा मिलिलिटर विलयन लेकर उसमें १२ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की १० बूंदें और २० प्रतिशत अमोनियम मोलिबडेट की २० बूंदें डालकर उबालने से नीला रंग बढ़ता है। रंग की गहराई और शीघ्र या देर से वृद्धि शर्करा की मात्रा पर निर्भर करती है।

सिलिनियस अम्ल भी अवकरण शर्कराओं से अवकृत होकर सिलिनियम का रक्त अवक्षेप देता है। इसके लिए ०·५ ग्राम सिलिनियस अम्ल को १०० मिलिलिटर प्रबल गन्धकाम्ल में घुलाना चाहिए। ऐसे विलयन के १५ बूंद को १५ मिलिलिटर जल में घुली हुई ०·१ ग्राम शर्करा में डालने से रक्त अवक्षेप प्राप्त होता है। इस प्रतिकारक से अन्य शर्कराओं की अपेक्षा फल-शर्करा से २० गुना अधिक अवक्षेप प्राप्त होता है।

अवकरण शर्कराओं से कार्बनिक रंगीन पदार्थों के रंग भी दूर हो जाते हैं अथवा बदल जाते हैं। पिक्रिक अम्ल पीला होता है। अवकरण शर्कराओं से यह एमिडो-डाइनाइट्रो-फीनोल में परिणत हो जाता है जिसका रंग गाढ़ा लाल होता है। अर्थो-डाइनाइट्रो-बेंजीन से गाढ़ा नीललोहित रंग बनता है। यह क्रिया बहुत ही सूक्ष्म-ग्राही है। इससे एक लाख भाग में एक भाग या इससे कम भाग शर्करा भी पहचानी जा सकती है। अनव-करण शर्कराओं से यह परीक्षण नहीं होता।

रंजक—अनेक रंजक भी अवकरण शर्कराओं से अपना रंग बदल देते हैं। सफ्रेनिन का रंग लाल से पीला हो जाता है।

२. अवकरण शर्कराओं से क्षारों, अम्लों और अन्य पदार्थों पर भी क्रियाएँ होती है और उनसे ऐसी शर्कराओं को पहचाना जाता है।

क्षारों के साथ शर्कराओं के गरम करने से उनमें रंग आ जाता है और वे पीले

अथवा कपिल वर्ण के हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि क्षारों की क्रियाओं से शर्कराओं का विच्छेदन होता है और उससे अनेक पदार्थ जैसे फार्मिक अम्ल, ऐसिटिक अम्ल, ऑक्ज़ैलिक अम्ल पाइरो-कैटीचोल, प्रोटोकैटिच्यूयिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल, हाइड्रोक्सी-ब्यूटीरोलैक्टोन, सैकेरिन, मिटा-सैकेरिन और आइसो-सैकेरिन इत्यादि अनेक पदार्थ बनते हैं।

द्वि-शर्कराओं पर क्षारों की क्रिया और भी पेचीली होती है और उससे और भी अधिक संख्या में संजात और विच्छेदन-उत्पाद बनते हैं।

खनिज लवणों का प्रभाव—शर्कराओं पर सान्द्र अम्लों की क्रिया से अनेक पदार्थ बनते हैं। इन पदार्थों के रंगों से शर्करा की प्रकृति का बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सान्द्र गन्धकाम्ल का प्रभाव यह होता है कि शर्करा काली हो जाती है। इससे पहले वह पदार्थ बनता है जिसे 'ह्यूमस' (humus) कहते हैं। ह्यूमस के रासायनिक संगठन का स्पष्ट ज्ञान हमें नहीं है। कुछ लोगों ने इसका संगठन किया है; पर उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। ह्यूमस के अतिरिक्त, और भी अनेक पदार्थ जैसे फार्मिक अम्ल, लिभ्यूलिनिक अम्ल, फरफ्यूरल, मेथिल फरफ्यूरल इत्यादि अनेक पदार्थ बनते हैं।

फीनोल के साथ क्रियाएँ—शर्कराओं को सान्द्र गन्धकाम्ल अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और फीनोल के साथ गरम करने से अनेक प्रकार के रंग बनते हैं। ये रंग फीनोल और शर्करा के विच्छेदन-उत्पाद के बीच की क्रिया से बनते हैं। फीनोलों में अल्फा-नैप्थोल, थाइमोल, रिसोरसिनोल, ओरसिनोल, फ्लोरोग्लूसिनोल, क्रिसोल इत्यादि हैं। अल्फा नैपथोल के साथ महत्त्व की क्रिया होती है। यहाँ अल्फा-नैपथोल और फरफ्यूरल से डाइ-अल्फा-नैपथोल फुरिल मिथेन बनता है जो स्वयं तो रंगहीन होता है; पर सान्द्र गन्धकाम्ल में घुलकर गहरा नील-लोहित रंग बनता है। इसके लिए अल्फा-नैपथोल का १५ से २० प्रतिशत विलयन तैयार करते हैं। इस विलयन की एक से दो बूँदे शर्करा-विलयन के एक से दो मिलिलिटर में डालकर उसमें कुछ सान्द्र गन्धकाम्ल धीरे-धीरे डालने से ताकि वह परखनली की दीवार से चलकर नली के पेंदे में पहुँच जाय तो यदि शर्करा में कोई कीटोन मूलक हो तो उससे नील-लोहित रंग का दोनों तरलों की सन्धि पर वलय बनेगा। एल्डीहाइड के साथ धीरे-धीरे गरम करने से रंग की गहराई बढ़ती है। अन्य फीनोलों से रंग लाल से गहरा नीलारुण होता है। इन रंगों के देखने के लिए वर्णपटदर्शक का भी उपयोग होता है।

३. अवकरण शर्कराएँ फेनील हाइड्रेज़ीन और उनके संजातों से हाइड्रेज़ोन और ओसेज़ोन बनाती हैं।

एल्डीहाइड और कीटोन में कार्बोनील मूलक होते हैं। ये कार्बोनील मूलक फेनील हाइड्रेज़ीन के साथ फेनील हाइड्रेज़ोन बनते और फिर ओसेज़ोन बनते हैं। ओसेज़ोन साधारणतया जल में अविलेय अथवा अल्पविलेय होते हैं। उनके मणिभ भी विशेष रूप के होते हैं। फेनील हाइड्रज़िन के स्थान में इसके अनेक संजात, मेथिल फेनील हाइड्रेज़िन, एथिल फेनील-हाइड्रेज़िन, एमिल फेनील-हाइड्रेज़ीन, पाराब्रोमो-फेनील हाइड्रेज़िन और नफथील हाइड्रेज़िन भी आज उपयुक्त हो रहे हैं। भिन्न-भिन्न शर्कराओं के ओसेज़ोन भिन्न-भिन्न समय में अवक्षिप्त होते हैं और उनकी मात्रा भी विभिन्न होती है।

शर्करा	२ ग्राम शर्करा से फेनिल ओसेज़ोन	अवक्षिप्त होने का समय
द्राक्ष-शर्करा	०·३२	३० मिनट पर
दुग्ध-शर्करा	०·११	ठंढे होने पर
मल्टोज़	०·११	ठंढे होने पर
अरबिनोज़	०·२७	३० मिनट पर
फल-शर्करा	०·७०	७ मिनट पर
सर्बोज़	०·८२	१५ मिनट पर

मुलिकन ने अपनी पुस्तक में ओसेज़ोन बनने का समय इस प्रकार दिया है—

शर्करा	ओसेज़ोन बनने का समय
द्राक्ष-शर्करा	४ से ५ मिनट
दुग्ध-शर्करा	गरम विलयन में अवक्षेप नहीं होता
मल्टोज़	,, ,,
अरबिनोज़	१० मिनट
फल-शर्करा	२ मिनट
सोरबोज़	३½ मिनट

ओसेज़ोन के बनने में अन्य शर्कराओं का भी प्रभाव पड़ता है। कई शर्कराओं से एक ही ओसेज़ोन बनता है। द्राक्ष और फल-शर्कराओं से एक ही ओसेज़ोन बनता है। ओसेज़ोनों को पहचानने के लिए उनके रूप और द्रवणांक का अध्ययन करना पड़ता है। ओसेज़ोन के आवर्तन भी विभिन्न होते हैं।

४. अवकारक कर्त्ताओं से शर्कराएँ एलकोहल में परिणत हो जाती हैं। द्राक्ष-शर्करा से सोरबिटोल प्राप्त होता है। इसके लिए हाइड्रोजन धातुओं द्वारा अम्लों से प्राप्त हो सकता है। हाइड्रोजन से भी उत्प्रेरकों की सहायता से ये एलकोहल प्राप्त होते हैं।

५. दुर्बल आक्सीकारकों से शर्कराएँ एक-भास्मिक अम्लों में परिणत हो जाती हैं। ब्रोमीन अथवा हलके नाइट्रिक अम्ल से द्राक्षशर्करा ग्लूकोनिक अम्ल में परिणत हो जाती है। ये अम्ल साधारणतया अस्थायी होते हैं और रखे रहने पर लैक्टोन में अंशतः अथवा पूर्णतया परिणत हो जाते हैं।

६. शर्कराओं पर प्रबल ऑक्सीकारकों से अनेक अम्ल बनते हैं। इनमें औक्ज़लिक अम्ल तो इक्षु-शर्करा पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है।

७. शर्कराओं पर हाइड्रोस्यानिक अम्ल की क्रिया से स्यानहाइड्रिन बनते हैं। यह क्रिया केवल एल्डीहाइड और कीटोन के साथ ही होती है।

८. शर्कराओं पर सेमिकारबेज़ाइड की क्रिया से सेमिकारबेज़ोन बनते हैं। ये मणिभीय होते हैं और बेंजल्डीहाइड के साथ गरम करने से शर्करा और बेंजल्डीहाइड से भी ये कारबेज़ोन में परिणत हो जाते हैं।

९. शर्कराएँ एलकोहल के साथ ग्लाइकोसाइड बनती हैं। ग्लूकोज़ मेथिल एलकोहल के साथ मेथिल ग्लुकोसाइड बनता है। मेथिल ग्लुकोसाइड तीन प्रकार का होता है।

एक को अल्फा-मेथिल ग्लुकोसाइड, दूसरे को बीटा-ग्लुकोसाइड और तीसरे को गामा-ग्लुकोसाइड कहते हैं।

१०. शर्कराओं का अन्य अनेक पदार्थों, एल्डीहाइड, कीटोन और फीनोल के साथ भी क्रियाएँ होती हैं और उनसे अनेक पदार्थ बनते हैं।

अवकरण शर्कराओं को निम्नांकित क्रियाओं से पहचान सकते हैं—

१. उनके हाइड्रोज़ोन और ओसेज़ोन के विश्लेषण से।

२. फीनोल के रंग-क्रियाओं से।

३. धातुओं के लवणों पर क्रियाओं से।

इक्षु-शर्करा की उपस्थिति निम्नलिखित प्रति-क्रियाओं से जानी जा सकती है—

१. इक्षुशर्करा फेहलिंग विलयन से साधारणतया अवक्षेप नहीं देती।

२. फेनील-हाइड्रेज़िन से यह हाइड्रेज़ोन और ओसेज़ोन नहीं बनती।

३. जलांशन के बाद इक्षु-शर्करा फेहलिंग विलयन से अवक्षेप देती है।

४. यदि इक्षुशर्करा के ४० से ५० मिलिग्राम को ०·८५ नार्मल सोडियम हाइड्रॉक्साइड के विलयन में डालकर निम्नताप पर, १०° श० पर, परखनली में १० ग्राम डाइअज़ोयूरेसिल के साथ हिलाने से कुछ ही मिनटों में नील हरित वर्ण बनता है।

५. इक्षुशर्करा और कॉपर सल्फेट के ठंडे विलयन को मिलाकर कुछ घंटे रख देने से बहुत छोटे-छोटे सूच्याकार मणिभ, युग्मलवण, $C_{12}H_{22}O_{11}$, $CuSO_4$, $4\,H_2O$ के बनते हैं। इस युग्मलवण के लिए विलयन में कम-से-कम १० प्रतिशत इक्षुशर्करा का रहना चाहिए।

६. विपर्यस्त शर्करा की उपस्थिति में इक्षु-शर्करा की उपस्थिति के लिए पहले विपर्यस्त शर्करा को चूने के १० प्रतिशत विलयन के साथ नष्ट कर केन्द्रापसारी में अवक्षेप को बैठा कर तब स्वच्छ अवशिष्ट भाग को अल्फानैफथोल के साथ परीक्षण करते हैं। इससे विलयन में रंग आ जाता है।

द्राक्ष-शर्करा—द्राक्षशर्करा को ग्लुकोज़ और डेक्सट्रोज भी कहते हैं। फल-शर्करा के साथ-साथ यह अंगूर, मधु, फूलों के परागों और अन्य फलों में पाया जाता है। अनेक पदार्थों में ग्लुकोसाइड के रूप में पाया जाता है। कड़ुए बादाम में अमिगडैलिन के रूप में, कुछ पेड़ की छालों में सैलिसिन के रूप में और टैनिन में ग्लुकोसाइड रहता है। मानव-रक्त में भी प्रायः ०·१५ प्रतिशत द्राक्ष-शर्करा रहती है। प्रमेह के रोगियों के मूत्र में १० प्रतिशत तक ग्लुकोज़ पाया जाता है। सामान्य मूत्र में ग्लुकोज़ की मात्रा ०·१ प्रतिशत से कम रहती है।

ग्लुकोज इक्षुशर्करा के जलांशन से प्राप्त होता है। यहाँ द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा सम मात्रा में बनती हैं। ऐसे मिश्रण को विपर्यस्त शर्करा कहते हैं। इसका कारण यह है कि इक्षु-शर्करा दक्षावर्तक होता है; पर जब यह ग्लुकोज़ और फ्रुक्टोज़ में परिणत होता है तो फ्रुक्टोज़ का ऋण आवर्तन अधिक होने के कारण यह मिश्रण वामावर्तक हो जाता है।

बड़ी मात्रा में द्राक्ष-शर्करा की प्राप्ति स्टार्च से होती है। स्टार्च को हलके अम्लों से दबाव में जलांशित करते है। गरम पानी के साथ स्टार्च की लेई बनाकर उसे ३ वायु-

मण्डल के दबाव में एक प्रतिशत गन्धकाम्ल से जलांशित करते हैं। विलयन जब आयोडीन के विलयन से नीला रंग नहीं देता, तब क्रिया बन्द कर अम्ल को खड़िया से उदासीन कर छान लेते हैं। अब विलयन को विरंजितकर शून्य में सान्द्र करते हैं। सान्द्र विलयन के ठंढ़ा करने से ग्लुकोज के मणिभ निकल आते हैं। ऐसे ग्लुकोज में डेक्सट्रीन अशुद्धि के रूप में रहता है। मेथिल एलकोहल से इसको पुन: मणिभीकृत कर शुद्ध करते हैं। इस काम के लिए स्टार्च या तो चावल या आलू से अथवा मक्का से प्राप्त करते हैं।

गुण— ग्लुकोज़ मीठा होता है। इसके मणिम में मणिभ-जल का एक अणु होता है। यह १४६° श० पर पिघलता है। यह जल और एलकोहल में विलेय है। यह दक्षावर्तक होता है। इस कारण इसे डेक्सट्रोज़ कहते हैं। ताजे विलयन का विशिष्ट

आवर्तन $\left[\text{क}\right]_{\text{डी}}$ = + ११३° होता है।

इसमें एक एल्डीहाइड और पांच हाइड्रॉक्सिल मूलक होते हैं। इस कारण इसमें एल्डीहाइड और एलकोहल दोनों गुण होते हैं।

अवकरण से यह सोरबिटोल में परिणत हो जाता है। ऑक्सीकरण से यह पहले ग्लुकोनिक अम्ल और फिर सैकेरिक अम्ल बनता है।

फेनील हाइड्रेज़िन से यह हाइड्रेज़ोन और ओसेज़ोन बनता है। यह अमोनिया अथवा सोडियम बाइ-सल्फेट के साथ योगजात संयोग नहीं बनता। फेहलिंग और सिल्वर नाइट्रेट के विलयन को शीघ्रता से अवकृत कर देता है। फेहलिंग विलयन से ईंट रंग के क्यूप्रस् ऑक्साइड का अवक्षेप देता और सिल्वर नाइट्रेट के विलयन से चाँदी का दर्पण बनता है।

ऐसेटिक एनहाइड्राइड अथवा ऐसिटिल क्लोराइड से यह पंच-ऐसिटिल संजात बनता है। इससे सिद्ध होता है कि इसमें पाँच हाईड्रॉक्सिल मूलक होते हैं।

किण्वन से यह एलकोहल और कार्बन डायक्साइड बनता है।

चूने के पानी से यह चूने के साथ एक संयोग बनता है जो जल में तो विलेय है; पर एलकोहल में अविलेय है।

ग्लुक़ोज में क्षीणावर्तन (mutarotation) होता है। ताज़ा विलयन का विशिष्ट आवर्तन + ११३° होता है; पर धीरे-धीरे यह बदल कर +५२ ५ में स्थायी हो जाता है। गरम करने अथवा क्षारों से यह परिवर्तन शीघ्रता से होता है, अन्यथा कई दिनों तक यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता रहता है। द्राक्ष-शर्करा तीन प्रकार की पाई गई है। एक को अल्फ़ा-ग्लुक़ोज, दूसरे को बीटा-ग्लुकोज़ और तीसरे को गामा-ग्लुक़ोज कहते हैं।

ग्लुकोज दर्पण बनाने, मिठाई औ जाम बनाने में उपयुक्त होता है। ओषधियों में भी यह काम आता है। कैलसियम लवणों और विटामिन-डी के साथ रोगियों का यह आहार होता है।

फल-शर्करा—फलशर्करा को फ्रक्टोज़ और लिव्यूलोज भी कहते हैं। फल के रसों और मधु में यह द्राक्ष-शर्करा के साथ-साथ पाया जाता है।

रसायनशाला में इन्युलिन के हलके गन्धकाम्ल द्वारा जलांशन से यह प्राप्त होता है। अम्ल को उदासीन कर चूने के साथ साधने से अविलेय कैलसियम फ्रुक्टोसेट का अवक्षेप प्राप्त होता है। अधिक विलेय कैलसियम ग्लुकोसेट विलयन में रह जाता है। कैलसियम फ्रुक्टोसेट को पानी में आस्रस्त कर कार्बन डायक्साइड के प्रवाह से कैलसियम कार्बोनेट अवक्षिप्त होकर अलग हो जाता और छानकर निकाल लिया जाता है। विलयन के सान्द्रित कर ठंढा करने से फ्रुक्टोज़ के मणिभ धीरे-धीरे बनते हैं। बड़ी मात्रा में इन्युलिन से ही फल-शर्करा प्राप्त होती है।

गुण—फल-शर्करा के मणिभ में जल का एक अणु रहता है। ऐसा मणिभ ९५° श० पर पिघलता है। फल-शर्करा द्राक्ष-शर्करा से मिठी होती है। यह वामावर्तक होती है और इसका विशिष्ट आवर्तन $[क]_{डी} = -९२°$। इसका भी किण्वन शीघ्रता से हो जाता है। इसमें भी कीटोन और एलकोहल के गुण होते हैं। इसकी भी हाइड्रोक्सिल, हाइड्रोस्यानिक, फेनील हाइड्रोज़िन के साथ क्रियाएँ होती हैं और उनसे विभिन्न संजात बनते हैं। इसमें भी अवकरण का गुण होता है। यह भी फेहलिंग और सिल्वर नाइट्रेट के विलयन को अवकृत करता है। ऐसिटिक एनहाइड्राइड से यह भी पंच ऐसिटील संजात बनता है। इसके अवकरण से सोरबिटोल और मैनिटोल बनते हैं। नाइट्रिक अम्ल अथवा ब्रोमीन के ऑक्सीकरण से यह ग्लाईकोलिक और मिजो-टारटेरिक अम्ल देता है। यह भी ओसेज़ोन बनता है; पर यह ओसेज़ोन ग्लुकोज से प्राप्त ओसेज़ोन ही होता है।

इक्षु शर्करा—इक्षु-शर्करा को सैकेरीज़ और सुक्रोज़ भी कहते हैं। यह ईख के रस और चुकन्दर की जड़ में रहती है। इसके अतिरिक्त महुआ फूल, तालरस, खजूररस, अन्य घासों और फलों में इक्षु-शर्करा रहती है। अनानास में १० प्रतिशत, केला में ५ प्रतिशत और खूबानी में ६ प्रतिशत इक्षु-शर्करा रहती है।

इक्षु-शर्करा ईख और चुकन्दर-मूल से प्राप्त होती है।

गुण—इक्षु-शर्करा के मणिभ में जल नहीं होता। यह १६०° श० पर पिघलती है। यह जल में अतिविलेय है; पर एलकोहल में अविलेय। यह दक्षावर्तक होती है। इसका विशिष्ट आवर्तन $[क]_{डी} = +६६.५°$ है।

गरम करने पर यह पिघल जाती है और उसे ठंढ़ा करने पर 'जौ शर्करा' प्राप्त होती है। जौ-शर्करा के रखे रहने पर वह मणिभ में परिणत हो जाती है। २००° श० तक गरम करने से जल निकल जाता है और वह कपिल वर्ण के रंजशर्करा (कारामेल) में परिणत हो जाती है। रंजशर्करा खाद्य पदार्थों, मिठाइयों, सुरा और बीअर इत्यादि के रंगने में उपयुक्त होती है। अधिक तपाने से इक्षु-शर्करा कोयला, एक्रोलिन, कार्बन मनॉक्साइड, कार्बन डायक्साइड, मिथेन, एसीटाल्डीहाइड इत्यादि में परिणत हो जाती है।

इक्षु-शर्करा में अवकरण का गुण नहीं होता। हाइड्रोक्सिल, हाइड्रोस्यानाइड और फेनील हाइड्रेज़िन से भी यह आक्रान्त नहीं होता; क्योंकि इसमें न तो कोई कीटोन और न एल्डीहाइड मूलक होता है।

हलके अम्लों अथवा विकर की क्रियाओं से यह द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा की सम मात्रा में परिणत हो जाती है। इस परिवर्तन से विलयन का आवर्तन दक्षावर्तक से

वामावर्तक हो जाता है। शर्करा के इस मिश्रण को विपर्यस्त शर्करा कहते हैं और इस परिवर्तन की क्रिया को विपर्यय। विपर्यस्त शर्करा का विशिष्ट आवर्तन $\left[क \right]_{डी} = -२०$ है। इक्षुशर्करा से विपर्यस्त शर्करा अधिक मीठी होती है और मधु के स्थान में फलों के संरक्षण और शर्बत में उपयुक्त होती है।

सान्द्र गन्धकाम्ल से चीनी झुलस जाती है। सान्द्र नाइट्रिक अम्ल से यह ऑक्ज़ैलिक अम्ल में और प्रबल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से लिम्युलिनिक अम्ल में परिणत हो जाती है।

ऐसिटिक एनहाइड्राइड से यह अष्ट-ऐसिटी-संजात में परिणत हो जाती है। इससे पता लगता है कि इसके अणु में ८ हाइड्राक्सिल मूलक होते हैं।

यीस्ट से शर्करा का किण्वन होकर एलकोहल बनता है। इनवर्टेस विकर से भी इक्षु-शर्करा विपर्यस्त शर्करा में परिणत हो जाती है और फिर उसपर ज़ाइमेज़ की क्रिया से एलकोहल बनता है।

क्षारों का इक्षु-शर्करा पर कोई क्रिया नहीं होती।

शर्कराएँ कार्बनिक पदार्थ हैं। कार्बनिक रसायन के संयोगों को रसायनज्ञों ने अनेक वर्गों में विभक्त किया है। इन वर्गों में एक वर्ग कार्बोहाइड्रेट के हैं। शर्कराएँ इसी कार्बोहाइट वर्ग के अन्तर्गत हैं। कार्बोहाइड्रेटों में केवल तीन तत्त्व रहते हैं, कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन। इन्हीं तीन तत्त्वों के संयोग से पचासों कार्बोहाइड्रेट बने हैं।

कार्बन की एक विशेषता है जो अन्य तत्त्वों में नहीं पाई जाती। तत्त्व बड़े छोटे-छोटे अंशों से बने हैं जिनको हम परमाणु कहते हैं। एक समय ऐसा समझा जाता था कि परमाणु अविभाज्य है; पर अब भौतिक शास्त्रविदों ने परमाणुओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त किया है जिन्हें वे प्रोटन, एलेक्ट्रन और पोज़ीट्रोन कहते हैं; पर रासायनिक क्रियाओं के लिए परमाणु अब भी अविभाज्य समझे जाते हैं। रासायनिक क्रियाओं में परमाणु से परे हम नहीं जाते। भिन्न-भिन्न तत्त्वों के परमाणु भिन्न-भिन्न भार और अन्य गुणों के होते हैं।

कार्बन परमाणु की विशेषता यह है कि यह केवल अन्य तत्त्वों के परमाणुओं से ही संयुक्त नहीं होता; बल्कि अपने परमाणुओं से भी बहुत अधिक मात्रा में संयुक्त होता है। यह गुण अन्य तत्त्वों के परमाणुओं में इतना अधिक नहीं पाया जाता। कार्बन के केवल एक, दो, तीन और चार ही परमाणु परस्पर नहीं संयुक्त होते; वरन् सैकड़ों परमाणु संयुक्त होकर नये-नये यौगिक बनते हैं। स्टार्च में कम से-कम १२०० कार्बन परमाणु परस्पर संयुक्त हैं। शर्कराओं में भी ३, ४, ५, ६, १२, १८ इत्यादि परमाणु सरलता से संयुक्त हो विभिन्न शर्कराएँ बनते हैं। द्राक्ष और फल-शर्करा में छः छः कार्बन परमाणु संयुक्त है। इक्षु-शर्करा और दुग्ध-शर्करा में कार्बन के १२ परमाणु परस्पर संयुक्त हैं। इन शर्कराओं में हाइड्रोजन दो रूपों में रहते हैं। या तो वे सीधे कार्बन परमाणु से संयुक्त होते हैं अथवा ऑक्सिजन के द्वारा कार्बन परमाणु से संयुक्त होते हैं। जब हाइड्रोजन ऑक्सिजन परमाणु द्वारा कार्बन से संयुक्त होता है तब ऐसे ऑक्सिजन और हाइड्रोजन के मूलक को हाइड्राक्सिल

मूलक कहते हैं। ऑक्सिजन शर्कराओं में साधारणतया दो रूपों में रहते हैं। या तो वे हाइड्राक्सिल मूलक के रूप में अथवा कार्बोनील अथवा कीटोनिक और एल्डीहाइड के रूप में रहते हैं।

कार्बन का संकेत अंग्रेजी वर्णाक्षर का 'सी' अक्षर है। इसे ऐसा 'C' लिखते हैं। हाइड्रोजन का संकेत एच 'H' अक्षर है और ऑक्सिजन का संकेत 'O' अक्षर है। हाइड्राक्सिल मूलक को —OH लिखते हैं। कार्बोनील मूलक को =CO और एल्डीहाइड मूलक को —CHO। परमाणुओं के परस्पर संयुक्त होने के लिए बन्धकता की कल्पना की गई है। परमाणुओं में बन्धकताएँ होती हैं। बन्धकता को बंधन द्वारा प्रकट करते हैं। इस बंधन को या तो एक छोटी लकीर द्वारा अथवा केवल विन्दु द्वारा प्रकट करते हैं। हाइड्रोजन की बंधकता एक मानी गई है। इसकी बन्धकता को H— अथवा H· द्वारा प्रकट करते हैं। इसी प्रकार ऑक्सिजन की बन्धकता को –O– अथवा ·O· द्वारा,

नाइट्रोजन की बन्धकता $\overset{/}{\underset{/\ \backslash}{N}}$ अथवा $\overset{\cdot}{\underset{\cdot\ \cdot}{N}}$ द्वारा और कार्बन की बन्धकता $-\overset{|}{\underset{|}{C}}-$ अथवा

$\cdot\overset{\cdot}{\underset{\cdot}{C}}\cdot$ द्वारा प्रकट की जाती है। बन्धकता प्रकट करने में लकीर छोटी अथवा मोटी, विन्दु छोटा हो, या मोटा इससे कोई भेद नहीं होता। चूँकि कार्बन के परमाणु की बन्धकता चार है और हाइड्रोजन की बन्धकता एक। इससे कार्बन का एक परमाणु हाइड्रोजन के चार परमाणुओं से मिलकर सामान्यतम संयोग मिथेन बनता है। इसका सूत्र CH_4 अथवा

$$H-\overset{\overset{H}{|}}{\underset{\underset{H}{|}}{C}}-H \text{ या } H\cdot\overset{\overset{H}{\cdot}}{\underset{\underset{H}{\cdot}}{C}}\cdot H$$

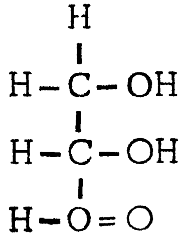
है। हाइड्रॉक्सिल मूलक की बन्धकता एक है –OH या ·OH और एल्डीहाइड मूलक की एक –CHO और कार्बोनील मूलक की दो =CO. है।

शर्कराओं में कार्बन परमाणुओं के साथ-साथ हाइड्रॉक्सिल और कार्बोनील अथवा एल्डीहाइड मूलक अवश्य रहते हैं। किसी-किसी शर्करा में कार्बोनील मूलक मुक्त नहीं रहता। सबसे सामान्य शर्करा ग्लाइकोलिक एल्डीहाइड है। इसका सूत्र निम्नलिखित है।

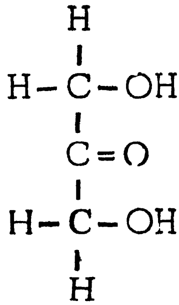
$$\begin{array}{c} H \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ H-C=O \end{array}$$

इससे प्रकट होता है कि इस यौगिक में दो कार्बन परमाणु परस्पर संयुक्त हैं। एक कार्बन के साथ दो हाइड्रोजन और एक हाइड्रॉक्सिल मूलक संयुक्त है और दूसरे कार्बन के साथ एक हाइड्रोजन और एक ऑक्सिजन परमाणु संयुक्त है। इस ग्लाइकोलिक एल्डीहाइड को 'वायोज' कहते हैं। यदि इसमें, ग्लाइकोलिक एल्डीहाइड में, एक और

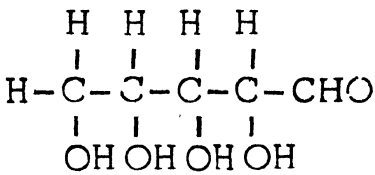
कार्बन, हाइड्रोजन और हाइड्रॉक्सिल जोड़े जायँ तो उससे दो यौगिक प्राप्त होते हैं। एक को ग्लीसिरोज़ कहते हैं, जिसका सूत्र है—



और दूसरे को ग्लीसिरिक कीटोन या हाइड्राइक्सी कीटोन जिसका सूत्र है—



इन शर्कराओं को ट्रायोज़ कहते हैं; क्योंकि इनमें कार्बन के तीन परमाणु हैं। यदि ट्रायोज़ में एक और कार्बन जोड़ा जाय तो टेट्रोज़ और एक और जोड़ा जाय तो पेन्टोज़ बनते हैं। पेन्टोज़ शर्करा का ही एक सदस्य अरविनोज़ है, जिसका सूत्र है—



अरविनोज़ में एक और कार्बन परमाणु के जोड़ने से हेक्सोज़ बनता है। हेक्सोज़ वर्ग के ही शर्कराएँ द्राक्ष- और फल शर्कराएँ हैं। हमें ऐसी रीतियाँ मालूम हैं जिनसे हम नीचे से धीरे-धीरे ऊपर उठते हुए अनेक शर्कराओं को कृत्रिम रीति से तैयार कर सकते हैं। वायोज़ से ट्रायोज़, ट्रायोज़ से टेट्रोज़, टेट्रोज़ से पेन्टोज़ और पन्टोज़ से हेक्सोज़ इत्यादि तैयार हो सकते हैं। हमें ऐसी भी रीति मालूम है जिससे ऊपर से नीचे जाते हुए अनेक शर्कराओं को तैयार कर सकते हैं।

द्राक्ष-शर्करा—द्राक्ष-शर्करा में कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन रहते हैं। इनके विश्लेषण से हम कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजन की प्रतिशत मात्रा निकाल सकते हैं। इन तत्त्वों की प्रतिशत मात्रा में उनके परमाणु-भार से भाग देने से इन तीनों तत्त्वों के परमाणुओं की निष्पति निकल आती है। इससे हम द्राक्ष-शर्करा के प्रयोग-सिद्ध सूत्र CH_2O प्राप्त करते हैं। द्राक्ष-शर्करा के अणुभार निकालने से हमें इसका अणुसूत्र $C_6H_{12}O_6$ प्राप्त होता है। अणुसूत्र निकालने की अनेक रीतियाँ हैं। उनमें किसी एक रीति से अणुभार निकालते हैं। इसका वर्णन भौतिक रसायन के किसी ग्रन्थ में मिलेगा।

अब हमें यह जानना है कि कार्बन के परमाणु एक सीधी शृखंला में संयुक्त हैं अथवा उनमें उपशाखाएँ भी हैं। द्राक्ष-शर्करा अवकरण से सोरबिटोल में परिणत हो जाती है और ऑक्सीकरण से ग्लुकोनिक और सैकैरिक अम्ल बनती हैं। इन संजातों में सब कार्बन-परमाणु एक शृंखला में रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि ग्लुकोज़ में कार्बन के सब परमाणु एकहीं शृंखला में स्थित हैं।

अब हमें पता लगाना है कि ऑक्सिजन किस रूप में है। ऐसिटिक एनहाईड्राइड से द्राक्ष शर्करा पंच-ऐसिटील संजात बनता है। प्रत्येक ऐसिटील मूलक हाइड्रोक्सिल के एक हाइड्रोजन में प्रविष्ट करता है। इससे सिद्ध होता है कि ग्लुकोज में पाँच हाइड्रॉक्सिल मूलक हैं। अब प्रश्न यह है कि छठां ऑक्सिजन किस रूप में है? ग्लुकोज़ फोनील हाइड्रोज़िन से हाइड्रोज़ोन और ओसेज़ोन बनता है। यह हाइड्रोसायनिक अम्ल से सयानहाइड्रिन भी बनता है। यह ताँबे के सल्फेट और रजत के नाइट्रेट के विलयन को अवकृत करता है! यह सब गुण कार्बोनील मूलक के हैं। इस कारण छठा ऑक्सिजन कार्बोनील का ऑक्सिजन है।

साधारणतया देखा जाता है कि यदि एक कार्बन के साथ दो हाइड्रॉक्सिल मूलक संयुक्त हो तो ऐसा यौगिक अस्थायी होता है और उससे जल शिघ्रता से निकल जाता है। शर्कराएँ अस्थायी नहीं होतीं। उनसे जल शिघ्रता से नहीं निकलता। इससे सिद्ध होता है कि किसी कार्बन के साथ दो हाइड्रॉक्सिल मूलक संयुक्त नहीं है।

अब हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि द्राक्ष-शर्करा के सारे कार्बन एक सीधी शृंखला में संबद्ध हैं और पाँच कार्बन के परमाणुओं के साथ-साथ एक एक हाइड्रॉक्सिल जुटा हुआ है और एक एल्डीहाइड या कीटोन उसके साथ संयुक्त है। द्राक्ष शर्करा एल्डीहाइड का परीक्षण देती है। इन कारणों से द्राक्ष-शर्करा का सूत्र—

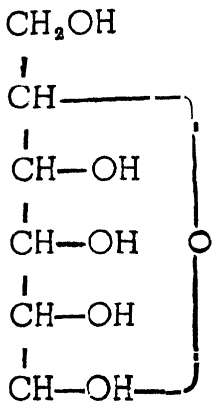
```
   H  H  H  H  H  H
   |  |  |  |  |  |
H–C–C–C–C–C–C=O
   |  |  |  |  |
   OH OH OH OH OH
```

और फल-शर्करा कीटोन का परीक्षण देती है। इस कारण फल-शर्करा का सूत्र—

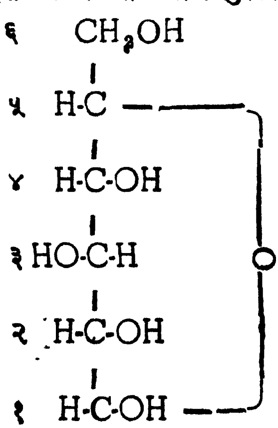
```
   H  H  H  H     H
   |  |  |  |     |
H–C–C–C–C–C–C–H
   |  |  |  |  ||  |
   OH OH OH OH O  OH
```

दिया गया है। इन सूत्रों से हम इन शर्कराओं की अधिकांश क्रियाओं की सन्तोषप्रद व्याख्या कर सकते हैं। पर केवल दो क्रियाओं का इस सूत्र से समाधान नहीं होता है। द्राक्ष-शर्करा से तीन मेथिल ग्लुकोसाइड बनती है और इसमें क्षीणावर्तन होता है। अभी जो सूत्र हमने द्राक्ष-शर्करा का दिया है, उसे इन दोनों क्रियाओं का समाधान नहीं होता।

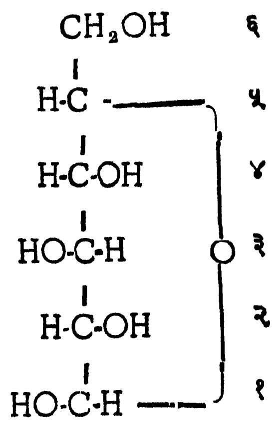
इन क्रियाओं के समाधान के लिए द्राक्ष-शर्करा को ऑक्साइड का संगठन दिया गया है।



इसमें क्यों क्षीण-आवर्तन होता है? इस सूत्र से ज्ञात होता है कि इसमें मुक्त एल्डीहाइड मूलक नहीं है। इसमें एक वलय है। इसमें एक कार्बन है जिसमें H और O H ऐसे संबद्ध हैं कि वलय के H और OH के विभिन्न स्थानों में रहने से दो शर्कराएँ हो सकती हैं। ग्लुकोज़ के वास्तव में दो रूपान्तर प्राप्त हुए हैं जिनको अल्फा- और बीटा-ग्लुकोज़ कहते हैं। इन्हीं अल्फा- और बीटा-ग्लुकोज़ के अन्तिम कार्बन के हाइड्रॉक्सिल के हाइड्रोजन के स्थान में मेथिल मूलक के प्रवेश से दो ग्लुकोसाइड बनते हैं। इन दोनों ग्लुकोज़ों के आवर्तन भिन्न-भिन्न होते हैं। अल्फा-ग्लुकोज़ का विशिष्ट आवर्तन +१०६·६° है और बीटा-ग्लुकोज़ का +२०·५° है। ठोस दशा में अधिक अंश अल्फा-ग्लुकोज़ के रूप में रहता है। पानी में घुलाने से यह धीरे-धीरे बीटा-ग्लुकोज़ में परिणत हो जाता है और दोनों के मिश्रण का विशिष्ट आवर्तन +५२·३° होता है। इस मिश्रण में ३४ प्रतिशत अल्फा-ग्लुकोज़ का और ६६ प्रतिशत बीटा-ग्लुकोज़ का रहता है। यही कारण है कि द्राक्ष-शर्करा में क्षीण-आवर्तन होता है। टानरेट ने पहले-पहल अल्फा- और बीटा-ग्लुकोज़ को अलग-अलग प्राप्त किया था।



अल्फा-ग्लुकोज़



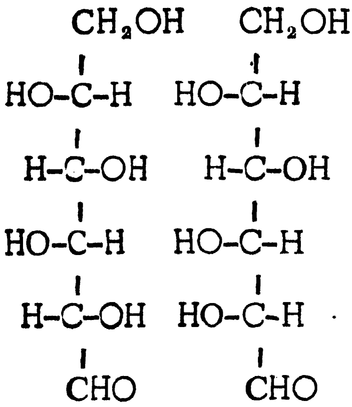
बीटा-ग्लुकोज़

ग्लुकोज़ के सूत्र में कार्बन परमाणुओं को संख्या से सूचित करते हैं। नीचेवाले कार्बन को एक और शेष को तब दो-तीन-चार-पाँच-छः द्वारा सूचित करते हैं। जब पहले-पहल अल्फा-ग्लुकोज़ और बीटा-ग्लुकोज़ को ऑक्साइड वलय दिया गया था तब ये ऑक्साइड १, ४ अथवा ब्युटिलिन ऑक्साइड समझे जाते थे। पर पीछे अन्वेषणों से पता लगा कि सामान्य ग्लुकोज़ १, ४ ऑक्साइड नहीं है। यह वस्तुतः १, ५ अथवा एमिलिन ऑक्साइड है। यह एमिलिन ऑक्साइड संगठन ही सामान्य ग्लुकोज़ का संगठन समझा जाता है। पर १, ४ ऑक्साइड के भी ग्लुकोज होते हैं। ऐसे ही ग्लुकोज़ को गामा-ग्लुकोज़ कहते हैं। ये ग्लुकोज़ जिनमें १, ४ ऑक्साइड वलय हैं अधिक अस्थायी होते हैं। यही कारण है कि गामा-ग्लुकोज़ अस्थायी होता है।

जो सूत्र ऊपर में ग्लुकोज़ को दिया गया है, वे ही सूत्र अन्य कई शर्कराओं को भी दिये गये हैं। ऐसी शर्कराओं में ग्लूलोज़, गैलेक्टोज़, मैनोज, ऐलोज़, अल्ट्रोज़, आयोडोज़ और टैलोज़ हैं। इनके दो-दो रूप होते हैं। एक रूप में वे दक्षावर्तक और दूसरे रूप में वामावर्तक होते हैं। इनके संगठन में क्या अन्तर है? एक ही सूत्र के अनेक शर्कराओं का समाधान कैसे किया जा सकता है? इसके लिए हमें शर्कराओं के अणु-विन्यास की ओर जाना पड़ता है। शर्कराओं के अणु-विन्यास से ही हम इन शर्कराओं की उपस्थिति की व्याख्या कर सकते हैं।

उन्हीं कार्बनिक यौगिकों में काशिता होती है, जिनमें असममित कार्बन परमाणु होते हैं। यदि किसी कार्बनिक यौगिक में एक असममित कार्बन है तो उसमें दो रूप हो सकते हैं—एक दक्षावर्तक और दूसरा वामावर्तक। ग्लुकोज़ में चार असममित कार्बन परमाणु हैं; अतः इसमें २⁴ अर्थात् १६ रूपान्तर हो सकते हैं। ग्लुकोज़ के वास्तव में १६ रूपान्तर हैं। इन्हीं रूपान्तरों के नाम ऊपर दिये हुए हैं। ऑक्साइड वलय सूत्र लेने से अणु-विन्यास संगठन समझने में कुछ कठिनता होती है। इस कारण हम सामान्य संगठन सूत्र में ही इन विभिन्न रूपान्तरों के सूत्र यहाँ देते हैं।

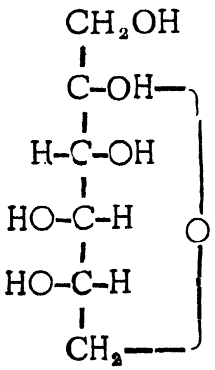
CH_2OH	CH_2OH	CH_2OH	CH_2OH	CH_2OH
HO–C–H	HO–C–H	HO–C–H	HO–C–H	HO–C–H
HO–C–H	HO–C–H	HO–C–H	HO–C–H	H–C–OH
H–C–OH	HO–C–H	H–C–OH	HO–C–H	H–C–OH
HO–CH	HO–C–H	H–C–OH	H–C–O–H	H–C–OH
CHO	CHO	CHO	CHO	CHO
ग्लुकोज़	ऐलोज़	मैनोज़	अल्ट्रोज़	टैलोज़



आयोडोज ग्लूलोज

इनमें एक सूत्र दक्षावर्तक शर्करा के हैं और दूसरा प्रतिविम्ब सूत्र वामावर्तक शर्करा के हैं।

ऐसे ही फलशर्करा के सूत्र नीचे दिये गये है; क्योंकि फलशर्करा से वही ओसेजोन प्राप्त होता है जो द्राक्षशर्करा से। और ओसेजोन के बनने में एक और दो कार्बन परमाणु सम्बद्ध हैं। अत: शेष कार्बन परमाणु के स्थापन ठीक वैसे ही है जैसे द्राक्षशर्करा में है।

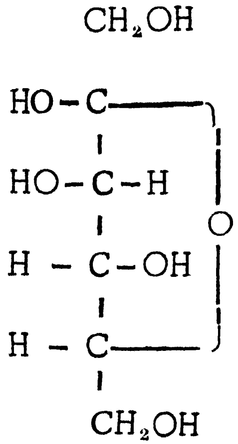


फल-शर्करा

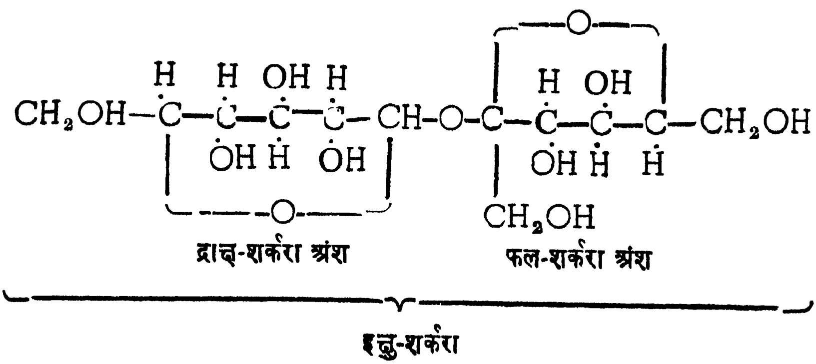
इक्षु-शर्करा—इक्षु-शर्करा के जलांशन से द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा सममात्रा में प्राप्त होती हैं। यह द्राक्ष-शर्करा वही द्राक्ष शर्करा है जो स्टार्च से अथवा अनेक फलों से प्राप्त होती है। इसके गुण ठीक सामान्य द्राक्ष-शर्करा के गुण के समान ही है; अत: यह निष्कर्ष सरलता से निकलता है कि इक्षु-शर्करा में जो द्राक्ष-शर्करा उपस्थित है, उसका संगठन वही है जो सामान्य द्राक्ष-शर्करा का है, जिसके प्राप्त होने और संगठन का विचार ऊपर में विस्तार से हो चुका है।

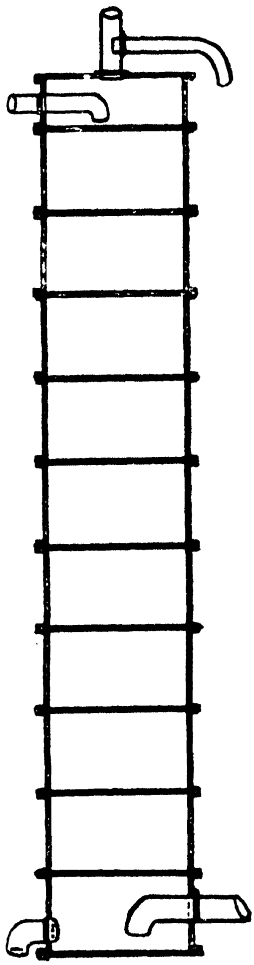
पर फल शर्करा के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इक्षु-शर्करा में जो फल-शर्करा रहती है वह सामान्य फल-शर्करा से भिन्न है। सामान्य फल-शर्करा वामावर्तक होती है। पर इक्षु में स्थित फल-शर्करा दक्षावर्तक होती है।

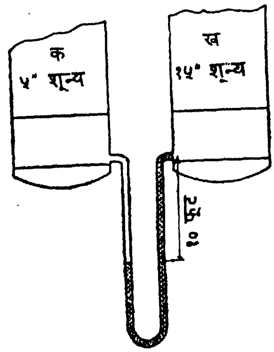
इस फल-शर्करा का विस्तार से अध्ययन हुआ है और इसका संगठन यहाँ दिया गया है। यह वस्तुतः गामा-ऑक्साइड वलय संयोग है।



इन दोनों शर्कराओं के संगठनों के योग से इक्षु-शर्करा का निम्नलिखित संगठन प्राप्त होता है।

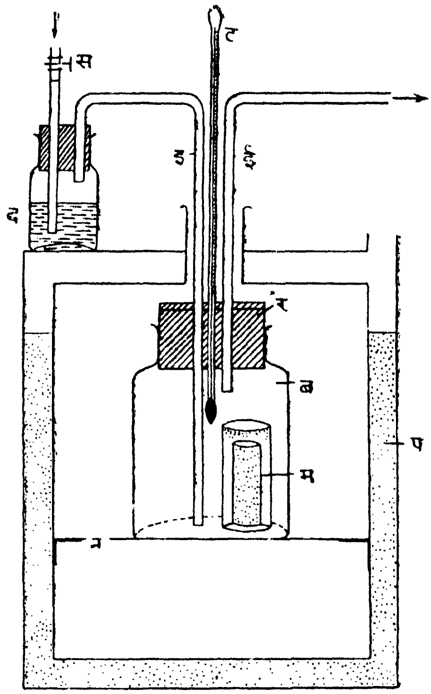






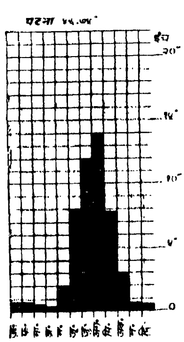
चित्र १०३—यह चित्र पृष्ठ २१० में आना चाहता था। यह दो उद्वाष्पकों के कोशों का है, जिनके बीच में एक साइफन नली लगी हुई है। यद्यपि दोनों के दबाव में पर्याप्त अन्तर है तथापि पानी सरलता से एक से दूसरे में चला जाता है। दबाव का अन्तर यदि १० इंच पारद का है तो यह १० फुट जल की ऊँचाई के समतुल्य है और तब एक से दूसरे में पानी सरलता से बह जाता है।

चित्र १०२—सल्फर डायक्सा बक्स। इस चित्र को पृष्ठ १९६ में आना चाहता था। इसमें सल्फर डायक्साइड प्रवाहित होता है। बीच-बीच में सछिद्र थाल रखे हुए हैं। ऊपर से रस गिरता है और नीचे से सल्फर डायक्साइड प्रविष्ट कर ऊपर उठता है। यह लकड़ी का बना होता है।



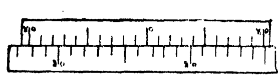
चित्र १०१—ब्राउन का शून्य शोषण

यह चित्र पृष्ठ २७७ में आना चाहता था। इसमें चीनी का रस सरलता से सुखाया जा सकता है। रसायन-शाला में यह उपकरण सरलता से बन सकता है। इसके शून्य कक्ष में एक चौड़े मुख की काच की बोतल 'ब' रहती है। जल उष्मक 'प' में निधाय 'न' पर यह रखा रहता है। यह बोतल रबर डाट 'र' से बन्द रहती है। डाट में तीन छेद होते हैं। एक में थर्मामीटर 'ट' और दो कांच नलियाँ 'ड' और 'ई' लगी हुई हैं। 'स' डाट से वायु प्रविष्ट कर 'द' से सुखाकर प्रविष्ट करती है। 'ई' नली से शून्य पम्प अथवा चूषित्र द्वारा वायु निकलती है। तोलन नली 'म' में रस को रख कर शून्य कक्ष में रखते हैं।



चित्र १००—पटने की वर्षा।

इस चित्र को पृष्ठ ७४ में आना चाहता था। पर भ्रम से वहाँ न आ सका।



चित्र १०१—अनुमापकी अनुश्रेणी।

इस चित्र को पृष्ठ ३१२ में आना चाहता था।

अनुक्रमणिका और वैज्ञानिक शब्दावली

अन्तरवयन	interweaving	१४४
अनवरत	continuous	१८२
अनार्द्र	anhydrous	३८२
अनाम्यता	flexibility	२२५
अनावकारक	non-reducing	३४७
अनुकूलतम	most appropriate	७८
अनुप्रस्थ	transverse	२०१
अनुप्रस्थकाण्ड	cross section	३५२
अनुभाग	divisions	३१०
अनुभाजन	dividing	३१०
अनुमाप	scale	२८७
अनुयान	trailor	१०६
अनुरूप	concordant	३५
अनुलंब	vertical	५०
अनुवेधन	saturation	१३५
अनुसंधायक	researcher	११३
अनुश्रेणी	vernier	३०८
अन्तहीन	endless	१०६, २४०
अन्तःक्षेप	injection	२०७
अन्तरकवच	intine	३८
अन्तराल	pitch	१३४
अन्तराल	interval	२३४
अन्तावरोधन	intercept	३०
अन्तश्चूषण	inhibition	१३५
अन्थोस्यानिन	anthocyanin	३४
अपकिरण	dispersion	२८७, ३२५
अपकीर्ण	dispersed	२८७
अपक्षय	deterioration	६६
अपचित	undigested	१५८
अपद्रव्य	impurity	१५८
अपरिवर्तित	unchanged	३५
अपरिष्कृत	raw	१८
अपवर्तन	inversion	३५
अपवर्त शर्करा	unvert sugar	३५
अपवर्तेद	invertase	४४
अपशोषण	absorption	१४४
अपेय	undrinkable	२१

आत्मचालित	automatic	१६
आधार	base	३६
अनाम्यता	flexibility	२२५
आन्तभौम	sub-terraneous	१०१
आन्तरगणन	interpolation	२६६
आपद्म	pink	३४
आभा	shade	३४
आमान	gauge	२१८
आम्भस पीडक	hydraulic press	३१८
अभ्यन्तर कवच	interior sheath	३८
आयतनमित	volumetric	३४७
आयतनमिति	volumetric analysis	३७६
आयताकार	rectangular	२०३
आयनीकरण	ionisation	१३६
आयात कर	import duty	११५
आयाम	longitudinal direction	३६
आरक्त	reddish	८७
आरी	saw	१०५
आरोघ	ram	१३४
आर्द्रता	humidity	४६
आर्द्रताग्राही	hygroscopic	१११
आलम्ब	hanger	१०८
आवर्तन	rotation	३०७
आवरण	sheath	३६
आवास	residing	६५
आविल	turbid	१५५
आविलता	turbidity	१५५
आविष्ट	charged	१३७
आवेश	charge	१३८
आशय	reservoir	३३१
आश्रय	support	२१६
आसवन	distillation	२८
आसुत	distilled	२८
आलम्बित	suspended	१७८
ओलिवर-कैम्पबेल फिल्टर	Oliever-Campbell filter	२०२
इंधन	fuel	२४८
इक्षु	sugar cane	३१

उपफल	bye-product	१६
उफान	ebullition,	१६१
उर्बरक	fertiliser	६१
उर्बरता	fertility	२५३
उभरा	swollen	३३
उलूखल	mortar	२३४
उल्लेखनीय	appreciable	३८३
उष्णकटिबन्ध	torrid zone	४५
उष्मक	bath	१८०
उष्मा	heat	१४४
ऊँख	sugar cane	३१
ऊख	sugar cane	३१
ऊर्णिका	mould	२५१
ऊति	tissue	३५
ऊसर	sterile	६१
ऊसरीली मिट्टी	sterile soil	५७
एक-कार्बनीकरण	single carbonation	३१५
एक-ध्रुवीयन	single polarisation	३१५
एक-बरूथिन	acarid	६३
एकलतामूल	a plant root	७
एक-वर्णिका प्रकाश	monochromomatic light	३३६
एक-शर्करोज्	mono-saccharose	३८६
एकेन्द्र	parabola	३४२
एलब्युमिन	albumin	४३
एलब्युमोज्	albumose	४३
एकांक	unit	२३
एकान्तरिक	alternate	१०५, ३३५
ओलिवेरियस विधि	Olivarius process	२४८
ओष्ठ	spout	२३४
ऐराबान	araban	४४
ऐसिलिताकरण	acitylation	१७०
ऐस्परगिन	asparagin	४३
ऋजुपक्षा	orthopterous	६२
कंकरीली	gravel	५५
कंचुकपक्षा	coleoptera	६०
कक्षिनिषिक्त	fertilised	१६२
कटिबन्ध	belt, zone	४८

कुक्षिवृन्त	style	३७
कुच	broomstick	१०५
कुण्डल	coil	१८२, २०७
कुन्तल	spiral	१३४
कुलक	set	१३२
क्रेजीरीति		३८२
क्युप्रेमोनियम	cupramonium	१७१
कूर्पर	crank	२१२, ३०६
केन्द्रापसारक	centrifuge	२३२
केन्द्रापसारी	centrifugal	२०४
केली-फिल्टर	kelly filter	
केशाल जल	capillary water	७८
कैलेन्ड्रिया कड़ाह	calendria pan	२१६
कोटि	ordinate	३४२
कोलायडल	colloid	१३७
कोशा	cell	३०८
कोशाधव	rayon	१७१
कोशितावस्था	pupation	६१
कृमिज	crimson	१३८
क्रकच	serrated	१३१
क्रमशः	gradually	
क्लोरोफील	chlorophyll	६२
क्षिप	jet	२६०
क्षीणावर्तन	mutarotation	३४५
क्षेपण	throwing out	२५०
क्षेपणी	paddle	२३०
क्षेप्य	waste	२४४
क्षैतिज	horizontal	८४
क्षोभक	agitator	१७४
क्षोभक	stirrer	१६१
क्षोभन	stirring	१७४
खण्ड	factor	३१५
खत्ता	bin	२४०
खनिज	mineral	६४
खर्पर	tile	१४६
खली	oil-cake	६८
खांड	unrefined country sugar	७

ग्लुटेमिन	glutamin	४३
ग्लुटोज	glutose	२५०
गवाक्ष	window	२१८
ग्वेनिन	guanine	४३
घनत्व	density	१८
घनत्वमापक	densimeter	१८
घनता	density	२७६
घर्षण	friction	१८७
घानी	batch	१२६
घूर्णक	rotating machine	१०६
घूर्णन	rotation, revolution	१३३, २७३
चक्र	wheel	२३५
चक्रवात	cyclone	४८
चक्री	car	
चरण	quadrant	३०६
चयापचय	assimilation	३५
चालक	driver	१७५
चालक घर्घरी	driving pulley	२३४
चालन	conduction	२०७
चालनी-नाल	sieve-tube	३५
चिटकना	withering	५३
चिपड़ी	cow-dung cake	६६
चीनी	sugar	७
चुकन्दर	beet-root	२८
चूषण	sucking	१५२
चारा	fodder	६५
चेतक	whip, wise	६
चेरीबोन	cheribon	४४
चोंच	beak	६२
चोकर	bran, husk	१३१
चोलिन	choline	४३
चौकोन	square	१६१
चौखट प्रेस	wooden frame press	२०२
चौही	plough part	८२
च्यवन	leakage	२१३
छत्ता	mushroom	१३६
छनना	filter	१३६

डिम्भ	larva	६०
डी-भाले रीती		३८४
ढेंकी	an appliance for drawing water from a well	७५
ढेंचा	a plant (hemp)	६८
तनु	dilute	२३
तनुता	dilution	५१
तन्तु	fibre	३४
तन्तुवाही	fibro-vascular	१००
तरङ्गदैर्घ्य	wave-length	३०३
तरलमान	hydrometer	२८२
तर्कु	spindle	१७५, २३३
तलछट	sediment	२०
ताप	temperature	१८
तापक	heater	१५२, १८६
तापक्रम	temperature	१४२, १६८
तापन सतह	heating surface	२१७
तापस्थाप	thermostat	१७४
ताम्र संख्या	copper number	१५४
तारजाली	wire gauge	२०२
तीन-उबाल पद्धति	three-boiling system	२२५
तुण्डक	rostrum	६२
तुण्डिगण	rhynchota	६०
तुण्डिगण	rhyrotous	६२
त्वक्षा-ऊति	cork-tissue	३७
त्वक्षा-भ्रमि	cork-screw	३६६
त्रियमवर्ग	triad system	३०४
थापी	flat mallet	१२८
दक्षावर्तक	dextrorotatory	३०५
दन्तिचक्र	geared wheel	२३५
दन्तिपेच	geared screw	३०६
दण्डाणु	bacillus	६५
दफ़्ती	cardboard	२७१
दरार	fissure	५३
दलित्र	crusher	१०८
दर्शक	observer	३१
दाहक	burner	१४४

निखरना	settle down	१८
निचोड़	extract	१३१
निचोल	jacket	१७४
निचोलित	jacketted	१९३
निथारक	settlers	१८१
निधाय	shelf	२६९
निनाल	syphon	२२३
निमज्जनपीडक	steeping press	१७४
निर्गन्धीकरण	desulphurisation	१७३
निर्देशन	direction	१८६
नियंत्रण	control	१९
निर्मलीकरण	clarification	१४६
निर्मित	preparation	१०३
निर्यास	exudation, gums and resins	४४
निराकरण	neutralisation	१४७
निर्थक अंश	wastes	६५
निरुदक	anhydride	१४७
निलम्बन	suspension	२३४
निश्चेषित छोआ	exhausted molasses	२४४
निश्रेणी	tier	२७३
निषिक्त	fertilised	३७
निष्कर्षण	extraction	५८
निष्कासन पंखा	suction fan	२६९
निष्वायुकरण	deaeration	१७३
निस्यन्द	filtrate	२०२
निस्यन्द प्रेस	filter press	२००
निःस्यन्द	filter	२६७
निःस्यन्द	filtrate	१५७
निःस्यन्दक	filtering	१८
निःस्यन्दन	filtration	२००
नील	blue	६८
नीलारुण	purple	३४
नेत्र विन्दु	eye-spot	९६
नेविल राति	Neville method	१९५
नौघ्नी	torpado	२१२
नृवंश विद्या	anthroplogy	३१
न्यक्लान्	nuclein	४३

परिष्करणी	refinery	२५५
परिष्कार	to refine	१४४
परिष्कारी	refiner	२३६
पर्यूढ़	iransported	५५
पर्व	internode	४१
पर्वसन्धि	node	४१
पश्चवहन	refluxing	१६६
पश्चवाही	reflux	१४७
पश्चवाहन	reflxing	१६६
पश्चाग्र	reciprocating	२१२
पाचन	digestion	३१८
पाचित	digested	३४६
पाचित्र	digester	३१८
पदातिजातक	caterpillar	६१
पाद	foot	७१
पायस	emulsion	१४६
पारगत	passed	३०५
पारदर्श	transparent	३०४
पारभासक	translucent	३४
पारवेषण	transmission	१०१
पारिजातक	hopper	६५
पारेषित	transmitted	३३४
पिटक	basket	२३४
पित्रागत	heriditory	१०३
पी.एच	pH	१३८
पीतपट्टी	yellow stripe	१००
पीतरक्तता	chlorosis	१०१
पीत विन्दु	yellow spot	६६
पीठ	stool	१००
पीडक	compresser	१७४
पुण्डिया	a sugar cane	११८
पुरवट	a device for drawing water from a well	७५
पुष्पवृन्त	peduncle	३७
पुष्पासव	flower pollens	२६
पूर्णक	finishing	१७२
पूवन	a sugar cane	११८.

प्रभासन	illumination	२८७
प्रमाप	standard, normal	१५०
प्रमापक	gauge	२०६
प्रमापकता	normality	३७७
प्रमापित	standardised	३६४
प्ररचयिता	designer	१७३
प्रलाक्ष	lacquer	१६८
प्रवाह	current	४७
प्रविधि	technic	२६५
प्रवेशकपाट	feed valve	२१७
प्रशंकरण	cross breeding	११७
प्रशीयन चक्की	Persian wheel	७५
प्रसवन	birth	६५
प्रस्थ	liter	३७२
प्रसार	expansion	१४४
प्रसारित	diffused	२२८
प्रसीता	furrow	१३४
प्रसीता	groove	३३५
प्रसृप्ति	diffusion	३००
प्रांगुल	inch	२६६
प्राचीर	diaphragm	३०६
प्राप्य	available	१५३
प्रेषण	transmission	२०८
प्रोथ	nozzle	२६०
फणिता	sugar cane juice	६
फल	vane	२२०
फलक	blade	१६१
फलशर्करा	fruit sugar	३६२
फार	a plough part	८२
फिलिप फिल्टर	Philip filter	२०३
फुज्जीदार	fluffy	१६३
फेह्लिग विलयन	Fehling solution	३८७
बँटक	distributor	२६२
बँटना	distribution	४०
बन्धुता	affinity	१४४
बफर	buffer	१३६
बरट्रैंड रीति	Bertrand method	३६६

भूमध्यरेखा	equator	४६
भृंग	elatarid	६४
भ्रमि	screw	२२०
भ्रमि-उत्थाप	jack-screw	२०१
भ्रमिनह	screw nut	२३४
भ्रामत	revolving	२०७
भ्राम्यत	rotating	१३२
मंडुर	rust	६८
मक्षिजातक	grub	६२
मज्जक	pith	४१
मण्डल	zone	१८८
मणिभ	crystal	१८
मणिभीकरण	crystallisation	२१६
मत्गुण	hemiptera	६०
मत्स्यण्डिका	impure sugar	७
मत्स्यन्दिका	partly solid and partly liquid sugar	६
मधु	honey	२५
मधुक	mahua	६
मटियार	clay loam	५५
मलपिंड	mud cake	२०४
मलहरण	defecation	१७७
मलीन	foul	१३७
मर्सरीकरण	mercerisation	३५
मादक	intoxicating	७
माध्यक	mean	२८०
मास्कट	masscuite	२२६
मिठास	sweetness	२२
मित्तस्थायीकला	metastable phase	२२०
मिलिलिटर	millilitre	२७६
मिश्री	sugar candy	८
मिसरी	sugar candy	८
मुक्तक	eliminator	१८२
मुख	stomata	३७
मुठिया	handle	१०५
मुनसेंन-वाकर रीति	Munsen-Walker Process	३३७
मुषली	piston	२१२

रेशा	fibre	२३६
रोम	hair	६७
रोमशकुक्षि	plumox stigma	३७
लंब	perpendicular	२८०
लक्ष	lacquer	२०
लक्फ-स्कुर्ल रीति		३८२
लाल गलन	red rot	६१
लालगेंड़ा	elephant cane	३३
लीलक	lilac	३७१
लेई	paste	३७१
लेप	paint	१६४
लेसिथिन	lecithin	४३
लैकेस	laccase	४४
लोम	bristle	३८
लोष्टकर	floccullent	१७८
वरिमा-रासायनिक	stereo-chemical	३४६
वर्णपटचित्रक	spectrograph	३१३
वर्तुलाकार	spherical	१६१
वर्धन	increment	३४३
वलय	ring	३४, ६७
वलयक	washer	२३४
वर्षापात	rainfall	४७
वाचन	reading	३२२
वामावर्तक	laevo-rotatory	३०५
वायुरोध	drag	२६१
वाह	current	३३५
वाहक	carrier	१०६
वाहन	conduction	२०७
वाह्यकवच	exine	३८
विकर	enzyme	४४
विकास	development	११३
विकिरण	irradiation	२०७
विचालक	stirrer	१७४
विचालन	deviation	३२६
विद्युत् रज्जु	electric rope	१०६
विघटित	dessociated	१३८
वितानक्षमता	tensile strength	१७६

सिता	white sugar	७
सितोपला	granular white sugar	६
सुक्रो-बैंकविधि	Sucro-Bank Process	२६७
सुमिति	casing	२३४
सुवाहक	good carrier	२०८
सुषिर	hollow	२३५
सीठा	bagasse	१४३
सीठा फिल्टर	bagasse filter	२०२
सीता	furrows	१०५
सीता	water channel	१०५
सीरा	syrup	२१५, २४४
सुण्डाकार	tapering	९६
सूक्ष्मग्राही	sensitive	३८८
सूक्ष्माणु	micro-organism	१३७
सूचक	indicator	१४७
सूत्रकृमि	nematode	१००
सूत्रकृमि वर्ग	nematode worms	९२
सृप	slide	२१३
सेरेह	sereh	१००
सेलोटेक्स	celotex	१४२
सैकेरिन	saccharin	२४
सैकेरेट	saccarate	२४७
सोका	red rot	८६
स्कंधन	coagulation	
स्थानान्तरण	transference	१५३
स्थाल	tray	१५५
स्थायीकरण	immobilisation	१०१
स्थावर	stationary	२३०
स्थितिस्थापक	elastic	१६१
स्थितिस्थापकता	elasticity	१७६
स्थिरभारु	bearings	२३४
स्थिरांक	constant	२८४
स्थूल	course	५५
स्थूल भित्ति	thick-walled	३५
स्नातक	graduate	१०७
स्फटन-जल	water of crystallisation	२७६
स्फटिक	quartz	३१५

अंग्रेजी-हिन्दी-शब्दावली

Absorption	अवशोषण
A-carid	एकवरूथिन
Accuracy	यथार्थता
Adjustment	व्यवस्थापन
Adsorption	अधिशोषण
Ageing	परिपाक, जीर्णन
Agitator	क्षोभक
Alluvial	जलोढ़
Alternate	असंमुख, एकान्तरिक
Annealing	अभितापन
Anther	परागाशय
Anthropology	नृवंशविद्या
Arid soil	शुष्क मृदा
Arrangement	विधान, विन्यास
Ascus	धानी
Assimilation	चयापचय
Automatic	आत्मग, आत्मचालित
Bacillus	दण्डाणु
Bacteria	जीवाणु
Baffle	व्यावरोध
Bagasse	सीठा
Ball and Socket	गुटी-उलूखल
Ball-bearing	गुटी-भारू
Basket	पिटक
Bassel syrup	द्रोणीसीरा
Batch	घानी
Bath	तापक
Bearings	स्थिर भारू
Belt	पट्टक
Bin	खत्ता
Bipsera	द्विपक्षा
Blade	फलक
Bobbin	वलिता
Borer	छिद्रक, छेदक

Bottled	अर्गलित
Bracket	अभिवार
Bran	चोकर
Breeder	अभिजनक
Bristle	लोम
Bundle	पोटल
Caking	विलोष्टन
Calculation	आगणन
Calibration	अंकशोधन
Capillary	केशाल
Caramel	रँगशर्करा
Catch	रूध
Catterpillar	पदातिजातक
Chalcidids	भुजतन्तु मक्षी
Charge	प्रभार, आवेश
Circular	वर्तुल
Chlorosis	पीतरक्तता
Clarification	विमलीकरण
Coagulation	स्कंधन
Cocid	वदराणु
Coefficient	गुणक
Coil	कुण्डल, वेष्ठन
Colluvial	समूढ़
Coleoptera	कंचुकपक्षा
Compensation	समतोलन
Concentration	सान्द्रता, सान्द्रीकरण, संकेन्द्रण
Condensation	संघनन
Conidia	कणी
Container	धारक
Continuous	अविराम
Cooker pipe	पाचकनल
Cork	त्वक्षा
Cowpeas	राजमाष
Crank	कूपर
Cream	विलेपन, मलाई
Crusher	दलित्र
Crystallisation	मणिभीकरण
Cup-board	आवरण

Curing	अभिसाधन
Cutical	उच्चर्म
Cyclone	चक्रवात
Cylinder	रम्भ
Dark	असित
Deaeration	निष्वायुकरण
Defecation	मलहरण
Deposit	निःक्षेप
Desiccator	शोषित्र
Designer	प्ररचयिता
Deviation	विचालन
Dial	अंकानिक
Dialysis	अभिसरण
Diaphragm	प्राचीर
Diffusion	प्रसृति
Digester	पाचित्र, पक्त्र
Dilution	तनुता
Dimension	विमा
Dipression	अवनमन
Discharge roll	मोचन बेलम
Disintegrator	वियोजक
Dispersion	अपकिरण
Dissociation	विघटन
Dissolve	प्रविलीन करना, विलीन करना
Distillation	आसवन
Distributor	बँटक
Ditch	खातक
Drag	वायुरोध
Drier	शुष्ककारक
Drum	डिंडिम
Dye	रंजक
Ejector	उन्नायक
Elastic	स्थितिस्थापक
Elatarid	भृंग
Elevator	उत्थापक
Eliminator	मुक्तक
Emergent	उन्मज्जद
Emulsion	पायस

Enzyme	विकर
Epidermis	अधिस्तर
Equation	समीकरण
Error	विभ्रम
Exine	वाह्यकवच
Extract	निष्कर्ष, निचोड़
Exudation	निर्यास
Eye spot	नेत्र विंदु
Factor	कारक, खंड
Feed Valve	प्रवेश कपाट
Ferment	किण्व
Fermentation	किण्वन
Fertilised	निषिक्त, कुक्षिनिषिक्त
Fertiliser	उपजावक, उर्वरक
Fibro-Vascular	तन्तुवाही
Filament	अंशु
Filtration	निःस्यन्दन
Finishing	पूर्णक
Flange	स्फार
Flexibility	अनम्यता
Floccullent	लोष्टकर
Fluffy	फुज्जीदार
Flywheel	प्रचक्र
Focus	नाभीयन
Frequency	अर्ध
Fringe	झल्लर
Function	प्रकार्य
Fungus	कवक
Furrows	कुंड, प्रसीता, सीता
Gauge	आमान
Geared	दन्ति
Gearing	दन्ति-चक्र
Genera	प्रजाति, गण
Girder	मेखला
Glumes	बुस-पत्र
Graduation	अंशांकन
Grass hopper	पतमवल्गि
Gravitional water	आकर्षक जल

Grinder	पेषणी
Groove	प्रसीता
Grub	मक्षिजातक
Gumming	संश्लेष्म
Hanger	आलम्ब
Heat	उष्मा
Heater	तापक
Hemiptera	मत्गुण
Hogshead	खारी
Hollow	सुषिर
Hoop	पट्टा
Hopper	अग्रोवाप, पारिजातक
Humid soil	अक्लिन्नमृदा
Humidity	आर्द्रता
Humus	धारण
Hybridisation	शंकरण
Hydraulic press	आम्भस पीडक
Hydrolysis	जलांशन
Hydrometer	तरलमान
Hygroscopic water	उन्देशीय जल
Hymenoptera	कलापक्षा
Hyperbola	अधीन्द्र
Illumination	प्रभासन
Immersion	निमज्जन
Immobilioation	स्थायीकरण
Immune	प्रतिरक्षित
Incandescent	उत्ताप
Injection	अन्तःक्षेप
Inhibition	अन्तश्चूषण
Intercept	अन्तावरोधन
Intermittent	सविराम
Internude	पर्व
Interpolation	आन्तरगणना
Interweaving	अन्तरवयन
Intine	अन्तरकवच
Inversion	विपर्यय, अपवर्तन, विपर्यास
Isotherm	समताप
Jacket	निचोल

Jet	क्षिप
Joint	पोर
Labile	अस्थायी
Lacquer	लक्ष, प्रलाक्ष
Laddle	कलछुल
Larva	डिम्भ
Leaf roller	पर्णबेलन
Lever	उद्याम
Lift	उदवाही
Lintern	कपासरेशा
Litre	प्रस्थ
Lodicule	परिपुष्पक
Maceration	मृदुकरण
Massecuite	राब
Melter	द्रावक
Mematoch	सूत्रकृमि
Mesh	अक्षी
Metastable	मितस्थायी
Micron	अणुभ
Micro-organism	सूक्ष्माणु
Milled head	आक्षुरित सिर
Monochromatic	एकवर्णिका
Mordant	रंगबन्धक
Mortar	उलूखल
Moth	शलभ
Mottled	कर्बुरित
Mould	संचक, ऊर्णिका
Muffle furnace	अवगुण्ठ भट्टी
Mushroom	छत्ता
Mutarotation	क्षीणावर्तन
Mycelium	कवकजाल, श्लेषमल
Nobilization	अभिजनन
Node	पर्वसन्धि, ग्रन्थि
Nodule	गांठ
Non-redecing sugar	अनवकरण शर्करा
Normality	प्रमापकता
Nozzle	प्रोथ
Nut	नट्ट

Occlusion	अधिधारण
Optical activity	काशिता
Ordinate	कोटि
Organism	जीवी
Orthopterous	ऋजुपक्षा
Oscillation	दोलन, प्रदोलन
Oscillator	प्रदोलक
Ovary	अण्डाशय
Oven	कन्दु
Paddle	क्षेपणी
Paint	लेप
Parabola	एकेन्द्र
Parabolic	परवलीय
Parasite	परजीवी
Parenchyma	जीवितक
Peaty	जीर्णकी
Peduncle	पुष्पवृन्त
Penumbra	आच्छाया
Percolators	परिच्यावक
Perithema	धान्यावरण
Phaseoulus lunatus	मुद्ग प्रजाति
Pigeon pea	पारावत कलाय
Peripheral	परिणाह
Perpendiculor	लंब
Piston	मूषली
Pitch	अन्तराल
Pith	मज्जक
Pivot	विवर्तनी
Plasticiser	अभिघटक
Plumox Stigma	रोमशकुक्षि
Pollen	पराग
Polarisation	ध्रुवीयन
Preservation	परिरक्षण
Product	उत्पाद
Projection	प्रक्षेप
Pulley	घर्घरी
Pupation	कोशितावस्था
Quadrant	चरण

Ram	आरोध
Raw	अपरिष्कृत, कच्चा
Reading	वाचन
Receptacle	ग्राहक
Reciprocating	पश्चाग्र
Recovery	प्रत्यादान
Red rot	रक्तगलन, लालगलन
Reduction	अवकरण
Reel	वेल्ल
Refining	परिष्करण
Reflection	परावर्तन
Refluxing	पश्चवाहन
Refuse molasses	परिक्षिप्त छोआ
Relief rain	उद्भूत वर्षा
Reproduction	जनन
Revivification	पुनर्जीवन
Revolution	घूर्णन
Ribbon	पट्टिका
Rim	प्रधि
Rostrum	तुण्डक
Rotary	परिभ्रामी
Rotation	आवर्तन
Rust	मंडुर
Rhynchota	तुण्डिगण
Saturation	संतृप्ति, अनुवेधन
Scale	अनुमाप
Sclerotia	जलाश्म
Scraper	अपोदघर्षक
Screw	भ्रमि
Scum	झाग
Section	प्रभाग
Sediment	तलछट, अवसाद
Self-recorded	स्वंकित
Septa	पटियाँ
Serrated	ककचवत्
Sessile	अवृन्त
Set	कुलक
Settler	निथारक

Shaft	ईषा
Shelf	निधाय
Shredder	विपाटक
Sine	ज्या
Slab	पटिया
Slide	सृप
Smut	कालिका
Spatula	प्रथ
Spikelet	शूकिका
Spindle	तकुं
Spiral	कुन्तल
Splitter	विपाटक
Spore	वीजाणु
Spout	ओष्ठ
Stalk	वृन्त
Stand	धर
Stationary	स्थावर
Steam trap	भाप-पाश
Stereo-	वरिमा
Stigma	कुक्षि
Stimulus	उद्दीपन
Stirrer	विचालक
Stomata	मुख
Stopper	डांट
Strand	पट्टी
Stress	प्रत्यावल
Stripped	राजीव
Sub-soil	उन्मृद
Sub-terraneous	आन्तर्भौम
Sulphitation	गंधकीकरण
Superfine	अधिचारु
Surcharge	अधिभार
Style	कुक्षिवृन्त
Syphon	निनाल
Table	सारिणी, सारणी
Technic	प्रविधि
Temperature	ताप
Tensile	वितान, आतन्य

Test	परीक्षण
Thermometer	तापमापक, तापमापी
Thermite	दीमक
Thermostat	तापस्थाप
Tile	खर्पर
Tissue	ऊति
Titration	विलयनमापन
Toggle	कमानी
Torpado	नौघ्नी
Torridzone	उष्णकटिबन्ध
Tractor	कर्पित्र
Trailor	अनुयान
Translucent	पारभासक
Transmission	पारेषण
Transpiration	उत्स्वेदन
Transvere	अनुप्रस्थ
Tray	स्थाल
Trough	द्रोणी
Turbid	आविल
Valve	कपाट
Vane	फल
Variation	परिणमन
Vein	नाड़ी
Verification	सत्यापन
Vernier	अनुश्रेणी
Viscosity	स्निग्धता
Voltage	विभवत्व
Volumetric analysis	आयतनमिति
Washer	धावक
Waste	उच्छिष्ट
Watch glass	घटि-कांच
Wavelength	तरंग दैर्घ्य
Wedge	स्फान
Weight	बाँट
Window	गवाक्ष, द्वारी
Yellow spot	पीतबिंदु
Yoke	जुआ

शुद्धि-पत्र

प्रूफ-संशोधन की असावधानी से पुस्तक में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। कुछ अशुद्धियाँ ऐसी हैं, जिन्हें पाठक स्वयं सुधार सकते हैं। जैसे—'उन्देक्षीय' के स्थान में 'उन्देसीय' (पृष्ठ ७८), 'पिछलकर' के स्थान में 'पिघलकर' (पृ० ८०), 'बनाया' के स्थान में 'बताया' (पृ० १३५), 'नितस्थायीकला' के स्थान में 'मितस्थायीकला' (पृ० २२०), 'अधिक' के स्थान में 'अधिक' (पृ० २३८), 'समता' के स्थान में 'क्षमता' (पृ० २६४), 'गैसमामक' के स्थान में 'गैसमापक' (पृ० २७६), 'अपेक्षतया' के स्थान में 'अपेक्षया' (पृ० ३७१) होना चाहिए। पर कुछ अशुद्धियाँ ऐसी हैं जो महत्त्व की और आँकड़ों की हैं। उनका सुधार आवश्यक है।

पृष्ठ	अशुद्धरूप	शुद्धरूप
३९	४ प्रतिशत	४० प्रतिशत
११२	१११ लाख	११ लाख
१३९	हाइड्रोजन	हाइड्रोजन आयन
,,	हाइड्रोक्सील	हाइड्रोक्सील आयन
१४५	१ ५	१·५
१८७	उध्वाधारतापक	क्षैतिजतापक
,,	क्षैतिजतापक	उध्वाधारतापक
१९५	२६५°	२६·५°
,,	४५	४·५
,,	७३५	७३·५
२१७	१$\frac{१}{६}$	$\frac{१}{१६}$
२४५	ही	नहीं
२५७	defaction	defecation
२७८		चित्र ऊपर का नीचे छप गया है
२९६	उत्प्लावन	निमज्जन
३०८	Shindle	Spindle
३३१	४०	४२०
४००	ग्लुलोज	ग्युलोज

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के सत्रह अनमोल ग्रन्थ

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। प्राचीन रचनाओं के उदाहरण भी। मूल्य पौने तीन रुपये अजिल्द, पृष्ठ-संख्या ११२। आदिकालीन साहित्य का प्रामाणिक विवेचन।

२. यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। आधुनिकतम यूरोपीय दर्शन का भी संक्षिप्त परिचय। विस्तृत भूमिका। मूल्य सवा तीन रुपये सजिल्द। पृष्ठ-संख्या ११५।

३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल। मूल्य सजिल्द साढ़े नौ रुपये। दो तिरंगे और १८८ इकरंगे ऐतिहासिक चित्र। पृष्ठ-संख्या २७२। प्राचीन भारत का वैभववर्णन।

४. विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाबिहारीलाल वर्मा। मूल्य साढ़े तेरह रुपये। पृष्ठ-संख्या ५०४। विश्व के प्रमुख धर्मों का इतिहास और परिचय। सजिल्द। भारतीय संस्कृति का विशद परिचय।

५. सार्थवाह—डा० मोतीचन्द्र। मूल्य ग्यारह रुपये। १०० ऐतिहासिक चित्र तथा दो दुरंगे मानचित्र। सर्वत्र प्रशंसित। सचित्र बहुरंगी जिल्द। पृष्ठ-संख्या ३२०। अत्यन्त आकर्षक वर्णन शैली।

६. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डा० सत्यप्रकाश (प्रयाग-विश्वविद्यालय)। मूल्य आठ रुपये। गवेषणापूर्ण और मननीय। पृष्ठ-संख्या २८४, सजिल्द।

७. सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन—डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री। मूल्य चौदह रुपये। सात तिरंगे और बारह एकरंगे चित्र। पृष्ठ-संख्या ४४२, सचित्र-सजिल्द।

८. काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनुवादक, पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत 'संस्कृत-रत्नाकर'-सम्पादक। मूल्य साढ़े नौ रुपये। प्रामाणिक भूमिका और परिशिष्ट। पृष्ठ-संख्या ४६६। सजिल्द।

९. श्री रामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा। मूल्य पौने नौ रुपये। पाण्डित्यपूर्ण पठनीय निबन्ध। सजिल्द। पृष्ठ-संख्या ३१६। लेखक का दुर्लभ चित्र भी।

१०. प्राङ्मौर्यबिहार—डा० देवसहाय त्रिवेद। मूल्य सवा सात रुपये। प्राचीन बिहार के मानचित्र के साथ ग्यारह एकरंगे ऐतिहासिक चित्र। सजिल्द। पृष्ठ-संख्या २१०।

११. गुप्तकालीन मुद्राएँ—डा० अनन्त सदाशिव अलतेकर। मूल्य साढ़े नौ रुपये। पृष्ठ-संख्या २४८। प्राचीन मुद्राओं और लिपियों के सत्ताईस सविवरण फलक। सचित्र बहुरंगी जिल्द। हिन्दी में अपूर्व पुस्तक।

१२. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डा० उदयनारायण तिवारी (प्रयाग-विश्वविद्यालय)। पृष्ठ ६२५। मूल्य साढ़े तेरह रुपये। सुविस्तृत भूमिका-सहित। सचित्र बहुरंगी जिल्द।

१३. राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—श्री गोरखनाथ सिंह (भूतपूर्व शिक्षा-निर्देशक, बिहार)। मूल्य डेढ़ रुपया सजिल्द। पृष्ठ-संख्या ४२। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र। बहुरंगा आवरण।

१४. रबर—श्री फूलदेव सहाय वर्मा। (कालेज-इन्स्पेक्टर, बिहार-विश्वविद्यालय)। मूल्य साढ़े सात रुपये। पृष्ठ २२६, चित्र ६१। ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक। सचित्र बहुरंगी जिल्द।

१५. ग्रह-नक्षत्र—श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस०। पृष्ठ ११८, रेखाचित्र ४०। मूल्य सवा चार रुपये। खगोल-जगत् का अद्भुत दृश्यदर्शक रोचक वर्णन। नेत्ररंजक जिल्द।

१६. नीहारिकाएँ—डा० गोरखप्रसाद (प्रयाग-विश्वविद्यालय) पृष्ठ ७२, चित्र २१। मूल्य सजिल्द सवा चार रुपये। वैज्ञानिक विषय का मनोहर साहित्यिक वर्णन। दर्शनीय सचित्र आवरण।

१७. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस०। पृष्ठ १६४, सजिल्द। मूल्य तीन रुपये। भावात्मक चित्रमय बहुरंगा आवरण।

परिषद्-प्रकाशनों पर बहुमूल्य सम्मतियाँ

थोड़े से ही समय में 'परिषद्' ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। विशेष महत्त्व की बात यह है कि परिषद् के उद्देश्य उसकी उदार वृत्ति और व्यापक दृष्टि के द्योतक हैं। इसके द्वारा हिन्दी-साहित्य सर्वाङ्गपूर्ण होगा और सच्चे साहित्य को प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

—(आचार्य) नरेन्द्रदेव

आपकी पुस्तकों को देखकर प्रसन्नता होती है और गर्व भी होता है। आप हिन्दी के भण्डार को सर्वाङ्ग सम्पन्न बनाने का काम जिस सफलता से कर रहे हैं, उसको देखकर यह विश्वास होता है कि शीघ्र ही हमारा वाङ्मय ऐसे स्तर पर पहुँच जायगा कि किसी को उसपर आक्षेप करने का साहस न हो सकेगा। —(डॉक्टर) सम्पूर्णानन्द

परिषद् ने ग्रन्थप्रकाशन के जिस आयोजन का श्रीगणेश किया है, वह देशभर में निस्सन्देह अनूठा है। देश की ज्ञानगरिमा और उच्च शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए, यह ज्ञानदान की शास्त्रीय विवेचनात्मक परम्परा का—टोटे का—धन्धा कोई अन्य प्रकाशक कर भी तो नहीं सकता। इन पुस्तकों के प्रकाशन से बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् एक विद्यापीठ बनती चली जा रही है। प्रभु करे, बिहार की ज्ञान-साधना तथा आपका सम्मिलित यज्ञ उत्तरोत्तर उन्नत, विस्तृत तथा सफल हो।

—('कर्मवीर'-सम्पादक) माखनलाल चतुर्वेदी

आजकल कुछ विरोधियों के द्वारा यह बात कही जाती है कि हिन्दी में ऊँचे साहित्य की न्यूनता है। ऐसी बातों का उत्तर, हमें विवाद करके नहीं, विनयपूर्वक ऐसे कार्य करके ही देना है, जैसा कार्य बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् कर रही है। ऐसे प्रकाशनों से कोई भी साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। —(राष्ट्रकवि) मैथिलीशरण गुप्त